प्राचीन भारतीय कलात्मक एवं साहित्यिक परंपरा में पेड़-पौधे और वनस्पतियां

Tree and Plant in Ancient Indian Artistic and Literary Traditions

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की
डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध

शोध निर्देशक

डॉ० हरि नारायण दुबे
रीडर, प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्ता

सन्तोष कुमार चतुर्वेदी
प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
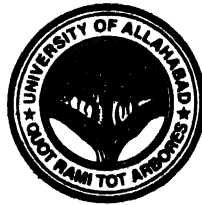
प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
सन् 2001 ई०

प्राक्कथन

मानव आज भले ही प्रगति के अनेक सोपानों को पार कर चुका हो, आज भी वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये कई समस्याओं से जूझ रहा है। इनमें सबसे प्रमुख समस्या पर्यावरण के दिन-प्रतिदिन प्रदूषित होते जाने की है। अनियत्रित प्राकृतिक दोहन से जल-थल-वायु सभी बुरी तरह प्रभावित हुये हैं। पर्यावरण संरक्षण के लिये आज तरह-तरह के कार्यक्रमो पर जोर दिया जा रहा है। सामाजिक-वानिकी के अंतर्गत बृक्षारोपण अभियान प्रमुखता से चलाये जा रहे हैं।

प्राचीन भारत के साहित्य एवं कला में पेड-पौधों एवं वनस्पतियों को काफी महत्व दिया गया है। वस्तुतः इसका जीवन के लिये एक सकारात्मक उद्देश्य था। बढ़ती हुई जनसंख्या एवं प्रगतिशील औद्योगिक मानव समाज के लिये आज पेड़-पौधों की प्रासंगिकता पहले से कही अधिक है। प्राचीन भारतीय साहित्य एवं कला के अध्ययन के माध्यम से मैंने वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे पेड़-पौधों के संदर्भ मे नयी दृष्टि विकसित करने तथा यथा संभव वैज्ञानिक दृष्टि से समीक्षा करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में साहित्य, कला, धर्म, ज्योतिष आदि पक्षो के माध्यम से पेड़-पौधों के पर्यावरणीय महत्व और मानव जीवन में उनके विविध उपयोग पर सूक्ष्म दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध के अंतर्गत मुख्य रूप से उत्तर भारतीय कला एव साहित्य मे पेड़-पौधों के वर्णन को अध्ययन का विषय बनाया गया है। आलोचित शोध का समय भारतीय इतिहास के प्रारभिक काल से लेकर राजपूत काल (12वीं सदी) तक है। पेड़-पौधों से संबंधित आधुनिक वैज्ञानिक अनुसधानपरक जानकारियों का भी समावेश इस शोध मे किया गया है। शोध प्रबंध में कुल आठ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय परिचयात्मक है। दूसरे अध्याय में प्राचीन भारतीय साहित्य में पेड़-पौधों के वर्णन को रेखाकित किया गया है। तीसरे अध्याय में पेड़-पौधों के औषधीय वर्णन की विवेचना की गयी है। चौथे अध्याय में धर्म के माध्यम से पेड़-पौधो के प्रति संचेतना को समझने का प्रयास किया गया है। पाँचवे अध्याय मे ज्योतिष के माध्यम से पेड़-पौधों के सामाजिक उपयोग पर प्रकाश डाला गया है। छठां अध्याय भारतीय कला में पेड-पौधों के अंकन एवं उनके निहितार्थो पर केंद्रित है। सातवें अध्याय प्राचीन भारतीय चिंतन में पर्यावरण और पेड़-पौधे पर आधारित है। आठवे अध्याय में सभी अध्यायों के निष्कर्ष को समाहित किया गया है।

शोध प्रबंध के लिखने मे सहायक उन सभी सम्माननीय रचनाकारों के प्रति मै अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके ग्रथों, लेखों अथवा विचारो का कही न कही मैंने उपयोग किया है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, सस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के वर्तमान विभागाध्यक्ष एव गुरूवर प्रो० विद्याधर मिश्र का मैं विशेष आभारी हूॅ जिन्होने मुझे इतिहास एव पुरातत्व के संबध में विषय दृष्टि प्रदान की है।

प्रस्तुत प्रबध के विषय चयन से लेकर अंतिम परिणति तक पहुँचने में श्रद्धेय गुरुवर डॉ० हरि नारायण दुबे से नित्य-प्रति जो प्रेरणा एव प्रोत्साहन मिला है, उसके अभाव मे उक्त अध्ययन सभव ही नहीं था। विश्वविद्यालय के कार्यो एवं अन्य सांस्कृतिक आयोजनो मे व्यस्त रहते हुये भी श्रद्धेय गुरुवर ने शोध निर्देशक के रूप मे जो मार्गदर्शन किया है उसके लिये मैं सर्वथा नतमस्तक हूँ। प्रो० शिवेश चन्द्र भट्टाचार्य, प्रो० ओमप्रकाश, प्रो० आर० पी० त्रिपाठी, डॉ० गीता देवी, डॉ० आदित्य प्रसाद ओझा, डॉ० पुष्पा तिवारी आदि गुरुवर मेरा सतत मार्गदर्शन करते रहे हैं एतदर्थ मैं इनका हृद्य से आभारी हूॅ।

शोध प्रबध से सबधित ग्रथो के सुझाव एवं चयन के लिये मैं विशेष रूप से प्रो० सत्य प्रकाश मिश्र (हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय), श्री नीलकात जी (साहित्यकार), डॉ० जय नारायण पांडेय (प्राचीन इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय), श्री हरि मोहन मालवीय (अध्यक्ष, हिंदुस्तानी एकेडेमी), श्री एम० पी० तिवारी (विधि विभाग, इलाहाबाद डिग्री कालेज), श्री अनिल कुमार सिह, श्री बोधिसत्व (शोध सहायक, अतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा) एवं श्री सूर्यनारायण का आभारी हूँ। अपने विभाग के उन गुरुवरों के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने किसी न किसी रूप में प्रस्तुत शोध लेखन मे मेरी सहायता की है।

हिंदी साहित्य में नयी कहानी आंदोलन की त्रयी के एक आधार स्तंभ आदरणीय श्री मार्कण्डेय जी के सहयोग के बिना मै प्रस्तुत शोध प्रबंध के रूपायित होने की कल्पना भी नहीं कर सकता था उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मात्र औपचारिकता ही होगी। श्री शेखर जोशी, श्री रवीन्द्र कालिया, श्रीमती ममता कालिया, श्री हरीश चंद्र पाडे, डॉ० मत्स्येद्र नाथ शुक्ल प्रभृति साहित्यकारो ने समय-समय पर जो प्रोत्साहन एव अमूल्य सुझाव दिये, उसके लिये मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूॅ।

मैं अपने मित्रों विशेष तौर पर श्री जय प्रकाश शुक्ल, श्री प्रेम भूषण सिंह, श्री विनोद कुमार शुक्ल, श्री रमेश चन्द्र स्टेनो, श्री शंकर पांडेय, श्री सतीश शुक्ल, श्री रविकांत, श्री अशुल त्रिपाठी, श्री सुनील सिह, श्री लक्ष्मण पाडेय एव सुश्री लिली अग्रवाल के प्रति आभार प्रकट करता हूॅ, जिन्होने प्रस्तुत लेखन हेतु मुझे हमेशा उत्साहित किया है।

यद्यपि सपूज्य पिता श्री सुरेन्द्र नाथ चतुर्वेदी अब इस भौतिक संसार में नहीं हैं तथापि उनके आशीर्वाद एवं प्रेरणा से ही यह कार्य संभव हो सका है। सरक्षक का दायित्व निभाने वाली आदरणीय
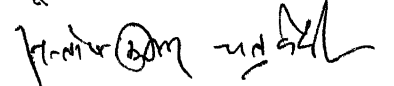
मॉ श्रीमती मालती देवी, अग्रज दंपति श्री प्रकाश चद्र चतुर्वेदी एवं श्रीमती मीरा चतुर्वेदी चरणों मे मैं सतत् नतमस्तक हूँ। अनुज अशोक एवं अविनाश, छोटी बहन ममता एवं चि० शुभम का भी आद्योपांत सहयोग है, इसके लिये मै उन्हे साधुवाद ज्ञापित करता हूँ।

प्रस्तुत शोध के कम्प्यूटर कपोजिग का कार्य श्री संगम जी एव श्रीमती सरिता जी ने बडे मनोयोगपूर्वक किया है। इसके लिये मै इन लोगो का आभार व्यक्त करता हूँ।

प्रस्तुत विषय पर यद्यपि कुछ कार्य हुआ है, तथापि शोध के जो नवीन सिद्धात एवं मान्यताये है, उसके आलोक में इस कार्य को नये सिरे से करने का प्रयास किया गया है। इसमे नवीन तथ्यों को खोजने पर उतना अधिक आग्रह नही है जितना कि ज्ञात तथ्यो की नये सिरे से विवेचना करने का।

प्रस्तुत शोधकार्य शोध के निर्धारित पद्धति के अनुसार ही करने का प्रयत्न किया गया हैं। इसमे अधिकाधिक आग्रह प्राथमिक (मूल) स्रोतो के अध्ययन पर हैं। द्वितीयक स्रोतों एवं पत्र-पत्रिकाओं से भी यथा सभव सहायता ली गयी है।

प्रस्तुत शोध में पृष्ठवार पाद टिप्पणियां दी गयी हैं। पाद टिप्पणी में परंपरा से हटकर आधुनिक पद्धति का अनुसरण किया गया है। प्रस्तुतीकरण में क्रमश: संदर्भित ग्रथ का नाम, लेखक, अनुवादक, संपादक या व्याख्याकार का नाम, प्रकाशन स्थल, प्रकाशन वर्ष, संदर्भित उद्धरण का पृष्ठ, मौलिक ग्रथ की स्थिति मे मडल, स्कध, अध्याय एवं श्लोक का विवरण दिया गया है। हिन्दी ग्रंथो के नाम हिन्दी मे जबकि अंग्रेजी ग्रथो के नाम प्राय: अग्रेजी में दिये गये हैं। शोध लेखन के समय कला-खड के अंतर्गत चित्र एवं प्लेट्स दिये जाने की योजना भी थी, लेकिन कुछ महत्वपूर्ण प्लेट्स उपलब्ध न हो पाने से ऐसा संभव न हो सका। पुस्तक प्रकाशन के समय इस कमी को दूर करने का मैं हर संभव प्रयत्न करूँगा।

—सन्तोष कुमार चतुर्वेदी

इलाहाबाद
29 जनवरी, 2001

संकेताक्षर

प्रस्तुत शोध मे कुछ सक्षिप्ताक्षरों का प्रयोग किया गया है। हिदी और अंग्रेजी के ये सक्षिप्ताक्षर और इनके पूर्ण अभिप्राय निम्नलिखित हैं—

हिन्दी संक्षिप्ताक्षर

अनु०	अनुवाद
ई०	ईस्वी
ई० पू०	ईसा पूर्व
डॉ०	डॉक्टर
प०	पडित
पृ०	पृष्ठ
व्या	व्याख्या
सं०	सवत
संपा०	सपादक

ENGLISH ABBREVIATION

A D	Anna Domını (Afteı Chrıst)
Co	Company
CSIR	Councıl of Scıentıfic & Industrıal Research
ed	edıted
Govt	Government
ICHR	Indıan Councıl of Hıstorıcal Research
Ltd	Lımıted
No	Number
P	Page
Trans	Translated
U S A	Unıted States of Amerıca
Vol.	Volume

●

विषय-सूची

●

अध्याय-1

सृष्टि विकास, वनस्पतियाँ एवं पेड़-पौधे

पेड-पौधे भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। इनके माध्यम से हम प्रकृति के नियामक एवं सृष्टिकर्ता से प्रत्यक्ष रूप से जुडे रहते हैं। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से इसीलिये वृक्षों को निराकार ब्रह्म का पार्थिव रूप कहा गया है।

राष्ट्रीय गरिमा एवं समृद्धि को समझने के लिये वृक्ष प्रेम आवश्यक है। राष्ट्रीय वैभव के प्रतीक के साथ ही पादप देश-सौन्दर्य के सहज रूप हैं। ईश का ईश्वरत्व वृक्ष में साकार बना है। ऐसे में उसका अनादर परमात्मा का अपमान है और उसकी पूजा भगवान की अर्चना है।

पादप का विनाश मानवीय सहृद्यता या भावुकता का विनाश है जबकि उसके प्रति स्नेह प्रकट करना परम पावन सौन्दर्य का सम्मान करना है। वृक्ष प्रेम के अभाव से बडी-बड़ी सभ्यताओं का विनाश हुआ है। राष्ट्र के विनाश में शक्तिशाली आक्रमण हेतु नही है अपितु वृक्षों के नाश ने समृद्धिशाली राष्ट्रों का अत किया है। वृक्षों के नाश से वर्षा का अभाव और वर्षा की कमी से मानव जाति का ह्रास प्रत्यक्ष है। वृक्ष सौन्दर्य के प्रतीक तथा मानव की अनिवार्य आवश्यकताओं के पूरक हैं। राष्ट्रीय समृद्धि के प्रमुख साधन, नगरों एवं गृहो के शोभावर्धक, शान्तिदायक तथा सामाजिक उन्नति के द्योतक ये वृक्ष ही हैं।

मानव आज भले ही प्रगति के अनेक सोपानों को पार कर चुका हो, परन्तु वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये आज अनेकानेक समस्याओं से जूझ रहा है। इनमें सबसे प्रमुख समस्या पर्यावरण प्रदूषण की है। पर्यावरण संरक्षण के लिये आज तरह-तरह के कार्यक्रमों पर जोर दिया जा रहा है। सामाजिक-वानिकी के अन्तर्गत वृक्षारोपण अभियान चलाये जा रहे हैं। मूलतः इसके लिये हमें इतिहास से दृष्टि लेनी होगी। भारतीय साहित्य एवं कला में पेड़-पौधों और वनस्पतियों को पर्याप्त महत्व दिया गया है। वस्तुतः जीवन के लिये इसका एक सकारात्मक उद्देश्य था। रोटी-कपड़ा-मकान के अतिरिक्त धर्म, ज्योतिष और रोगों-व्याधियों आदि के शमन हेतु पेड़-पौधे किसी न किसी रूप में उपयोग में आते रहे हैं। आज बेहिसाब बढ़ती हुई जनसंख्या एवं प्रगतिशील मानव समाज के लिये पेड़-पौधों की प्रासंगिकता पहले से कहीं अधिक है। भारतीय कला एवं साहित्य के अध्ययन के माध्यम से हम वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पेड़-पौधों के संदर्भ में एक नयी दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं।

वनस्पतियों से हमें जीवन मिलता है। मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकतायें पेड़-पौधों के जरिये ही पूरी होती हैं। मनुष्य से वनस्पतियों को संरक्षण तथा सुरक्षा मिलती है। मानव तथा

वनस्पतियों का परस्पर सम्बन्ध ऐसा है कि दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। पुरातन समय से ही हमारे यहाँ वनस्पतियों का संवर्द्धन-सरक्षण किया जा रहा है। भारतीय मनीषी प्रारम्भ से ही इस तथ्य के प्रति अवगत थे कि सभी पौधो मे कोई न कोई औषधीय गुण है।

मानव शरीर की रचना मुख्यत: पृथिवी, जल और तेज से होती है। इसमें मन को अन्नमय, प्राण को जलमय और वाक् को तेजोमय कहा गया है।

अन्नमयं हि सोम्य मनः। आपोमयः प्राणः। तेजोमयी वागिति।[1]

वनस्पतियों से ही हमें अन्न प्राप्त होता है। अन्न की गणना प्रत्यक्ष देवता के रूप में की जाती है। अन्न का महत्व समाज में हमेशा से ब्रह्म के समान रहा है। तैत्तिरीय उपनिषद मे उल्लिखित है कि 'अन्न ही ब्रह्म है। अन्न से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्न से ही सबकी आजीविका चलती है। नष्ट होने के बाद सभी अन्न में मिल जाते हैं और अंततोगत्वा एकरूप हो जाते है।'[2]

महाभारत में कहा गया है कि इस ब्रह्माण्ड में सबसे महत्व की वस्तु अन्न ही है। उससे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। वेदों में अन्न को प्रजापति कहा गया है। प्रजापति संवत्सर माना गया है। संवत्सर यज्ञरूप है और यज्ञ में सबकी स्थिति है।

अन्नमेव विशिष्ट हि तस्मात् परतरं न च अन्न प्रजापतिश्चोक्तः स च संवत्सरो मतः।
संवत्सरस्तु यज्ञोऽसौ सर्व यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।[3]

यज्ञ से ही समस्त चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं। अत: अन्न ही सब पदार्थों में श्रेष्ठ है। यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है।

तस्माद् सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च। तस्मादन्नं विशिष्ट हि सर्वेभ्य इति विश्रुतम्।।[4]

इसीलिये यह कहा गया है कि इस संसार में अन्नदान के समान विचित्र एवं पुण्यदायक कोई दान नहीं है।[5]

स्कंद पुराण में अन्न को जीवन का आधार बताया गया है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्य मुपतिष्ठति। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वष्टेरन्नं ततः प्रजाः।[6]

---

1 छादोग्य उपनिषद, 6 7 6।

2 तैत्तिरीय उपनिषद, 3 3।

3 महाभारत, वन पर्व, 200 37, 38।

4 वही, 200 39।

5 महाभारत, वन पर्व, 200 35।

6 स्कदपुराण, प्रभासखड, 22 88, 89।

'सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है और अन्न से प्रजा जीवन धारण करती है।'

वनस्पतियाँ केवल शाकाहारी जीवों का ही प्राण आधार नहीं है अपितु परोक्ष रूप से मांसाहारी जीव भी अपने अस्तित्व के लिये उसी पर निर्भर है। जिन जीव-जन्तुओं का मांस मांसाहारी जीव प्रयुक्त करते हैं, वे अपना भरण-पोषण वनस्पतियों से ही करते है।

पेड़-पौधे और वनस्पति : परिभाषा. वर्गीकरण—पेड़-पौधे और वृक्ष शब्द वनस्पति के पर्यायवाची हैं। पाणिनी ने पर्ण, पुष्प, फल तथा मूल आदि भाग की विशेषताओ पर पौधों के नाम रखे जाने का वर्णन किया है। जैसे-शंखपुष्पी। उनके विचार मे वृक्ष तथा फल का नाम प्रायः एक ही होता था। जैसे-आमलकी का वृक्ष आमलकी। पतंजलि ने वृक्ष के भागों मूल, स्कंध, फल, पलाशवान का उल्लेख पौधों के संदर्भ में किया है।[1] ऐसे में वृक्ष के रूप में फल, फूल, पत्तियो के उल्लेख से किसी तरह का भ्रम नहीं होना चाहिये। इन सबका प्रयोग मूलतः वनस्पतियों एवं पेड़-पौधों के संदर्भ में ही किया गया है।

प्राचीन ग्रन्थों में वनस्पतियों का वर्गीकरण स्पष्ट रूप से मिलता है। वनस्पतियो के वर्गीकरण की भारतीय परंपरा मुख्यतः वानस्पतिक, औषधीय एवं धार्मिक महत्व पर आधारित थी। वनस्पतियों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में प्रारम्भिक जानकारी ऋग्वेद[2] एवं अथर्ववेद[3] से मिलती है। मनु वनस्पतियो के वर्गीकरण को वृहद आयाम देते हुए उन्हें सात वर्गो में विभाजित करते हैं—(1) औषधि, (2) वनस्पति, (3) वृक्ष, (4) गुच्छे, (5) गुल्म, (6) प्रतान और (7) वल्ली। चिकित्सा ग्रन्थ आयुर्वेद मे द्रव्य के तीन भेद बताये गये हैं—1. जंगम, 2. औद्भिद, 3. पार्थिव। जो पृथ्वी को फोड़कर उत्पन्न होते हैं उन्हें औद्भिद कहते है। जैसे वनस्पति, वानस्पत्य, वीरुध और औषधि।

औदभिदं तु चतुर्विधम्। वनस्पतिर्वीरुधश्च वानस्पत्यस्तऔषधिः।
फलैर्वनस्पति पुष्पैर्वानस्पतयः फलैरपि। ओषध्यः फलपाकान्ताः प्रतानैर्वीरुधः स्मृताः।।[4]

औद्भिद द्रव्य के भी चार प्रकार बताये गये हैं—1 वनस्पति, 2 वीरुध, 3 वानस्पत्य, 4 ओषधि। जिनमें केवल फल दृष्टिगोचर हों उन्हें वनस्पति, जिनमें फूल और फल दोनों दृष्टिगोचर हों, उन्हें वानस्पत्य, जिनका फल पक जाने पर अंत हो जाये उन्हें ओषधि और जो लता के रूप में फैले उसे वीरुध कहा जाता है।

सुश्रूत ने भी जिनमें फूल न हों किन्तु फल लगे हों उन्हें वनस्पति बताया है। जैसे गूलर, वट, पाकड़। जिनमें फूल एवं फल दोनों स्पष्ट हो उन्हें वानस्पत्य या वृक्ष कहते हैं। जैसे—आम जामुन

---

1 इडिया एज नोन टू पाणिनी, पृ० 211।

2 ऋग्वेद, 10 97।

3 अथर्ववेद, 13 7 4।

4 चरक सहिता, भाग 1, दीर्घजीविताध्याय, 1 72, 73।

महुआ आदि। सुश्रूत ने इन्हें 'वृक्ष' की संज्ञा दी है—'पुष्पफलवंतो वृक्षा:'। जो पककर स्वत: ही नष्ट हो जाते है जैसे—जौ, गेहूँ, धान आदि को ओषधि कहते हैं। जिनके गुल्म (झुरमुट) एवं लताये होती हैं, उन्हे वीरुध कहते है। जैसे—गुडूची। इस औद्भिद द्रव्य के सभी अंग किसी न किसी रूप में ग्राह्य होते है।

मूलत्वक्सार निर्यास नालस्वर सपल्लवा:। क्षारा: क्षीरं फलं पुष्पं भस्म तैलानि कंटका:॥
पत्राणि शुंगा: कंदाश्च प्ररोहाश्चौद्भिदो गण:॥[1]

मूल, छाल, गोंद, नाल (डठल), स्वरस, मृदुपत्तियाँ, क्षार, दूध, फल, फूल, भस्म (राख), तेल, काँटे, पत्तियॉ, शुंग (टूँसा), कद, प्ररोह (वट जटा)। ये सख्या में 18 है। औद्भिद द्रव्यों के इन प्रयोज्य अगों को औद्भिद गण कहते हैं।

श्रीमदभागवत पुराण में छ: प्रकार के स्थावर वृक्षों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिन्हे छ: प्रकार की प्राकृत सृष्टियों के बाद सातवीं प्रधान वैकृत सृष्टि के अंतर्गत रखा गया है। छ: प्रकार के ये स्थावर वृक्ष इस प्रकार हैं—

वनस्पत्योषधि लतात्वक्सारा वीरुधो द्रुमा:। उत्स्रोतसस्तम: प्रायाअन्त: स्पर्शा विशेषिण:॥[2]

1. **वनस्पति**—जो बिना मौर आये ही फलते हैं, जैसे—बड़, गूलर, पीपल आदि।

2. **औषधि**—जो फलों के पक जाने पर नष्ट हो जाते है, जैसे—धान, गेहूँ, चना।

3. **लता**—जो किसी का आश्रय लेकर बढ़ते है, जैसे—ब्राह्मी, गिलोय आदि।

4. **त्वक्सार**—जिसकी छाल बहुत कठोर होती है, जैसे—बाँस।

5. **वीरुध**—जो लता पृथ्वी पर ही फैलती है किन्तु कठोर होने से ऊपर की ओर नहीं चढ़ती, जैसे—खरबूजा, तरबूजा आदि।

6. **द्रुम**—जिनमें पहले फूल आकर फिर उन फूलों के ही स्थान में फल लगते हैं, जैसे—आम, जामुन।

इनका संचार नीचे (जड़) से ऊपर की ओर होता है। इनमें प्राय: ज्ञान शक्ति प्रकट नहीं रहती। ये भीतर ही भीतर केवल स्पर्श का ही अनुभव करते हैं तथा इनमे से प्रत्येक में कोई विशेष गुण रहता है।

अथर्ववेद के अनुसार नाना प्रकार के फल, ओषधियॉ, फसलें, अनाज, पेड़-पौधे इसी मिट्टी पर उत्पन्न होते हैं। उन पर ही हमारा भोजन निर्भर है।

---

1 चरक सहिता, भाग 1, दीर्घजीविताध्याय, 1 74।

2 श्रीमदभागवत् पुराण, भाग 1, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० 2040, 3 10 19।

यस्मान्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पंचकृष्टयः ।[1]

वामन पुराण में धानों में शालि, फूलों में जाती (चमेली), फलों में आम, मुकुलों में अशोक, जडी-बूटियो में हरीतिका, मूलों में कंद,[2] शाकों में मकोय, ऊँचे पेड़ों में ताड़, जलीय पौधो मे कमल और वृक्षों में वट[3] को श्रेष्ठ बताया गया है।

पेड-पौधों का ऐसा ही अस्पष्ट वर्गीकरण स्कंद पुराण में प्राप्त होता है। इसके अनुसार चद्रमा के तेज से सपूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करने वाली औषधियाँ उत्पन्न हुई। उन्हीं औषधियो द्वारा संपूर्ण लोक और चार प्रकार के प्रजा वर्ग जीवन धारण करते हैं। फल लगने पर जिनका अंत होता है ऐसी औषधियाँ 'शण' कहलाती हैं। ये 16 प्रकार की है—धान, जौ, गेहूँ, अणु, तिल, मोठ, कँगनी, कोदो, चीना, उड़द, मूँग, मसूर, निष्पाव, कुलथी, अरहर और चना। ये ग्रामीण औषधियो की जातियाँ बतायी गयी हैं। ग्राम और वन में उत्पन्न होने वाली 14 प्रकार की औषधियाँ यज्ञ के काम आती हैं। ये हैं—धान, जौ, गेहूँ, अणु, तिल, कँगनी, कुलथी, साँवा, तिल्ली, वनतिल, गवेधु, उड़द, मकई और वेणुयव (बाँसधान)। तृण, गुल्म, लता, वीरुध तथा गुच्छ आदि करोड़ों प्रकार के औषधि और तृणो के स्वामी चंद्रमा है।[4]

भविष्य पुराण में संपूर्ण जीवजगत को 4 भागों में बाँटा गया है। ये हैं—1. जरायुज (गर्भ से उत्पन्न होने वाले प्राणी), 2. अण्डज (अंडे से उत्पन्न होने वाले), 3. स्वेदज (पसीने की उष्मा से उत्पन्न होने वाले) तथा 4 उद्‌भिज्ज (भूमि का उद्‌भेद कर उत्पन्न होने वाले)। भूमि को उद्‌भेद कर उत्पन्न होने वाले वृक्ष, औषधियाँ आदि उद्‌भिज्ज सृष्टि हैं। जो फल के पकने तक रहे और फिर सूख या नष्ट हो जाये तथा फूल और फल वाले वृक्ष—'औषधि' कहलाते हैं। पुष्प के आये बिना ही फलने वाले को 'वनस्पति', फूलने तथा फलने वाले को 'वृक्ष' कहते हैं। इसी प्रकार गुल्म, वल्ली वितान आदि के भी अनेक भेद होते हैं। ये सब बीज अथवा काण्ड (वृक्ष की छोटी सी काटी हुई शाखा) को भूमि में गाड़ देने से उत्पन्न होते है।[5]

आधुनिक वैज्ञानिक वर्गीकरण— आधुनिक वनस्पतिशास्त्रियों में भी पौधों के वर्गीकरण को लेकर मतैक्य नहीं है। एक धारणा के अनुसार वनस्पति वर्गिकीय वर्णन में इन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिये—स्वभाव, मूल (जड़), स्तंभ (तना), पत्ती, पुष्पक्रम, पुष्प। उदाहरणार्थ स्वभाव के अनुसार पौधों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है।[6]

---

1 अथर्ववेद, 12 1 42।

2 वामन पुराण, 12 50-52।

3 वही, 12 53, 54।

4 सक्षिप्त स्कंद पुराणांक, गीताप्रेस गोरखपुर 1951 प्रभासखंड, पृ० 963।

5 सक्षिप्त भविष्यपुराणाक, गीताप्रेस गोरखपुर, जनवरी, 1992, पृ० 20।

6 वनस्पति विज्ञान—एम० पी० कौशिक, मुजफ्फरनगर, 1993, पृ० 546-548।

(i) **एकवर्षीय**—वे पौधे जो अंकुरण से लेकर बीज बनने तक की सभी अवस्थाये एक वर्ष मे ही पूरी कर लेते हैं।

(ii) **द्विवर्षीय**—ये पौधे दो वर्ष में अपना जीवनकाल समाप्त करते हैं।

(iii) **बहुवर्षीय**—इन्हें अपना जीवनकाल समाप्त करने मे दो से अधिक वर्ष लगते हैं।

(iv) **शाक (Herb)**—कोमल तने वाले छोटे पौधे।

(v) **झाड़ी (Shrub)**—इन पौधों में मुख्य तना छोटी-छोटी अनेक शाखाओ मे विभाजित हो जाता है।

(vi) **वृक्ष (Tree)**—मुख्य तना मोटा व काष्ठीय होता है तथा ऊपर जाकर ही शाखाओं मे विभाजित होता है।

वनस्पति जगत का संसार असीमित है। हर पौधे की प्रकृति, रूप, रंग, आकार एवं आवास आदि भिन्न-भिन्न होते हैं। इस तथ्य के मद्देनजर सम्पूर्ण पादप समुदाय को विभिन्न वर्गो (classes) एव कुलों (families) में इस प्रकार विन्यस्त किया गया है कि इससे उनका सही-सही स्थान, नाम, रचना की जानकारी तो प्राप्त हो ही सके साथ ही साथ आपस की बंधुता, संबंध, विकास और उत्पत्ति स्थल का पता चल सके। इस क्रम मे समस्त वनस्पति जगत को मुख्यत: दो भागों में बाँटा गया है।[1]

1 अपुष्पोदभिद् या बिना फूल वाले पौधे (Cryptogams)

2. पुष्पोदभिद् या फूल वाले पौधे (Phanerogams)

1. अपुष्पोदभिद्—इस वर्ग के अंतर्गत फूल या बीज रहित पौधे आते हैं। इन्हे 'निम्न पौधे' भी कहते हैं। इस समूह के पौधों में सरल रचना से जटिल रचना के विकास का एक क्रम है जिसे निम्नलिखित समूहों में बाँटा गया है।

(i) थैलोफाइटा (Thallophyta)

(ii) ब्रायोफाइटा (Bryophyta)

(iii) टेरिडोफाइटा (Pteridophyta)

(i) **थैलोफाइटा**—वनस्पति जगत के इस सबसे बड़े समूह में सर्वाधिक सरल रचना वाले पौधे आते हैं। इन पौधों के शरीर जड़, तना, पत्ती, आदि में विभक्त नहीं होते। इसके निम्नलिखित उपसमूह हैं—

(a) शैवाल (Algae), (b) कवक (Fungi), (c) जीवाणु (Bacteria), (d) लाइकेन्स (Lichens)।

(ii) **ब्रायोफाइटा**—यह कुछ विकसित पौधों का समूह है जिसे उच्च अपुष्पोद्भिद कहते हैं। इसके अंतर्गत पौधे का शरीर पत्ती के आकार का होता है। इसके दो उपसमूह है—

---

1 वनस्पतिशास्त्र—एस० एन० झा एव ए० के० सिन्हा, पटना, 1996 97, पृ० 7-8।

(a) सूकाय ब्रायोफाइट्स (Thalloid Bryophytes or Liverworts)

(b) मॉस या पत्ती के आकार वाले ब्रायोफाइट्स (Moss or leafy Bryophytes)।

(iii) टेरिडोफाइटा—इस समूह के पौधों का शरीर, जड़, तना, पत्ती मे विभक्त होता है।

2. पुष्पोद्भिद—इस वर्ग के अंतर्गत फूल वाले पौधे आते है। ये पौधे पूर्ण विकसित होते हे तथा इनमें फूल, फल तथा बीज होते है। फूल वाले पौधों का समुदाय इतना बड़ा है कि अब तक लगभग 19,9,000 स्पेसीज जिनमे 15,9,000 द्विबीजपत्री और 40,000 एकबीजपत्री स्पेसीज का पता लग सका है।[1] अभी भी बहुत से स्पेसीज का पता लगाना बाकी है। इस समुदाय के पौधो में असीमित विषमतायें हैं। इसलिये बाहरी रचना को आधार मानकर उनको समानताओं और विषमताओं के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। सामान्यतया इस समूह के पौधों को दो उपसमूहों में बाँटा गया है।

(i) नग्नबीजी (Gymnosperms)

(ii) आवृत्तबीजी (Angiosperms)

(i) नग्नबीजी—इस वर्ग में बीज फल के ऊपर पाये जाते हैं। बीज के नग्न होने के कारण इस समूह को नग्नबीजी कहा गया है। इसके दो वर्ग हैं—(1) साइकेड्स (cycads), (2) कोनीफर्स (conifers)। वनस्पति जगत का सबसे ऊँचा पौधा सिकोया इसी उपसमूह में आता है।

(ii) आवृत्तबीजी—फल वाले पौधों में यह सर्वाधिक विकसित पौधों का उपसमूह है। इनके पौधों में जड़, तना, पत्ती, फूल, फल एवं बीज सभी पूर्ण विकसित होते हैं। इस उपसमूह के पौधों में बीज फल के अन्दर होते हैं। इस उपसमूह को निम्न दो वर्गो में विभाजित किया गया है—

(a) एकबीजपत्री पौधे (Monocotyledonous plants)—इसके अंतर्गत ऐसे पौधे आते हैं जिनके बीज में सिर्फ एक बीजपत्र या दाल होती है। इन्हें 'एक दाल वाले पौधे' भी कहते हैं। जैसे—धान, गेहूँ, जौ, मक्का, बाँस आदि।

(b) द्विबीजपत्री पौधे (Dicotyledonous plants)—इस वर्ग के पौधो के बीजों मे दो बीजपत्र या दालें होती हैं। जैसे—चना, सेम, मटर, रेड़ी आदि।

पेड़-पौधों में जीवन—पृथ्वी पर दो प्रकार के जीवधारी पाये जाते हैं—1. जन्तु 2. वनस्पति। पेड़-पौधों और वनस्पतियों में भी जीवन होता है यह बात आज से हजारों वर्ष पूर्व हमारे मनीषियों ने परिकल्पित की थी। भारतीय परम्परा में चौरासी लाख योनियों की बात कही गयी है। अपने-अपने कर्म-फल के अनुसार जीव के अगले जन्म का निर्धारण होता है। ऋग्वेद से विदित होता है कि नीच कर्म करने के कारण मनुष्य वृक्ष और लता जैसे स्थावर शरीर में प्रवेश करता है।[2] गरुड़ पुराण के

---

1 वनस्पतिशास्त्र—एस० एन० झा एव ए० के० सिन्हा, पटना, पृ० 311।

2 ऋग्वेद सहिता—एन० एस० सोनटाके, पूना, 1972, 7 9 3, 7 101 6, 7 10 2।

अनुसार वृक्ष, गुल्म, लता, वनस्पति, पर्वत, तृण ये सब स्थावर कहे जाते हैं। ये सब माया-मोह से युक्त हैं जो कृमि, पशु, मछली आदि चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण करते हैं।

वृक्ष-गुल्म लता वल्ली गिरयश्च तृणानि च। स्थावरा इति विख्याता महामोह समावृताः ।।[1]

उक्त पुराण में ही यह वर्णन मिलता है कि गुरु पत्नी का गमन करने वाला तृण, गुल्म, लता आदि मे जन्म धारण करता है।

तृणगुल्मलतातात्वं च क्रमशो गुरुतल्पगः ।।[2]

श्रीमद्‌भागवत पुराण के अनुसार दक्ष की पुत्री इला से वृक्ष, लता आदि पृथ्वी मे उत्पन्न होने वाली वनस्पतियाँ उत्पन्न हुई।

इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसाः ।।[3]

जैन दर्शन के अनुसार संसार की सभी वस्तुओं में आत्मा (जीवन-तत्व) होती है। जीव-जन्तुओ के अतिरिक्त पेड़-पौधों में भी यह आत्मा निहित है। महाभारत के अनुसार धान आदि जितने अन्न के बीज है सब जीव ही हैं।[4]

धान्यबीजानि यान्याहुर्व्रीह्यादीनि द्विजोतम। सर्वाण्येतानि जीवानि तत्र किं प्रतिभाति ते।

वृक्षों तथा औषधियो (अन्न के पौधों) को काटना भी जीव हिसा ही है।[5] जिस हरे-भरे वृक्ष की शीतल छाया का आश्रय लेकर रहा जाये, उसके किसी एक पत्ते से भी द्रोह नहीं करना चाहिये। अपितु उसके पहले के उपकारों को सदा याद रखकर उसकी रक्षा करनी चाहिये।

यस्य चार्द्रस्य वृक्षस्य शीतच्छायां समाश्रयेत। न तस्य पर्ण दुह्येत पूर्ववृत्त मनुस्मरन.... ।।[6]

पुराण श्रवण काल में पालनीय धर्म के अंतर्गत यह बताया गया है कि जो लोग व्यास के आसन से श्रेष्ठ या मध्यम आसन पर बैठकर उत्तम कथा श्रवण करते हैं, वे अर्जुन नामक वृक्ष होते हैं।

ये वै वरासनारुढ़ा ये च मध्यासनस्थिताः। शृण्वन्ति सत्कथा ते वै भवन्त्यर्जुन पादपाः ।।[7]

भविष्य पुराण में उल्लेख मिलता है कि वृक्ष आदि भी चेतना शक्ति संपन्न हैं और इन्हें सुख-

---

1 गरुड पुराण, 4 61।

2 गरुड पुराण, 4 36।

3 श्रीमद्‌भागवतपुराण, 6 6 28।

4 महाभारत, वन पर्व—गीता प्रेस, गोरखपुर, स० 2045, 208 15।

5 वही, 208 16।

6 महाभारत, विराट पर्व, 16 20।

7 सक्षिप्त भविष्य पुराणाक, गीता प्रेस, गोरखपुर, जनवरी 1992, पृ० 4।

दुःख का ज्ञान रहता है। परन्तु पूर्वजन्म के कर्मो के कारण ये तमोगुण से आच्छन्न रहते हैं। इसी कारण मनुष्यों की भाँति बातचीत आदि करने मे समर्थ नहीं होते।

ओषध्यः फलपाकान्ता नानाविधफलोपगाः। अपुष्पा फलवंतो ये ते वनस्पतयः स्मृताः॥
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः। तमसा बहुरुपेण वेष्टिता कर्महेतुना॥
अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःख समन्विताः।[1]

उक्त ग्रन्थ के ही अनुसार तृण, गुल्म, लता, वृक्ष, सिह, हाथी, पक्षी, देवता, मनुष्य, जल जंतु सभी की अंतरात्मा में परमात्मा व्याप्त है।[2]

स्कंद पुराण के अनुसार जो वीरासन लगाकर या सिहासन पर बैठकर भगवान की कथा सुनते हैं, वे टेढ़े-मेढ़े वृक्ष होते हैं। जो प्रणाम न करके कथा सुनते हैं वे विष वृक्ष होते हैं।[3]

आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं ने भी अनुसंधानों द्वारा यह सिद्ध किया है कि पेड़-पौधों मे भी जीव (प्राण) होता है। इस संदर्भ मे अपने देश के प्रख्यात वैज्ञानिक आचार्य जगदीश चन्द्र बसु ने 'वृक्षों के नाडी सिद्धांत' को प्रतिपादित करके जहाँ ख्याति अर्जित की, वहीं पाश्चात्य वैज्ञानिक गाडवेस्की ने वनस्पतियों में प्राणशक्ति सिद्धांत को प्रतिपादित किया।[4]

महाभारत के शान्तिपर्व में यह प्रश्न उठाया गया है कि वृक्षों में प्राण चेतना है अथवा नहीं? इसके उत्तर में कहा गया है कि वृक्षों के शरीर में भी पाँचों इद्रियों एवं चेतना का अस्तित्व होता है। वृक्ष भी देखते-सुनते, अनुभव करते एवं खाते-पीते हैं। प्राण चेतना के कारण वे पंचतत्वों से प्रभावित होते हैं, उनके कोशों में जीवन शक्ति का स्पंदन होता है। ऋग्वेद में भी इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख हैं कि जब मरुत नर्यागणों के साथ आकाश में विचरण करते हुए गरजते हैं तो वन के वृक्ष भय से काँप जाते हैं और छोटी-छोटी झाड़ियाँ इधर-उधर हो जाती हैं। लताये अपने आधार के साथ लिपटकर अपने जीवन की रक्षा करती हुई प्रतीत होती हैं। ग्रीष्म एवं शीत ऋतु मे इन्हें भी भय लगता है। जिस तरह मनुष्य शरीर में त्वचा, माँस, अस्थियाँ, मज्जा और स्नायु तन्त्र के समूह होते हैं और इनसे समूचा कार्य संचालन होता है, उसी तरह इनमें भी इन सबके समूह में तेज, जठराग्नि, क्रोध, चक्षु और उष्मा होती है। श्रोत्र, घ्राण, मुख, हृदय, कोष्ठ भी होते हैं। श्लेष्मा, कफ, पित्त, स्वेद, वसा, शोणित और जल ये वृक्षों के शरीर में भी काम करते है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधान के आधार पर ऋग्वेद के उक्त कथन की पुष्टि की है। इन वैज्ञानिकों में दाल्हमेन, सारेन्सन, राइस, हाटकिन्स एवं रायल सोसायटी के अध्यक्ष विलियम क्रुक्स

---

1 भविष्य पुराण, ब्राह्म पर्व, 2/73 75।

2 सक्षिप्त भविष्य पुराणाक, पृ० 143।

3 सक्षिप्त स्कद पुराणाक, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी 1951, पृ० 238।

4 अखण्ड ज्योति, मथुरा, मार्च 1997, पृ० 9।

जैसे विद्वान शामिल हैं। सभी ने एकमत से यह स्वीकार किया है कि वृक्ष-वनस्पतियों मे प्राण तत्व का सिद्धांत वैदिक-काल से ही प्रचलित था। क्रुक्स के अनुसार सूक्ष्म प्राण एक शक्ति है जिसे जीवन का आधार कहा जा सकता है। इसी शक्ति से शरीर के समस्त भीतरी और बाहरी व्यापार संपन्न होते है। वनस्पतिशास्त्रियों ने इसके लिये मैग्नेटिज्म-चुम्बकत्व, वाइटिलिटी-प्राणशक्ति और वाइटल फोर्स-प्राण आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। वनस्पतियो के शरीर में प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान ये 5 प्राण काम करते है। उनमें शब्द, स्पर्श, रुप, रस और गंध की अनुभूति होती हे। उष्मा से न केवल पुष्प एवं फल मुरझा जाते हैं अपितु पत्ते व शाखाएँ भी प्रभावित होते हैं। इसी तरह इन पर शीत का भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में कहें तो वृक्ष-वनस्पतियों को स्पर्श ज्ञान भी है। वे शब्द ग्रहण करते एवं समझते हैं। उन पर संगीत एवं भावनाओं का व्यापक प्रभाव पडता है। लतायें वृक्ष को आवेष्टित करते हुए आगे बढ़ती हैं अतएव उनमें दृष्टि भी है।[1] वैशेषिक दर्शन के अनुसार पेड़-पौधों को पंचतन्मात्राओं से युक्त माना गया है। जड़ समझे जाने वाले वृक्षों के कार्य व्यापारो को अनुप्रेरित करने वाले प्राण चेतना के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। वनस्पतिशास्त्रियों ने प्रोटोप्लाज्म को जीवन का भौतिक आधार माना है जो निर्जीव वस्तुओं में नहीं होता। वृक्षों में जीवों की तरह ही प्रोटोप्लाज्म होता है जो उनके प्राणचेतना से संपन्न होने का सबसे बडा प्रमाण है।

विकासवादी वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन के अनुसार समूचा जंतु एवम् वनस्पति जगत बहुत सरल एवं निम्न श्रेणी के जीवधारियों एवं वनस्पति से विकसित होते-होते विकास की इस अवस्था में पहुँचा है। इस प्रकार जब हम विकास मार्ग को खोजते हुए पीछे जाते हैं, तो पौधों तथा जानवरों के आदिम रूप पर पहुँचते हैं। डार्विन का मानना है कि इस स्तर पर पौधों तथा जंतुओं में कोई अंतर नहीं था और तब दोनों का मूल एक ही था। कालांतर में किन्हीं कारणो से इन मूल प्राणियों का विकास दो दिशाओं में हुआ जिससे वनस्पति एवं जन्तु का प्रादुर्भाव हुआ। तात्पर्य यह कि डार्विन ने भी अपने विकासवादी सिद्धांत की प्रक्रिया में वनस्पतियों को प्राणयुक्त माना है।[2]

अभी हाल ही में किये गये एक शोध से पता चला है कि पेड़-पौधों के पास भी बिल्कुल मनुष्यों जैसी ही अपनी रक्षा प्रणाली होती है। जब कोई इनके पत्तों को तोड़ता है या किसी अंग को नुकसान पहुँचाता है तो वे इसका प्रतिरोध करते हैं। इसे 'प्रेरित प्रतिरोध' की संज्ञा दी गयी है। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के शोधकर्त्ताओं के अनुसार हम पेड़ों की प्रतिरोध प्रणाली में अगर व्यवधान न करें तो पेड़-पौधों का प्रतिरोध कीड़ो-मकोड़ों से मुकाबला करता रहता है। पत्तियों पर इल्ली के बैठते ही पेड़-पौधे पत्ती के ऊपर जेस्मोनिक अम्ल की मात्रा बढ़ा देते हैं। इस अम्ल से पत्तों पर एक ऐसा रसायन पैदा होता है जिससे इल्ली या अन्य कीड़े-मकोड़े भाग खड़े होते हैं। इस प्रेरित प्रतिरोध की मदद से पौधे अपनी पत्तियों की रक्षा करते हैं।

---

1 अखण्ड ज्योति, मथुरा, मार्च 1997, पृ० 9-10।

2 वही, पृ० 10।

सृष्टि का उद्भव—सृष्टि के उद्भव का प्रश्न आज भी एक पहेली है जिसे विद्वान अपने-अपने तरीकों से बूझ या बूझा रहे हैं। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों मे भी इस मसले पर व्यापक विमर्श मिलता है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि के उद्भव एव उसके विकास का सुचिंतित विवरण प्राप्त होता है—

> **उस समय न सत था न असत, न भाव था न अभाव**
> **न अंतरिक्ष था न सुदूर व्योम**
> **वह आवरण क्या था जिसमें वह लिपटा हुआ था**
> **इसका आश्रय या आधार क्या था? यदि था तो कहाँ था?**
> **क्या यह अथाह एवं अनंत जल रूप था**
> **उस समय मृत्यु तो थी नहीं इसलिये अमरता भी नहीं थी**
> **रात और दिन का विभाजन नहीं था**
> **बिना वायु के ही अपने स्वत्व से श्वसन क्रिया चल रही थी**
> **उससे पृथक या उससे ऊपर कुछ नहीं था।**
> **तम के भीतर तम छिपा हुआ था**
> **और सब कुछ अभिन्न और अरुप था**
> **सब कुछ निराकार और शून्य में समाया हुआ था**
> **फिर उसमें से उष्मा पैदा हुई और उससे महत की उत्पत्ति हुई**
> **फिर कुछ होने की कामना पैदा हुई और**
> **वही सृष्टि का बीज बन गयी।**[1]

सृष्टि के उद्भव एवं विकास क्रम का उल्लेख भविष्य पुराण में इस तरह मिलता है—'जब ब्रह्मा अपनी रात्रि के अत मे सोकर उठते हैं तब सत्-असत् रूप मन को उत्पन्न करते हैं। वह मन सृष्टि करने की इच्छा से विकार को प्राप्त होता है तब उससे प्रथम आकाश तत्व उत्पन्न होता है। विकारयुक्त आकाश से सब प्रकार के गंध को वहन करने वाले पवित्र वायु की उत्पत्ति होती है जिसका गुण स्पर्श है। इसी प्रकार वायु से प्रकाशयुक्त तेज और फिर तेज से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है।[2] गौरतलब है कि यहाँ पर आकाश के बाद वायु की उत्पत्ति का जिक्र है, जिससे क्रमशः प्रकाश, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि पृथ्वी की उत्पत्ति से पहले वायु का अस्तित्व किस रूप में रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी की उत्पत्ति के मूल में वायु की महती भूमिका रही होगी जो जीवन के लिए मूलभूत जरूरत है। यह विचार कि सृष्टि के

---

1 ऋग्वेद, नासदीय सूक्त, 10 129 1-4।

2 सक्षिप्त भविष्य पुराणाक, गीताप्रेस गोरखपुर, जनवरी, 1992, पृ० 21।

आरभ मे जल जैसा कुछ था प्राचीन साहित्य में बार-बार दुहराया जाता है। पर यह जल न होकर जलमय सा कुछ था जिसमें सभी तत्व द्रवीभूत होकर मिले हुए थे। इसे ही अप्रकेत, सलिल, सोम जल, ससार जल आदि जल जैसी संज्ञायें दी गयी है। ऋग्वेद की एक ऋचा के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति सोम से हुई।

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेः जनिता सूर्यस्य जनिता इंद्रस्य जनितीत विष्णोः॥

वैज्ञानिक अवधारणा के अनुसार सारा ब्रह्माण्ड पदार्थ (matter) एवं ऊर्जा (Energy) से बना है। इसकी आयु 10 से 13 अरब वर्ष आँकी गयी है। संभवतः इसकी उत्पत्ति ईलेम (ylem) नामक आदि पदार्थ के एक अत्यधिक तप्त, विशाल एवं सघन गैसीय बादल से हुई। पृथ्वी का उद्गम लगभग 4.6 अरब वर्ष पूर्व ज्वलित गैस के एक घूर्णी-बादल से हुई। भूपटल की स्थापना से लेकर आज तक पृथ्वी के इतिहास को चट्टानों की आयु के अनुसार 5 महाकल्पों में बाँटते हैं।[1]—

1 आद्यकल्पी (Archaeozoic)

2 प्राजीवी (Proterozoic)

3 पुराजीवी (Palaeozoic)

4 मध्यजीवी (Mesozoic)

5 नूतनजीवी (Coenozoic)

विभिन्न युगों के अंतर्गत वनस्पतियों एवं जीवों का विकास

1. आर्कियोजोइक महाकल्प (4 अरब वर्ष पूर्व से 2.5 अरब वर्ष पूर्व)— इस महाकल्प के आरंभ में ही आदिसागर में जीवन की उत्पत्ति हो चुकी थी। इस महाकल्प में जीवन के केवल परोक्ष प्रमाण ही मिलते हैं।

2. प्रोटीरोजोइक महाकल्प (2.5 अरब वर्ष पूर्व से 59 करोड़ वर्ष पूर्व)—महाकल्प के आरंभ में वैक्टीरिया एवं नील-हरित शैवाल का विकास हुआ। इसी काल में समुद्री प्रोटोजोआ, समुद्री स्पंजों, मोलस्का, आर्थ्रोपोडा, कृमि एवं अन्य अपृष्ठवंशी जीव अस्तित्व में आये।

3. पेलियोजोइक महाकल्प (59 करोड़ वर्ष पूर्व से 24.8 करोड़ वर्ष पूर्व)—जीव एवं पादपों के विकास की दृष्टि से यह क्रांतिकारी समय था। इसी महाकल्प में पहली बार जन्तुओं और पादपों का सागर से भूमि पर पदार्पण हुआ। भूमि पर जिम्नोस्पर्म एव टेरिडोफाइट पादपों के घने जंगल बने और पृष्ठवंशी जन्तुओं का उदय हुआ। महत्वपूर्ण परिवर्तनों के कारण इसे छः कल्पों मे बाँटा गया है—

---

1 आधुनिक जतु विज्ञान—डॉ० रमेश गुप्ता, मुजफ्फर नगर, 1998, पृ० 31-32।

(क) कैम्ब्रियन कल्प (59 करोड़ वर्ष पूर्व से 50.5 करोड़ वर्ष पूर्व)—एक कोशिकीय शैवालो से बहुकोशीय एवं तंतुवत शैवालों की विभिन्न जातियों की उत्पत्ति हुई।

(ख) आर्डोविशियन कल्प (50.5 करोड़ वर्ष पूर्व से 43.8 करोड़ वर्ष पूर्व)—इस काल मे कुछ स्थलीय पादप प्रकट हुये।

(ग) सिल्यूरियन कल्प (43.8 करोड़ वर्ष पूर्व से 40.8 करोड़ वर्ष पूर्व)—फर्न जैसे कुछ स्थलीय पादपो की उत्पत्ति हुई। स्थलीय आर्थ्रोपोडा, पंखहीन कीटों एवं मछलियो का विकास शुरु हुआ।

(घ) डिवोनियन कल्प (43.8 करोड़ वर्ष पूर्व से 36 करोड़ वर्ष पूर्व)—साइलोफाइट्स, माँस तथा वर्तमान लाइकोपोड्स इक्वीजिटम जैसी फर्नो एवं हार्स टेलों के व्यापक फैलाव से प्रथम जंगल बने। इस कल्प मे जिम्नोस्पर्मो की उत्पत्ति और उद्विकास हुआ। जंतुओं के विकासक्रम में यह 'मछलियों का युग' था।

(ङ) कार्बोनीफेरस कल्प (36 करोड़ वर्ष पूर्व से 28.6 करोड़ वर्ष पूर्व)—पादप वर्ग में इस समय दलदली जंगलों में क्लब माँस, हार्सटेल,लाइकोपोड, बीजधारी फर्नो तथा जिम्नोस्पर्मी (अनावृत्तबीजी) का विस्तार हुआ। ब्रायोफाइट्स का उदय हुआ। प्राणी वर्ग मे यह 'उभयचरों का युग' था।

(च) परमियन कल्प (28.6 करोड़ वर्ष पूर्व से 24.8 करोड़ वर्ष पूर्व)—विशालकाय जिम्नोस्पर्मो (सागौन, चीड़, साइकैड) का उद्भव हुआ। प्राणी वर्ग में स्तनी रूप सरीसृप एवं प्रथम छोटे कीट का विकास हुआ।

4. मीसोजोइक महाकल्प (24.8 करोड़ वर्ष पूर्व से 6.50 करोड़ वर्ष पूर्व)—यह महाकल्प 'सरीसृपों के युग' नाम से विख्यात है। इसे तीन कल्पों में बाँटा गया हैं।

(क) ट्राइएसिक कल्प (24.8 करोड़ वर्ष पूर्व से 21.3 करोड़ वर्ष पूर्व)—जिम्नोस्पर्म पादपों का व्यापक विकास हुआ। साइकेड्स, गिन्कगो, कोनिफरो आदि के विशाल जंगल बने। विशालकाय एवं उड़ने वाले सरीसृप तथा अंडयुज स्तनी का विकास हुआ।

(ख) जुरैसिक कल्प (21.3 करोड़ वर्ष पूर्व से 14.4 करोड़ वर्ष पूर्व)—विकसित बीजधारी फर्नो से प्रथम द्विबीजपत्री एवं आवृत्तबीजी पादपों की उत्पत्ति हुई। प्रथम कीटभक्षी एवं शिशुधानी युक्त (Marsupial) स्तनी अस्तित्व में आये।

(ग) क्रिटेशियस कल्प (14.4 करोड़ वर्ष पूर्व से 6.50 करोड़ वर्ष पूर्व)—पादप वर्ग मे आवृत्तबीजी पादपों का प्रभुत्व बढ़ा। माजूफल (oak), द्विफल (maple) आदि आवृत्तबीजियों के जंगल

बने। प्रथम एकबीजपत्री आवृत्तबीजियों की उत्पत्ति हुई। प्रथम आधुनिक पक्षी एवं जरायुज स्तनी अस्तित्व में आये।

5. नूतनजीवी या सीनोजोइक महाकल्प (6.50 करोड़ वर्ष पूर्व से आज तक)—इसे दो कल्पो और इन कल्पों को क्रमश: पाँच एवं दो युगों में बाँटा जाता है।

(क) तृतीयक कल्प (6.50 करोड़ वर्ष पूर्व से 20 लाख वर्ष पूर्व)—

(i) **पेलियोसीन युग (6.50 करोड़ वर्ष पूर्व से 5.49 करोड़ वर्ष पूर्व)**—पुष्पी पादपों एव पुरातन स्तनियों का काफी विस्तार हुआ।

(ii) **इओसीन युग (5.49 करोड़ वर्ष पूर्व से 3.8 करोड़ वर्ष पूर्व)**—अनेक वर्तमान कालीन पादपों की उत्पत्ति हुई। घास पादपों की उत्पत्ति इसमें महत्वपूर्ण थी। स्थल पर ऊँट-घोड़े, सुअर, चूहे, बन्दर तथा समुद्र में ह्वेल जैसे स्तनियों की उत्पत्ति हुई।

(iii) **ओलिगोसीन युग (3.8 करोड़ वर्ष पूर्व से 2.46 करोड़ वर्ष पूर्व)**—पादप वर्ग मे उष्णकटिबधीय घने जंगलों का अधिकतम विकास हुआ। एकबीजपत्री एवं पुष्पित पादप काफी विकसित हुये। जन्तु वर्ग में घोड़ों, कपियों व आधुनिक कीट अस्तित्व में आये।

(iv) **मायोसीन युग (2.46 करोड़ वर्ष पूर्व से 51 लाख वर्ष पूर्व)**—स्थलीय पादपों का उद्विकास चरम सीमा पर था। इसी युग में मानव जैसे कपियों की उत्पत्ति हुई।

(v) **प्लायोसीन युग (51 लाख वर्ष पूर्व से 20 लाख वर्ष पूर्व)**—काष्ठीय पादपों के स्थान पर कोमल, शाकीय, पुष्पित तथा एकबीजपत्री पादपों का विस्तार हुआ। आदि मानव की उत्पत्ति, हाथी, ऊँट, घोड़े का आधुनिकीकरण हुआ।

(ख) चतुर्थक कल्प (20 लाख वर्ष पूर्व से वर्तमान तक)—इसे दो युगों में बाँटते हैं—

(i) **प्लीस्टोसीन युग (20 लाख वर्ष पूर्व से 11000 वर्ष पूर्व तक)**—इस समय छोटे एवं कोमल शाकीय पौधों का विकास जारी रहा। मानव जाति में सभ्यता एवं सामाजिक जीवन की स्थापना हुई।

(ii) **आधुनिक युग Holocene epoch-(11000 वर्ष पूर्व से आज तक)**—वनस्पति वर्ग में कोमल शाकीय पौधों तथा एकबीजपत्री पादपों का अधिकाधिक उद्विकास हो रहा है। जन्तुओं मे सर्वोच्च जाति के रूप में मानव का प्रभुत्व स्थापित हो चुका है।

वानस्पतिक आधार पर भौगोलिक नामकरण—पुराणों में विश्व को प्राय: सात द्वीपों मे विभाजित करने की परम्परा दिखाई पड़ती है। इन द्वीपो के नामकरण के मूल में संबंधित क्षेत्र में वनस्पति विशेष का अधिकाधिक उत्पादन ही रहा होगा, तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है। भारत को

प्राचीन ग्रन्थों में जम्बू द्वीप की संज्ञा दी गयी है। भौगोलिक स्थिति को स्पष्ट करते हुये स्कंद पुराण मे यह वर्णित किया गया है कि जम्बू द्वीप के मध्य में मेरु पर्वत है जिसके चारो ओर चार विष्कंभ पर्वत (पूर्व मे मंदराचल, दक्षिण में गंधमादन, पश्चिम में सुपार्श्व और उत्तर में कुमुद नामक पर्वत) हैं, मंदराचल पर कदंब वृक्ष, गधमादन पर जम्बू वृक्ष, सुपार्श्व पर अश्वत्थ वृक्ष और कुमुद पर्वत पर वट वृक्ष की स्थिति मानी गयी है। ये चारों वृक्ष उन पर्वतों की ध्वजा के समान है। इनका दीर्घ विस्तार ग्यारह-ग्यारह सौ योजन है इनके चार वन है ˙ जो पर्वत के शिखर मे स्थित हैं। पूर्व में नंदन वन, दक्षिण मे चैत्ररथ वन, पश्चिम में वैभ्राज वन और उत्तर में सर्वतोभद्र नामक वन है।[1]

गंधमादन पर्वत पर स्थित जंबू वृक्ष को महाजंबू वृक्ष कहा गया है। उसके फल गजराज के समान होते हैं। जब वे पर्वत पर गिरते हैं, तो फट कर सब ओर फैल जाते है। उसी के रस से जंबू नाम की प्रसिद्ध नदी वहाँ बहती है। उस नदी का जल पान करने से वहाँ के निवासियों को पसीना, दुर्गध, बुढ़ापा और इंद्रिय क्षय नही होता। वहाँ के निवासी शुद्ध हृद्य वाले होते हैं। उस नदी के किनारे की मिट्टी उस रस से मिलकर मंद-मंद वायु द्वारा सुखाये जाने पर 'जाम्बूनद' नामक सुवर्ण बन जाती है जो सिद्ध पुरुषो का भूषण है।[2] इसी जंबू वृक्ष के नाम पर इस द्वीप को जंबू द्वीप कहा गया।

दूसरा द्वीप है—शाक द्वीप, जहाँ एक हजार योजन के विस्तार में शाक वृक्ष फैले हुये हैं। उसी के नाम से उस वर्ष (क्षेत्र) को 'शाक द्वीप' कहा गया है। इस क्रम में तीसरा द्वीप है—'कुश द्वीप'। यहाँ पर एक हजार योजन तक कुशों की झाड़ी फैली हुई है। उसी के चिन्ह से चिन्हित होने के कारण उसे कुश द्वीप कहते हैं। क्रौंच द्वीप में क्रौंच (केवाच) वृक्ष है, जिसके चिन्ह से चिन्हित होने के कारण उस द्वीप का नाम क्रौंच द्वीप है। शाल्मलि द्वीप में सेमल का एक बहुत बड़ा वृक्ष है जो उस द्वीप के नाम का हेतु है। किवदन्ती है कि इसी सेमल वृक्ष पर पक्षीराज गरुड जी निवास किया करते हैं। गोमेद या प्लक्ष द्वीप जो छठां द्वीप है, में गोमेद नाम से प्रसिद्ध एक प्लक्ष (पाकड़) वृक्ष है जिसकी सुगंधित छाया से विशेष सुख मिलने के कारण लोगों का मेदा बढ़ जाता है। सातवाँ द्वीप पुष्कर द्वीप नाम से जाना जाता है। यहाँ पर एक हजार योजन तक विस्तृत स्वर्णमय कमल देदीप्यमान होता है जिसमें लाखों स्वर्णमय दल शोभा पाते हैं। वही वहाँ का चिन्ह है इसीलिए उसे पुष्कर द्वीप भी कहते हैं।[3]

मानव और पेड़-पौधे—

मानव का विकास एक क्रमबद्ध प्रक्रिया में हुआ। इग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने अपनी किताब 'द डिसेण्ट आफ मैन' में कहा है—मानव के पूर्वज बन्दर (Ape) हैं तथा हमारा

---

1 स्कदपुराण, माहेश्वर कुमारिका खण्ड, अध्याय 25।

2 भविष्य पुराण, मध्यम पर्व, प्रथम भाग, अ० 4, सक्षिप्त भविष्य पुराणाक, पृ० 198।

3 स्कद पुराण, माहेश्वर कुमारिका खण्ड, अध्याय 25।

विकास बन्दरों से ही हुआ। 'अफ्रीका' में पाये जाने वाले चिम्पैंजी तथा गुरिल्ला एवम् एशिया में पाये जाने वाले गिब्बन तथा ओरांगुटान नामक बन्दर बहुत मायनों में मनुष्यों जैसे ही व्यवहार करते है। आज से करीब 2 करोड 80 लाख वर्ष पहले मानव से मिलता-जुलता जानवर धरती पर पैदा हुआ[1] जो समय के साथ बदलता चला गया। इसका जीवन पेडों पर ही आसानी से चलता था। डेढ करोड वर्ष पूर्व व्यापक स्तर के जलवायुगत परिवर्तनो से कई क्षेत्रों के जंगल घास के मैदान में बदल गये। इस समय के बानर समूहो में बँट गये। इन समूहों मे से कुछ बानर जंगल मे ही रह गये जबकि कुछ ने अपने-आपको मैदानी भागों मे रहने लायक बना लिया। भारत के रेमेपिथेकस आदिमानव को बहुत वर्षो तक मानव का निकटतम पूर्वज माना जाता रहा।

दक्षिण अफ्रीका की गुफाओं से करीब 40 लाख वर्ष पहले के 'आस्ट्रेलोपिथेकस आफ्रेंजिस' के जीवाश्म प्राप्त हुए हैं। ये मानव के सबसे निकट के पूर्वज हैं। इसके बाद के विकसित आदिमानव थे—होमो हेबिलिड और होमो इरेक्टस (लगभग 15 लाख वर्ष पूर्व)। कल्पना शक्ति में उन्नत हेबिलिड कड़े सख्त छिलके वाले फल को पत्थर से तोड़ने लगा। नुकीली लकडियों से जमीन खोदने लगा। इसी प्रकार लम्बी लकड़ियों से ऊँचाई पर लगे फल को तोड़ने लगा फिर इन्हीं लकड़ियों के सहारे जंगली जानवरों से अपनी रक्षा तथा जंगली जानवरों का शिकार करने लगा। इसके बाद आया निएण्डर्थल मानव।[2]पुरासाक्ष्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मानव जड़ी बूटियों का उपयोग जानता था। यह अपने मृतकों के कब्र में औजारों एवं हथियारों के साथ-साथ फूल-फल और जड़ी-बूटियाँ भी रखता था।

लगभग पैंतीस हजार साल पहले धरती पर बोलने वाले मानव क्रोमैगनान मानव[3] का आविर्भाव हुआ। यह पेड़-पौधों और जानवरों की छाल से हार बनाना सीख गया था। ये पेड़-पौधे के रेशों से रस्सी भी बना लेते थे। यह एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक खोज थी। पहली बात यह देख कर कि पेड़-पौधे से रेशे निकलते हैं फिर यह सोचना कि बहुत से रेशे बटकर रस्सी बनायी जा सकती है, काफी बड़ी खोज थी। जब एक बार रस्सी ईजाद हो गयी तब जाल भी बने जिससे छोटे जानवरों और मछलियों के पकड़ने में आसानी हो गयी। क्रोमैगनान मानव चिराग भी जलाते थे। बत्ती के लिए वे एक तरह की घास 'माँस' (हरिता) का प्रयोग करते थे जब कि तेल के लिए जानवरों की चर्बी का। ये जंगली जानवरों का शिकार करके अपना पेट भरते थे। ये जंगली फल भी खाते थे और कुछ पेड़ों की जड़ें भी खायी जाती थीं।

---

1 इसके जीवाश्म मिस्र के दक्षिण मे 'फ्यूम का रेगिस्तान' से मिले है। इसे 'इजिप्टोपिथेकस' नाम दिया गया है।

2 1857 ई० मे जर्मनी की निएण्डरथल घाटी मे मिले इसानी ढाचे के अस्थि अवशेषो के आधार पर इसे निएण्डरथल मानव कहा गया।

3 फ्रास के क्रोमैगनान नामक जगह पर रेलवे लाइन बिछाने के लिए की जा रही खुदाई मे 1868 मे मिले कंकालो को क्रोमैगनान मानव नाम दिया गया।

मानव ने लगभग 15,000 वर्ष पूर्व से 11,000 वर्ष पूर्व के बीच उपयोगी पशुओं को पालना शुरु किया। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मानव ने सबसे पहले कुत्ते से अपनी दोस्ती की। सभवत: जगली जानवरों से अपनी सुरक्षा के लिये। कुत्ते के बाद मानव ने भेड़ पालना शुरु किया केवल माँस के उद्देश्य से। हजारों वर्षो तक जानवरो और पेड-पौधो के बीच रहते-रहते मानव ने यह देखा और सीखा कि किस वातावरण में जानवर रहते है और कैसे उनकी संख्या बढ़ती है और कैसे पेड-पौधों की सख्या बढ़ती है। अब उसे यह पता चल गया था कि पेड़-पौधों से बीज बनते है तथा बीजों से वैसे ही पेड़-पौधे बन जाते हैं। धीरे-धीरे मानव यह भी जाना कि पेड़-पौधों के फल-फूल, पत्ते, जड और बीज खाकर भी पेट भरा जा सकता है।

कृषि की शुरुआत—चित्रकारी के बाद मानव का महत्वपूर्ण कार्य था-कृषि। कृषि करने की वजह से मानव जीवन में क्रांतिकारी बदलाव आया। खेती ने ही मानव को यायावर जीवन छोडकर स्थिरता की तरफ उन्मुख किया। इससे मानव समुदाय मे रहने लगा। धीरे-धीरे वह बस्ती बनाकर रहना भी सीख गया। इसके साथ ही शुरु हुआ सांस्कृतिक विकास (cultural Evolution) का दौर। कृषि की शुरुआत कब हुई इस विषय पर विद्वानों में परस्पर मतभेद है। आमतौर पर यह मान्यता है कि लगभग 15,000 वर्ष पहले जलवायु में परिवर्तन के साथ ही 'मध्यपाषाण युग' प्रारम्भ हुआ। पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ बर्फ थी वह पिघली। कहीं कम कही ज्यादा। झीलें एवं नदियाँ बनी, बाढ़ें आयीं। जंगल और घास के मैदान बने। जानवर दूर-दूर तक घास के मैदान में फैल गये। मानव को शिकार मिलने मे बहुत कठिनाई होने लगी। इसके विपरीत पेड़-पौधों से अनाज मिलना आसान था। ऐसी बदलती स्थिति में ही मानव को खेती करने की बात सूझी। यह संभव है कि शुरु-शुरु में मानव वृक्षों के जड, पत्ती, फल आदि जंगलों से लाया हो। उन्हीं में से कुछ बीज उसके घर के आस-पास गिर गये हों। फिर उन अपने-आप उगे पौधों में फूल आये, फल लगे और बीज बने हो। इस प्रकार जब मानव ने देखा कि जमीन में बीज डालकर वह भी फूल-फल, बीज आदि पा सकता है, तब उसने घर के आस-पास बीज बोना शुरु किया। इस प्रकार कृषि का आरंभ हुआ। इसी तरह मानव को खाद और पानी के महत्व का पता भी अचानक ही लगा और उसने खेती में उन्नति की होगी। छाँट कर मोटे दानों को बोया होगा। पानी और खाद दिया होगा। लेकिन यह सब एक-दो वर्ष में नहीं हुआ होगा बल्कि कुछ स्वयं देखकर और कुछ दूसरों से सुनकर ही संभव हो सका। यह सीखने में उसे हजारों वर्ष का समय लगा होगा।

जहाँ तक खेती की शुरुआत की बात है मोटे तौर पर पुराविदों और पुरावनस्पति शास्त्रियों की मान्यता है कि यह क्रम मध्य एशिया से शुरु हुआ होगा। पुरा नवपाषाण के स्थलों ईरान के अली कोश (Alıkosh), बुश मोरडेह (7500 ई० पू०) जार्डन के जेरिको (7000 ई० पू०) और उत्तरी ईरान के बेल्ट केव क्षेत्र (6500 ई० पू०)[1] से प्राचीनतम कृषि के प्रमाण प्राप्त होते हैं। अली कोश के

1 A Hıstory of Agrıculture ın Indıa— M S Randhawa P 101।

निवासी गेहूँ, जौ और तम्बाकू की खेती करते थे। आर० जे० ब्रेडवुड महोदय के अनुसार 'जर्मो एक स्थायी बस्ती थी जहाँ से करीब दो दर्जन मिट्टी के घर मिले हैं। हम लोगों ने यहाँ से दो पंक्तियो से जौ और दो किस्म के गेहूँ की खेती किये जाने की पहचान की है। जंगली पशुओं की हड्डियों के साथ-साथ जैतून के फल और पिस्ता के मिलने से यह स्पष्ट होता है कि ये लोग शिकार करने के साथ-साथ पर्याप्त मात्रा में भोजन को जमा करने लगे थे,[1] जर्मो के पुरातत्वीय साक्ष्यो से यह स्पष्ट होता है कि ये लोग जंगली गेहूँ, जंगली जौ, मसूर, मटर, पटुआ (सन), अंजीर, बादाम आदि उगाया करते थे। ये सभी निश्चित रूप से अपने प्रारंभिक (जंगली) स्वरूप में ही उगाये जाते रहे होंगे।

वस्तुतः कृषि कर्म का उदय एवम् विकास किसी बढ़ते हुए सक्रमणात्मक अभाव के फलस्वरूप नहीं हुआ। अकाल की विभीषिका से पीडित और अभाव की काली छाया में निवास करने वाले लोगों के पास कृषि कार्य जैसे मन्द, अत्वरित प्रयोग और परीक्षण करने के लिए साधन एवं समय नहीं रहा होगा। मानव के लिए उपयोगी जंगली घासों के पौधों में चयन द्वारा सुधार ऐसे लोगों द्वारा किया गया होगा जो जरूरी आवश्यकताओं की सीमा से पर्याप्त ऊपर जीवन यापन कर रहे थे। कृषि एव पशुपालन संबंधी प्राचीनतम प्रमाण पश्चिमी एशिया के क्षेत्र मे इसलिये मिलते हैं क्योंकि यहाँ पर मौसम की अनुकूलता, उपयुक्त जंगली पौधों तथा पशुओं की उपलब्धता और मानव की समुन्नत तकनीकी प्रगति के रूप में इसके लिए अनुकूल एवं अपेक्षित साधन प्राप्त थे।[2]

भारत के कई भागों मे आज भी जंगली चावल उगाया जाता है। इस तरफ सर्वप्रथम वाविलोव महोदय का ध्यान गया।[3] इस आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि भारत ही कृषिगत पौधों की उत्पत्ति का केन्द्र है। वाविलोव महोदय के ही शब्दों में कहें तो निःसंदेह भारत चावल, गन्ना, विभिन्न प्रकार की दलहन फसलें और अनेक उष्णकटिबंधीय फल वाले पौधों, आम, नीबू प्रजाति (नारंगी, नीबू, संतरा) के पौधों की जन्मस्थली है।

नवीं-आठवीं सहस्त्राब्दि ई० पू० के चोपनी माँडो से जंगली चावल ओर सातवीं-छठीं सहस्त्राब्दी ई० पू० के कोल्डीहवा और महगढ़ा (इलाहाबाद) से कृषि जन्य चावल के पुरासाक्ष्यों से वाविलोव महोदय के तर्कों की पुष्टि भी होती है। विष्णु मित्रा[4] कोल्डीहवा और महगढ़ा के चावल को आज की कृषि जन्य प्रजाति oryza sativa से समीकृत करते हैं। डा० टी० टी० चॉग भी उक्त चावल को कृषिजन्य प्रजाति ही स्वीकार करते हैं। इस तरह मुख्य खाद्य के रूप में चावल की कृषि नवपाषाणिक

---

1 Braidwood, R J—The Agricultural Revolution, Scientific American, Sep 1960।

2 पुरातत्व विमर्श—डॉ० जयनारायण पाण्डेय, पृ० 311।

3 Vavilov N I—Phytogeographic Basis of Plant Breeding, p 29।

4 Vishnu mittre, Discussion on India Local and Introduced Crops by J Hutchinson in the Early History of Agriculture, a joint Symposium of the Royal Society and the British Academy 1977, P 141।

भारत की विश्व को एक अनुपम देन है।[1] महगढ़ा की खुदाई से चावल के साथ-साथ बेर (jujube) और बॉस के प्रमाण भी मिले हैं।

कृषि तथा पशुपालन का विकास साथ-साथ हुआ अथवा दोनो का विकास अलग-अलग क्षेत्रो और विभिन्न समयो मे हुआ? इस सबंध मे निश्चित रूप से कुछ कहना अपेक्षाकृत कठिन है फिर भी इतना निश्चित है कि ये दोनों ही एक-दूसरे के पूरक बन गये और कृषि तथा पशुपालन की मिश्रित अर्थ-व्यवस्था ग्राम्य जीवन का एक अभिन्न अग बन गयी। कृषि तथा पशुपालन के विकास के बाद भी जगली जानवरो के शिकार और कंद-मूल तथा फल-फूलादि का संचय होता रहा।

कृषि की शुरुआत न तो किसी निश्चित समय और न ही किसी एक विशेष स्थल पर हुई अपितु इसके प्रचलन के समय और क्षेत्र अलग-अलग रहे होंगे। आबादी के बढ़ने और उत्पादन के प्राकृतिक आधारो का अपक्षय होने पर प्राकृतिक ससाधनों, विशेषत: सीधे उपभोग के जैव पदार्थो की तंगी बढ़ी। इसके परिणामस्वरूप मानव अपनी आजीविका के नये स्तरों की तलाश करने लगा। मानव ने अपने आर्थिक ध्येयों के लिये प्रयुक्त प्राकृतिक प्रक्रियाओं को एक तरह से सुधारना शुरु किया। ऐसी जमीनों पर जिन्हें पहले से चुना जाता था और जिनकी रक्षा की जाती थी, जंगली अन्न बटोरने के विशेषीकृत कार्य से कृषि का मार्ग प्रशस्त हुआ।[2] समाज के लिए जीवंत महत्व की प्राकृतिक प्रक्रियाओं का कृत्रिम रूप से सृजन (सिचाई, खेती, पशुपालन, विशेषीकृत शिल्प) उपभोगमूलक अर्थव्यवस्था के स्थान पर उत्पादन मूलक अर्थव्यवस्था स्थापित करने की संभावना के द्वार खोलता था। उत्पादक शक्तियों के विकास में इस आमूल परिवर्तन को आधुनिक विज्ञान मे नूतन प्रस्तरयुगीन क्रांति कहा जाता है।[3] लगभग 10,000 ई० पू० से 6000 ई० पू० के मध्य पश्चिम एशिया के कम से कम तीन क्षेत्रों में कृषि तथा पशुपालन प्रारम्भ हुआ।

1. जग्रोस पर्वत क्षेत्र
2. लेवॉ (सीरिया, फिलीस्तीन, जार्डन)
3. दक्षिण तुर्की

छठीं-पाँचवीं सहस्राब्दि ई० पू० तक उत्तरी अफ्रीका में मिस्र और एशिया में तुर्किस्तान से लेकर सिंध तक के क्षेत्र में कृषि और पशुपालन का प्रचलन हो गया था। चीन के कतिपय क्षेत्रों में भी लगभग इसी समय कृषि के प्रचलन के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। चौथी-तीसरी सहस्त्राब्दी ई० पू० में पहले पूर्वी यूरोप के क्षेत्रों में तत्पश्चात् समशीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में कृषि होने लगी थी। उत्तरी एवं दक्षिणी अमरीका महाद्वीपों में कृषि का विकास निश्चित रूप से स्वतन्त्र आविष्कार के फलस्वरूप हुआ। दक्षिणी तथा उत्तरी अमरीका में आरम्भिक कृषि के तीन प्रमुख क्षेत्र हैं।

---

1 Beginning of Agriculture, Ed —G R Sharma, p 23।

2 बानर के नर बनने की प्रक्रिया मे श्रम की भूमिका : एगेल्स, पृ० 112

3 वही, पृ० 113।

1 पेरु का तटीय क्षेत्र

2 मैक्सिको

3 संयुक्त राज्य अमरीका का दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्र

उपलब्ध तिथिक्रम के अनुसार उद्भिज कृषि (लौकी, मटर आदि) सातवीं सहस्त्राब्दी ई० पू० मे और अनाज (मक्का आदि) का उत्पादन तीसरी सहस्त्राब्दी ई० पू० में प्रारम्भ हुआ। जलवायु के हिसाब से दुनिया के अलग-अलग हिस्सो में अलग-अलग तरह का अनाज अपने आप उगता था। मध्य और दक्षिण एशिया में गेहूँ, जौ, मटर और कुछ दालें उगायी गयी। चीन मे बाजरा और चावल पैदा किया गया। दक्षिण पूर्व एशिया में बीज, लोबिया जैसी दालें, चावल और काली मिर्च पैदा किये गये। मैक्सिको में मक्का, दालें और काली मिर्च हजारों वर्ष पहले उगाये गये।[1]

अमरीका महाद्वीप में प्रागितिहासिक काल में पालतू पशुओं का अभाव था इसलिये वहाॅ का सामाजिक संगठन पुरानी दुनिया के समकालिक सामाजिक संगठन से नितान्त भिन्न प्रकार का था।

पश्चिमी एशिया ने मानव को जौ, गेहूँ, दलहन तथा तिलहन आदि के रूप में सबसे महत्वपूर्ण खाद्यान्न प्रदान किये। दक्षिण-पूर्व एशिया से धान तथा अमरीका से मक्का के रूप मे अन्य खाद्यान्न उपलब्ध हुये। कपास की खेती सर्वप्रथम भारतीय उपमहाद्वीप में शुरु हुई। भेड़-बकरी और गाय-बैल आदि मवेशियों को भी सर्वप्रथम पश्चिम एशिया के क्षेत्र में ही पालतू बनाया गया। सूअर और गधे भी नवपाषाण काल मे ही इस क्षेत्र में पाले गये। घोड़े को संभवतः पहले-पहल धातु युग में सवारी के लिये पालतू बनाया गया।

वैज्ञानिकों के अनुसार मानव द्वारा सबसे पहले गेहूँ की फसल उगायी गयी। ज्ञातव्य है कि गेहूँ घास के कुल यानी 'ग्रेमिनी फेमिली' का पौधा है। चावल, मक्का वगैरह भी इसी जाति के पौधे है। गेहूँ की बहुत सी जातियाँ जंगली हैं। इसमें इतने दाने नहीं बनते कि खेती की जाये। पहले मानव इन्हीं जंगली जातियों की खेती करता था। फिर उसे अचानक कोई ऐसी जाति दिखी, जिसके दाने बडे थे और बालियाँ दानों से बड़ी थी। उसने ढ़ेर सारे दाने इकट्ठे किये। इस तरह मानव के ठिकाने के आस-पास गेहूँ के कुछ दाने छिटक गये। इनसे अंकुर फूटे और गेहूँ के पौधे बने। धीरे-धीरे उसने अपने ठिकानों के पास गेहूँ बो कर उगाना शुरु किया। इस तरह आदमी कृषि के पथ पर आगे बढ़ा। एक दिलचस्प बात यह है कि इस समय गेहूँ का आटा नहीं बनता था बल्कि दानों को भूनकर खाया जाता था। हजारों वर्षो तक काँट-छाँट कर पौधों तथा बीजों की छँटाई कर हर बार अच्छे से अच्छा बीज बोने के बाद गेहूँ, जौ, मटर और दालों का वह रूप आया जिसे हम वर्तमान में प्रयोग करते हैं।

हजारों वर्ष पहले का मक्के का भुट्टा आज से बिल्कुल भिन्न था। पहली बात तो यह कि भुट्टा बहुत छोटा होता था, दूसरी बात कि दाने कम होते थे, तीसरी और सबसे महत्वपूर्ण बात कि मक्का

---

1 बानर के नर बनने की प्रक्रिया मे श्रम की भूमिका, एगेल्स, पृ० 112।

का हर दाना अपने अलग–अलग खोल में लिपटा होता था। हजारों वर्षो के बाद उसका यह रूप सामने आया जो हम आज देखते हैं।

अनाजो के विकास का इतिहास मानव संस्कृति के विकास का इतिहास है क्योंकि अनाजों मे परिवर्तन लाने मे आदमी को बीज, पौधो की छँटाई, परागण आदि के अलावा अपने खेती करने के तरीके और औजारों में परिवर्तन करना पड़ा।

कृषि की वजह से मानव जीवन में क्रांतिकारी बदलाव आया। अब वह यायावर जीवन को छोड़कर स्थायी रूप से निवास करने लगा। बाँस–बल्लियों के घर बनाये। फसलों की बुवाई, सिचाई कटाई, मड़ाई आदि के साथ–साथ जंगली जानवरों से उसकी सुरक्षा भी करनी पड़ती थी। कही–कहीं पर खेतो की सुरक्षा हेतु उसने चारों ओर काँटेदार बाड़ भी लगाया। इस प्रकार कृषि के साथ ही मनुष्य के अंदर निजी संपत्ति की अवधारणा का भी विकास हुआ।

यांत्रिक उपकरणों एवं हथियारों का विकास कृषि क्रांति की ही देन है। पहले खेती मे केवल हाथ के औजार जैसे—फावड़ा, हँसिया, दराँती, कोठला और नुकीली लकड़ियो का प्रयोग किया जाता था। धीरे–धीरे लकड़ी के हल और फिर लोहे के हल का विकास हुआ। नव पाषाण काल में कृषि के विकास के फलस्वरूप बढ़ईगीरी में काम आने वाले पाषाण उपकरणो का विशेष रूप से निर्माण किया गया। कुल्हाड़ी के अतिरिक्त बसूला, रुखानी आदि प्रमुख पाषाण उपकरण थे। इनके अलावा हँसिया, सिल–लोढ़ा, ओखली आदि अन्य पाषाण उपकरण तथा उपादान भी है। दन्तुर–कटक प्रविधि से निर्मित लघु पाषाण उपकरणों का प्रचलन इस काल में भी मिलता है। कृषि के विकास के साथ–साथ मानव की संस्कृति यानी जीने के ढ़ंग में भी विकास हुआ। अच्छी खेती के लिये समय के साथ और अच्छे औजार बने। अनाज रखने के लिये मिट्टी के बर्तन टोकरियाँ आदि बनाये जाने लगे। यह एक आश्चर्यजनक बात है कि उस जमाने के बर्तन की जो शक्ल–सूरत थी वही आज के बर्तन की भी है। यहाँ तक कि आज के धातुओं के बर्तन की शक्ल भी वैसे ही है और औजारों जैसे हँसिया, दरांती, ओखली और चक्की आदि भी वैसे ही हैं। मिट्टी के बर्तनों का निर्माण नवपाषाण काल की प्रमुख विशेषता मानी जाती है। आरम्भ में मिट्टी के बर्तन हस्त निर्मित होते थे। बर्तनों के निर्माण में मंदगति के चाक (Turn table) को इस दिशा में प्रगति का अगला कदम माना जा सकता है। मिट्टी के बर्तनों के अतिरिक्त नवपाषाण काल के पुरास्थलों से प्राप्त तकुए तथा करघे के मृण्मय पुरावशेषों से यह जाहिर होता है कि इस समय ऊन, सन और कपास के धागों से वस्त्र तैयार किये जाते थे।[1]

आदमी ने खेती करना शुरु कर दिया था। वह उपयोगी पशुओं को भी पालने लगा था। इस वजह से वह एक जगह टिककर रहने लगा। खेती हेतु भूमि तैयार करने, हल चलाने, बुवाई, सिचाई

---

1 पुरातत्व विमर्श, डॉ० जयनारायण पाण्डेय, पृ० 313।

गुडाई, फसल की कटाई, मड़ाई और अंततः अन्न का सग्रहण एक आदमी के बूते की बात नहीं थी। ऐसे में खेती करने वाले व्यक्ति को दूसरे लोगों की जरूरत पड़ी। कुछ जरूरतमंद जो किसी कारण वश खेती नहीं कर पाते होगे, अन्न के लिये श्रम करना स्वीकार कर लिये। इस प्रकार श्रमिक वर्ग अस्तित्व मे आया। अब लोगों ने अपनी सुरक्षा के लिये समूह बनाया जिससे कुनबो और परिवारों की नींव पड़ी। रिश्ते-नातों का चलन प्रारम्भ हुआ। मानव के विकास का यह एक महत्वपूर्ण कदम था।

जब आदमी एक जगह टिक कर रहने लगा तभी उसे खेतों को और अपनी सतानों को जंगली जानवरो से बचाने की चिन्ता लग गयी। ऐसी स्थिति मे आदमी-आदमी के बीच सहयोग की भावना का विकास हुआ। धीरे-धीरे उसने समूह में रहना प्रारम्भ किया। इनके बीच शायद यह भी बँटवारा रहा होगा कि यह खेत तुम्हारा है, यह खेत मेरा है। इस प्रक्रिया में इनके बीच झगड़े भी हुये होंगे और शायद तभी उन्हें मुखिया की जरूरत पड़ी होगी जो उनके झगड़े तय करे और उन्हें आगे का रास्ता दिखाये। आमतौर पर परिवार का सबसे बुजुर्ग व्यक्ति ही मुखिया होता था। इसी समय परोक्ष रूप में स्त्रियों के लिये भी काम का निर्धारण हो रहा था। जब पुरुष शिकार करने जाते थे तो औरतें बच्चों को पालने का काम करती थीं। खेती के कार्यो में स्त्रियों की शिरकत तो थी पर ऐसे काम जिसमें कम ताकत की जरूरत थी। जैसे बीजों की बुवाई, फसलों की गुड़ाई, कटाई, मड़ाई आदि। आज भी ये सारे काम स्त्रियाँ ही करती हैं। घर-गृहस्थी के कामों की जिम्मेदारी स्त्रियों के कंधे पर पहले भी थी अब भी है। संभवतः तभी से यह परम्परा चली आ रही है।

बाकायदा खेती की शुरुआत के साथ ही कई रोजगार-धंधे अस्तित्व में आये। जब आदमी खेती करने लगा तो उसे और कामों के लिये मुश्किल होने लगी। खेती के लिये औजार बनाना, अनाज वगैरह रखने के लिये मिट्टी के बर्तन बनाना, कपडे बुनना, टोकरी बनाना। आदमी या तो खेती करता या ये सारे काम। इस तरह समाज में काम का बँटवारा हुआ।

उत्पादन के कार्यकलाप के विकास का परिणाम यह हुआ कि प्रकृति का सामाजिक कायाकल्प विविध दिशाओं में होने लगा और मानव जीवन के सामाजिक पहलू से घनिष्ठ रूप से संबद्ध हो गया। इस समय का मानव अकाल, अतिवृष्टि, आँधी-तूफान, भूकंप किसी भी तरह की बीमारी आदि को प्राकृतिक आपदा मानता था। ये आपदायें खेती को काफी नुकसान पहुँचाती थीं। समाज के कुछ बुद्धिजीवी आगे आये और उन्होंने मनुष्य और ईश्वर के बीच मध्यस्थ बनना स्वीकार कर लिया। ये मन्त्रों, आहुतियों, बलि और पूजा-पाठ आदि के माध्यम से प्राकृतिक आपदाओ को दूर करने का प्रयास करते थे। इन्हीं प्रारम्भिक बुद्धिजीवियों से पुरोहित (ब्राह्मण) वर्ग अस्तित्व मे आया।[1] पुरोहित वर्ग को समाज में शीर्षस्थ स्थान प्राप्त हुआ। यह वर्ग न केवल लक्ष्य निर्धारण और कार्यभार निरुपण का कार्य करता था अपितु आर्थिक जीवन के सूचना नियन्त्रक की सामाजिक भूमिका अदा करता था। बाह्य आक्रमणकारियों से कृषि उत्पादों एवं वन संपदाओं की रक्षा हेतु योद्धा (शासक) वर्ग

---

1 अथर्ववेद, 7 18 39।

सामने आया। जिन्हें कालांतर में 'क्षत्रिय' नाम से पुकारा गया। जो वर्ग कृषक रूप मे अन्न उत्पादन की जिम्मेदारी सभाले हुये था उसे 'वैश्य'[1] और जो श्रमिक के रूप में कृषि कार्यो मे शिरकत करते थे उन्हें 'शूद्र' वर्ग के अंतर्गत रखा गया।[2] वामन पुराण में तो स्पष्टत: वट वृक्ष से ही चारो वर्णों की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार 'सनिहित या आदित्य नाम के सरोवर के मध्य में स्थाणु के आकार का एक महान और विशाल वटवृक्ष है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्ण उससे निकले और द्विजों की सुश्रूषा करने के लिये उसी से शूद्रों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार चारों वर्णो की उत्पत्ति वटवृक्ष से हुई।'

तस्मिन मध्ये स्थाणुरूपी वटवृक्षोमहामनाः।
तस्माद् विनिर्गता वर्णाः ब्राह्मणाः क्षत्रियाः विशः।
शूद्राश्च तस्मादुत्पन्नः शुश्रूषार्थद्विजन्मनाम्।।[3]

इतने प्रारम्भिक स्तर पर समाज विभाजन की यह अनूठी व्यवस्था सिर्फ भारत में ही दिखायी पड़ती है।

कुछ लोग मिट्टी के बर्तन तो कुछ लोहे से औजार बनाने लगे। यही लोग कुम्हार और लुहार कहलाये। जो लोग खेती करते थे उनके घर की बर्तन की जरूरतें कुम्हार लोग पूरा करते थे और इनके घर के अनाज की जरूरत किसान लोग। ऐसी ही सुविधा लोहे के औजार बनाने वालों ने प्रदान की।

इस तरह के लोग अपने कार्य में दक्ष होते थे। इसीलिये बाद में इनकी संतानें भी यही काम सीख गयीं। इस तरह पुश्तैनी धंधा बन गया। लगातार काम करते-करते ये लोग विशेषज्ञ बन गये। इस तरह बहुत सारे कामों का बँटवारा हुआ और अलग-अलग रोजगार पनपे।

ऋग्वेद से विदित होता है कि अश्विन ने ही सर्वप्रथम कृषि के निमित्त श्रमयुक्त जोत कार्य किया था।

दशस्यन्ता मनवे पूर्व्य दिवि यवं वृकेण कर्षथः। तावामद्य सुमतिभिः शुभस्वती अश्विना प्रस्तुवीमहि।।[4]

अथर्ववेद में पृथुवैन्य को कृषि का पहला अनुसंधानकर्ता माना गया है।

तां पृथ्वी वैन्यो धोक तां कृषिश्च सत्यं चाधोक।।[5]

---

1 कात्यायन संहिता, 37 1।

2 कात्यायन स्रौत सूत्र, 22 10।

3 वामन पुराण, 43 38।

4 ऋग्वेद, 8 22 6।

5 अथर्ववेद, 8 10 24।

कृषि सम्बन्धी श्रमजीवियों का पर्याप्त उल्लेख वेदो में हुआ है—

1 कीनाश, कृषिवल (खेत जोतने वाला), 2 गोप और गोपाल (चरवाहा) 3 अविपाल और अजापाल, 4 पशुप (चरवाहा), 5 धान्यकृत (धान साफ करने वाला श्रमिक), 6 उपलप्रक्षणी (अन्न की भूसी साफ करने वाली श्रमिका), 7 वप (बीज बोने वाला)

ऋग्वेद मे बढ़ई के लिये 'तक्षक' और 'त्वष्ट' शब्द मिलते हैं। बढ़ई गृहोपयोगी अनेक प्रकार की वस्तुओं को निर्मित करता था।

श्रम करने वाले स्त्री-पुरुष थे। अथर्ववेद में ऐसी श्रमजीवी दासी का उल्लेख हुआ है, जो धान्य को ओखली में मूसल से साफ करती थी।

यदा दास्यार्द्रहस्ता समडक्त उलूखलं मुसलं शुम्भताप: ।[1]

पुरुषो के साथ स्त्री श्रमजीवी भी खेतों में कार्यरत रहती थी।[2]

पूर्व वैदिक युग में आर्यो ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उद्योगों (व्यवसायों) को अपनाया तथा पृथक-पृथक नामकरण किये जो उत्तरवैदिक काल में आकर अलग-अलग वर्ग के रूप में विकसित हुये। तक्षा (बढ़ई), कर्मार, रथकार, हिरण्यकार, चर्मकार ऐसे ही औद्योगिक वर्ग थे।

तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमोनम:। कुलालेभ्य: कर्मकारेभ्यश्च वो नमोनम: ।।
पुंजिष्टेभ्यो निषादेभ्यश्च वो नमोनम:। इषुकृद्भो धन्वकृदभ्यश्च वो नमोनम: ।।[3]

तक्षा, खेत जोतने के लिये हल, घर के लिये लकड़ी की विभिन्न वस्तुयें लोगो के घूमने और सामान ढोने की गाड़ी निर्मित करता था।[4] उस युग में नाव और पोत भी बनाये जाते थे जो निश्चय ही तक्षा की शिल्प कला से बनते रहे होंगे। वह परशु और वाशी (बसूले) से लकड़ी को गढ़ता था तथा उस पर सुन्दर नक्काशी करता था।[5] तक्षा लकड़ी का तल्प निर्मित करता था। इसके अतिरिक्त वह 'प्रोष्ठ' का भी निर्माण करता था जो लकड़ी का बनता था।[6] स्त्रियाँ प्राय: उस पर सोती थीं। कालांतर में तक्षा रथ भी बनाने लगा जिससे सुरक्षित रूप में यात्रा करने की आशा की जाती थी।

स्थिरौ गावौ भवतां बीलु: अक्ष: मा ईषा मा युगं वि शारि इन्द्र: ।
पातल्ये ददतां शरीतो: अरिष्टनेमेऽभि न सचस्व।

---

1 अथर्ववेद, 12 3 13।

2 जातक, 1 111, 475, 3 446।

3 तैत्तिरीय सहिता, 4 5 4 2।

4 ऋग्वेद, 9 65 6, 9 112 1, 10 85 10।

5 वही, 1 105 18, 10 86 5।

6 वही, 7 55 8।

अभिव्ययस्व खदिरस्य सारभोजो धेहिस्पंदने शिशपायाम्।
अक्षवीलोवीलित वीलस्य मा यामादस्मादव जीहियो नः।।
अयमस्मान् वनस्पतिर्मा च हामा न रीरिषत।
स्वस्त्या गृहेभ्यः आवसा आविमोचनात।।[1]

ऋग्वेद में वासोवाय (वस्त्र बुनने वाला वर्ग) का जिक्र है जो विभिन्न प्रकार के वस्त्र बुनता था बुनकर को 'वय' कहा जाता था।

वायः अवीनां आवासासि ममृजत्।[2]

युवा स्त्रियाँ भी बुनने का कार्य किया करती थीं।

उषसानक्त वटया इव रण्विते तंतु ततं संवयंती।[3]

कर्मार कृषि के निमित्त 'अभृ', 'दात्र' या 'सृण्य', फाल (हल) आदि निर्मित करता था।[4] कुलाल (कुम्हार) वर्ग के लोग विभिन्न प्रकार के बर्तन मिट्टी से बनाते थे। ये पात्र अनेक प्रकार के उपयोगों में लाये जाते थे।[5]

वाजसनेयी संहिता से विदित होता है कि 'कीनाश' और 'वप' कृषि करने वाले किसान होते थे किसान को 'अहल' (जिसके पास अपना हल नहीं होता था) 'सुहल' (जिसके पास अच्छा हल होता था) और 'दुर्हल' (जिसका हल पुराना और खराब होता था) कहा जाता था। किसान के लिये कुटुम्बी, कर्षक, क्षेत्री, हली, कृषिवल (क्षेत्राजीव), सीरस्त आदि नाम प्रयुक्त किया जाता था।[6] फसल काटने वाले को 'लूनक' कहते थे। बेंत का काम करने वाले—'विदलकार' और रस्सी बटने का काम करने वाल 'रज्जुसर्प' कहे जाते थे। इनके अतिरिक्त रथकार, धनुषकार, मणिकार, इषुकार अयसताप (लोहा गलाने वाला लोहार), धीवर (मछुआरा), भिषज (वैद्य), हिरण्यकार (सोनार) कुलाल (कुम्हार), वनप (जंगलों की देख-रेख करने वाले), दावप (जंगली आग बुझाने वाले) आदि भी समाज में थे।[7] बाँस का काम करने वाली स्त्री 'कंटकीकारी' और बेंत की टोकरी बीनने वाली 'विदलकारी', कसीदा काढ़ने वाली 'पेशस्करी', रंगने वाली 'रजयित्री' नाम से जानी जाती थी।

---

1 ऋग्वेद, 3 57।

2 वही, 10 26 6।

3 वही, 2 3 6।

4 अथर्ववेद, 7 5 6, वैदिक इडेक्स 1, पृ० 30, ऋग्वेद, 8 78 10, हस्त दात्रं च न आद दे, 10 101 3, सृण्यः [illegible] 4 57 9, श्रुतं न फालाः विकृषन्तु भूमिम्।

5 यजुर्वेद, 3 2 1, वैदिक इडेक्स 1, पृ० 171, 2 पृ० 176।

6 शब्दानुशासन, 7 3 76, अभिधान चितामणि, 3 890।

7 वाजसनेयी सहिता, 30 7।

बौधायन स्रौत सूत्र में 'तक्षा' और 'रथकार' दो भिन्न वर्गो के रूप में वर्णित किये गये हैं। अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर 'तक्षा' को लकड़ी के आधार, पोत, गाड़ी, आसन आदि निर्मित करने के लिये निर्देशित किया जाता था और रथकार को केवल रथ।

नेदीय एनमेते कर्मकृत उपसंगच्छन्ते तक्षणाश्च रथ कृतश्च मयस्कृतश्च कुलालश्च द्वया कर्मारा: नखकृते सप्तमे ॥[1]

चर्मकार घरेलू उपयोग के निमित्त चमड़े की अनेक वस्तुयें बनाता था, इसलिये समाज में उसका स्थान महत्वपूर्ण था। घरेलू उपयोग के लिये चमड़े की अन्यान्य वस्तुयें बनती थी। चमड़े के बने पात्रों में अन्न, घी, तेल, शहद आदि रखे जाते थे।

शतं घृतं चर्माणि, शतं मधु चर्माणि शतं तण्डुलं चर्माणि, शतं पृथुक चर्माणि
शतं लाजा चर्माणि, शतं करंभ चर्माणि शतं धाना चर्माणि ॥[2]

बौद्ध साहित्य से लकड़ी का काम करने वाले वर्ग बढ़ई (वड्ढकि) का समुचित ज्ञान होता है। वे जंगलों से लकड़ियाँ काटकर लाते थे तथा नावों और पोतों का निर्माण करते थे। लकड़ियों से ही मकान भी बनाया जाता था।

मालाकार (माली) विभिन्न पुष्पों की मालायें गूँथकर माला बनाता था जिसमें अनेक रंग-बिरंगे फूल गुंथे होते थे।[3] गांधिक-सुगंधित पुष्पों से विभिन्न प्रकार के इत्रों और तेलों का निर्माण करता था। जातकों में इत्र बनाने के शिल्प के अनेक संदर्भ मिलते हैं।[4] कल्पसूत्र में तीन प्रकार के इत्रों गोशीर्ष, लाल चंदन और दर्दर बनाने वाले लोगों का उल्लेख है।[5] जैन साहित्य में घासकार, मालाकार, गंधिय, नट्टग, तेगिच्छक, तुम्बवीणिय, लासग, हासकर, मल, आइक्खग आदि अनेक व्यवसायपरक वर्गो के नाम मिलते हैं।

पाणिनी के अनुसार तक्षा (बढ़ई) लकड़ी का सामान बनाता था। भवन, प्रासाद आदि में लकड़ी के सभामंडप, द्वार, किवाड़ आदि बना करते थे।[6] धनुष बनाने वाले वर्ग को 'धनुषाकार' कहा जाता था।[7] रजक विभिन्न रंगों से कपड़ा रंगता था। इस समय लाल, पीले, नीले गुलाबी आदि रंगों से वस्त्र रंगे जाते थे।[8] तेलों का निर्माण करने वाले तिलपिशक (तेली) वर्ग भी इस समय अस्तित्व में आ गया था।

---

1 बौधायन श्रौत सूत्र, 15 13-14।
2 वही, 15 6।
3 जातक, 1 95।
4 जातक, 6 335, 2 181, 3 160, 512, 5 156.302, 10 144।
5 कल्पसूत्र, 100, अर्थशास्त्र, 2 11।
6 पाणिनी अष्टाध्यायी, 5 1 16।
7 वही, 3 2 21।
8 वही, 5 4 32, 8 3 97।

उपर्युक्त सभी व्यावसायिक वर्गो की उत्पत्ति के मूल में कहीं न कहीं कृषि अवश्य थी। ये सभी वर्ग अपनी आजीविका के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पेड़-पौधों पर ही आश्रित थे। व्यावसायिक वर्गो की उत्पत्ति के बाद सामाजिक सम्बन्धों में तेजी से परिवर्तन हुये। सामाजिक सम्बन्धों में यह आमूल परिवर्तन उत्पादन के विकास का प्रमुख कारक बनता जा रहा था। इसके साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के रूपों का परिष्कार भी हो रहा था।[1] सामाजिक श्रम के विभाजन से मानव जाति की उत्पादक शक्तियों के विकास में भारी प्रगति हुई। आदिम व्यवस्था के विघटन के साथ निजी स्वामित्व और राज्य सत्ता के सम्बन्ध अनिवार्यतः ठोस रूप धारण करने लगे। शासक भी कृषि कार्यो के संरक्षण पर विशेष जोर देते थे क्योंकि इस समय कृषि ही राज्य की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार हुआ करता था। रामायण में यह वर्णित है कि राम जब भरत से मिले तब उन्होंने वार्ता में संलग्न कृषि-गोरक्षाजीवी जनसमुदाय की कुशलता पूछी थी।

वार्तायां सांप्रतं लोकोऽयं सुखमेधते।[2]

विष्णु पुराण में वार्ता को एक विद्या मानकर कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य को इसमें समाविष्ट किया गया है।

कृषिर्वाणिज्या तद्वच्च तृतीयं पशुपालनं। विद्या ह्येका महाभाग वार्ता वृति त्रययाश्रिता।।[3]

रामायण से ज्ञात होता है कि राम के राज्य में कृषि का उन्नयन हुआ। दोनों महाकाव्यों में विवृत्त है कि कोशल, वत्स, मत्स्य, मिथिला आदि प्रदेश कृषि की उपज के लिये विख्यात थे। इस युग में क्षत्रिय शासकों द्वारा खेतों में हल चलाना कृषि कर्म की महत्ता प्रदर्शित करता है। यज्ञ के नियमानुसार राजा जनक ने खेत जोता था तथा सीता की प्राप्ति की थी।[4] वैष्णव यज्ञ को संपन्न करते समय दुर्योधन ने भी खेत में हल चलाया था।[5] इस युग में कृषि कार्य करने वाली द्विजातियाँ भी थीं।[6] कृष्ण ने अपने को कृषि कर्म करने वाला घोषित किया था।

कृषामि मेदिनीं पार्थ भूत्वा कार्ष्णायसौ महान।[7]

विदुर के अनुसार कृषि कार्य का ज्ञान न रखने वाला व्यक्ति समिति की सदस्यता के लिये अयोग्य था।[8] कोशल, मत्स्य, वत्स जैसे अन्यान्य प्रदेश कृषि की दृष्टि से उर्वर और समृद्ध थे।[9]

---

1 बानर के नर बनने की प्रक्रिया मे श्रम की भूमिका, पृ० 115।

2 रामायण, अयोध्याकांड, 100 47-48।

3 विष्णु पुराण, 5 10 28।

4 रामायण, अयोध्याकाड, 2 118, 1 28, 29।

5 महाभारत, 3 255 28।

6 वही, 2 49 24।

7 वही, 12 34, 2 79।

8 वही, 5 36 33।

9 रामायण, 2 50 8-11, 2 100 44-45, 2 52 101, महाभारत, 4 30 8।

रामायण में उल्लिखित है कि अयोध्या के कृषक 'शालि' और विविध धान्यों से परिपूर्ण थे।[1] ग्रामों के चारो तरफ जुते हुए खेत हुआ करते थे जो विभिन्न फसलों से लहलहाया करते थे। धान्य की संपन्नता से ही राज्य की समृद्धि मानी जाती थी।[2] रामायण मे ही राम भरत से पूछते हैं—'क्या तुम्हारे राज्य मे कृषि और पशुपालन पर निर्भर करती हुई जनता अपना जीवन संभोग करती है। क्या तुम उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति और कठिनाइयों को समाप्त करने का प्रयास करते हो। यह राजा का प्रधान धर्म है कि वह बिना किसी भेद-भाव के अपने प्रजा की रक्षा करे।'

कच्चिते दयिताः सर्वे कृषि गोरक्षजीवितः। वार्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते॥
तेषां गुप्तिपरी हारैः कच्चिते भरणं कृतम्। रक्ष्या हि राजा धर्मेण सर्वे विषयवासिनः॥[3]

आर्थिक जीवन की सुव्यवस्था और सुसंपन्नता के कारण ही भारत में नगरीकरण संभव हो सका। इस युग तक कृषि और उससे उत्पन्न विविध प्रकार के अन्न आजीविका के साथ-साथ आर्थिक जीवन का मुख्य आधार बन चुके थे। व्यापार और वाणिज्य का दौर शुरु हुआ जिससे समृद्धि एवं संपन्नता के नये रास्ते खुले। मानव अब सभ्यता के उस सोपान पर पहुँच गया जहॉ वह खाने-पीने और आजीविका से इतर अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों के लिये सोचने और कुछ करने हेतु उद्यत हो सका।

वाणिज्य और व्यापार की उन्नति ने नगरीकरण का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रक्रिया में दो घटनाक्रमों ने बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। पहली मानव को लोहे की जानकारी और दूसरी लेन-देन के लिये मुद्रा और तौल के मानक का प्रचलन।

लोहे के बिना आज के विश्व की कल्पना करना मुश्किल होगा। मानव सभ्यता की बहुमुखी प्रगति में लोहे की भूमिका अहम रही है। लोहा एक तो अभी तक पाये जाने वाले धातुओं ताम्र एवम् कांस्य से अधिक मजबूत एवं टिकाऊ था दूसरे जगह-जगह पर इसके प्रचुर भंडार भी उपलब्ध थे। लोहे के प्रचलन के फलस्वरूप आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में उल्लेखनीय परिवर्तन घटित हुए। लोहे के तकनीकी ज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान राजनीतिक क्षेत्र में भी माना जाता है।

भारत वासियों के लोहे के ज्ञान की पुष्टि उत्तर वैदिक ग्रन्थों के जरिये ही होती है। कृष्ण यजुर्वेद की 'तैत्तरीय संहिता' में छः अथवा बारह बैलों द्वारा खींचे जाने वाले हलों का उल्लेख मिलता है। इस हल की फाल लोहे की होने के कारण ही यह काफी भारी रहा होगा ऐसा अनुमान किया जाता है। अथर्ववेद में लोहे की फाल और ताबीज का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में लोहे का सम्बन्ध कृषक वर्ग से स्थापित किया गया है। प्राचीन बौद्ध ग्रंथ 'सुत्त निपात' में लोहे की फाल के

---

1 रामायण, अयोध्याकांड, 68।

2 वही, 3 14।

3 रामायण, 2 100 47_48।

तपाने तथा तापानुशीतन का वर्णन मिलता है। इन साहित्यिक साक्ष्यों से इंगित होता है कि भारत मे कृषि के लिये लौह उपकरणो का उपयोग 800-700 ई० पू० में होने लगा था।

कृषि कार्य में लोहे के उपकरणों के प्रयोग के फलस्वरूप मध्य गंगा घाटी की कछारी मिट्टी वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक खेती करना संभव हो सका। इस प्रक्रिया में लोहे के सख्त हथियारों द्वारा गांगेय क्षेत्र के सघन बनों की कटाई की गयी। फिर उस भूमि को जोतकर धान, गन्ना, कपास, गेहूँ, जौ आदि की खेती बड़े पैमाने पर की जाने लगी। मानव अभी तक प्रकृति से गहरे रूप से जुड़ा हुआ था। पहली बार ऐसा हुआ कि अपने विकास और समृद्धि के लिये उसने बड़े पैमाने पर प्रकृति का दोहन किया। यह प्रथम उदाहरण था जिसमें मानव का प्रकृति से दूरीकरण स्पष्टत: दिखायी पड़ता है। वैसे ऋग्वेद में भी जंगलों की व्यापक पैमाने की कटाई का उल्लेख प्राप्त होता है—'अपने आदमी जन साथ लिये जंगलों को काटकर बल्लियों को इस आशय से नदी की सूखी पेटी में उन्हें बहाकर नीचे पहुँचाया जाएगा।' इसी क्रम में घास-पात जलाकर खेती के लिये जमीन तैयार करते लोग मिलते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि जंगलो की कटाई की प्रक्रिया निरन्तर बढ़ती ही गयी जो छठीं शती ई० पू० के आस-पास अपने चरम पर दिखायी पडती है। छठीं शताब्दी ईसा पूर्व के आस-पास प्रकृति से मानव के दूरीकरण की जो प्रक्रिया शुरु हुई वह आज तक थमी नहीं है और इसके दुष्परिणाम अपने वीभत्स रूप में सामने आने लगे हैं।

लौह उपकरणों में तथा उसके प्रकारों में उत्तरोत्तर वृद्धि परिलक्षित होने लगी थी। कुछ पुरातत्वविदों और इतिहासकारों ने ऐसी संभावना व्यक्त की है कि प्राचीन भारत की द्वितीय नगरीय क्रांति जो गौतम बुद्ध के आविर्भाव के समय गंगा घाटी में संपन्न हुई, वह लौह तकनीक के प्रसार पर ही प्रधानरूपेण आधारित थी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लौह तकनीक की दखल दिखायी पड़ने लगी थी। लौह तकनीक के व्यापक प्रचलन का प्रभाव कृषि-कार्य में ही नहीं बल्कि घरेलू उद्योग-धन्धों और वास्तु कला पर भी पड़ा। ताम्र तथा रजत के बने हुए आहत तथा लेखरहित ढले सिक्कों के प्रचलन के फलस्वरूप वाणिज्य-व्यापार की विशेष प्रगति हुई।

पंचमार्क सिक्के सामान्यत: शुद्ध चाँदी के बनते थे लेकिन पालि साहित्य में इन्हें लौहयुक्त ताम्र, बाँस के टुकड़ों या ताड़-पत्रों आदि से भी बनाये जाने का उल्लेख मिलता है। कुछेक स्थानों पर लाख से बने 'माषक' भी प्रचलित थे।

आहत सिक्कों का उपमूल्यांक था—माषक (Mashak)। वस्तुत: यह तौल की एक इकाई थी। गुंजा के बीजों को रत्ती के रूप में मानक तोल माना जाता था। यह मानक तौल पूरे भारत में एक नहीं थी बल्कि इसमें विविधता थी। उत्तर-पश्चिम भारत के सिक्कों में यह तौल 1 7 ग्रेन से 2.2 ग्रेन तक होती थी। पेशावर के प्राचीन कार्षापणों के मुद्राशास्त्रीय अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वहाँ

रत्ती 1 8 ग्रेन के बराबर होती थी। इस फर्क के मूल में गुंजा के बीजो के वजन में एकरूपता न होना रहा होगा।

सिक्कों के निर्माण के साथ ही यह आवश्यक हो गया कि सामान्य जनता उसे ठीक और उचित समझकर व्यवहार में लाये। अत: सिक्का तैयार करने वाली सस्था ने उस पर अपना चिन्ह अंकित करना प्रारम्भ किया। यह धातु की शुद्धता एवं उचित भार की गारंटी थी। आहत मुद्राओं पर विभिन्न प्रकार के चिन्ह प्राप्त होते हैं। इन चिन्हों में प्रमुख थे—वेदिका में शाखा युक्त पीपल वृक्ष, उज्जयिनी चिन्ह, स्वस्तिक, स्तूप के शीर्ष पर वृक्ष, सूर्य, हस्ति आदि। डा० वासुदेव शरण उपाध्याय ने इन चिन्हों को धर्म से सम्बद्ध बतलाया है। उनका विचार है कि सूर्य, वृक्ष, नदी आदि ब्राह्मण धर्म से और चक्र (धर्म चक्र) तथा पीपल वृक्ष बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है।

प्रगति पथ पर अब काफी आगे बढ़ चुके मानव का ज्ञान भंडार इतना बढ़ चुका था कि सभी कुछ याद रखना और मौखिक रूप से दूसरों को बता पाना संभव नहीं था। इस तरह लिखने की आवश्यकता पैदा हुई। इसके लिये लेखन सामग्री की जरूरत थी जिसे पूरा किया वनस्पतियों ने ही। सर्वप्रथम इसका आरम्भ हुआ मिस्र नामक देश में। यहाँ नील नदी के दलदली इलाकों में पेपाइरस नामक सरकंडे जैसी झाड़ियाँ उगा करती थी। मिस्री इनके तनों को काटकर पतली-पतली परते निकाल लेते थे और उन्हें आपस में चिपकाकर कागज के पन्ने जैसा बना लेते थे। अब इस पन्ने पर सरकंडे की कलम और कालिख की स्याही से लिखा जा सकता था। अगर पन्ना पूरा न पड़ता तो उस पर नीचे एक और पन्ना चिपका लिया जाता था। इस तरह लम्बी-लम्बी पट्टियाँ बन जाती थीं। लिखे हुए पन्नों को भी पेपाइरस कहा गया।[1] बाद में इसी से 'पेपर' शब्द की उत्पत्ति हुई। भारत भी लेखन कला के विकास में अग्रणी देशों में से एक है। जातक कथाओं में लिखने हेतु फलक (लकड़ी की पट्टी) और वर्णक (चंदन की कलम) का उल्लेख मिलता है। 'ललित विस्तर' में बुद्ध के लिपिशाला में जाने और गुरु विश्वामित्र द्वारा उन्हें चन्दन पट्ट पर स्वर्ण लेखनी से वर्णज्ञान कराने का वर्णन है।[2] बौद्ध साहित्य में काष्ठ, बाँस, पष्ण (पत्ते) और सुवर्णपट्ट जैसे लेखन उपकरणों का उल्लेख हुआ है। लिखने के लिये संभवत: भूर्जपत्र का प्रयोग किया जाता था। सिकदर के भारत आक्रमण (लगभग 326 ई० पू०) में साथ आये हुये उसके सेनापति नियार्कस ने लिखा है कि भारत के निवासी रुई और चिथड़ों को कूट-कूट कर कागज बनाना जानते हैं। मैकक्रिण्डल ने ग्रीक लेखक क्विष्टम कर्टियस के कथन का उल्लेख करते हुये लिखा है कि भारत में वृक्ष की छाल (भोजपत्र) का लिखने के लिये प्रयोग होता था।[3] ध्यातव्य है कि भारत में लिखने हेतु भोजपत्र एवं ताड़ पत्र का प्रयोग लम्बे अरसे तक किया गया।

---

1 प्राचीन विश्व इतिहास का परिचय, फ्योदोर कोरोव्किन, प्रगति प्रकाशन मास्को, 1982, पृ० 65।

2 भारतीय पुरालिपि, अभिलेख एव मुद्राये, शाभा सत्यदेव एवं अभिनव सत्यदेव, फैजाबाद 1992, पृ० 7,8।

3 भारतीय पुरालिपि, अभिलेख एव मुद्राये, शोभा एव अभिनव सत्यदेव, पृ० 8।

पेड-पौधे हमारी संस्कृति से इस प्रकार गहरे रूप से जुड़े कि उनका प्रभाव भाषा, गावों-शहरो के नामकरण मे भी स्पष्ट दिखायी पड़ता है। भाषा यद्यपि संस्कृति का कुछ बाहरी अंग सा है फिर भी वह हमारे जातीय मनोवृत्ति की परिचायिका है। 'कुशल' शब्द को ही अगर हम लें तो वह हमारी उस संस्कृति की ओर संकेत करता है जिसमें पूजा विधान की संपन्नता के लिये कुश लाना एक दैनिक कार्य बना हुआ था। जो कुश ला सकता था, वह कुशल,तन्दुरुस्त एवम् होशियार समझा जाता था। प्रवीण का सम्बन्ध वीणा से है—'प्रकर्ष: वीणायां प्रवीण:।'[1] इसी तरह कई अन्य शब्दों के गठन के मूल में पेड़-पौधे और वनस्पतियाँ रही हैं जिन्हें आज भी हम अपने रोज के जीवन में जीते और प्रयुक्त करते हैं। इसी तरह स्थानों (गाँवों और शहरों) के नामकरण में भी पेड़-पौधों की अहम भूमिका रही है। जिस स्थान पर जो भी वनस्पति ज्यादा मात्रा में उगती थी उसी का नाम उसे दे दिया गया। ताम्र पाषाणिक स्थल कायथा का समीकरण प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर की जन्मस्थली 'कपित्थक' से किया जाता है।[2] संभवत: यहाँ कपित्थ के वृक्ष बहुतायत में थे जो उसके नामकरण का हेतु बना। इसी तरह कुश की उपज ज्यादा होने के कारण कुशस्थलपुर, कुशीनगर, कुशपुर, कोशाम्बी, पीपल के पेड़ की अधिकता होने से पिप्पलगाँव, पिपरहवाँ, पिपरपात्ती जैसे स्थल, बाँस की बहुतायत होने से बाँसगाँव,बाँसडीह, बाँसूपुर, करवीर (कनेर) के पौधे से कनेला, खजूर ज्यादा होने से खजुराहो, बदरी (बेर) से बदरीनाथ, फूलों की अधिकता से फूलपुर, शीशम ज्यादा होने से सिसवन आदि स्थलों के नाम दिखायी पड़ते हैं। षोडश महाजनपदों में से एक अंग महाजनपद की राजधानी का नाम ही 'चम्पा' था। शायद इसके मूल में उस क्षेत्र में चम्पा के फूलों की बहुलता ही थी।

देश के वातावरण और रुचि के अनुकूल ही मांगल्य (धार्मिक) वस्तुओं का विधान किया जाता है। फूलों में हमारे यहाँ कमल को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। इसका सम्बन्ध जल एवं सूर्य दोनों से है। वह जल मे रहता है और सूर्य को देखकर प्रसन्न होता है। जल और प्रकाश जीवन की महती जरूरतों से हैं। कमल का सम्बन्ध दोनों से ही है। साहित्य में कमल ही सब प्रकार के शारीरिक सौन्दर्य का उपमान बनता है।

आम्र (रसाल), कदली (केला), दूर्वा दल, नारियल, बिल्व, श्रीफल (शरीफा),जौ, तिल, हल्दी आदि को मांगल्य कार्यो में प्रमुख स्थान दिया गया है। आम भारत का विशेष फल है। इसका बौर बसंत आने का पूर्व संकेत देता है। हमारे यहाँ बरगद, पीपल, पाकड़, गूलर, नीम जैसे जीवनोपयोगी वृक्षों को धार्मिक परम्परा में प्रत्यक्ष देवता के समान माना गया है। भगवान बुद्ध को अश्वत्थ वृक्ष के तले ही बुद्धत्व प्राप्त हुआ।

गौतम बुद्ध का जन्म अशोक वृक्ष के नीचे हुआ। पीपल वृक्ष के नीचे उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई। अपने नये शिष्यों को आम्र उपवन में और छायादार बरगद वृक्ष के नीचे उपदेश दिया और साल वृक्षों

---

1 नवनीत, दिसम्बर 1999, पृ० 7।

2 पुरातत्व विमर्श—डॉ० जे० एन० पाण्डेय, पृ० 537।

के उपवन में उन्हें निर्वाण की प्राप्ति हुई। न तो इसके पहले न ही इसके बाद अन्य कोई धर्म इतनी गहराई से पेड़-पौधों के साथ जुड़ा हुआ दिखायी पड़ता है। बौद्ध धर्म ने वृक्ष-पूजा की परम्परा को देश मे प्रचलित पुराने धर्मो से ही आत्मसात किया और फिर उसे अपनी तरह से जनमानस में प्रचलित किया। साल, अशोक और प्लक्ष (पाकड़) वृक्ष बुद्ध के जन्म के साथ जुड़े हुये है। इसलिये बौद्ध धर्म के लोग इन वृक्षो को पवित्र मानकर पूजा-आराधना करते हैं। साल (Shorea robusta) और प्लक्ष (Butea monosperma) ये दोनों वृक्ष नेपाल के तराई भाग में आमतौर पर आज भी पाये जाते हैं जहाँ कि बुद्ध की जन्मस्थली अवस्थित है।[1] विख्यात यात्री ह्वेनसांग ने भी लुम्बिनी वन की यात्रा की थी। वह अपने यात्रा-विवरण में उस अशोक वृक्ष का उल्लेख करता है जिसके नीचे बुद्ध का जन्म हुआ था। बोध गया में जिस पीपल वृक्ष (Ficus religiosa) के नीचे गौतम को बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी उसे भी ह्वेनसांग ने देखा था। अशोक के पुत्र राजकुमार महेन्द्र इसी बोधि वृक्ष के एक पौधे को 250 ई० पू० के आस-पास श्रीलंका ले गये थे जिसे अनुराधापुरा में रोपित किया गया था। यह विश्व का प्राचीनतम ऐतिहासिक वृक्ष है।[2]

प्राचीन भारत के प्रत्येक गाँव में बरगद और पीपल के पौधे का रोपण धूमधाम से किया जाता था। धार्मिकता के अलावा इस आयोजन का एक अन्य पहलू भी दिखायी पड़ता है। फसलों को चिड़ियों द्वारा पहुँचाये जाने वाले नुकसान से सुरक्षा इन वृक्षों के जरिये होती थी। बरगद और पीपल के वृक्ष जब अपने छोटे-छोटे फलों से लद जाते थे, तब यह हजारों चिड़ियों के लिये पर्याप्त भोजन सामग्री होते थे। विभिन्न प्रकार के पक्षी बहुत दिनों तक इन फलों को खाने में व्यस्त रहते थे इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से ये फसलों और फलदार वृक्षों की पक्षियों से रक्षा करते थे।

वास्तुकला और चित्रकला में विभिन्न प्रकार के वृक्षों का अंकन प्राप्त होता है। इस आधार पर कनिंघम 7 प्रकार के बोधि वृक्षों की पहचान करते हैं। ये हैं—पीपल (Ficus religiosa)- शाक्य मुनि का बोधि वृक्ष, न्यग्रोध या बरगद (Ficus benghalensis)-काश्यप का बोधि वृक्ष, गूलर या औदुम्बर (Fiscus glomerata)-कनक मुनि का बोधि वृक्ष, शिरीष (Albizia lebbeck)-क्रकुछंद का बोधि वृक्ष, साल (Shorea robusta)-विश्वबाँहु का बोधि वृक्ष, पाटलि वृक्ष (Bignonia suaveolens)-विपस्वी का बोधि वृक्ष। उक्त सभी छायादार वृक्ष हैं। एक गर्म देश के लोग कृतज्ञता स्वरूप इन वृक्षों को 'बोधि' की उपाधि से नवाजते हैं—यह स्वाभाविक ही है। इन छः वृक्षों के अलावा पुंडरीक या सफेद कमल शिखी का प्रतीक माना गया है। कनिंघम महोदय पाटलि वृक्ष का समीकरण अशोक (Saraoa asoca, S indica) से करते हैं। ये सभी बोधि वृक्ष भरहुत स्तूप पर स्पष्टता के साथ अंकित किये गये हैं जिन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है।[3]

---

1 A History of Agriculture in India, Part I—M S Randhava, p 325

2 The Outline of History—H G Wells, P 392

3 A History of Agriculture in India—M S Randhava, p 328

वनस्पति का प्राकृतिक वातावरण से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। पेड़-पौधों के फलने-फूलने के आधार पर वर्षा का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। प्राचीन काल से चली आ रही विशेषज्ञता की यह परम्परा आज भी दूर-दराज के गाँवों और आदिवासी इलाकों में स्पष्टत: देखी जा सकती है। मध्य प्रदेश के आदिवासी इलाकों के किसान जगली खुँभी यानी कुकुरमुत्ते की बढ़वार को देखकर आने वाले दिनों में बरसात के रुख का अंदाजा लगा लेते हैं। फिर उसी हिसाब से खेत की जुताई, फसलों की बुवाई आदि की तैयारी करते हैं। इस इलाके में एक पौधा होता है जिसमें मानसून आने पर फूल खिलते हैं। मानसून के बाद पत्तियाँ मुरझाकर गिर जाती हैं। इसके बाद जंगली सुअर इनकी जड़ों को खोदकर निकालता है और बड़े चाव से खाता है। ऐसा प्राय: हर साल होता है पर 1987 में ऐसा नहीं हुआ। सुअरों ने मानसून आने के पहले ही जड़े खोदकर खा डालीं। यह देखकर आदिवासियों को भयंकर सूखे की आशंका सताने लगी। ठीक ऐसा हुआ भी। उस साल पूरा मध्य भारत भयंकर सूखे की चपेट में था।

कई जगहों पर कुछ पौधों के फूलों को देखकर मानसून का पूर्वानुमान लगाया जाता है। केरल के किसान कड़ी गर्मी में खिलने वाले अमलतास के सुन्दर पीले फूलों के फूलने के समय के आधार पर ही मानसून के आगमन की तारीख का अंदाज लगाते हैं जो अधिकांश मामलों में खरा उतरता है। इसी तरह कुछ पौधे जल्दी ही पानी बरसने की संभावना होने पर अपनी पंखुड़ियाँ बंद कर लेते हैं। जब तक मौसम साफ नहीं होता, ये पंखुड़ियाँ बंद ही किये रहते हैं। इन फूलों को देखकर ही किसान उस दिन के काम की योजना बनाते हैं। ऐसे एक पौधे को 'पुअर मैंस वैदर ग्लास' यानी 'गरीब का मौसम पारखी' कहा जाता है। इसमें लाल रंग के सुन्दर फूल खिलते हैं।

वस्तुत: पेड़-पौधों के जरिये मौसम का पूर्वानुमान महज अटकलबाजी नहीं है। इसके पीछे एक ठोस विज्ञान है। दरअसल वातावरण की सर्दी-गर्मी, हवा की चाल व नमी, वातावरण के दाब और मिट्टी की नमी और ढेर सारी दशाओं का संपूर्ण जीव-जगत के कार्यकलाप पर गहरा असर पड़ता है। मसलन अगर वातावरण में सही नमी और तापमान मौजूद है तो फूल समय पर खिलेंगे और मानसून समय पर आयेगा। ऐसा न होने की स्थिति में फूलों के खिलने में विलम्ब हो सकता है जिसके आधार पर मानसून के आने में देरी होने का पूर्वानुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

निष्कर्ष—पेड़-पौधों का मानव जीवन के साथ जुड़ाव बहुत गहरा है। अपने जीवन में मनुष्य हर समय किसी न किसी रूप में वनस्पतियों को अपने साथ पाता है। मनुष्य के जीवन धारण और उत्कर्ष में वनस्पतियों का प्रमुख योगदान है। इनसे प्राप्त होने लाभों की कोई गणना नहीं। वे बस बोलते भर नहीं। जीव तो उनमें भी है और वह भी ऐसा जो संतों जैसी गरिमा से रोम-रोम में भरा बैठा है।

न केवल भौतिक दृष्टि से अपितु आध्यात्मिक दृष्टि से भी वृक्ष हमारे प्रशिक्षक की भूमिका निभाते हैं। वृक्षो की आध्यात्मिक प्रेरणा का लाभ प्राप्त करने के लिये प्राचीन काल में गुरुकुल, गुरु आश्रम,

मदिर, जलाशय आदि वृक्ष कुंजों से आच्छादित हुआ करते थे। प्रकृति की सघन शोभा विद्वत जनों के मस्तिष्क मे सदाचार, संयम, सेवा, सुरुचि, शुचिता और सुव्यवस्था के भाव भरा करती थी।

वृक्षों द्वारा सूक्ष्म आध्यात्मिक प्रशिक्षण निरन्तर मिलता रहे इसलिये हर आश्रम, गाँव, मंदिरो, सार्वजनिक स्थलों को भी वृक्षों से आच्छादित रखा जाता था। भारत के इतिहास की अनेक विलक्षणताओं में यह भी एक विलक्षण, तथ्यपूर्ण और वैज्ञानिक बात रही है। जो वृक्ष दुनिया में कहीं नहीं पाये जाते वे भारत में मौजूद हैं। नीम तथा पीपल जैसे वृक्ष केवल भारत में ही पाये जाते हैं। भारतीय संस्कृति के बारे में अपना मत प्रकट करते हुए न्यूयार्क के विद्वान मि० डेलमार ने लिखा है—'पश्चिमी संसार जिन बातों पर अभिमान करता है वे असल में भारत से ही वहाँ गयी हैं और तरह-तरह के फल-फूल, पेड़-पौधे जो इस समय यूरोप में पाये जाते हैं, हिन्दुस्तान से ही ले जाकर वहाँ लगाये गये हैं।'[1] बुद्ध की स्मृति में महेन्द्र द्वारा श्रीलंका में लगाया गया बोधि वृक्ष आज भी कीर्तिस्तंभ बना हुआ है। संसार के अनेक देशों को यहाँ से वृक्ष, फल और फूल के पौधे भेजे गये। इसका मुख्य उद्देश्य संसार में आध्यात्मिकता के मूल को ही विकसित करना रहा है। साथ ही साथ शांति के अपने मूल मंतव्य को विश्व भर में प्रचारित प्रसारित कर 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना को साकार करने का महत्वपूर्ण कार्य भारतीय मनीषियों द्वारा किया गया है जो वृक्षों-वनस्पतियों के मूल भाव को ही प्रकट करता है।

●

---

1 युग निर्माण योजना, अगस्त 1999, पृ० 12-13।

अध्याय-2

प्राचीन भारतीय साहित्य में पेड़-पौधे और वनस्पतियाँ

प्राचीन भारत का अधिकांश साहित्य संस्कृत भाषा में है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के समुन्थान में संस्कृत साहित्य का स्मरणीय योगदान है। वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृतियाँ, महाकाव्य तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थ देव-वाणी संस्कृत में ही लिखे गये हैं। विन्टरनित्ज के शब्दों में कहें तो 'साहित्य अपने व्यापक अर्थ में जो कुछ भी सूचित कर सकता है वह संस्कृत में विद्यमान है। धार्मिक और ऐतिहासिक रचनाएँ, महाकाव्य गीत, नाटकीय और नीति सम्बन्धी कविता, वर्णनात्मक, अलंकृत और वैज्ञानिक गद्य सब कुछ इसमें भरा पड़ा है।'[1]

प्रकृति का समुज्ज्वल रूप संस्कृत काव्य के लालित्य का प्रधान अंग है। हमारे प्राचीन कवियों ने प्रकृति के मनोरम वातावरण के बीच रहकर ही बहुत कुछ लिखा है। प्रकृति और कविता का पारस्परिक सम्बन्ध है। काव्य ने सदैव प्रकृति से ही सच्ची प्रेरणा प्राप्त की है और प्रकृति काव्य के स्वरों मे संचरित होकर विशेष कमनीय हुई है। कवियों की अनुभूतियों ने प्राकृतिक सुषमा से अपने लघुत्व को व्यापक बनाया और संयम निष्ठा को आत्मसात किया।

प्राकृतिक वर्णन में पेड़-पौधे और वनस्पतियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। पादप एवं पुष्प की उपयोगिता और सुन्दरता सार्वभौमिक है। कवि हृद्य सहज ही इनकी तरफ आकर्षित हो जाता है। कवि का जगत कल्पनामय होने पर भी प्रकृति-प्रेम से बच नहीं सका है। और हो भी क्यों न, दोनों के गुण आपस में इतना ज्यादा मिलते हैं। वृक्ष और पादप बड़े भावुक एवं सरस होते हैं जबकि कवि भी अत्यंत संवेदनशील होते हैं। इसीलिये तो पादपों की सौन्दर्यप्रियता काव्य शास्त्र में विशेष रूप से निर्दिष्ट है।

पादपों की महिमा के वर्णन में पुष्पों का प्रमुख स्थान है। सौरभ के पुंज ये ललित पुष्प बरबस ही विश्व को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। विविध रंगों से रंगे, सुन्दरता के अनुपम प्रतीक पुष्प जहाँ खिलते हैं, वहीं मंगल विखेर देते हैं। इनकी सुरभि बड़ी मनमोहक होती है। वृक्ष के जीवन की सार्थकता में यह ही प्रमाण हैं। पवन पुष्पों से पराग लेकर अपने को भाग्यशाली मानता है। पशु-पक्षी एवं जीव-जन्तु इसकी भीनी सुगन्ध से प्रमुदित हो जाते हैं। वसन्त की मादकता पुष्पों पर ही आधारित है। पुष्पों के बिना संसार आकर्षणहीन हो जायेगा। मानव अपने उल्लास को प्रकट करने के लिये

1 सस्कृत कवि दर्शन, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, भूमिका।

पुष्पों की वर्षा करता है। अपनी साधना को पूर्ण करने के लिये अपने आराध्य के चरणों में पुष्प चढाता है। देव-समूह भी मांगलिक अवसरों पर आकाश से पुष्प वर्षा किया करते थे। ये पुष्प स्वयं को मिटाकर मुधर फलों को जन्म देते हैं। प्रेमी अपनी प्रेमिका को पुष्पों के समर्पण से प्रसन्न करते है। गिरते हुये फूल की आहें विश्व की नश्वरता का बोध कराती हैं। धार्मिक सिद्धान्तों के निरुपण में आचार्यो ने फूलों को प्रमुखता से अपनाया है।[1]

भारत ही नहीं अपितु विश्व का ऐसा कोई साहित्य नहीं होगा जो पादपों की कमनीयता और कुसुमों के सौन्दर्य से अछूता हो। साहित्य की संवेदनशीलता को सजीव बनाने का दुष्कर कार्य इन पादप-पुष्पों ने ही सुगम बनाया है। इसे सहेजने के लिये मानव ने इसे कई आयाम दिये तथा धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मान्यतायें प्रदान की। पेड़-पौधों का अस्तित्व ही हमारी भौतिक एव परमार्थिक साधना को बलवती बनाता है। जीवन में त्याग, परोपकार, निरंतरता, सुदृढ़ साधन तत्परता, पावनता, निरीहता आदि सद्गुणों की स्थापना पादप पुष्पों के साहचर्य से ही संभव हुई है।

मनुष्य के जीवन में पेड़-पौधों के विविध आयाम है। सामान्य प्रयोग के अलावा पर्यावरण, धर्म, ज्योतिष, चिकित्सा, कृषि, काव्य में प्रतीक रूप, सुभाषित एवं नीति वाक्यों तथा कई अन्य अर्थों में पेड़-पौधों का प्रयोग किया जाता है। साहित्य ने इन सारे आयामों को अपने कलेवर में समेटा है। प्रस्तुत अध्याय में प्रमुखतया तीन आयामों पर विमर्श किया गया है—

(1) सामान्य परम्परा में वनस्पतियाँ एवं पेड़-पौधे

(11) कवि प्रसिद्धि में वनस्पतियाँ एवं पेड़-पौधे

(111) कृषि सम्बन्धी वनस्पतियाँ एवं पेड़-पौधे

(1) सामान्य परम्परा में पेड़-पौधे— विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में वृक्षों एवं पादपों की प्रशस्ति विस्तृत रूप से प्राप्त होती है। ऋग्वेद में ही यह उद्घोष मिलता है—

वनिजो भवन्तु शं नो[2]

अर्थात् 'वृक्ष हमारे लिये शान्तिदायक हों।' ध्यातव्य है कि ऋग्वेद में वनस्पति की गणना देव वर्ग मे की गयी है। जिससे धन प्रदान करने की अभ्यर्थना की गयी है—

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे।।[3]

---

1 काव्य मे पादप पुष्प, प्रो० श्रीचद्र जैन, भोपाल 1958, पृ० 44।

2 ऋग्वेद सहिता, श्रीराम शर्मा आचार्य, हरिद्वार, सं० 2052, 7 35 5।

3 वही, 3 8 1।

इस काल में उपासना का मुख्य आधार यज्ञ था। यज्ञ निर्वाह हेतु अन्न का दान केवल वनस्पतियाँ ही कर सकती हैं—

उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्षान्पृथिव्या अधि। सुमिति मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे॥[1]

अर्थात 'हे वनस्पति। तुम पृथ्वी के उत्तम यज्ञ प्रदेश में उन्नत होओ। तुम सुन्दर परिणाम से युक्त हो यज्ञ निर्वाह के लिये अन्न दान करो।'

यज्ञो के माध्यम से वनस्पतिशास्त्री पौधों की उन्नत किस्में बड़े मनोयोग से विकसित करते थे। इसी भावना का द्योतन इस श्लोक में देखने को मिलता है—

युवा सुवासा परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः।

तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥[2]

अर्थात 'उत्तम वस्त्रों से लपेटे हुए ये तरुण वनस्पति देव (पुष्प-पौधे) आ गये हैं। ये जन्म से ही उत्तम होते हैं। देवत्व की कामना वाले मेधावी, अध्ययनशील, दूरदर्शी, विवेकवान पुरुष मनोयोगपूर्वक इनकी उन्नति करते हैं।'

यज्ञ संबंधी प्रयोजनों के लिये वनस्पतियों की जरूरत स्वाभाविक रूप से पड़ती थी। ऐसे में वनम्पतियों को काटने, तोड़ने के पहले उनकी आराधना की जाती थी जिसमें उनके वर्द्धित होने की कामना की जाती थी।

वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्त्रवल्शा वि वयं रुहेम।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय॥[3]

अर्थात 'हे वनस्पते। इस अत्यन्त तीक्ष्ण फरसे ने तुम्हें महान सौभाग्य के लिये विनिर्मित किया है। (यज्ञ के प्रभाव से) आप सैकड़ों शाखाओं से युक्त होकर वर्द्धमान हो और हम भी सहस्त्रों शाखाओं से युक्त होकर वृद्धि करने वाले हों।'

ऋग्वेद में देवरूप में वनस्पतियों का वर्णन विशेषकर वहीं मिलता है जहाँ उनकी परिगणना जलाशय, नदी, पर्वत, द्यौः और पृथ्वी के साथ की गयी है। एक समग्र सूक्त (मंडल-10, सूक्त-97) औषधि की स्तुति में है। इस सूक्त में औषधि की स्वास्थप्रद विशेषतायें वर्णित हैं। परवर्ती वैदिक ग्रंथों मे वनस्पतियों की पूजा भी है और इन्हें भी अर्घ्य आदि दिये जाते हैं। वर-यात्रा के समय तो महावृक्षों को पूजना विहित है। ऋग्वेद के एक सूक्त (मंडल-10, सूक्त-146) में वन को समष्टि रूप से

---

1 ऋग्वेद सहिता, श्रीराम शर्मा आचार्य, हरिद्वार, स० 3 8 3।

2 वही, 3 8 4।

3 ऋग्वेद, 3 8 11।

अरण्यानी कहकर उसकी महत्ता दिखायी गयी है। इसे वनों की कल्पित देवता (आत्मा) माना गया है।[1]

ऋग्वेद के नवम मंडल के सभी 144 सूक्तों का देवता सोम है। सोम वस्तुतः एक पौधा होता था जिसके रस को वैदिक आर्य बल तथा स्फूर्ति प्रदान करने वाला पेय समझते थे। सोम लता को एकत्र करने, पत्थरों से कूट कर उसकी छाल अलग कर रस निकालने तथा उसे छान कर पीने का उल्लेख इन सूक्तों में मिलता है। वैदिक आर्य सोमरस को अत्यन्त गुणकारी मानते थे जिसका पान कर उन्हें अत्यधिक उल्लास की अनुभूति होती थी। उनका मानना था कि इस रस को पीने से देवों तथा मनुष्यों को अमृतत्व की प्राप्ति होती है—

त्वां देवासो अमृताय क पपुः।[2] अपाम सोमममृता अभूमा गन्म ज्योतिरविदाम देवान्।।[3]

सोम का प्रयोग औषधि रूप में भी किया जाता था। सर्वश्रेष्ठ औषधि होने के कारण सोम को वनस्पतियों का राजा कहा गया है और अन्य वनस्पतियों को सोम की प्रजा।

सोमं नमस्य राजानं यो यज्ञे वीरुधां पतिः।[4]

वस्तुतः वेदों में वर्णित सोम एक अत्यन्त गुणकारी पार्थिव वनस्पति है। उसके गुणों के कारण ही उसे देवता का रूप प्रदान किया गया। आर्यो में सोम का महत्व उस युग में ही विकसित हो गया था जब आर्यो की ईरानी शाखा भारतीय शाखा से पृथक नहीं हुई थी। ईरानी ग्रंथ अवेस्ता में 'सोम' को 'होम' शब्द रूप में वर्णित किया गया है। ध्यातव्य है कि होम भी एक वनस्पति है जिसके रस को अत्यन्त गुणकारी कहा गया है और उसे भी देवता की स्थिति प्राप्त है।

ऋग्वेद में उल्लिखित महावृक्षों में सबसे महत्वपूर्ण वृक्ष है—अश्वत्थ (पीपल) जिसका फल (पिप्पल) मधुर बताया गया है जिसे पक्षीगण खाते हैं। इसकी पवित्रता उपयोगजन्य है। कारण इसका काष्ठ सोमपान के लिये काम में लाया जाता था और त्रेताग्नि के उत्पादन के लिये भी पिप्पल काष्ठ का प्रयोग किया जाता था जिसे वेद में 'प्रमन्थ' कहा गया है। परवर्ती वेदों में उल्लिखित है कि देवता तीसरे स्वर्गीय लोक में अश्वत्थ के नीचे बैठते हैं। ऋग्वेद में इसे 'बहुपलाश' वृक्ष भी कहा गया है। आज भी पीपल उतना ही पवित्र माना जाता है। ऋग्वेद में कहीं भी न्यग्रोध (नीचे की तरफ उगने वाला) का उल्लेख नहीं है।इसका उल्लेख अथर्ववेद में केवल दो बार आया है। भारत के इस सबसे बड़े वृक्ष का घेरा विश्व के और किसी देश के वृक्ष की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। इसका विशाल शिखर पत्तों से सघन होता है जिसमें सूर्य की किरणें प्रवेश नहीं कर पाती। इस वृक्ष का स्वरूप एक

---

1 सस्कृत साहित्य का इतिहास, ए० ए० मैकडोनेल, अनु० चारुचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, 1962, पृ० 98-99।

2 ऋग्वेद, 9 106 8।

3 वही, 8 48 3।

4 ऋग्वेद, 9 114 2।

विशान्न हरे-भरे मंदिर की तरह लगता है जिसे स्वयं प्रकृति ने रचा है।[1] ऋग्वैदिक काल में पासे का खेल जन जीवन मे अत्यन्त लोकप्रिय था उस समय खेल के पासे विभीतक (बहेड़ा) वृक्ष के फल से बनते थे।

प्रावेपा या वृहतो मादयंति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभी दशे जागृपिर्मस्य गच्छाण ।।[2]

अक्ष कृषि प्रशंसा और अक्ष कितब निदा। सूखे कूप में उत्पन्न होते हुये अथवा धन से रहित निर्धनता की दशा में ले जाने वाले नीचे देश में पैदा हुये, खूब काँपने वाले भयोत्पादक बड़े भारी वृक्ष के फल तुल्य जुये के पासे मुझे हर्षित करते हैं। बहेड़े के वृक्ष से उत्पन्न यह जुये का गोटा मुंजवान पर्वत पर उत्पन्न सोम औषधि लता के भक्षण योग्य रस के समान आस्वादन करने योग्य जीता-जागता मानों मुझे फुसलाता है। कदाचित यह वृक्ष आज भी इस उपयोग में आता है।[3]

विश्व के मूल तत्व कितने हैं इसका भी प्रतिपादन ऋग्वेद में वृक्ष के माध्यम से इस प्रकार किया गया है—एक वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं। उनमें से एक सुस्वादु फलों का भक्षण कर रहा है और दूसरा पक्षी उसे द्रष्टा रूप से देख रहा है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति ।।[4]

उक्त मन्त्र में वृक्ष प्रकृति का, द्रष्टा पक्षी परमात्मा का तथा फल को खाने वाला पक्षी जीवात्मा का सूचक है। विश्व के ये ही तीन मूल तत्व हैं।

गीता के पंद्रहवें अध्याय का आरम्भ ऊपर की ओर जड़ तथा नीचे की ओर शाखाओं वाले अश्वत्थ वृक्ष के स्वरूप की व्याख्या से किया गया है। यह पीपल संसार रूप है। सबके आधार तथा सबके ऊपर नित्य धाम में रहने वाले अव्यक्त, अनादि पुरुष सबके कारण होने से मूल तथा ऊपर होने से 'उर्ध्वमूल' हैं। नित्यधाम से नीचे 'ब्रह्मलोक' में वास करने वाले हिरण्यगर्भ ब्रह्मा को 'अधः' तथा संसार का विस्तारकर्त्ता होने से मुख्य शाखा, अतः 'अधः शाख' कहा गया है। त्रिगुण (सत, रज, तम) को इसका पोषक जल, शब्द, स्पर्श आदि को स्थूल शरीर एवं इंद्रियों की अपेक्षा सूक्ष्म होने के कारण नयी कोंपलें तथा देव, मनुष्य एवं तिर्यक योनियों को मुख्य शाखा ब्रह्मा से उत्पन्न होने वाली शाखाये कहा गया है।[5]

---

1 सस्कृत साहित्य का इतिहास, ए० ए० मैकडोनेल, अनुवाद-चारुचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, 1962, पृ० 140।

2 ऋग्वेद भाषा भाष्य, भाष्यकार-प० जयदेवजी शर्मा, षष्ठ खड, पृ० 593।

3 वही, पृ० 120।

4 ऋग्वेद, 1 164 20।

5 गीता, 15 1।

ऐतरेय आरण्यक में कहा गया है—'देवताओं से प्रजापति की उत्पत्ति हुई। वर्षा से देवता की, वनम्पति से वर्षा की, अन्न से वनस्पति की, बीज से अन्न की और प्राणियों से अन्न की उत्पत्ति हुई। प्राप्यिो का मूल हृद्य, हृद्य का मूल मन, मन का मूल वाक, वाक का मूल कर्म और कर्म का मूल मनुष्य है जो ब्रह्मा का निवास है।'[1]

ऋग्वेद में वर्णित सृष्टि रचना पर दो दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है—(1) पौराणिक आधार पर (11) दार्शनिकता के आधार पर। प्रो० मेक्डुनल के अनुसार पहली विचारधारा विश्व को एक यात्रिक रचना के रूप में देखती है जो किसी काष्ठकर्मी अथवा शिल्पी की प्रतिभा के फल के समान है और दूसरी धारा इसको एक स्वाभाविक प्राकृतिक विकास[2] के रूप में देखती है। ऋग्वेद में कवि एक स्थान पर कहता है—'कौन से वृक्ष और कौन से काष्ठ द्वारा स्वर्ग और पृथ्वी की रचना की गयी?[3] तैत्तिरीय ब्राह्मण में इसका उत्तर है—'ब्रह्म ही काष्ठ है और ब्रह्म ही वह वृक्ष है जिससे इस पृथ्वी और स्वर्ग का निर्माण हुआ।' ड्यूसन महोदय सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया को और सूक्ष्म रूप में ले जाते हैं 'ब्रह्म काल के पूर्व कारण रूप में विद्यमान था और यह प्रकृति इस महान कारण से कार्य रूप में उत्पन्न हुई है। यह विश्व आंतरिक रूप से ब्रह्म के ऊपर निर्भर है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि ब्रह्म ने इस प्रकृति को स्वयमेव उत्पन्न किया है।' मुण्डक उपनिषद[4] में भी कहा गया है—'जिस प्रकार मकड़ी अपने जाल के ततुओं को स्वयं में से उत्पन्न करती है और फिर समेट लेती है, जिस प्रकार पृथ्वी में से वृक्षादि उत्पन्न होते हैं, जिस प्रकार मनुष्य के सिर और जीवित शरीर पर केश उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार अविनाशी ब्रह्म से प्रकृति उत्पन्न होती है। जिस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्नि से उसी के प्रतिरूप सहस्त्रों की संख्या में स्फुलिग उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार अविनाशी ब्रह्म से अनेक जीवधारी प्राणी उत्पन्न होकर पुनः उसी में समा जाते हैं।'[5]

यजुर्वेद में मुख्यतः यज्ञ से सम्बन्धित विधानों का वर्णन किया गया है। 'नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय:....।'[6] (वृक्षों को नमस्कार, महादेव को नमस्कार, उद्धारक को नमस्कार) उद्‌बोधन से वृक्ष समुदाय के प्रति मानवीय कृतज्ञता को स्पष्टतः प्रकट किया गया है। द्युलोक शांत हो, अंतरिक्ष शांत हो, पृथ्वी शांत हो, जल, औषधियाँ, वनस्पतियाँ, समस्त देवता, ब्रह्म शांत हो सब कुछ शांत हो, शांत ही शांत हो और मेरी शांति निरंतर बनी रहे इसकी कामना यजुर्वेद में ही मिलती है।

---

1 ऐतरेय आरण्यक, 2 1-3 (ऐतरेय ब्राह्मण का कीथ कृत अनुवाद)।

2 वैदिक माइथोलॉजी—ए० ए० मैकडुनल, पृ० 11।

3 ऋग्वेद, 10 81 4।

4 मुण्डक उपनिषद, 1 7।

5 फिलासफी आव द उपनिषद्स, ड्यूसन, पृ० 164।

6 यजुर्वेद, 16 17।

द्यौः शातिरन्तरिक्षशांन्तिः पृथ्वी शान्तिः रापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्ति ब्रंह्म ॐ शान्ति सर्व ॐ शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥[1]

अग्नि की सात समिधाओं—शमी, वैककती, उदुम्बरी, बेल, पलाश, न्यग्रोध और अश्वत्थ का उल्लेख (सप्तेऽअग्नेसमिधं)[2] यजुर्वेद मे प्राप्त होता है। एक अन्य श्लोक में अश्वत्थ (पीपल) और पलाश का स्पष्ट उल्लेख किया गया है—

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गो भाज ऽ इत्किलासथ यत्सनवथ पुरुषम् ।[3]

अर्थात 'है औषधियों तुम्हारा पीपल काष्ठ निर्मित उपभृंत और स्रुच पात्र में स्थान है। तुमने पलाश पत्र से बनी जुहू में स्थान किया है। अश्वत्थ के फलने से सर्वोषधि फलवती होती है। पलाश फलने से ब्रीहि आदि में फलता होती है इसलिए तुम भूमि में निवास करो। पलाश अथवा अश्वत्थ में देवता निवास करता है और वह परिक्रमादि से पूजित होता है इस कारण तुम्हारा उसमें निवास है।'

इसी तरह दूर्वा (दूब) के सम्बन्ध में यजुर्वेद में निम्न स्तुतिपरक मन्त्र दिया गया है—

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषऽपरुषस्प्परि।
एवानोदूर्व्वे प्प्रतनुसहस्त्रेण शतेन च॥[4]

'हे दूर्वा । तुम प्रत्येक कांड और प्रत्येक पर्व से सब ओर से अंकुरित होती हो अर्थात भूमि के सम्बन्ध और असम्बन्ध वाले सब पर्वो से बढ़ती हो और निश्चय ही सहस्त्र एवं सैकड़ो अर्थात असंख्य ऐश्वर्य पुत्र-पौत्रादि से अंकुरवत हमको सब प्रकार से विस्तार या वृद्धि को प्राप्त करो।'

विभिन्न अन्नों के साथ-साथ यज्ञकर्त्ता के निमित्त आम्रादि वृक्षों की उत्पत्ति[5] और पुष्प के बिना ही फलने वाली पनस (कटहल), उदुम्बर (गूलर)[6] आदि के कार्य विशेषों में यज्ञ के फल से प्राप्त होने की कामना की गयी है। कोमल बदरी (बेर) फल को धानों का रूप, गोधूम (गेहूँ) को हविष्पंक्ति का रूप, सम्पूर्ण बदरीफल को सत्तुओं का रूप तथा यव को करंभ का रूप बताया गया है।[7] यजुर्वेद में ही अन्यत्र शाल्मलि, पलाश, अपामार्ग, औदुम्बर, न्यग्रोध, अश्वत्थ आदि वृक्षों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

---

1 यजुर्वेद, 36 17।
2 वही, 17 79।
3 वही, 12 79।
4 वही, 13 20।
5 वही, 18 9।
6 वही, 18 13।
7 वही, 19 12।

वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसित ग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शाल्मलिर्वृद्धया।
एष स्यराश्यो वृषा षड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्मा कृष्णाश्च नोऽवतु नमोऽग्नये ।।[1]

*　　　　　*　　　　　*

अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्य सुव ।[2] **अश्वत्थे वो निषदनं ।**[3]

अथर्ववेद के अधिकांश मन्त्र विविध रोगों के उपशमन तथा उनके प्रवर्तक असुरों के विनाश के लिए उपाय बताते है। ज्वर, कुष्ठ, कामला, मूर्छा, गंडमाल, श्वास, कफ, नेत्र रोग, गंजापन, शक्तिक्षय व्रर्णो के उपचार एवं सर्पदंश, अन्य विषैले कीटों के दंश आदि व्याधियों के चिकित्सा क्रम में वनस्पतियों का उल्लेख प्राप्त होता है। इसी आधार पर अथर्ववेद को भारतीय भैषज्य विद्या का आदि ग्रंथ भी कहा जाता है। अथर्ववेद में श्याम लता द्वारा कुष्ठ रोग की चिकित्सा का वर्णन इस तरह है—

नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च। इदं रजनि रजय किलासं पलितंच यत् ।।[4]

अर्थात 'हे वनस्पति । तेरा प्रादुर्भाव रात को हुआ है। तू काली, भूरी और सांवली है। तेरा रंग बड़ा पक्का है, अपनी तरह मेरे सफेद दाग को भी तूँ काला बना दे।'

व्याधियों (रोगों) को संयुक्त रूप से भाग जाने की चेतावनी देते हुए अथर्ववेद में पीपल, वट, चूड़ामणि या काकमाची (मकोय) आदि के पौधों का जिक्र किया गया है जो स्वयं में व्याधिनाशक हैं—

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखंडिनः। तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ।।[5]

कुछ अन्य श्लोक जिनमें वनस्पतियों का उल्लेख है निम्नवत हैं—

यत्रः वः प्रेंखा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदंति। तत परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ।।[6]

जहॉ तुम्हारे लिए हिलते-डुलते हरे अर्जुन वृक्ष हैं और जहाँ नगाड़े पीटे जाते हैं वहाँ से व्याधियों भाग जाओ।

दश वृक्ष ! मुंचेमं रक्षसो ग्राह्य अधि यैनं जग्राह पर्वसु। अथो एनं वनस्पते ! जीवानां लोकमुन्नय ।।[7]

---

1 वही, 23 13।

2 वही, पृ० 35 11।

3 वही पृ० 12 79।

4 अथर्ववेद, सपा०—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय मंडल, पारडी, बलसाड, शक 1865, 1 23 1।

5 वही, 4 37 4।

6 वही, पृ० 4 37 5।

7 वही, पृ० 2 9 1।

'हे दस वृक्ष ! राक्षसी जकड़ने वाली गठिया (रोग) की पीड़ा से इसे छुड़ा दे, जिस रोग ने इसको जोड़ों मे पकड़ रखा है। हे वनस्पति । इसको जीवित लोगों के स्थान में जाने योग्य ऊपर उठा।'

पुमानपुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि। स हन्तु शत्रूनमामकानयानहं द्वेष्मि ये च माम्।।[1]

'खैर के वृक्ष के ऊपर जैसे अश्वत्थ का वृक्ष होता है, वैसे ही वीर पुरुष से वीर पुरुष उत्पन्न होता है। ऐसा वीर हमारे वैरियों का बध करे।'

इसी तरह एक मन्त्र में शमी वृक्ष के समान बढ़ने का उपदेश देते हुए कहा गया है—

यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि।
आरात त्वदन्या वनानि वृक्षित्वं शमि शतवल्शा वि रोह।।[2]

अन्यत्र एक श्लोक में पीपल, दर्भ (कुश), सोमलता आदि की रक्षार्थ प्रार्थना की गयी है—

अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः। व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ।।[3]

शांशाप वृक्ष (शीशम) के समान शीघ्र वृद्धिशाली होने की भावना इस प्रकार व्यक्त की गयी है—

भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना। कृणोमि भगिनं माप द्रान्त्वरातयः।।[4]

ऐतिहासिक दृष्टि से सामवेद का उतना महत्व नहीं है जितना अन्य तीन वेदों का। इसमें किसी स्वतन्त्र विषय का प्रतिपादन नहीं है। केवल 75 मन्त्रों को छोड़कर सब ऋग्वेद से ज्यों के त्यों लिये गये हैं।

सामवेद के एक श्लोक में वनस्पति एवं लताओं के दृष्टांत से आत्मा की उत्पत्ति का वर्णन सुन्दर तरीके से किया गया है—

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः।
तमित् समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा।।[5]

'देदीप्यमान अग्नि को औषधियाँ अपने भीतर रस रूप से धारण करती हैं और उसी (अग्नि) को बड़े-बडे वृक्ष एवं लतायें धारण करती हुई अपनी-अपनी वंश वृद्धि में प्रदत्त रहती हैं।' यहाँ पर अग्नि का अर्थ ऊर्जा, पवित्रता एवं जीवन के ही संदर्भ में लिया गया है। औषधि के अंदर की यह (अग्नि) शक्ति रोगों के मूल में जाकर अपनी ऊर्जा से रोगकारी तत्वों का क्षय कर उस अंग विशेष

---

1 वही, पृ० 3 6 1।

2 वही, पृ० 6 30 2।

3 वही, पृ० 8 7 20।

4 वही, पृ० 6 129 1।

5 अथर्ववेद, उत्तरार्चिक, 20 6 3।

को पवित्र करती है। फिर सचालित करती है जीवन का अद्भुत प्रकाश जिससे व्यक्ति आलोकित हो उठना है।'

सभी जीवधारियों के ब्रह्म के साथ सम्बन्ध को स्थापित करते हुए एक अन्य श्लोक में कहा गया है—

आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्ष मन्धसः। विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥[1]

अर्थात 'जिस प्रकार नाना प्रकार के पक्षी वृक्ष का आश्रय लेते हैं उसी प्रकार प्राण, जीवन शक्ति, विभूति, ऐश्वर्य, ज्योति आदि ब्रह्म के आश्रित हैं।'

महाकाव्य ग्रंथो में वनस्पतियों का पर्याप्त वर्णन प्राप्त होता है। इस समय का मनुष्य पहले से कहीं अधिक वनस्पतियों से परिचित था। रामायण में विभिन्न प्रसंगों में ऋषि वाल्मीकि ने बड़े लालित्यपूर्ण ढंग से वनस्पतियों का वर्णन किया है। सीता के वियोग से विकल राम आम, कदम्ब, बड़े-बड़े साखू, कटहल, कुरट, अनार, मौलसिरी, नागकेसर, चंपा और केतकी वृक्षों के पास जाकर सीता के अंग-प्रत्यंगों की उनसे तुलना कर समीप्य प्रकट करते हुये उनके विषय में पूछा था और अपनी विक्षिप्त अवस्था को प्रकट किया था—

अस्ति कच्चित्वया दृष्टा सा कदंबप्रिया प्रिया। कदंब यदि जानीषे शस सीता शुभाननाम।
स्निग्धपल्लवसंकाशां पीतकौशेय वासिनीम्। शंसस्तव यदि सा दृष्टा बिल्व बिल्वोपमस्तनी॥
अथवार्जुन शंस त्वं प्रिया तामर्जुनप्रियाम्। जनकस्य सुता तन्वी यदि जीवति वा न वा॥
ककुभः ककुभोरुं व्यक्तं जानाति मैथिलीम्। लतापल्लव पुष्पाढ्यो भाति ह्नेष वनस्पतिः॥
भ्रमरैरुपगीतश्च यथा द्रुमवरो ह्यसि। एष व्यक्तं विजानाति तिलकास्तिलक प्रियाम्॥
अशोक शोकानुपद शोकोपहतचेतनम्। त्वन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रियासंदर्शनेनमाम्॥
यदि ताल त्वया दृष्टा पक्वतालोपमस्तनी। कथयस्व वरारोहां कारुण्यं यदि ते मयि॥
यदि दृष्टा त्वया जम्बो जाम्बूनद समप्रभा। प्रियां यदि विजानासि निःशंक कथयस्व मे॥
अहो त्वं कर्णिकाराद्य पुष्पितः शोभसे भृशम्। कर्णिकार प्रियां साध्वीं शंस दृष्टा यदि प्रिया॥
चूतनीपमहासालान्पनसान कुरवान धवान्। दाडिमान पितानगत्वा दृष्ट्वा रामो महायशाः॥
बकुलानप पुन्नागांश्चन्दवान केतकांस्तथा। पृच्छन रामो वने भ्रांत उन्मत इव लक्ष्यते।।[2]

'हे कदंब ! मेरी प्रिया सीता तुम्हारे पुष्प से बहुत प्रेम करती थी। क्या तुमने उसे देखा है। यदि जानते हो तो बताओ। हे बेल तुम्हारे चिकने पत्तों के समान स्निग्ध तथा पीत वर्ण के कौशेय वस्त्रों को धारण करने वाली सीता को यदि तुमने देखा हो तो बताओ। बिल्व, मेरी प्रिया के स्तन तुम्हारे ही समान हैं। अथवा हे अर्जुन ! तुम बताओ कि मेरी भीरु स्वभाव वाली प्यारी सीता जीवित है या नहीं।

---

1 यजुर्वेद, 6 2 2।

2 वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस गोरखपुर स० 2049, अरण्यकाड, 60 12-22।

तुम्हारे फूलो पर मेरी प्रिया का विशेष अनुराग था। यह ककुभ अपने ही समान उरु वाली सीता को अवश्य जानता होगा क्योंकि यह वनस्पति लता, पल्लव तथा फूलों से संपन्न हो बड़ी शोभा पा रहा है। भ्रमरो के गुंजार से गुंजायमान तिलक तुम्हें सीता की जानकारी है क्योंकि सीता तुम्हें सदैव प्यार से देखती थी। अशोक तुम शोक दूर करने वाले हो। मुझे मेरी प्रियतमा का दर्शन कराकर शीघ्र ही अपने जैसे नाम वाला अर्थात अशोक (शोकहीन) कर दो। हे ताड़ ! तुम्हें ज्ञात है कि उसकी जंघाएं सुन्दर थीं और उसके स्तन तुम्हारे पके फलों के सदृश थे। यदि तुम मुझ पर कृपालु हो तो मेरी सीता का पता बताओ। हे जामुन ! जाम्बूनद (सुवर्ण) के समान कांति वाली सीता को यदि देखा हो तो सकोच त्याग कर बताओ। हे कर्णिकार ! मेरी प्रिया सीता को ये पुष्प बेहद पसंद थे यदि तुमने उसे कहीं देखा हो तो बताओ। इसी प्रकार आम, कदंब, विशाल साल, कटहल, कुरव, धव, अनार, वकुल. पुन्नाग, चंदन तथा केवड़े के वृक्षों के पास राम गये तथा सीता के बारे में पूछा।'

उक्त वर्णन के अलावा बिजौरा, वट, लोध, करवीर, नागकेसर, कुंद, मालती, झाड़ी, भंडीर, वंजुल छितवन, कतक, माधवी लता[1] केवड़ा, सिदुवार[2] चिरिबिल्व (चिलबिल), महुआ, बेंत, मौलसिरी, चंपा, अंकोल, कुरंट, चूर्णक (सेमल), पारिभद्रक (नीम या मदार), आम, पाटलि, कोविदार, मुचकुंद, उद्दालक (लिसोड़ा), शिरीष, शीशम, धव, सेमल, पलाश, कुरवक, तिनिश, नक्तमाल, चन्दन, स्यंदन, हिताल[3] आदि वनस्पतियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

महाभारत में वनस्पतियों का अधिकाधिक उल्लेख मिलता है। इनमें से अधिकांश वनस्पतियाँ पूर्वोक्त साहित्य में वर्णित हैं। हिमालय पर्वत पर स्थित गंधमादन पर्वत पर यात्रा के क्रम में पांडवों को विविध प्रकार के वृक्ष एवं वनस्पतियों के दर्शन हुये—आम, आमड़ा, नारियल, तेंदू, मुँजातक, अंजीर, अनार, नीबू, कटहल, लकुच (बड़हर), मोच (केला), खजूर, अम्लवेंत, पारावत, क्षौद्र, कदंब, बेल, कैथ, जामुन, गंभारी, बेर, पाकड़, गूलर, बरगद, पीपल, पिड खजूर, भिलावा, आंवला, हर्रे, बहेड़ा, इंगुद, करौंदा, चंपा, अशोक, केतकी, बकुल (मौलसिरी), पुन्नाग (सुल्ताना चंपा), सप्तपर्ण (छितवन), कनेर, केवड़ा, पाटल (पाड़रि या गुलाब), कुटज, सुन्दर मंदार, इंदीवर (नीलकमल), पारिजात, कोविदार, देवदारु, साल, ताल, तमाल, पिप्पल, हिगुक (हींग वृक्ष), सेमल, पलाश, अशोक, शीशम, सरल आदि के वृक्ष अपने पुष्पों और फलों से सुशोभित एवं उसके भार से झुके हुये थे।

पश्यंतः पादपांश्चापि फलभारावनामितान्। आम्रानाम्रातकान भव्यान नारिकेलान सतिंदुकान॥
मुजातकांस्तथांजीरान दाडिमान् बीजपूरकान्। पनसाल्लकुचानमोचान खर्जूरानम्लवेतसान॥
परावतांस्तथा क्षौद्रान नीपांश्चापि मनोरमान्। बिल्वान कपित्थांजम्बूश्च काश्मरीर्वदरीस्तथा॥

---

1 वही, अरण्यकाड, 75 25।

2 रामायण, किष्किधा काड, 1 77।

3 वही, 1 82।

**प्लक्षानुदुम्बर बटानश्वत्थान क्षीरिकांस्तथा। भल्लातकानामलकीर्हरीतक विभीतकान्॥
इंगुदान करमर्दाश्च तिदुकाश्च महाफलान्। एतानन्यांश्च विविधान् गंधमादन सानुषु॥
फलैरमृतकल्पै स्तानाचितान् स्वादुभिस्तरुन्। तथैव चंपकाशोकान् केतकान बकुलांस्तथा॥
पुन्नागान सप्तपर्णाश्च कर्णिकारान सकेतकान्। पाटलान कुटजान रम्यान मंदारेंदीवरांस्तथा॥
पारिजातान कोविदारान देवदारुद्रुमा स्तथा। शालांस्तालास्तमालांश्च पिप्पलान हिगुकास्तथा॥
शाल्मलीः किशुकाशोकाञ्छिशपा सरलांस्तथा।**[1]

कमल की विभिन्न प्रजातियों का वर्णन भी महाभारत में प्राप्त होता है—खिले हुए सहस्त्रदल, शतदल, उत्पल, प्रफुल्ल कमल, नीलोत्पल[2] कुमुद, पुंडरीक, कोकनद, कल्हार[3] सरोवरों में सब ओर व्याप्त थे। पर्वत शिखरों पर सुनहरे कुसुमों से सुशोभित शेफालिका के पौधे दिखायी पड़ते हैं।

सिधुवारांस्तथोदारान मन्मथस्येव तोमरान्..... ।[4]

यहाँ सिधुवार शब्द का अर्थ आचार्य नीलकंठ ने कमल माना है। आधुनिक कोषकारों ने सिधुवार का तात्पर्य शेफालिका या निर्गुंडी से माना है जिसके फूल मंजरी के आकार में केसरिया रंग के होते हैं अतः तोमर से उसका तादात्म्य सही प्रतीत होता है।

इस महाकाव्य में अनेकानेक वनों यथा—विशाख, यूप वन[5], चैत्ररथवन[6], द्वैतवन[7], सौगंधिक वन[8], काम्यक वन[9], हिडिम्ब वन[10], उत्पला वन[11], माठर वन[12] आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अलावा कुछ जनश्रुतियों, लोकविश्वासों एवं सुभाषित वचनों का समावेश वनस्पतियों के साथ किया गया है। ऐसे कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

विभीतकश्चाप्रशस्तः संवृत्तः कलिसंश्रयात्.... ।[13]

---

1 महाभारत, वनपर्व, गीताप्रेस, गोरखपुर, स० 2045, 158.44-52।
2 वही, 157 6-7।
3 वही, 158 55।
4 वही, 158 65।
5 वही, 177 16।
6 वही, 177 17।
7 वही, 177 21।
8 वही, 150 22।
9 वही, 5 3।
10 वही, 12 93।
11 वही, 87 15।
12 वही, 88 10।
13 वही, 72 41।

'कलियुग भयभीत हो बहेड़े के वृक्ष में समा गया। कलियुग का आश्रय लेने से बहेड़े का वृक्ष निंदित हो गया।'

श्लेष्मांतकी क्षीणवर्चाः श्रृणोषि उताहो त्वां स्तुतयो मादयंति ।।[1]

'लिसोड़े के पत्ते पर भोजन करने से या उसका फल खा लेने से व्यक्ति का तेज क्षीण हो जाता है।'

तत्राक्षयवटो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः। तत्र दत्तः पितृभ्यस्तु भवत्यक्षयमुच्यते ।।[2]

'गया में तीनों लोकों में विख्यात अक्षयवट है। उसके समीप पितरों के लिए दिया हुआ सब कुछ अक्षय माना जाता है।'

स्त्रियो मानुषमांसादा वृद्धिका नाम नामतः। वृक्षेषु जातास्ता देव्यो नमस्कार्याः प्रजार्थिभिः ।।[3]

'वृक्षों से गिरे हुए शुक्र से वृद्धिका नामवाली स्त्रियां उत्पन्न हुई हैं जो मनुष्य का मांस भक्षण करने वाली है। संतान की इच्छा रखने वाले लोगों को इन देवियों के आगे मस्तक झुकाना चाहिये।'

उक्त उदाहरण का तादात्म्य वृक्षों के नीचे काली, दुर्गा या चंडिका जैसी देवियों की स्थापना से जोडा जा सकता है जो आज भी लोकजीवन में प्रचलित प्रसरित है।

यथा च वेणु, कदली नलो वा फलन्त्यभावाय न भूतयेऽऽत्मनः.... ।।[4]

'बाँस, केला और नरकुल अपने विनाश के लिए ही फलते हैं, समृद्धि के लिए नहीं।'

महाकवि कालिदास अपने प्रकृति-चित्रण के लिए विश्व साहित्य में विख्यात हैं। अपने ग्रंथों में उन्होंने अनेकानेक वृक्षों का लालित्यपूर्ण ढंग से वर्णन किया है। पुष्पाभूषणों को धारण किए हुए देवी पार्वती भगवान शिव के सम्मुख खड़ी थीं—

अशोक निर्भर्त्सित पद्मरागमाकृष्ट हेमद्युति कर्णिकारम्।
मुक्ताकलापीकृत सिन्दुवारं वसंतपुष्पाभरणं वहन्ती।।
आवर्जिता किंचिदिव स्तनाभ्यां वासोवसाना तरुणार्करागम्।
पर्याप्त पुष्प स्तबकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव।।[5]

'पद्मराग मणि से भी अधिक सुन्दर अशोक, सुवर्ण के समान पीले रंग के कर्णिकार तथा मोतियों के स्थान पर सिंदुवार (निर्गुण्डी) जैसे वसंत के पुष्पों का आभरण उन्होंने उस समय अपने शरीर पर धारण किया था। दोनों स्तनों के बोझ से शरीर को कुछ झुकाये हुये, प्रातःकाल की सूर्यप्रभा के समान

---

1 महाभारत, वन पर्व, 134.28।

2 वही, 84 83।

3 वही, 231 16।

4 वही, 268 9।

5 कुमार सभव, 3 53-54, कालिदास ग्रंथावली, सपा०-रामप्रताप शास्त्री, पृ० 275

लाल वस्त्र धारण किए हुये पार्वती जी उस समय ऐसी मालूम पड़ती थीं जैसे पुष्पों के गुच्छों से लदी हुई कोई चलती फिरती लता हों।'

वृक्षों के प्रति भगवान शंकर एवं देवी पार्वती को भी स्नेह था। वृक्षों से पुत्रवत प्यार का वर्णन निम्न पक्तियों में द्रष्टव्य है—

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।
यो हेमकुंभस्तन निसृतानां स्कंदस्य मातुः पयसां रसज्ञः ।।[1]

तुम्हारे सामने जो देवदारु का वृक्ष है इसे शंकर जी ने अपने पुत्र के समान माना है क्योंकि पार्वती ने सुवर्ण के घट रूपी स्तनों से इसे सींचा है।

मेघदूत में कालिदास बताते हैं कि किस तरह छहों ऋतुओं में सुंदरियाँ विभिन्न कुसुमों से अपना शृगार करती हैं—

हस्ते लीलाकमलमल के बालकुंदानुविद्धं, नीतालोध्र प्रसवरजसा पांडुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरवकं चारु कर्णे शिरीषं, सीमंते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ।।[2]

'अलकापुरी की सुन्दरियां छहों ऋतुओं के कुसुमों से अपना शृंगार करती हैं। शरत ऋतु में उनके हाथों में लीला-कमल रहता है, हेमंत ऋतु में वे अपने केश-पाशों में कुंद के ताजे पुष्प गूँथती हैं, शिशिर ऋतु में लोध्र पुष्प के पराग से वे अपने मुख की शोभा को पीले रंग की बनाती हैं, बसन्त ऋतु मे कुरवक (कौरैया) के नवीन पुष्पों से अपना जूड़ा सजाती हैं, ग्रीष्म ऋतु में शिरीष के कुसुमों को अपने सुन्दर कान में लगाती हैं और तुम्हारे आगमन पर वर्षा ऋतु में अपने मस्तक पर कदंब पुष्पों को धारण करती हैं।'महाकवि कालिदास ने वसंत ऋतु में प्रमदाओं की विलास रचना करते हुये स्त्री शरीर के प्रत्येग अंग का शृंगार पुष्पों तथा आम्र मंजरियों से किया है। जूड़े को चंपे के फूलों से गूथा है कानों में कनेर के फूल लटकाये हैं। नीली घुंघराली लटों में अशोक के फूल एवं नवमल्लिका की कलियो को खोंसा है। स्तनों पर धवल चंदन से भीगे मोतियों के हार पहनाये हैं तथा अरुण कुसुमों से रंगे महीन कपड़े की चोली धारण करायी है। मुखों पर बेलबूटे बनाये तथा गोरे स्तनों पर प्रियंगु, कालीयक एवं कुंकुम के घोल में कस्तूरी मिलाकर चंदन का लेप किया है।

पेड़-पौधों को माध्यम बनाकर वे कटु यथार्थ को भी बहुत ही सहज तरीके से वर्णित करते हैं। कर्णिकार के माध्यम से वे सच्चाई को इस तरह प्रस्तुत करते हैं—

वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।
प्रायेण सामग्रयविधौ गुणानां परांगमुखी विश्वसृजः प्रवृत्ति।।[3]

---

1 रघुवश, 2 36, वही, पृ० 20।

2 मेघदूत, उत्तरमेघ 2, वही, पृ० 433।

3 कुमार सभव, 3 28, वही, पृ० 272।

रंग के सुन्दर होने पर भी कर्णिकार पुष्प के निर्गन्ध होने के कारण मन मे दुख होता है। विधाता की प्रवृत्ति प्रायः समस्त गुणों को एक स्थान पर न रखने की है। किसी को वे सर्वगुणसंपन्न नहीं होने देते।

अपने सौंदर्य वर्णन में वे कुकुरमुत्ते (कन्दली) को भी स्थान देते हैं जो अब तक का सर्वथा नूतन प्रयोग था—

प्रभिन्न वैदूर्य निभैस्तृणांकुरैः समाचिता प्रोत्थितकंदली दलैः।
विभाति शुक्लेतररत्नभूषिता वरांगनेव क्षितिरिन्द्रगोपकैः॥[1]

छितरायी हुई वैदूर्य मणि के समान सुशोभित घास के कोमल अंकुरों से व्याप्त, ऊपर निकले हुये कंदली (कुकुरमुत्ता) के दलों से लदी हुई तथा लाल रंग की बीरबहूटियों से व्याप्त धरती उस सुन्दरी नायिका के समान दिखलायी पड़ रही है, जो सफेद रंग को छोड़कर अन्य सभी रंग के रत्नों का आभूषण पहने हुये हो।

कालिदास के वर्णन में प्रकृति विशेषकर लता, गुल्म, वृक्ष और तपोवन जीवन के अंग बन गये हैं। तभी तो पति गृह जाते हुए शकुंतला उन सभी से आज्ञा चाहती है—

पांतु न प्रथम व्यवस्यति जलं युष्मा स्वसिक्तेषु या, नादन्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेना या पल्लवम्।
आदो वः कुसुम प्रिय प्रसूनि समये यस्या भवत्युत्सवः, सेयं याति शकुंतला पति गृहं सर्वेरनुज्ञायताम्॥[2]

'वन देवताओं से सुशोभित तपोवन के वृक्षों! जो पहले तुम्हें जल पिलाये बिना स्वयं नहीं पीती थीं। जो आभूषणों की प्रेमी होने पर भी तुम्हारे प्रति अपने अतीव स्नेह के कारण तुम्हारे कोमल पल्लवों में हाथ भी नहीं लगाती थी, जो तुम्हारी नूतन कलियों को देखकर उत्सव मनाया करती थी, वही शकुंतला आज अपने पति के घर जा रही है। तुम सब जाने की अनुमति दे दो।'

पुराणों में भी वनस्पतियों को प्रमुखता से वर्णित किया गया है। मत्स्य पुराण, अग्नि पुराण, वराह पुराण, वामन पुराण, श्री मद्‌भागवत्पुराण, स्कंद पुराण एवं भविष्य पुराण में पेड़ पौधों के विविध आयामों का मनमोहक चित्रण किया गया है।

मत्स्य पुराण में राजा द्वारा दुर्ग में संग्रहणीय उपकरणों के विवरण में एक बहुत बड़ी सूची वनस्पतियों की दी गयी है जो जीवन-यापन के अलावा औषधीय रूप में भी प्रयुक्त की जाती थीं यद्यपि यह सूची बहुत लंबी है तथापि कुछ प्रमुख वनस्पतियाँ इस प्रकार हैं—जीवक, ऋषभक, काकोल, इमली, आहरुष, शालपर्ण, पृश्निपर्णी, मुद्‌गपर्णी माषपर्णी, वीरा, श्वसंती, वृष्या, वृहती, कंटकारिका, श्रृंगाटकी, वर्षाभू, कुश, मधुपर्णी, तीनों बलाएं, दोनों विदारी, महाक्षीरा, महातपा, धन्वन, सहदेवी,

---

1 ऋतुसहार, 2 5, वही, पृ० 454

2 अभिज्ञान शाकुतलम, 4 9।

कटुक, रेड, शतपर्णी, फल्गु, खजूर, छत्र, अतिच्छत्र, ईख, अश्वरोधक (एक प्रकार का अशोक), पुष्पहंसा, मधूलिका, शतावरी, महुआ, पिप्पल, ताल, आत्मगुप्ता, राजशीषकी, श्वेत सरसों, धनिया, ऋष्यप्रोक्ता, उत्कंटा, कालशाक, पद्मबीज, मधुवल्लीका, शीतपाकी, उरुपुष्यका, गुंजातक, पुनर्नवा, बिल्व, केसर, शमी, कदंब, आरिष्टक, अक्षोट, बादाम्र,[1] अनार, आम्रातक, बेर, बड़हर, करमर्द, करुषक, बिजौरा, कंडूर, मालती, राजबंधुक, आमड़ा, पारावत, कैथ, आंवा, जामुन, मिर्च, सहिजन, अजमौदा, हींग, मूली, सौंफ, अजवाइन, मंजीठ, लहसुन, हरड़, हरताल, गिलोय, केसर, जपा, रेड़ी, रकट, मुलहट्ठी, छोटी इलायची, तेजपात, नागरमोथा, चंदन, दारुहल्दी, हल्दी, खश, काली गूलर, सांवा, व्याघ्रनख, केला, अंकुरास्फीता, तालास्फीता, रेणुक बीज, बेंत, ककरासींगी, लोघ्र पुष्पिणी, गुडूच।[2]

भारतीय परंपरा में कमल को सृष्टि के उद्‌भव के साथ जोड़ा गया है। महालक्ष्मी का आधार कमल है। विष्णु के नाभि से निकले कमल से ब्रह्माजी उद्‌भत हुये हैं जो समस्त सृष्टि के सर्जक माने जाते हैं। अपनी अनूठी क्षमता के कारण वेदों से लेकर पुराणों तथा अन्य साहित्य में भी कमल आदर के साथ वर्णित है। सौंदर्य, कोमलता, दिव्यता तथा पवित्रता का प्रतीक यह पुष्प अनासक्ति एवम् निर्मलता का संदेश देता है। पानी एवं कीचड़ में रहकर भी वह इसके ऊपर है। बाहर की गंदगी का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसी को आधार मानकर विद्वत जन यह परिकल्पित करते हैं कि कमल का पुष्प संसार में रहते हुये भी सांसारिक विषय वासनाओं से ऊपर उठने की प्रेरणा देता है। ऐसे निर्मल और अनासक्त कमल पर विराजमान महालक्ष्मी हमें धन, ऐश्वर्य, सुख,संपत्ति प्राप्त करते हुए सत्कर्म की ओर प्रेरित करती हैं तथा धन संपदा के साथ-साथ अनासक्ति का भी उपदेश देती हैं। श्रीमद्‌भागवत पुराण कमल का उल्लेख इन पंक्तियों में करता है—

नमः पंकज नाभाय नमः पंकज मालिने। नमः पंकजनित्राय नमस्ते पंकजांप्राये।[3]

जिनकी नाभि से ब्रह्मा का जन्मस्थान कमल प्रकट हुआ है, जिनके नेत्र कमल के समान विशाल और कोमल हैं, जिनके चरण-कमलों में कमल का चिन्ह है—ऐसे भगवान श्रीकृष्ण को मेरा बार-बार नमस्कार है। ध्यातव्य है कि यहाँ कमल से नेत्रों एवं चरण दोनों की तुलना की गयी है। यह ऐसा प्रतीकात्मक अभिप्राय है जिससे बाद के साहित्यकार प्रायः सारे अंगों की तुलना करने लगे।

श्रीकृष्ण के सांवलेपन की तुलना तमाल के वर्ण से की गयी है—

त्रिभुवन कमर्न तमाल वर्ण रविकर गौर वराम्बर दधाने।[4]

---

1 मत्स्य पुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी, 1985, अध्याय 217 43-54।

2 वही, 217 55-74।

3 श्रीमद्‌भागवत पुराण, प्रथम खण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर, स० 2043, 1 8 22।

4 वही, 1 8 33।

सुगधयुक्त पुष्प होने के बावजूद सभी ऐसी वनस्पतियाँ तुलसी की श्रेष्ठता को स्वीकार करती हैं। मंदार, कुद, कुरबक (तिलक), उत्पल (रात्रि मे खिलने वाले कमल), चंपक, अर्ण, पुन्नाग, नागकेसर, बकुल (मौलसिरी), अम्बुज (दिन में खिलने वाले कमल) और पारिजात आदि पुष्प सुगंधयुक्त होने पर भी तुलसी का तप ही अधिक मानते है।

मंदार कुंद कुरवोत्पल चंपकार्ण पुन्नाग नागवकुलाम्बुज पारिजाताः।
गंधेऽचिते तुलसिका भरणेन तस्या यस्मिस्तपः सुमनसो बहु मानयंति।।[1]

भागवद पुराण में वनस्पतियों, पेड़-पौधों की एक लंबी सूची प्राप्त होती है। इसमें कैलाश पर्वत पर वर्णित वनस्पतियाँ इस प्रकार हैं—

मंदारैपारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम्। तमालैः शालतालैश्च काविदारासनार्जुनैः।।
चूतैः कदंबैर्नीपैश्च नागपुन्नागचंपकैः। पाटलाशोकबकुलैः कुंदैः कुरबकैरपि।।
स्वर्पार्णशतपत्रैश्च वररेणुक जातिभिः। कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्चमंडितम्।।
पनसोदुम्बरा श्वत्थप्लक्षन्यग्रोधहिंगुभिः। भूर्जैषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जम्बुभिः।।
खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकेंगुदैः। द्रुमजातिभिरन्यैश्च राजितं वेणुकीचकैः।।
कुमुदोत्पल कल्हार शतपत्रवनद्धिभिः। नलिनीषु कलं कूजत्खगवृंदो पशोभितम्।।[2]

मदार, पारिजात, सरल, तमाल, शाल, ताड़, कचनार, असन, अर्जुन, आम, कदंब, नीप, नाग, पुन्नाग, चंपक (चंपा), गुलाब, अशोक, बकुल (मौलसिरी) कुंद, कुरबक, सुनहरे शतपत्र, कमल, इलायची, मालती, कुब्जक, मोगरा, माधवी, कटहल, गूलर, पीपल, पाकड़, बड़, गूगल, भोजवृक्ष, सुपारी, राजपूग, जामुन, खजूर, आमड़ा, आम, प्रियाल, महुआ, लिसोड़ा आदि विविध प्रकार के वृक्षों तथा बाँस के झुरमुटों से वह पर्वत बड़ा ही मनोहर दिख रहा है। उसके सरोवरों में कुमुद, उत्पल, कल्हार और शतपत्र आदि अनेक जाति के कमल खिले हैं। एक अन्य श्लोक में उक्त वनस्पतियों के अलावा नारियल, खजूर, बिजौरा, साखू, असन, रीठा, पलाश, चंदन, नीम, कचनार, साल, देवदारु, दाख, ईख, केला, बेर, रुद्राक्ष, हर्रे, आंवला, बेल, कैथ, भिलावे आदि के वृक्षों का उल्लेख किया गया है।[3]

भगवान की जाँघें अलसी के फूल के समान नील वर्ण वाली और बल की निधि हैं।[4] उनके दाँत कुंदकली के समान शुभ्र एवं छोटे-छोटे हैं।[5] इस तरह के वानस्पतिक उपमान भी जगह-जगह पर

---

1 श्रीमद्भागवत पुराण, प्रथम खण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर, स० 3 15 19।

2 वही, 4 6.14-19।

3 वही, 8 2 10-14।

4 वही, 3 28 24।

5 वही, 3 28 33।

इस पुराण मे प्राप्त होते हैं। वृक्ष इतने सरल एवं सहज हैं कि विश्वरूप की हत्या करने पर इंद्र पर लगे ब्रह्महत्या दोष के एक अंश को वे स्वयं स्वीकार कर लेते है। कहा जाता है कि इससे प्रसन्न होकर ईश्वर ने वृक्षों को वरदान दिया कि उनका कोई भी हिस्सा कट जाने पर फिर जम जायेगा। उनमे अब भी गोंद के रूप में वह ब्रह्महत्या दिखायी पड़ती हैं।[1]

वामन पुराण में वनस्पतियों के उत्पत्ति का बड़ा ही मनोरम एवं वैज्ञानिक विवरण दिया गया है। कहा जाता है कि जब शिव ने कामदेव को भस्म किया तो पुष्पायुध काम ने अपने मणिखंचित धनुष को दूर पृथ्वी पर फेंक दिया। इससे उसके पाँच टुकड़े हो गये। रुक्म विभूषित पृष्ठवाला मुष्टिबंध (मूठ) चंपा का फूल होकर पैदा हुआ। वज्र (हीरा) का बना हुआ नाह स्थान बकुल पुष्प हुआ। इंद्रनील शोभित कोटि देश पाटल (गुलाब) पुष्प में परिवर्तित हो गया। नाह और मुष्टिबंध का मध्यवर्ती स्थान जो चंद्रकांत मणि की प्रभा से प्रदीप्त था, जाती पुष्प हुआ और मूठ के ऊपर और कोटि के नीचे का हिस्सा जिसमें विद्रुम मणि जड़ी थी, मल्ली (मालती) के रूप में पृथ्वी पर पैदा हुआ। कामदेव ने इसी समय अपने वाणों को भी पृथ्वी पर फेंका था जिससे हजारों प्रकार के फलयुक्त वृक्ष उत्पन्न हो गये।

यदासीन्मुष्टिवंधं तु रुक्मपृष्ठं महाप्रभम्। स चंपक तरुर्जातः सुगंधाढ्यो गुणाकृतिः॥
नाहस्थानं शुभाकारं यदासीद्वज्रभूषितम्। तज्जातं केसरारण्यं बकुलं नामतो मुने॥
या च कोटी शुभा ह्यासीदिन्द्रनीलविभूषिता। जाता सा पाटला रम्याभृंगराजिविभूषिता॥
नाहोपरि तथा मुष्टौ स्थानं शशिमणिप्रभम्। पंचगुल्माऽभवज्जाती शशांक किरणोज्ज्वला॥
उर्ध्वं मुष्ट्या अधः कोटयोः स्थानं विद्रूमभूषितम्। तस्माद् बहुपुटां मल्ली संजाता विविधा मुने॥
पुष्पोत्तमानि रम्यानि सुरभीणि च नारदं। जातियुक्तानि देवेन स्वयमाचरितानि च॥
मुमोच मार्गणान भूम्यां शरीरे दह्यति स्मरः। फलोपगानि वृक्षाणि संभूतानि सहस्त्रशः॥[2]

कहा जाता है कि तब से काम का धनुष पुष्पमय होकर ही पृथ्वी पर विराजमान है। कामदेव के पुष्पमय पाँच बाणों में अरविद (कमल) अशोक, आम, नवमल्लिका और नीलोत्पल हैं। किसी-किसी के मत से द्रावण, शोषण, तापन, मोहन और उन्मादन, ज्वलन और चेतनाहरण या सम्मोहन, उन्मादन, शोषण, तापन और स्तंभन ये ही काम बाण हैं।[3] एक और मत है कि पाँच इंद्रियों के विषय अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये ही पाँच कामदेव के बाण है।[4]

देवताओं के अंगों से तरुओं की उत्पत्ति का विवरण वामन पुराण में भी प्राप्त होता है—'आश्विन मास मे जब विष्णु की नाभि से कमल निकला, तब अन्य देवताओं से भी ये वस्तुयें उत्पन्न हुई

---

1 श्रीमद्भागवत पुराण, प्रथम्र खण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर, 6 9 6।

2 वामन पुराणाक, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी, 1982, 6 98-104।

3 हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाराणसी, 1944, पृ० 215-216।

4 काव्य मीमासा, अध्याय 16।

कामदेव के करतल के अग्रभाग से कदब वृक्ष उत्पन्न हुआ इसीलिये कदंब से उसे बड़ी प्रीति रहती है। यक्षो के राजा मणिभद्र से वट वृक्ष उत्पन्न हुआ अतः उन्हें उनके प्रति विशेष प्रेम है। शंकर के हृद्य पर धतूर वृक्ष उत्पन्न हुआ अतः यह शिव को सदा प्यारा है। ब्रह्मा के शरीर के बीच से मरकत मणि के समान खैर वृक्ष की उत्पत्ति हुई। विश्वकर्मा के शरीर से कटैया उत्पन्न हुआ। पार्वती के करतल पर कुंद लता उत्पन्न हुई। गणपति के कुंभ देश से सेंदुवार वृक्ष उत्पन्न हुआ।[1] यमराज की दाहिनी बगल से पलाश तथा बायीं बगल से गूलर वृक्ष उत्पन्न हुआ। रुद्र से उद्विग्न करने वाले वृष (औषधि विशेष) की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार स्कंद से बंधुजीव, सूर्य से पीपल, दुर्गा से शमी एवं लक्ष्मी के हाथ से बिल्व वृक्ष उत्पन्न हुआ। शेषनाग से सरपत, वासुकि नाग की पुच्छ एवं पीठ पर श्वेत एवं कृष्ण दूर्वा उत्पन्न हुई। साध्यों के हृद्य में हरिचंदन वृक्ष उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उत्पन्न होने से उन सभी वृक्षों में उन-उन देवताओं का प्रेम होता है।[2]

उक्त दोनों पौराणिक कथाओं के विवरण से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि पेड़-पौधों की उत्पत्ति के मूल में वैसी ही कोई 'आदि-वनस्पति' रही होगी जैसी कि जन्तुओं के उद्गम का मूल अमीबा माना जाता है। सृष्टि के विकास क्रम की प्रक्रिया के अन्तर्गत लाखों वर्षो के अन्तराल में प्राकृतिक एवं स्थानिक प्रभाव की वजह से अनेकानेक नयी वनस्पति प्रजातियाँ अस्तित्व में आयी। काम के वाणों का वृक्षो से और तदनन्तर विभिन्न सजीव (पाँच इंद्रियों) स्थितियों से जोड़ने की अवधारणा वनस्पतियों एवं जीवधारियो के प्राचीनतम एवं अमिट सम्बन्धों की पुष्टि करती है। कहने का मतलब यह कि पेड़-पौधों के बिना इस सृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती इस बात को प्राचीन भारतीय ग्रन्थों मे बार-बार वर्णित किया गया है।

कूर्म पुराण में भी वानस्पतिक विवरण पर्याप्त रूप से मिलता है। अंकोल, अपामार्ग, अलावु (लौकी), अश्मांतक, आमलक, आम्र, इक्ष (ईख), उदुम्बर, कदंब, करक, करवीर (कनेर), कर्णिकार, कवक (कुकुरमुत्ता), कपास, कुंद, कुश, कूष्मांड, कोदो, कचनार, खैर, गृंजन (गाजर), चन्दन जामुन, जाती, ताम्बूल, तिल, दर्भ, दाडिम, देवदारु, नीप (कदंब), न्यग्रोध, पद्म, पनस, पलांडु (प्याज), पालकी, पलाश, पिप्पल, प्रियंगु, बिल्व, मरिच, मसूर, मातुलंग (नीबू), मालती, माष (उड़द), मुद्ग, मृद्वीक (अंगूर), राजमाष, रुद्राक्ष, लकुच, लशुन (लहसुन), शाल्मल (सेमर), शिग्रु (सहिजन), शृंगाटक, शैवाल (सेवार), श्यामाक (सांवा), श्लेष्मातक (लिसोड़ा) तथा सोम आदि वनस्पतियों का भरपूर उल्लेख उक्त ग्रंथ में प्राप्त होता है।

गरुड़ पुराण का पूरा एक अध्याय ही औषधीय वनस्पतियों और उसके अन्य पर्यायवाची नामों जो लोक जीवन में प्रचलित थे, से संबद्ध है।[3] इन वनस्पतियों में से कुछ प्रमुख हैं—शालपर्णी, पुनर्नवा,

---

1 वामन पुराणाक, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी 1983, 17.1-6।

2 वही, 17 7-10।

3 गरुड पुराणाक, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी-फरवरी 2000, अध्याय 204।

एरण्ड, नागबला, शतावरी, वृहती, कण्टकारी, सर्पदंता, मूँग, उड़द, बरगद, पीपल, पाकड़, अर्जुन, वजुल, जलजम्बु, पिप्पली, कुटज, मोथा, बड़ी इलायची, यवानिका (अजवाइन), विडंग, हींग, जीरा, तगर, तेजपत्ता, ऑवला, बहेड़ा, करज, हल्दी, तुलसी, सिदुवार (नील), खदिर, कमल, श्लेमांतक, वरियरा, दाडिम, अपराजिता, सेमल, अपामार्ग, सोम, सौंफ, वकुची, भृंगराज, चकवड़, बेल, करबीर (कनेर), प्रियंगु, कोदो, बॉस, सहिजन, निम्ब, पटोल (परवल), गूडूची आदि। दंतधावन के लिये प्रशस्त वृक्षों में कदंब, बिल्व, खैर, कनेर, बरगद, अर्जुन, वृहती, जाती, करंज, अर्क, अतिमुक्तक, जामुन, महुआ, अपामार्ग, शिरीष, गूलर, वाण, दूध वाले तथा कँटीले अन्य वृक्षों का उल्लेख एक अन्य अध्याय मे किया गया है।[1]

देवताओ के लिये पूजा के क्रम में पवित्र वनस्पतियों का उल्लेख स्कंद पुराण में प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये विष्णु के प्रिय वनस्पतियों में बेला, चमेली, जूही, अतिमुक्ता (माधवी), कनेर, वैजयंती, विजया, चमेली, कर्णिकार, कुरैया, चंपक, चातक, कुंद,कर्चूर, मल्लिका, अशोक, तिलक, अपर यूथिका आदि के फूल, केतकी, भृंगराज, तुलसी के पत्र, लाल, नील एवं सफेद कमल तथा बिल्व, शमी एवं आमलकी के पत्रों को शामिल किया गया है।[2] कनेर, मदार, भटकटइया, धतूर, शतपत्र, अमलतास, पुन्नाग, मौलसिरी, नागकेसर, नीलकमल, कदंब, आक तथा विविध प्रकार के कमल सदा पवित्र होते हैं। चमेली, बेला, सेवती, श्याम पुष्प, कुटज, कर्णिकार, कुसुंभ, लाल कमल ये पुष्प विशेषत: सायंकाल शिवलिग पूजन हेतु विशेष पवित्र बताये गये हैं। रात्रि में केवल कुमुद का पुष्प पवित्र होता है जबकि कमल के फूल सभी कालों में पवित्र होते हैं।[3] ध्यातव्य है कि इसी पुराण में नागवल्ली (पान की बेल) की उत्पत्ति का पौराणिक प्रसंग मिलता है। इसी क्रम में चूर्णपत्र का उल्लेख आया है जिसका तादात्म्य तम्बाकू (सूर्ती) के साथ किया जाता है।[4] इससे इस भ्रांति का निराकरण होता है कि तम्बाकू को भारत में लाने वाले पुर्तगाली थे अपितु उनसे पहले ही भारत के लोग तंबाकू से परिचित थे एवं बाकायदा उसकी खेती की जाती थी।

विभिन्न ग्रहों के लिए अलग-अलग वनस्पतियों का उल्लेख भविष्य पुराण में प्राप्त होता है। इस क्रम में यह बताया गया है कि सूर्य के लिए अर्क की, चंद्रमा के लिए पलाश, मंगल के लिए खदिर बुध के लिए अपामार्ग, वृहस्पति के लिए पीपल, शुक्र के लिए गूलर शनि के लिए शमी, राहु के लिए दूर्वा तथा केतु के लिए कुश की समिधा हवन के लिए प्रयुक्त करनी चाहिये।[5] सूर्य की पूजा के लिए उपयुक्त वनस्पतियों में चंदन, अगरु, कालेयक (काला चंदन), रक्तचंदन, मालती, मल्लिका, जूही,

---

1 गरुड पुराणाक, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी-फरवरी 2000, अध्याय 213।

2 सक्षिप्त स्कदपुराणाक, गीताप्रेस गोरखपुर, जनवरी 1951, पृ० 342।

3 वही, पृ० 39।

4 वही, पृ० 925।

5 सक्षिप्त भविष्यपुराणाक, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी 1992, पृ० 81-82।

अनिमुक्तक, पाटला, जपा, करवीर, तगर, कर्णिका, चंपक, केतक (केवड़ा), कुंद, अशोक, लोध्र, कमल, अगस्त्य, पलाश आदि के पुष्प, बिल्व, शमी, भृंगराज एवं तमाल के पत्र, कृष्णा तुलसी एवं केतकी के पुष्प तथा नीलकमल, श्वेत कमल आदि का उल्लेख है।[1] लहसुन, गाजर, प्याज, कुकुरमुत्ता, बैगन तथा मूली आदि को दूषित वनस्पति बताते हुए इन्हे भक्षण हेतु प्रयुक्त न करने की सलाह भी दी गयी है।[2]

श्रवण बेलगोला स्थित बाहुबली की प्रतिमा के निर्माता चामुडराय के गुरु नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने बाहुबली की स्तुति को 'गोम्मटेश थुदि' में (950-1025) स्वयं लिखा था। इस स्तुति में बाहुबली की तुलना वृक्ष से करते हुए उन्हें स्वयं भी वृक्ष कहा गया है—[3]

जिनके नेत्र पुष्प की पंखुड़ियों के समान हैं
जिनका मुख चंद्रमा के समान सुदर्शन है
और जिनकी नासिका चंपक से भी अधिक सुंदर है
उन गोम्मटेश के समक्ष मैं सर्वदा नत हूँ।
बेलों से बंधे महाशरीर
मुक्ति के लाखों इच्छुकों के दाता वृक्ष
जिसके कमल चरण देवों द्वारा पूजित हैं
उन गोम्मटेश के सामने मैं सर्वदा नत हूँ।

वृक्षों की परोपकार वृत्ति का वर्णन प्रायः सभी ग्रंथों में मिलता है। हर कमी को पूरा करने वाले वृक्ष की संज्ञा 'कल्पवृक्ष' संभवतः इसीलिये प्रदान की गयी है। 'अन्योक्त्यष्टक संग्रह' में कहा गया है—'हे कल्पवृक्ष। तुम्हारी जड़ को योगी लोग प्रेम से चाहते हैं, तुम्हारे छिलके को वस्त्रार्थी ग्रहण करते है। रसिक लोग पुष्पों को चुनते हैं एवं भूखे मानव तुम्हारे फलों को खाते हैं। धूप से पीड़ित व्यक्ति तुम्हारी छाया में आश्रय लेते हैं। निद्रालु तुम्हारे पत्तों को बिछा कर उस पर लेटते हैं। इस प्रकार तुम्हारा सब कुछ परोपकार के लिए ही है।

मूलं योगिभिरुद्धृतं निवसितं वासोर्थिभिर्वल्कलं
भूषार्थी च जनश्चिनोति कुसुमं भुंके क्षुधार्तः फलम्॥
छायामातपिनो विशन्ति विचिता निद्रालुभिः पल्लवः।
कल्पारुयस्य तरोरिवेह भवतः सर्वाः परार्थाः श्रियः।

---

1 सक्षिप्त भविष्यपुराणाक, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी 1992, पृ० 120-121।

2 वही, पृ० 178।

3 गोम्मटेश थुदि, नेमिचद सिद्धात चक्रवर्ती, पृ० 48।

इसी परपरा को आगे बढ़ाते हुए 'वृक्षाष्टकम्' में कहा गया है—[1] हे वृक्ष। तुम मार्ग में उत्पन्न हुये हो, तुम्हारे पुष्प सुरक्षित हैं। तुम श्रेष्ठ फलवाले हो, तुम्हारी शाखायें झुकी हुई हैं, तुम्हारा क्षेत्र विस्तृत है, तुम्हारा छत्र विशाल और घना एव रस मधुर है। यह समृद्धि तुम अपने लिए नहीं रखते अपितु यह परहितार्थ है। सच है महापुरुषों की संपत्ति परोपकार के लिए होती है।

जातो मार्गे सुरभि कुसुमः सत्फलो नम्रशाखः, स्फीताभोगो वहलविटपः स्वादुतोयोपगूढः।
नैवात्मर्थ वहति महतीं पादपेन्दुः श्रियं ता, मापन्नार्ति प्रशमन फलाः संपदो ह्युत्तमानाम्॥[2]

भर्तृहरि ने अपने 'नीतिशतक' में वनस्पतियों को माध्यम बनाकर बहुत पते की बातें कह डाली हैं। उदाहरण के तौर पर करील वृक्ष में यदि पत्ते नहीं लगते तो इसमें सूर्य का क्या दोष। यदि जल की धारा चातक के मुख में नहीं गिरती तो इसमें मेघ का क्या दोष। विधाता ने जो जिसके भाग्य में लिख दिया है उसे कोई नहीं मिटा सकता।

पत्रं नैव यदा करीर विटपे दोषो वसंतस्य किं नो लूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणम् यत्पूर्व विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुंकः क्षमः।।[3]

एक अन्य श्लोक में भर्तृहरि कहते है—'मनस्वी पुरुष की स्थिति मालती पुष्प के समान होती है। या तो वह सबके मस्तक में रहता है अथवा वन में ही सूखकर बिखर जाता है।[4]

मालती कुसुमस्येव द्वे गतीह मनस्विनः। मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा॥

भोज प्रबंध में भी वनस्पतियों को आधार बनाकर कई बातें कही गयी हैं। जैसे—'हे कोकिल! आम के वृक्ष पर बहुत समय तक रहकर तुम अन्य वृक्षों पर बिहार करते हुए लज्जित नहीं होती? आम के पेड़ पर रहते हुये तुम्हारी बोली में जो सरसता है वह क्या खैर या पलाश वृक्ष पर रह सकेगी।

सहकारे चिरंस्थित्वा, सलीलं बालकोकिल, तं हित्वाऽद्यान्य वृक्षेषु विचरन्न विलज्जसे।
कल कण्ठ यथा शोभा सहकारे भवद्गिरः, खदिरे वा पलाशे वा किं तथा स्याद्विचारय।[5]

संपूर्ण संस्कृत साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि मानवीय (विशेषकर नारी) अंगों के लिए पादप-पुष्प को उपमान रूप में प्रयुक्त किया गया है। समग्र स्त्री शरीर की उपमा चंद्रकला, कमलरज्जु, शिरीषमाला, विद्युल्लता, सोने की लता आदि मे दी जाती है।[6] स्त्री शरीर के रंग के लिए

---

1 अन्योक्त्ष्टक सग्रह, पृ० 32।

2 वृक्षाष्टकम्, पृ० 69।

3 नीतिशतक, व्या०—प० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, वाराणसी, 1976, श्लोक 93।

4 वही, श्लोक 33।

5 भोज प्रवध, व्या०—प० केदार नाथ शर्मा, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1988, श्लोक 286, 287।

6 अलकार शेखर, 13.1

साधारणत: हरिद्रा (हल्दी),चम्पा, केतक पुष्प (केवड़ा) आदि की उपमा देते हैं। ये उपमान ही स्त्री शरीर के रंग के लिए रुढ़ हो गये हैं।[1]

स्त्री के सारे मुख की चंद्रमा या कमल के साथ उपमा देना कवियों में रुढ़ हो गया है। बराह ने उन आँखो को प्रशस्त कहा है जो नीलकमल की द्युति हरण करने वाली हो।[2] गुणों का सादृश्य दिखाने के लिये कवियों ने इन उपमेयों का वर्णन किया है—कमल, कमल पत्र।[3]

नेत्रों में रंग के प्रसंग में कवियों ने श्वेत, रक्त या कृष्ण का यथारुचि वर्णन किया है। श्वेत वर्णन के कारण कभी-कभी कुंद पुष्प से इसकी उपमा दी गई है। देखने की क्रिया के संबंध में कमल के पुष्पों की वर्षा या उनका उद्गमन आदि भी उपमित हुये हैं।[4] नेत्रों के आकार के लिये भी कमल, कमल दल आदि उपमानों को लिया गया है।

नासिका के लिए तिल के फूल की उपमा देते हैं।[5] पाटली पुष्प को भी नासिका का उपमान माना गया है।[6]

वराहमिहिर ने बंधुजीव के समान लाल और पतले अधर को प्रशस्त बताया है।[7] इन गुणों को ध्यान में रखकर अधरों के लिए विब फल, बंधुक पुष्प, पल्लव आदि से उपमा देने की प्रथा है।[8]

दांतों की तुलना (32 दाँत) गुणों के आधार पर दाड़िम-कुदंकली से की जाती है।[9] सामुद्रिक लक्षणों के अनुसार कुंदकली के समान दाँत स्त्रियों के लिये पति सुख के दाता माने गये हैं।[10]

भुजाओं के लिए विस (कमल) लता, मृणाल नाल , विद्युद्वल्ली तथा हाथों के लिए पद्म, पल्लव और विद्रुम की उपमायें प्रसिद्ध हैं। सामुद्रिक लक्षणों में हाथ के अंगुलियों की कृशता को सौभाग्य का लक्षण बताया गया है इसीलिए इनकी उपमा कभी-कभी मूँगों की टहनियों से की गयी है। नखों के लिए कुंद की कली या कभी-कभी पल्लव भी उपमान के रुप में प्रयुक्त हुये हैं।

स्त्री के वक्ष देश के औन्नत्य,श्यामाग्रता, विस्तृति, दृढ़ता, पाण्डुता आदि गुण काव्य शास्त्रियों के द्वारा वर्णनीय माने गये हैं। इन गुणों के लिए ये कवि उपमान रुढ़ हैं—पुगफल (सुपारी), कमल,

---

1 अलकार शेखर, 13 2

2 वृहत्सहिता, 70 7

3 अलकार शेखर, 13 6।

4 वही, पृ० 48

5 अलकार शेखर, 13 5

6 वही, पृ० 48

7 वृहत्सहिता, 70 6

8 अलकार शेखर, 13 7

9 वही, 13 8

10 वृहत्सहिता, 70 6

कोरक, बिल्व (बेल), ताल, गुच्छ, जम्बीर, बीजपूर, समुद्ग आदि।[1] कभी-कभी रक्त पुष्प और विवर या पुष्करिणी के कमल के साथ भी उसकी उपमा दी गयी है।[2]

गुह्य देश अश्वत्थ पत्र के समान, उस की उपमा कदली स्तभ और कदम से, चरणों भी उपमा पल्लव, कमल, स्थलपद्म और प्रवाल से देते हैं। पादप-पुष्पों के ये उपमान रूप प्राय: इस प्रकार हैं—

उपमेय	:	**उपमान**[3]
मुख, नेत्र, कर, चरण	:	कमल
सफेद दाँत	:	कुंद कली, दाडिम (अनार)
अधर	:	पल्लव
लाल अधर	:	विंब फल, बँधूक पुष्प
नख	:	कुंद कली
नासिका	:	तिल प्रसून, अगस्त्य पुष्प, पाटलि पुष्प
बाहु	:	लता, मृणाल-नाल
युवती शरीर	:	पुष्पित लता
गौर वर्ण	:	चंपा एवं केतकी पुष्प
उरोज (स्तन)	:	सुपारी, बिल्व, श्रीफल, नारंगी जम्बीर, नारियल
उरु (जंघा)	:	कदली स्तंभ
लाल तलवा	:	बंधूक पुष्प
वीक्षण	:	कमल पुष्प वर्षा
मधुर भाषण	:	पुष्प वर्षा
मानव का उन्नत सुगठित शरीर	:	तमाल वृक्ष
वियोगिनी का शरीर	:	पीत पल्लव
चंचल दृष्टि	:	कंपित लता
महादानी	:	कल्पवृक्ष
सज्जन	·	वृक्ष
सुंदर, पर गुणहीन मानव	:	पलाश-पुष्प
विनीत गुणवान	:	फलित रसाल

---

1 अलकार शेखर, पृ० 49

2 कवि कल्पलता, पृ० 13

3 वही, पृ० 89-91

तपस्वी	:	वृक्ष
दुष्टो से अप्रभावित महामानव	:	चंदन
नीरस मानव	:	निम्ब
मनस्वी पुरुष	:	मालती-पुष्प

स्पष्टतः सौदर्य का अभिषेक वनस्पतियों से होता है। प्रकाश की तरह वनस्पति भी सृष्टि का निखार हैं। वनस्पतियो का पूरा जीवन ही अर्पित है जीवधारियों के लिये। वे पत्ते देते हैं—खाने के लिये, पुष्प देते हैं पूजा एवं अलंकार अभिप्रायों के लिये, फल देते हैं हमारी क्षुधा शांत करने के लिये। यही वृक्ष चिलचिलाती धूप से राहत देकर ठंडक पहुँचाते हैं। ये ही बादलों को विवश करते हैं बरसने के लिये। ऐसे वृक्ष निष्ठा के प्रतीक हैं।

वृक्षों के नीचे बैठकर ही हमारे मनीषियों ने ज्ञान का अक्षय भंडार अर्जित किया तथा मानव समुदाय को प्रगति पथ पर अग्रसर किया। इन्हीं वृक्षों के नीचे पनपे प्यार के पल। आखों में धूल झोंक कर प्रेमी वृक्ष को ही अपना संरक्षक मानते हैं। प्यार से बड़ा कोई धर्म नहीं कोई रिश्ता नहीं। अगर ये वृक्ष एवं वनस्पतियाँ न होती तो शायद प्यार के बीज भी नहीं पनपते और बिना प्यार के समूची सृष्टि रेगिस्तान से भी निकृष्ट हो जाती।

इस तरह पेड-पौधों एवं वनस्पतियों का हस्तक्षेप मानव जीवन पर इस तरह है कि उसके बिना वह अपनी कल्पना नहीं कर सकता। प्राचीन भारतीय साहित्य इस हस्तक्षेप के सबसे जीवन्त गवाह हैं। वे वृक्षों के विभिन्न अंगों की तुलना मानवीय अंगों से कर इसे स्पष्ट रूप से प्रतिस्थापित करते हैं। सौंदर्य के अलावा सृष्टि की रहस्यमयता जैसे गूढ़ तत्व को भी वे वनस्पतियों के जरिये 'द्वा' सुपर्णा सयुजा सखाया' सुलझाने का सराहनीय प्रयास करते हैं। निरंतर शोधों के द्वारा वे वनस्पति के विभिन्न औषधीय गुणों का भी खुलासा करते हैं जो मानव समुदाय को विविध प्रकार की व्याधियों से छुटकारा दिलाती हैं। वृक्षों की धार्मिक महत्ता का प्रतिपादन कर हमारे मनीषी अपने पर्यावरणीय घटकों को काफी हद तक प्राकृतिक बनाने में सफल रहे। साथ ही भविष्य की पीढ़ियों को भी इससे सचेत रहने हेतु तैयार किया। ऐसे में यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि हमारे प्राचीन ग्रंथों ने पेड़-पौधों एवं वनस्पतियों की मानवीय संबंधों से निकटता स्थापित कर एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

कवि प्रसिद्धि में वनस्पतियाँ एवं पेड़-पौधे

प्राचीन काल से ही कवि अपनी बात को विशेष चुभने वाली बात बनाने के अर्थ में कुछ ऐसे विश्वासों, प्रसिद्धियों या प्रशस्तियों से काम लेते आये हैं जिनके पीछे एक पुरानी परम्परा लगी हुई हो और जिनके द्वारा कविता-साहित्य को विशेष रूप से प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इन विश्वासों और प्रसिद्धियों का आधार चाहे प्राकृतिक सत्य न हो किंतु इसके संबंध में पूरा समाज एकमत रहता

है। ऐसे ही विश्वास 'कवि-समय' या 'कवि-प्रसिद्धि' कहे जाते हैं।[1]

वृक्ष मानव का चिरंतन साथी है। जन्म से लेकर मृत्यु तक वनस्पतियाँ एवं वृक्षों का हम किसी न किसी रुप में उपयोग-उपभोग करते हैं। यह विशाल सृष्टि पादप पर ही अवलंबित है। प्रकृति की उदारता एवं सुंदरता का जितना सहज वर्णन पेड़-पौधों के माध्यम से किया जा सकता है उतना संभवत: अन्य किसी प्रतीक से नहीं किया जा सकता। इसीलिए कवियों और साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में विभिन्न रूपों में वनस्पतियों का वर्णन किया है। उदाहरण के तौर पर सांसारिक सुख को तुच्छ बताते हुए कहा गया है— सांसारिक मिलन का सुख कमल के पत्ते के ऊपर की पानी की बूँद की भाँति क्षणिक और बह जाने वाला होता है। उसमें वियोग की बंधा लगी रहती है किंतु परमात्मा के साथ आध्यात्मिक मिलन में यह बात नहीं होती।[2]

'दोहद' शब्द का अर्थ गर्भवती स्त्री की इच्छा से है। वृक्ष के साथ 'दोहद' शब्द पुष्पोद्‌गम के अर्थ में प्रयुक्त होता है। शब्दार्णव के अनुसार कुशल व्यक्तियों द्वारा तरू-गुल्म-लता प्रभृति में जिन द्रव्यो और क्रिया से अकाल में ही पुष्पोद्‌गम कराया जाता है उसे 'दोहद' कहते हैं।[3]

संस्कृत काव्य में परंपरागत ढ़ंग से विविध वृक्षों की पृथक आकांक्षाओं का उल्लेख किया गया है। मेघदूत (2-18) की व्याख्या करते हुए मल्लिनाथ हमारा ध्यान उस लोक विश्वास की तरफ आकृष्ट करते है जिसके अनुसार स्त्री स्पर्श से प्रियंगु वृक्ष पुष्पित होता है, बकुल वृक्ष तरुणी के मुख में भरी गुड़ की मदिरा की फूंक से, अशोक उसके पदाघात से, तिलक वृक्ष उसकी दृष्टि से, कुरबक आलिंगन से, मंदार-नर्म वाक्य पटुता से, आम्र वृक्ष मुख-वात से, रूद्राक्ष गीत से तथा कर्णिकार (कनैल) उसके समक्ष नर्तन से विकसित होता है।

स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियंगुर्विकसति वकुलः सीधुगण्डूषसेका
त्वादाघाता दशोकस्तिलक कुरबकौ वीक्ष्णालिंगनाभ्याम्।
मंदारोनर्मवाक्यत्पटु मृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाताच्चूतो
गीतान्न मेरूर्विकसति च पुरो नर्तनाहकर्णिकारः।।[4]

काव्यमीमांसा में वृक्ष दोहद से इतर अर्थ में अशोक, बकुल, तिलक एवं कुरवक संबंधी प्रसिद्धियों का वर्णन प्राप्त होता है।

कुरबक कुचाघात क्रीडारसन वियुज्यसे। बकुलविटपिन स्मर्तव्य ते मुखासवसेचनम्
चरणघटना शून्यो यास्यस्यशोक सशोकतामिति निजम्पुरत्यागे यस्य द्विषां जगुदुःस्त्रियः

---

1 अध्ययन और आस्वाद, गुलाब राय, दिल्ली, 1957, पृ० 50

2 हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, बनारस, 1944, पृ० 204

3 मेघदूत 2/17 पर मल्लिनाथ की टीका

4 मल्लिनाथ टीका, पृ० 132

मुखमदिरया पादन्यासैर्विलास विलोकितै र्वकुलविटपी रक्ताशोकस्तथा तिलकद्रुमः
जलनिधिटीकान्तराणां क्रमात ककुभां जये झगिति गमिता यद्वर्ग्याभिर्विकास महात्सवम् ।।[1]

अशोक—भारतीय कला एवं साहित्य में अशोक-दोहद स्त्री एवं वृक्ष प्रकार का सबसे प्रिय कला-अभिप्राय था।[2] मालविकाग्निमित्रम् के तृतीय अंक की सारी कथा मालविका के पदाघात से अशोक वृक्ष को पुष्पित कर देने की क्रिया को केंद्र करके रचित हुई है।

अकुसुमितमशोकं दोहदापेक्षया वा प्रणमिति शिरसं वा कान्तमार्द्रापराधम् ।।[3]

कुमारसंभव में वसंत महात्म्य वर्णन में कालिदास कहते हैं—'अशोक स्कंध पर से पल्लवित और कुसुमित हो गया। उसने सुंदरियों के आसिंजित नूपुर चरणों की अपेक्षा नहीं की।'

असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कंधात्प्रभृत्येव सपल्लवानि।
पादेन नापैक्षत सुंदरीणां संपर्कमासिंजितनूपुरेण ।।[4]

मेघदूत के यक्ष ने मेघ से अपने उद्यान के अशोक वृक्ष के वर्णन के सिलसिले में कहा है कि वह तुम्हारी सखी (यक्षिणी) के वाम पाद का अभिलाषी है।[5] मालविकाग्निमित्रम् में राजा कहते हैं—क्यों री विलासिनी! तुम्हारा यह लाल कमल के पत्तों के समान बायाँ पैर अशोक पर लगने से कहीं दुखने तो नहीं लगा है—

किसलयमृदोर्विलासिनी कठिने निहितस्य पादपस्य स्कंधे।
चरणस्य न ते बाधा संप्रति वामोरू वामस्य ।।[6]

राजनिघंटु के अनुसार अशोक का एक नाम वामाघ्रिघातन भी है।[7] उक्त 'वामाघ्रि' पद का अर्थ बाँया चरण और स्त्री का चरण दोनों से लगाया जा सकता है।

राजशेखर की बिद्धशालभंजिका में कुरंगिका नाम चेटी विदूषक के डंकमार हँसी की चोटों से ऊबकर कहती है कि तुम इस समय उसी चरण सत्कार के पात्र हो जो अशोक वृक्ष (कंकेलि तरु) दोहद के समय पाता है।[8] भोज के सरस्वती कंठाभरण (पृ0 574) में अशोकोतंसिका का उल्लेख मिलता है, जिसका तात्पर्य उस उत्सव विशेष से है जो अशोक दोहद से संबंधित था।[9]

---

1 काव्यमीमासा, अ-8।
2 यक्षाज, भाग-1, आनंद के० कुमार स्वामी, पृ० 32-33
3 मालविकाग्निमित्रम् 3 12 कालिदास ग्रथावली, राम प्रताप त्रिपाठी, इलाहाबाद, पृ० 290
4 कुमार सभव, 3 26 वही, पृ० 271
5 मेघदूत, 2 18, वही, पृ० 437
6 मार्लाविकाग्निमित्रम, 3 18, वही, पृ० 299
7 राजनिघंटु, पृ० 137
8 भारतीय लोक परपरा मे दोहद, यू0एन0राय, इलाहाबाद, 1997, पृ० 18
9 प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रथावली 4, पृ० 479-81

कर्णिकार—लोकमान्यता है कि कर्णिकार वृक्ष के आगे स्त्रिया अगर नृत्य करें तो वह पुष्पित हो जाता है।[1] भावप्रकाश में इसे परिव्याध और पद्‌मोत्पल कहा गया है जबकि कुछ विद्वान इसकी पहचान अमलतास से करते हैं।[2] रामायण मे वसंत वर्णन के अवसर पर कर्णिकार के सुनहले पुष्प का वर्णन मिलता है।[3] कालिदास ने प्राय: कर्णिकार और अशोक की चर्चा एक साथ की है। उस युग में सुंदरिया कभी कान तो कभी केश में कर्णिकार और अशोक पुष्पों को धारण करती थी। ऋतुसंहार में कान मे नव कर्णिकार पुष्प और अलकों में अशोक पुष्प सुशोभित दिखता है[4] तो कुमार संभव मे पार्वती नील अलकों में नव कर्णिकार पुष्पों को धारण किये दिखती हैं।[5] महाकवि ने शायद इसके रग के कारण ही इसमें अग्नित्व का आभास पाया था।

कुन्द—कुन्द के फूल सफेद होते हैं किन्तु कलियाँ कुछ लाल होती हैं। रामायण में वसंत के समय इसके खिलने का उल्लेख है।[6] कली के लाल होने के बावजूद कवि प्रसिद्धि है कि इसकी कली भी सफेद ही होती है। काव्यमीमांसा, कविकल्पलता-वृत्ति और अलंकार शेखर के अनुसार कली वास्तव में लाल होती है किन्तु अलंकार चिंतामणि के अनुसार वह वस्तुत: हरित होती है।

जब कुन्द के फूल खिलते हैं तो इकट्ठे ही खिलते हैं और वास्तव में हँसते हुए दिखाई देते हैं। कुन्द का इंदु के साथ श्वेतता के उपमानों में उल्लेख होता है।[7] रामचरितमानस के मंगलाचरण में शिव के सम्बन्ध में तुलसीदास ने कहा है—

कुन्द इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन।

कुमुद—धन्वंतरि-निघंटु के मत से पद्म के 7 भेद हैं। कुमुद या कल्हार उनमें से एक है।[8] अमरकोश के अनुसार सौगंधिक (श्वेत पद्म) ही कल्हार कहलाता है कुमुद नहीं।[9] कालिदास ने कुमुद का वर्णन शरत्काल में किया है।[10]

काशैर्मही शिशिरदीधितिना रजन्यो हंसैर्जलानि सरितां कुमुदैः सरांसि।

---

1 मेघदूत, 2 17 पर मल्लिनाथ की टीका

2 हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 214

3 रामायण, वाल्मीकि, 4 1 21

4 ऋतुसंहार, 6 5।

5 कुमारसभव, 3 62।

6 रामायण, 4 1 77।

7 अध्ययन और आस्वाद, गुलाब राय, दिल्ली, 1957, पृ० 426।

8 वनौषधि दर्पण, पृ० 401।

9 अमरकोश, सपा०-खेमराज श्रीकृष्ण दास, मुम्बई, सं० 1962, 10 35।

10 ऋतुसहार, 3 2, कालिदास ग्रथावली, सपा०-रामप्रताप शास्त्री, पृ० 459।

पद्म के समान ही कुमुद का वर्णन सर्वत्र जलाशयों में ही किया जाता है। जिस प्रकार सूर्योदय पर कमल खिलता है उसी प्रकार चद्रोदय पर कुमुद।

कुरवक—मेघदूत (2.18) की टीका में मल्लिनाथ ने लिखा है कि कुरवक स्त्रियों के आलिंगन से पुष्पित हो जाता है।[1] रामायण के वसंत वर्णन में रक्त-कुरवकों का उल्लेख मिलता है।[2] कालिदास ने भी वसत वर्णन के संदर्भ में कुरवक का वर्णन किया है।

विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः।
मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरवका रवकारणतां ययुः।।[3]

सुभाषित रत्नावली के एक श्लोक में वकुल, कुरवक और अशोक दोहद के संदर्भ में महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त होता है। जब राजा लक्ष्मणसेन वख्तियार खिलजी के आक्रमण के समय राजधानी छोड़ने को विवश होते हैं उस समय उनकी वाटिका में लगे वृक्षों को संबोधित करती, पुर को त्यागती युवतियाँ विलाप करती हैं— 'हे कुरवक। तुम अब उनके आलिंगन से विमुक्त हो जाओगे। हे बकुल! तुम उनकी मुख-मदिरा के पान से रहित होगे तथा हे अशोक! तुम उनके चरणाघात से वंचित होने के कारण शोक पाओगे।'

कुरवक कुचघात क्रीडारसेन वियुज्यसे बकुलविटपिन्स्मर्तव्थम ते मुखासव-सेवनम्।
चरणघटनाशून्यो यास्यरूयोमशोकऽशोकतामिति निजपुरत्यागे यस्य द्विषां जगदुः स्त्रियः।।[4]

उक्त महत्वपूर्ण लेख प्रमदाओं की उद्यान-यात्रा, वृक्ष-क्रीड़ा के प्रकार तथा प्रचलित रीति प्रथाओं से संबंधित है।

चंदन—कवि-समय के अनुसार चंदन में फूल और फल का वर्णन नहीं होना चाहिये।[5] तथापि रामायण में इसका पुष्पित होना वर्णित है।[6] इसके विषय में प्रसिद्ध है कि जंभीर, नीम, कुटज आदि वृक्ष जो मलयागिरि पर होते हैं वे सब चंदन हो जाते हैं।[7]

चंदन के बारे में एक प्रसिद्धि यह है कि वह केवल मलय पर्वत पर होता है। इस प्रसिद्धि के मूल में शायद यह बात हो कि मलय पर्वत पर ही यह बहुतायत से होता है। राजशेखर ने मलय पर्वत की चार विशेषताओं में से एक यह बताया है कि इस पर्वत पर सर्पवेष्टित चन्दन के वृक्ष होते हैं।[8]

---

1 मल्लिनाथ टीका, पृ० 132।

2 रामायण 4 1 21।

3 रघुवश, 9 29, कालिदास ग्रथावली, पृ० 110।

4 सुभाषितावली, 2564, सी० शिवराममूर्ति-सस्कृत लिटरेचर एंड आर्ट-मिर्रर्स आफ कल्चर, पृ० 40।

5 काव्यमीमासा, अध्याय 13, साहित्य दर्पण, 7 25, अलकार शेखर 15।

6 रामायण, 4 1 82-83।

7 अध्ययन और आस्वाद, गुलाब राय, पृ० 429 30।

8 काव्यमीमासा, राजशेखर, अध्याय 17।

कान्दिास ने परशुराम के सतोगुणी यज्ञोपवीत के साथ धनुष-बाण धारण करने की उपमा में चंदन वृक्ष पर सर्प का उल्लेख किया है—'सद्विजिह्व इव चंदनद्रुम':।[1]

चंपा (चम्पक)—कवि प्रसिद्धि है कि रमणियों के पटु मृदुहास्य से चंपा पुष्पित हो जाता है।[2] पीले फूल के कारण कवि इसे कनक वर्ण भी कहकर पुकारते हैं। इसके संबंध मे प्रसिद्ध है कि भौरा इसके पास नहीं जाता।

चंपा तोमे तीन गुण रूप रंग अरू वास। औगुन तोमे एक है भॅवर न आवे पास ।।

वसत वर्णन के प्रसंग में रामायण में इसका उल्लेख है।[3] कालिदास ने वसंत वर्णन के अंत में और राजशेखर ने ग्रीष्म में इसका वर्णन किया है।[4] इसके फूल का रंग पीला है जो शरीर के पीले रंग से मिल जाता है। तुलसी दास ने सीता के सौंदर्य वर्णन में लिखा है—चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सुहाई।

तमाल—यह कृष्ण के प्रिय वृक्षों में से है। उनके शरीर की तुलना तमाल से की जाती है। कृष्ण को त्रिभंगी मुद्रा में तमाल वृक्ष के नीचे खड़ा होना बड़ा प्रिय है। कुछ लोग तमाल के पत्तों का तादात्म्य तेजपात (Laurus Noblıs) से करते हैं। गीत गोविंद के मंगलाचरण में रात की श्यामलता का वर्णन करते हुए जयदेव ने लिखा है—

मेघेर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमाल द्रुमैः ।[5]

तिलक—सुंदरियों के देखने मात्र से तिलक पुष्प कुसुमित हो जाता है।[6] ब्राण्डिस महोदय ने 'तिलकी' वृक्ष की चर्चा करते हुये कहा है कि ऊसर जमीन को शस्य श्यामल बनाने के लिये इस वृक्ष का उपयोग किया जा सकता है।[7] कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् में तिलक पुष्प का वर्णन है।

आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लग्नद्विरेफांजनैः। सावज्ञेव मुखप्रसाधकविधौ श्रीर्माधवी योषिताम्।।[8]

अर्थात 'भ्रमरों से लिपटे हुये तिलक के पुष्पों ने स्त्रियों के मस्तक पर लगाये तिलक को नीचा दिखा दिया है। ऐसा मालूम हो रहा है कि वसंत की शोभा सुंदरियों के मुखों के श्रृंगार-प्रसाधनों का अपमान कर रही हैं।'

---

1 रघुवश, 11 64।

2 मेघदूत, 2 17 मल्लिनाथ की टीका।

3 रामायण, 4 1 78।

4 काव्यमीमासा अध्याय 18।

5 गीतगोविन्द-जयदेव, 1 1।

6 मेघदूत 2 17 टीका, कुमार सभव, 3 26 टीका।

7 Indıan trees, Brandıs, p 53।

8 मालविकाग्निमित्रम् 3 5, वही, पृ० 284।

'शब्दकल्पद्रुम' के मत से तिलक और पुन्नाग एक ही वृक्ष हैं। पर राजशेखर ने तिलक को वसंत मे और पुन्नाग को हेमंत में खिलते देखा था।[1] राजशेखर ने वसंत में तिलक पुष्प का जो वर्णन किया है उससे सिद्ध होता है कि उन्हें इस कवि-प्रसिद्धि की जानकारी थी फिर भी उन्होंने इसे कवि समय के अन्तर्गत नहीं माना है।

नमेरु—सुंदरियों के गान से नमेरु विकसित हो जाता है। विश्वकोश के अनुसार नमेरु का ही दूसरा नाम सुर पुन्नाग है। कालिदास के काव्यों में हिमालय पर्वत पर इसका वर्णन पाया जाता है।

गणा नमेरु प्रसवावतंसा भूर्जत्वचः स्पर्शवतीर्दधानाः।
मनःशिलाविच्छुरिता निषेदुः शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु।।[2]

कैलाश पर्वत पर जब शिव ध्यानस्थ होकर बैठ गये तो उनके गण नमेरु पुष्पों के आभूषण और भोज वृक्ष की छाल पहन कर पार्वत्य औषधों से व्याप्त शिलातलों पर जा विराजे। शिव जिस स्थान पर ध्यानस्थ होकर बैठे थे उसके प्रांत भाग में नमेरु वृक्ष की शाखायें झुकी हुई थीं।

प्रांतेषु संसक्तनमेरुशाखं ध्यानास्पदं भूतपतेर्विवेश।[3]

नीलोत्पल—पद्म की तरह नीलोत्पल का भी वर्णन नदी-समुद्र आदि में होना चाहिये।[4] दूसरी प्रसिद्धि यह है कि नीलोत्पल रात में ही खिलता है। इसी कारण से डल्हण ने सौगधिक कमल को चंद्रिकाविकासी कहा है।[5] धन्वंतरि निघंटु के मत से यह कमल का ही एक भेद है।[6] वैद्यक ग्रंथों के अनुसार नीलकमल कवि कल्पित मात्र ही नहीं है अपितु प्राचीन समय से उसका औषधार्थ प्रयोग पाया जाता है। पं० रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार कश्मीर में नीलोत्पल होता है जिसे स्थानीय लोग नीलोफर कहते हैं।[7]

पद्म (कमल)— भारतीय संस्कृति और सौंदर्य का प्राण प्रतीक है—कमल। प्रायः हर भारतीय कवि और कलाकार ने कमल को किसी न किसी रूप में अपना आदर्श माना है। यद्यपि यह बहते पानी में नहीं पाया जाता पर कवियों ने नदी में इसका वर्णन किया है। कालिदास ने वर्षा ऋतु में शिप्रा नदी में कमल-पुष्पों का उल्लेख किया है।[8] वसंत[9] और ग्रीष्म[10] में भी वे इसे वर्णित करते हैं।

---

1 काव्यमीमांसा, अध्याय 18।
2 कुमार संभव, 1 55 पर मल्लिनाथ की टीका।
3 कुमार सभव, 3 43, वही, पृ० 274।
4 काव्यमीमांसा, 14।
5 सुश्रूत सूत्र, 13 13 टीका।
6 वनौषधि दर्पण, पृ० 401-3।
7 हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 224।
8 मेघदूत 1 30।
9 कुमार सभव, 3 37।
10 ऋतुसहार, 1 28।

कवि समय के अनुसार (1) पद्म दिन में खिलते हैं।[1] (2) उसके मुकुल हरे नहीं होते। (3) कमल पुष्प मे लक्ष्मी का वास होता है और (4) हेमंत तथा शिशिर के सिवाय अन्य सभी ऋतुओं मे उनका वर्णन होता है।[2]

पद्म के कई भेद हैं। धन्वंतरीय निघंटु में 7 प्रकार के पद्म का वर्णन है—पुडरीक (अत्यंत श्वेत), सौगंधिक (नील पद्म), रक्त पद्म, कुमुद और तीन प्रकार के क्षुद्र उत्पल। रामायण में वसंत वर्णन के प्रसंग में आदि कवि ने एक ही जगह पद्म, सौगंधिक और नीलपद्म के खिलने का वर्णन किया है।[3]

पद्म के पत्तों पर जल नहीं ठहरता और जल में रहकर ये जल से अलिप्त रहते हैं। संसार में रहने हेतु वेदातियों को इसका उदाहरण दिया जाता है।[4]

प्रियंगु—स्त्रियों के स्पर्श मात्र से प्रियंगु विकसित हो उठता है ऐसी कवि प्रसिद्धि आम है।[5] प्राचीन काल में महलों और बागीचों के अग्र भाग में प्रियंगु के वृक्ष लगाये जाते थे।[6] ऋतुसंहार में सुगंधित द्रव्यों के साथ प्रियंगु का वर्णन मिलता है।[7] चरक ने प्रियंगु और चंदन-चर्चित रमणियों के कोमल स्पर्श को दाह की महौषधि बताया है।

प्रियंगु के विषय में दूसरा कवि समय यह है कि यद्यपि इसके पुष्प पीत वर्ण के होते हैं तथापि उसे पीत नहीं वर्णित करना चाहिए।[8] राजशेखर ने अपने वर्णन में प्रियंगु पुष्प को श्याम रंग का बताया है।[9] प्रियंगु का अन्य नाम श्यामा लता[10] एवं कृष्ण पुष्पी[11] भी मिलता है। नवग्रह-स्तोत्र में बुध के प्रणाम मंत्र में प्रियंगु कलिका का श्याम होना उल्लिखित है जबकि बुध का रंग पीत बताया गया है।

भूर्जपत्र—कवि समय के अनुसार केवल हिमालय में ही भूर्जत्वक का वर्णन होना चाहिए।[12] हिमालय में ये बहुतायत से पाये भी जाते हैं। कालिदास ने हिमालय[13] और कैलाश[14] के वर्णन में इसका नाम लिया है।

---

1 साहित्य दर्पण, 7 25।
2 वनौषधि दर्पण, पृ० 401।
3 रामायण, 4 1।
4 अध्ययन और आस्वाद, गुलाब राय, पृ० 422।
5 मेघदूत, 2 18, मल्लिनाथ टीका।
6 वृहत्सहिता, 55 3।
7 ऋतुसहार, 6 12।
8 काव्यमीमासा, 15।
9 वही, 17।
10 ऋतुसहार, 6 12 टीका।
11 वनौषधिदर्पण, पृ० 445।
12 काव्यमीमासा, 14, साहित्यदर्पण, 7 25।
13 कुमारसभव, 1 7।
14 वही, 1 55।

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुंजर बिदु शोणाः।
व्रजन्ति विद्याधर सुंदरीणामनंग लेखक्रिययोपयोगम्।।[1]
गणा नमेरू प्रसवावतंसा भूर्जत्वचः स्पर्शवतीर्दधानाः।
मनःशिलाविच्छुरिता निषेदुः शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु।।[2]

राजशेखर ने पश्चिमी वायु के वर्णन में हिमालय पर्वत के भूर्जद्रुमों का वर्णन किया है।[3]

मन्दार— मन्दार रमणियों के नर्म वाक्य से पुष्पित होता है।[4] इंद्र के नंदन कानन के पाँच पुष्पों में से एक मंदार भी है।[5] यद्यपि इसका वृक्ष बहुत बड़ा नहीं होता पर कालिदास द्वारा वर्णित बालमंदार वृक्ष इतना ऊँचा था कि उसके पुष्प हाथ से ही छुये जा सकते थे।[6] इंद्राणी के अलक में मंदार पुष्प सुशोभित रहा करता था।

शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान्मन्दार शून्यानलकांश्चकार।[7]

कुमार संभव[8] रघुवंश, विक्रमोर्वशीयम्[9] और अभिज्ञानशाकुंतलम्[10] में भी कई जगह इस मोहक पुष्प का वर्णन आया है।

मालती— मालती लता साल में दो बार-वसंत और वर्षा तथा शरत में फूलती है लेकिन कवि समय के अनुसार इसका वर्णन वसंत में नहीं होना चाहिये।[11] कालिदास ने वर्षा[12] और शरत दोनों ऋतुओं में मालती पुष्प के विकसित होने का वर्णन किया है।

सप्तच्छदैः कुसुम भारनतैर्वनान्ताः शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीभिः।।[13]

रामायण में आदि कवि ने वर्षा ऋतु के मेघाच्छन्न आकाश के वर्णन के सिलसिले में कहा है कि मालती के विकसित होने से ही सूर्य के अस्त हो जाने का अनुमान होता है।[14]सुप्रसिद्ध

---

1 कुमार सभव, 1 7।
2 वही, 1 55।
3 काव्यमीमासा, 18।
4 मेघदूत, 2.17 मल्लिनाथ टीका।
5 अमरकोष, 1 50।
6 मेघदूत, 1 75।
7 रघुवश, 6 23।
8 कुमार सभव, 5 80।
9 विक्रमोर्वशीयम, 4 35।
10 अभिज्ञानशाकुतलम्, 7 2।
11 काव्यमीमासा, 14, साहित्यदर्पण, 7 25।
12 ऋतुसहार 2 24।
13 वही, 3 2।
14 वाल्मीकि रामायण, 4 28 52।

ज्योतिषी भास्कराचार्य ने ऋतुचिन्हों का वर्णन करते समय मालती का वर्षा में खिलने का वर्णन किया है।

मालती का एक नाम जाती भी है। लेकिन भाव प्रकाश में ये दोनों लतायें अलग-अलग मान ली गयी हैं। ग्रंथकार ने जाती का भाषा नाम चमेली बताया है।

वकुल—वकुल वृक्ष (मौलसिरी) का दोहद कामिनी के मुख से निकली मदिरा के छींटे के रूप में प्रसिद्ध है—

गण्डूषमदिरे दोहदमिति प्रसिद्धिः ।।[1]

उक्त गीतिकाव्य में विरही यक्ष अपने संदेशवाहक मेघ से कहता हैं कि मेरे घर के प्रांगण मे कुरवक वृक्षों से घिरे माधवी मंडप के समीप वकुल वृक्ष दोहद छद्म (फूलने का बहाना लेकर) मेरी पत्नी की बदन मदिरा के छीटों को पाने के लिये लालायित हो रहा होगा।

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कांतः प्रत्यासन्नौ कुरवकवृते माधवीमण्डपस्य।
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी कांक्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्याः ।।[2]

वकुल दोहद के विषय में रघुवंश में कहा गया है

तब निःश्वसितानुकारिभिबकुलैरर्धचितां समं मया।
असमाप्य विलास मेखलां किमिदं किन्नरगात्रि सुप्यते ।।[3]

अर्थात 'हे किन्नरकिण्ठ! अपने श्वांस के समान सुगंधि वाले मौलसिरी के पुष्पों की जो माला तुम मेरे साथ गुंथ रही थी उसे अधगुंथी छोड़कर क्यों सो रही हो।'

वकुल वृक्ष की समान आकांक्षा को पार्वती परिणय में कहा गया है—

मुक्त्वा तद्वदनासवं मुकुलिता गंधोत्तराः केसराः ।[4]

रघुवंश[5] में अन्यत्र स्थल पर बकुल दोहद विषयक समान विश्वास व्यक्त किया गया है।

हर्ष ने रत्नावली नाटिका में कहा है कि बकुल वृक्ष कुसुमित होने के निमित्त अपने तने के ऊपर सुंदरी की मुखमदिरा के छिड़काव की अपेक्षा करता था।

मूले गण्डूषसेकासव इव बकुलैरिवास्यते पुष्पवृष्ट्या ।[6]

---

1 मल्लिनाथ टीका, मेघदूत, उत्तर मेघ, श्लोक 18।

2 मेघदूतम्, उत्तरमेघ, 18।

3 रघुवश, 8 64।

4 पार्वती परिणय, 3 6।

5 रघुवंश, 19 12।

6 रत्नावली, 1 18।

शरत्काल में इसके फूल बड़े मादक गंधी हो जाते हैं। इसीलिए निघंटुकारों ने इसका एक नाम 'शीधुगध' भी रखा है। बकुल का ही नाम केसर भी है। पौराणिक कथा के अनुसार काम के धनुष का ही यह पार्थिव रूप है।

शेफालिका (हरसिंगार)— कवि समय के अनुसार शेफालिका के पुष्प केवल रात में झड़ते हैं।[1] शेफाली या शेफालिका नाम के दो वृक्ष वैद्यक शास्त्र में प्रसिद्ध हैं— (1) निर्गुण्डी और (11) हरसिंगार[2] रात को ही शेफाली विकसित होकर वनभूमि को सुरभिसिक्त कर देती है। उषा काल होते ही इसके पुष्प झडने लगते हैं और सूर्योदय होते ही वनभूमि श्वेत पुष्पों से आवृत्त हो जाती है। कविजन इसका वर्णन सूर्योदय के पहले ही करते हैं।[3] कालिदास ने शरत ऋतु में इस पुष्प का वर्णन किया है।

कल्हारपद्मकुमुदानि मुहुर्विधुन्वंस्तत्संगमादधिकशीतलतामुपेतः।
उत्कंठयत्यतितरां पवनः प्रभाते पत्रांतलग्नतुहिनाम्बुविधूयमानः।।[4]

राजशेखर ने विद्धशालभंजिका में चंद्र के बिना शेफाली के न खिलने का उल्लेख किया है।[5] काव्यमीमांसा में उद्धृत एक चंद्रोदयवर्ण परक श्लोक से स्पष्ट मालूम होता है कि उस समय शेफालिका के पुष्प झड़ चुके होते हैं।[6]

सहकार (आम)— सुंदरियों के मुँह की हवा पाकर सहकार (आम) वृक्ष कुसुमित हो जाता है।[7] अपने पल्लव, पुष्प और फल के रूप में किसी अन्य वृक्ष ने सहृद्यों को उसका आधा भी प्रभावित नहीं किया जितना इस वृक्ष ने। आम्र वृक्ष का प्रियंगु लता के संपर्क के उल्लेख प्रायशः प्राप्य हैं। संस्कृत कवियों ने प्रायः आम्र वृक्ष एवं प्रियंगु के संपर्क और दोनों के काल्पनिक विवाह की भी चर्चा की है।

मिथुनं परिकल्पितं त्वया सहकारः फलिनी च नन्विमौ अविधाय सत्क्रियामनयोर्गम्यत इत्यसांप्रतम्।।[8]

अभिज्ञान शाकुंतलम् के चतुर्थ अंक में ऐसा ही विवरण प्राप्त होता है। शकुंतला की विदाई के समय कण्व उससे कहते हैं—'मैंने तेरे लिए जिस पति का संकल्प किया था तुमने अपने पुण्य प्रभाव से वैसा पति पा लिया है। इस नवमालिका (प्रियंगु लता) को आम का ठीक सहारा मिल गया है। इस

---

1 काव्य मीमासा, 14, अलकार शेखर, 15।

2 अमरकोश, वनौषधिवर्ग, 70।

3 काव्यमीमासा, 14।

4 ऋतुसहार, 3 15।

5 बिद्धशालभजिका, 2 19।

6 काव्यमीमासा, 18।

7 मेघदूत 2 17 पर मल्लिनाथ की टीका।

8 रघुवश 8 61।

समय मैं तुम दोनों की चिंता से मुक्त हो गया हूँ।[1]

लता-दोहद—लता के कुसुमित होने की आकांक्षा का द्योतक है—लता दोहद। इसीलिये प्राचीन भारतीय साहित्य में लता के लिये भी दोहद शब्द का प्रयोग किया गया है। इस अभिप्राय में लता-विशेष नायिका का बोधक थी जिसे किसी पुरूष के शारीरिक संपर्क या सान्निध्य की आवश्यकता हुआ करती थी। लता-दोहद के विषय में एक प्रचलित अवधारणा यह भी थी कि अकाल पुष्पोद्गम के लिये भी वह कभी-कभी प्रेमी के सुखद स्पर्श की अभिलाषा रखती थी।[2] इसी के मद्देनजर संस्कृत कोशकारों ने दोहद का एक अन्य अर्थ तरू के अतिरिक्त गुल्म एवं लता आदि के अकाल पुष्पित होने की एक सफल औषधि, प्रयोग या क्रिया विशेष कहा है।

तरु गुल्म लतादीनामकाले कुशलैः कृतम्। पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदं स्यातु तत्क्रिया।[3]

निष्कर्ष—दोहद विषयक उक्त साहित्यिक उल्लेख मात्र कपोलकल्पित ही था या इसका कोई आधार था? वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधानों से अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि उक्त अभिप्राय के निरुपण के पीछे कुछ न कुछ गूढ़ अभिप्राय अवश्य था। ऐसा प्रतीत होता है कि वनस्पतियों से मानव (विशेषकर स्त्री) को जोड़ने के प्रयास में इस समय के साहित्यकारों ने इन अभिप्रायों का सृजन एवं वर्णन किया। गृह कार्यो से निवृत्त स्त्रियाँ अपने खाली समय में उद्यानों में अपना मनोरंजन करती रहीं होगी जो धीरे-धीरे रूढ़ि के रूप में ही प्रचलित हो गया।

पेड़-पौधों एवं वनस्पतियों पर मानव संपर्क, उसके हाव-भाव तथा श्रव्य-ध्वनि विशेषतः संगीत, वाद्य अथवा वाद्यसंगीत की निरंतरता या पुनरावृत्ति का प्रभाव अवश्यमेव पड़ता है। ओटवा विश्वविद्यालय के वनस्पतिशास्त्री पर्ल बेनबर्जर एवं मेरी मेस्योरेस ने इस संबंध में महत्वपूर्ण स्थापना की है। उक्त विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उक्त तथ्य एवं घटनायें न केवल पौधे के अंकुरण एवं विकास में ही बल्कि पुष्पांकुरण एवं पल्लवन आदि क्रियाओं में भी प्रभावशाली भूमिका निभाती हैं।[4] ऐसे मे वृक्ष-दोहद संबंधी उक्त उल्लेखों एवं अन्य लोकपरंपराओं की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण दिखायी पड़ती है।

कृषि संबंधी वनस्पतियां एवं पेड़-पौधे

ऋग्वैदिक काल में कृषि का पूर्ण विकास हुआ था या नहीं इसे लेकर विद्वानों में परस्पर मतभेद है। ऋग्वेद में केवल धान 'येन तोकाय तनताय धान्यं बीजं वहह्वे अक्षितम्'[5] और यव[6] का उल्लेख है।

---

1 अभिज्ञान शाकुतलम 4 13।

2 भारतीय लोकपरंपरा में दोहद, यू० एन० राय, इलाहाबाद, 1997, पृ० 22-23।

3 शब्दार्णव, नैषधीय चरित (पी० एल० अभिमन्यु द्वारा प्रकाशित) में उद्धृत, पृ० 138।

4 भारतीय लोक परपरा मे दोहद, यू० एन० राय, इलाहाबाद, 1997, पृ० 43।

5 ऋग्वेद, 5 53 13।

6 वही, 2 14 11।

यव से जौ अभिप्रेत है और धान या धान्य से चावल। पर अन्य अन्नों का उल्लेख न होने से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि इस समय आर्यो को कोई अन्य अन्न ज्ञात ही नहीं था। नारायण चन्द्र बदोपाध्याय प्रभृति विद्वान ऋग्वैदिक काल में कृषि के पूर्ण विकास के पक्षधर हैं। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि ऋग्वैदिक आर्यो के लिए बहुवचन में 'कृष्टि' और 'चर्षणि' शब्द प्रयुक्त किये गये है।[1] कृषि संबंधी अनेक शब्द ऋग्वेद के प्रथम तथा दशम मंडल मे हैं जो बाद की रचनायें हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वैदिक काल के अंतिम चरणों में ही कृषि पर बल दिया जाने लगा था।

साहित्यिक ग्रन्थों से यह प्रमाणित होता है कि उत्तर वैदिक काल में कृषि का पूर्ण विकास हो चुका था। यजुर्वेद में ब्रीहि(धान), यव (जौ), माष (उड़द), तिल, मुद्ग (मूंग), खल्व (चना), अणु, प्रियंगु (कंगनी), श्यामाक (सांवा), नीवार (चीनक, तंदुल), गोधूम (गेहूँ) और मसूर जैसे अन्नों का उल्लेख एक मन्त्र में मिलता है—

ब्रीहयश्य में यवाश्च्च में माषाश्च में तिलश्च मे मुद्गश्च मे
खल्वाश्च मे प्रियंगवश्च्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्य मे
नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।[2]

यजुर्वेद में ही स्पष्ट बताया गया है कि जौ जाड़े में बोया और ग्रीष्म ऋतु में काटा जाता था और चावल वर्षा ऋतु में बोया और पतझड़ में काटा जाता था।[3] डॉ० ओमप्रकाश के अनुसार यजुर्वेद में चावल की पॉच किस्मों का उल्लेख है—महाब्रीहि, कृष्णब्रीहि, शुक्लब्रीहि, आशुधान्य और हायन। महाब्रीहि इनमें सबसे उत्तम किस्म थी, आशुधान्य जल्दी पकता था जबकि हायन एक वर्ष में पकता था।[4]

तैत्तिरीय संहिता में कृष्ण (काला), आशु (शीघ्र उत्पन्न होने वाला) और महाब्रीहि (बड़े दानों वाला) नामक तीन प्रकार के धान का उल्लेख मिलता है।[5] तंदुल नाम का दूसरे प्रकार का भी धान पैदा किया जाता था। चावल के अतिरिक्त माष (उड़द), श्यामाक (सांवा), शारिशाका (सरसों), गन्ना, तिल, शण आदि भी उत्पन्न किये जाते थे।[6]

अथर्ववेद में ब्रीहि, माष, यव, तिल, उड़द, ईख, श्यामाक का उल्लेख प्राप्त होता है।[7] गेहूँ का उल्लेख ऋग्वेद को छोड़कर सब संहिताओं में मिलता है।

---

1 इकोनामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन ऐशियट इडिया—एन० सी० वदोपाध्याय, पृ० 126।

2 वाजसनेयि शुक्ल यजुर्वेद सहिता, ज्वाला प्रसाद मिश्र, मुम्बई, सं० 1969, 18 12।

3 तैत्तिरीय सहिता, 4.2 और 7 2, 10।

4 फूड एण्ड ड्रिंक्स इन एन्शियट इंडिया, डॉ० ओमप्रकाश, पृ० 9।

5 तैत्तिरीय सहिता, 1 8, 10 1।

6 वही, 12 2 54, 18 3 6, 9 17 4, 3 14 5, 4 35।

7 अथर्ववेद, 6 140 2।

संहिता ग्रन्थो में गोधूम, यव, ब्रीहि, माष, मसूर, मुद्ग, श्यामाक, तिल जैसे अन्नों का और करकन्धु, न्यग्रोध, कुवल, बदर, बिल्व, आमलक, अश्वत्थ, खजूर आदि लाभप्रद वृक्षों का उल्लेख हुआ है।[1] वृहदारण्यक उपनिषद से विदित होता है कि इस युग में ब्रीहि (धान), यव (जौ), तिल, माष (उडद), अणु (सांवा), प्रियंगु (कांगुन), गोधूम, गेहूँ, मसूर, खल्व (बाल) और खलकुल (कुलथी) नामक दस प्रकार के ग्रामीण अन्न उत्पन्न होते थे।

दश ग्राम्याणि धान्यानि भवन्ति ब्रीहियवास्तिल माषा अणुप्रियंगवो
गोधूमाश्च मसूराश्च खल्वाश्च खलकुलाश्च.... ।।[2]

ऋग्वेद के अनुसार खेती के लिये भूमि को जोतने की शिक्षा सर्वप्रथम अश्विनौ द्वारा दी गयी थी।[3] अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि पृथ्वी वैन्य ने सर्वप्रथम खेती करना और खेती द्वारा 'सस्य' उत्पन्न करना प्रारभ किया था।

तां पृथ्वी वैन्योधोक् तां कृषिं चा सस्यं चाधोक् ।[4]

अश्विनौ से शिक्षा प्राप्त कर आर्यों ने जब एक बार खेती करना शुरु कर दिया तो उसमें निरंतर उन्नति होती गयी। हल से खेत जोतकर उसमें बीज बोये जाने लगे, पौधों की सिचाई की जाने लगी और फसल तैयार होने पर उसे दात्र (दरांती) से काटकर पर्षो (पुलियों) में बांधकर खल (खलिहान) में ले जाया जाने लगा।

अभीदमेकमेको अस्मि निष्षालभी द्वा किमु त्रयः करन्ति
खले न पर्षान प्रतिहन्मि भूरि किं मा निदन्ति शत्रवोऽनिंद्राः ।[5]

आज भी भारत में खेती का प्रायः यही तरीका है। वैदिक आर्यो ने 'क्षेत्रपति' नाम से एक ऐसे देवता की भी कल्पना कर ली थी जिसकी कृपा से उनके खेत फलते-फूलते थे और जिससे यह प्रार्थना किया करते थे कि उनके खेत 'सुफल' बने।[6]

जातक ग्रन्थों से मालूम होता है कि बीज बोने के उत्सव में राजा स्वयं हल चलाता था।[7] इससे स्पष्ट होता है कि गाँव के निवासियों के लिए कृषि का बहुत महत्व था। डायोडोरस ने लिखा है कि भारत में अनेक प्रकार के अनाज होते हैं। शीतऋतु की वर्षा होने पर गेहूँ बोया जाता है और गर्मी

---

1 वाजसनेयी संहिता, 18 12, 19 22, 21.29 7 10 24, तैत्तरीय संहिता, 5 1 7 3।

2 वृहदारण्यक उपनिषद, 6 3 1।

3 ऋग्वेद 1 117 21।

4 अथर्ववेद 8 10 (4), 11।

5 ऋग्वेद, 10 48 7।

6 प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग, सत्यकेतु विद्यालंकार, नई दिल्ली, 1989, पृ० 222।

7 जातक, 4 167, 6 479।

के बाद की वर्षा में चावल, तिल आदि बोये जाते हैं।[1]

अष्टाध्यायी में फसल के नाम से खेतों के नाम विहित होने का प्रमाण मिलता है। जैसे—व्रैहे (ब्रीहि या धान का खेत), शालेय (शालि या जड़हन का खेत), यव्य (जौ का खेत), यवक्य (यवव नामक चावल का खेत), षष्ठिक्य (साठी का खेत), तिल-तैरीन (तिल का खेत), माष्य-माषीप (उड़द का खेत), उम्य-औमीन (अलसी का खेत), भंग्य-भांगीन (भांग का खेत) आदि।[2] फलों में आम, जामुन, बेल का उल्लेख पाणिनी ने किया है। मँजिठ और नीली (नील) की भी खेती की जार्त थी। नीली एक प्रकार का नीला पौधा था जिससे वस्त्र रंगे जाते थे।[3] पाणिनी ने बिल्वादिगण वे अंतर्गत 'गवेधुका' (गड़हेरूआ) का भी उल्लेख किया है जो संभवतः गोभी के लिए प्रयुक्त होता था।

फसलें (शस्य)दो प्रकार की होती थी—'अकृष्टपच्य' और 'कृष्टपच्य'। कृष्टपच्य उस फसल कं कहते थे जो कृषि द्वारा उत्पन्न की जाती थी तथा अकृष्टपच्य उसे कहते थे जो स्वतः जंगल आदि विभिन्न स्थानों में उत्पन्न होती थी। इसके अंतर्गत नीवार जैसे जंगली धान्य गृहीत किए जाते थे। उस युग में तीन फसलें बोयी जाती थीं—1. वसंत ऋतु में वासंतक, 2. ग्रीष्म ऋतु में (ग्रैष्मक), 3. आश्विन में (आश्वयुजक)।

सूत्र ग्रंथों में दो प्रकार के जौ[4]—यव और यवानी, पाँच प्रकार के चावल[5]—कृष्णब्रीहि, महाब्रीहि हायन, यवक और कुलथी का उल्लेख मिलता है। तृण धान्यों में नीवार, प्रियंगु और श्यामाक, दालें में उड़द, मूँग और कुलथी[6] मसालों में पीपल, काली मिर्च और हींग काम में लाये जाते थे।[7] तेल के लिये तिल और सरसों बोये जाते थे।[8] फलों में तीन प्रकार के बेर-कुवल, कर्कन्धु और बदर,[9] और गूलर, सिंगाड़ा, जामुन, आम का उल्लेख मिलता है।

बौद्ध युग तक कृषि का समुचित विकास हो चुका था। इस युग में अनेक प्रकार के अनाज पैदा किये जाने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। बाजरा, चना, मटर, मूँग, उड़द, शालि, ब्रीहि, तंडुल, ईख, नारियल आदि की खेती होती थी।[10] मिर्च, अदरक, राई, लहसुन, जीरा आदि भी उत्पन्न किए जाते

---

1 डायोडोरस, 2 36।

2 अष्टाध्यायी, 5 2 2,3, 4।

3 वही, 4 1 12।

4 फूड एंड ड्रिक्स इन ऐशियंट इडिया, ओम प्रकाश, पृ० 34, टिप्पणी 2।

5 वही, पृ० 35, टिप्पणी 6, 7।

6 वही, पृ० 37।

7 वही, पृ० 41।

8 वही, पृ० 42।

9 वही, पृ० 42।

10 जातक, 2 पृ० 74 1, पृ० 429 5, पृ० 37.1, पृ० 429 2, पृ० 135 3, पृ० 383 4, पृ० 276 5, पृ० 405 6, पृ० 530 2, पृ० 240 6, पृ० 539.4, पृ० 364।

थे।[1] उस समय आम, सेव, जामुन, अंजीर, अंगूर,केला, खजूर आदि फल पैदा किये जाते थे।[2] बौ और जैन साहित्य में शालि चावल की 4 किस्मों रक्तशालि, कलमशालि, गंधशालि और महाशालि का उल्लेख मिलता है।[3] तृण धान्यों में कोद्रव (कोदो), चीना तथा दालों में चना, हरेणु अरहर आदि का वर्णन मिलता है।[4]

जैन साहित्य में तीन प्रकार की फसलों के उल्लेख प्राप्त है—

(i) **क्षैत्रिक**—जो खेतों मे पैदा की जाती थी।

(ii) **आरामिक**—जो उद्यानों एवं आरामों में पैदा की जाती थी।

(iii) **आटविक**—जो जंगलों में उत्पन्न होती थी।

अनेक प्रकार के अनाजों का उल्लेख जैन साहित्य में मिलता है—यव, ब्रीहि, गोधूम, शालि, माष चणक (चना), मुद्ग, इक्षु (गन्ना), कपास, खोभ, उण्णिय, लवंग, पिप्पल, सिगवेर, तम्बोल आदि क्षैत्रिक उपज थे।[5] अनार, अंगूर, आम, सेब, अंजीर, खजूर आदि फल और यूथिका, मल्लिका चंपक, मोगरा, कुंद, वासंती आदि विविध प्रकार के फूल 'आरामिक' उपज के अंतर्गत आते थे।[6] जम्बू, अशोक, पलाश, दाडिम बिल्व, चंदन आदि 'आटविक' उपज थे।[7] अन्य खाद्य वस्तुओं मे अकुष्ठक (कुटू), सण, निष्पाव, आलिसण्डग, अतसी पालिमंथक, कुसुंभ, औरालग के नाम मिलते हैं।[8] तिलहन में तिल के अतिरिक्त सरसों, अरण्डी, अतसी, और कुसुंभ से भी तेल निकाला जाता था [9] फलों में बेर, आम, जामुन, कटहल सिंगाड़ा, आंवला, केला, नारियल, खजूर, बेल, ताड़ का फल प्रियाल, कपित्थ,तिन्दुक, अंगूर, फालसा, कमरख और नीबू खाये जाते थे।[10]

मौर्यकालीन उपज—कौटिल्य के साथ-साथ यूनानी लेखकों ने भी मौर्यकालीन अनाजों और फलो का उल्लेख किया है।[11] कौटिल्य ने तीन प्रकार की फसलों की चर्चा की है जो वर्षा के प्रारंभ, मध्य एवं अंत में बोयी जाती थीं। शालि (अगहनी धान), ब्रीहि (धान), कोदो, तिल, कँगुनी, दारक, वरक

---

1 जातक, 1, पृ० 244 2, पृ० 363 3, पृ० 225.5, पृ० 120.6, पृ० 536।

2 वही 6, पृ० 529।

3 फूड एण्ड ड्रिंक्स इन ऐशियंट इडिया, ओमप्रकाश, पृ० 58।

4 वही, पृ० 60।

5 व्यवहार भाष्य, 10 557-560।

6 वृहत् कल्प भाष्य, 1 828, आचारांग सूत्र, 2 1 8.268।

7 आचारांग सूत्र, 2 1 8 266, न्याय धम्म कहा, 1 10।

8 फूड एण्ड ड्रिंक्स इनऐशियट इडिया—ओम प्रकाश, पृ० 61, टिप्पणी 3।

9 वही, पृ० 70।

10 वही, पृ० 71।

11 स्ट्रैवो, 15 1 16 20।

(लोबिया) ये 7 अन्न वर्षा काल के प्रारंभ में बोये जाते थे। मूँग, उड़द और शिम्ब (बोड़ा) वर्षा के मध्य में तथा कुसुंभ, मसूर, कुलथी, जौ, गेहूँ, मटर, अलसी और सरसों वर्षा के अंत में बोये जाते थे।

शालिर्ब्रीहिकोद्रव तिलप्रियंगुदारकवर काः पूर्वावापाः मुद्गमाषशैम्व्या मध्यवापाः।
कुसुम्भ मसूरकुलत्थ यवगोधूमकला यातसीसर्षपाः पश्चाद्वापाः।[1]

इस काल में मसालों में सफेद सरसों और धनिया का भी प्रयोग होने लगा।[2] चार प्रकार की इलाचियों का उल्लेख मिलता है—सफेद,कुछ काली पर सफेद, छोटी और काली चितकबरी और हरी।[3] एरिस्टोबुलस ने लिखा है कि भारत में दालचीनी, बालछड़ की भी खेती होती थी।[4] इस काल के कुछ अन्य मसालों चोरक, दमनक, मरुवक, शिग्रु, हरीतकी और मेषश्रृंग का उल्लेख मिलता है। दालों मे राजमाष का भी उत्पादन होने लगा।[5]

कौटिल्य लिखता है कि सभी फसलों में शालि धान्य आदि की फसल उत्तम होती है क्योंकि इसमें परिश्रम कम तथा उत्पादन अधिक होता है। केला आदि फलों की फसल मध्यम और ईंख की अधम होती है। ईख की बुवाई काफी श्रमसाध्य एवं व्ययसाध्य होती है। कुम्हड़े आदि लताओं के फल का उत्पादन करने के लिए जल के निकट का खेत अच्छा होता है। पिप्पली, मृद्वीक (अंगूर) और ईख के लिए उत्तम खेत वह होता है जिसके आसपास जल का बहाव हो। शाक और मूली कुयें के निकटवर्ती स्थान पर बोना चाहिये। सुगंधि द्रव्य, भैषज्य (औषधि), उंशीर (खस), ह्रीवेर (नेत्रवाला), पिण्डालु (रतालू, शकरकंद) आदि पैदा करने के लिए बीच में तालाब से घिरा खेत उत्तम होता था।

शाल्यादि जेष्ठम, षण्डो मध्यमः। इक्षुः प्रत्यवरः इक्षवो हि
वह्वावाधा व्ययग्राहिणश्च। फेनधातो वल्लीफ़लानाम्।
परीवाहान्ताः पिप्पली भृद्वीकेक्षूणाम् कूपपर्यन्ता शाकमूलानाम।[6]

इसी काल में फलों में इमली, करोंदा एवं खिरनी का भी उल्लेख मिलता है।[7] पतंजलि ने अनार[8] और अंगूरों[9] का उल्लेख किया है।

---

1 अर्थशास्त्र, 2 24।
2 कौटिल्य, 2 15.21।
3 मैक्रिडिल, पृ० 125।
4 वही, पृ० 28।
5 पतजलि सूत्र, 5 1 20।
6 अर्थशास्त्र, 13.2।
7 अर्थशास्त्र, 2 15, 19।
8 पतजलि सूत्र, 1 1 1।
9 वही, 6 3 42।

महाकाव्य कालीन उपज—महाकाव्यों में भी कृषि उपज का पर्याप्त वर्णन प्राप्त होता है। रामायण में उल्लिखित है कि अयोध्या के कृषक 'शालि' और विविध धान्यों से परिपूर्ण थे।[1] धान्य की संपन्नता से ही राज्य की समृद्धि का आंकलन किया जाता था। यव और गोधूम के अतिरिक्त शालि, ब्रीहि, कलम और षष्ठिक नामक कई प्रकार के चावल उस युग में पैदा किये जाते थे। दाल के लिए मुद्ग, माष, चणक और कुलित्थ का व्यवहार किया जाता था तथा गुड़ के लिए ईख बोयी जाती थी।[2] मसालों में अगुरू[3] शाकों में लाल कचनार के फूल[4] तथा फलों में कपित्थ[5] का फल प्रयुक्त किया जाता था। महाभारत में सांवा,[6] सन्[7] तथा फलों में आम, जामुन, बेर, बेल, ताल, खजूर[8] आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।

पतंजलि ने 'कृष्टपच्य' और 'अकृष्टपच्य' दो फसलों का उल्लेख किया है। ब्रीहि, शालि, यव, गोधूम, अणु (ज्वार-बाजरा), मूँग, तिल, सर्षप (सरसों), गर्मुत (मटर), उमा (अलसी), भंगा (सन) कार्पास, द्राक्षा आदि की खेती इस युग में निर्वाध रूप से की जाती थी। मनुस्मृति में भी मुख्य फसल के रूप में कपास, जौ, गेहूँ चावल, मूँग, तिल, उड़द, गन्ना आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।[9]

कुषाण कालीन उपज—चरक संहिता में अच्छे चावल की 15 किस्मों[10] तथा घटिया चावल की पाँच किस्मों[11] का उल्लेख मिलता है। तृण धान्यों में कोरदूषक[12] का भी उल्लेख है। सुश्रुत ने गेहूँ की दो किस्मों मधुलिका और नन्दीमुखी का वर्णन किया है।[13]

फलों में अन्य फलों के साथ नारंगी, कमरख, पारावत किस्म के सेव और बेर की एक किस्म सौवीर का वर्णन चरक संहिता में प्राप्त होता है। दालों, फलों, मसालों के अतिरिक्त कई किस्म के पत्ते

---

1 रामायण, अयोध्याकांड, 100 48।
2 रामायण 2 32 29, 2 80 7, महाभारत 5 155.7-9।
3 रामायण, अयोध्याकांड 32 20।
4 वही, 94 8।
5 वही 42 33।
6 महाभारत, वन पर्व 190.19।
7 वही, 190.19।
8 वही, 64.3-5।
9 मनु स्मृति, 9 330, 9.38-39, 6.11, 10 84।
10 चरक संहिता, 27 7-8।
11 वही, 27 11।
12 वही, 27 15-17।
13 सुश्रुत सहिता, 46 21।

के साग[1], ईख,[2] कपास,[3] अलसी और सन[4] की खेती भी की जाती थी।

गुप्त युग—गुप्त युग में कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई। अमरकोश में गेहूँ धान, ज्वार, ईख, बाजरा, मटर, दाल, तिल, सरसों, अलसी अदरक, सब्जी, कालीमिर्च आदि के उत्पादन का उल्लेख मिलता है।[5] इसी ग्रंथ में भूमि का विभाजन गेहूँ, जौ, तिल और चावल के उपयोगी होने के आधार पर किया गया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर भारत की मुख्य फसलें यही थीं।[6]

अष्टांग संग्रह में चावल की 44 किस्मों का उल्लेख है—

रक्तशालि, महाशालि, कलम, तूर्णक, शकुनाहृत, दीर्घ-शूक, रोघ्रशूक सुगंधक, पुँड्र, पुंडरीक, प्रमोद, गौर, सारिवा, कांचन, महिष-शुक, दूषक, कुसुमांडक, लांगल, लोहवाल, कर्दम, शीत-भीरूक, पतंग, तपनीय, षष्ठिक, महाब्रीहि, कृष्णब्रीहि, जातुमुख, कुक्कुटाण्डक, लावक, पारावतक, शूकर, वरक, उद्दालक, उज्ज्वल, चीन, शारद, दुर्दर, गंधन, कुरूवृन्द, यवक, हायन, पांसु, वाप्य और नैषधक।[7] इसमें कलम शालि विशेष रूप से बंगाल में उगाया जाता था। मगध में महाब्रीहि और अन्य स्थलों पर अन्य किस्में बोयी जाती थीं।

जौ की दो किस्में—यव और अणु यव[8]; गेहूँ की दो किस्में नन्दीमुखी और मधुलिका[9] बोयी जाती थी। दालों में उड़द, मूँग, कुलथी, चना, राजमाष, मसूर, अरहर सभी उगायी जाती थी। शाकों में अमरकोष में ककड़ी, पान, सुपारी, प्याज, लहसुन, काशीफल, लौकी सभी का उल्लेख है।[10] ईख की खेती व्यापक पैमाने पर की जाती थी। कपास अधिकतर सौराष्ट्र और काठियावाड़ में बोयी जाती थी।[11] कपास के अतिरिक्त क्षुमा और सन की भी खेती की जाती थी।[12]

---

1 जातक, 1 212, 4 445।

2 डायोडोरस, 2 36।

3 पेरिप्लस, 41।

4 दीघ्घ निकाय, 23 29, महाभारत 12 86 14।

5 अमरकोश, 2 9, 3 9।

6 वही, 9 6-8।

7 अष्टाग संग्रह, 7 3-12।

8 वही, 7 19।

9 वही, 7 14-22।

10 अमर कोश, 4 118, 120, 148, 149, 156।

11 वही, 4 116।

12 वही, 9 20।

तिलहन में मुख्य रूप से सरसो,[1] तिल[2] और अलसी[3] बोये जाते थे। मसालों में इमली,[4] पीपल,[5] कालीमिर्च,[6] छोटी इलायची,[7] बड़ी इलायची,[8] अदरक,[9] हल्दी,[10] अगरु[11] और बालछड़[12] आदि सभी का उल्लेख अमरकोश में है। लौंग[13] का उल्लेख रघुवंश व कुमार संभव में और केसर[14] का उल्लेख वृहत्संहिता में है। कालिदास के अनुसार कालीमिर्च और इलायची मलय पर्वत (नीलगिरि) के पास बहुत होते हैं। कास्मास ने भी इस प्रदेश को काली मिर्च का देश कहा है।

अमरकोश में फलों में आम,[15] ताड़ का फल,[16] नारंगी,[17] कटहल,[18] अनार,[19] अंगूर,[20] केला,[21] नारियल,[22] और जंगली खजूर[23] का उल्लेख है। कालिदास के अनुसार पूर्वी भारत में ताड़ के वृक्ष और कलिंग में नारियल के वृक्ष बहुतायत में होते थे। वृहत्संहिता में कटहल, केला, जामुन, अनार, अंजीर, अंगूर, आदि के पौधों का उल्लेख प्राप्त होता है।[24]

---

1 अमर कोश, 9 17।
2 वही, 9 19।
3 वही, 9 20।
4 वही, 4 44।
5 वही, 4 97।
6 वही, 9 35।
7 वही, 4 126।
8 वही, 4 125।
9 वही, 9 37।
10 वही, 9 41।
11 वही, 4 74।
12 वही, 4 134।
13 रघुवश, 6 57, कुमार सभव, 8 25।
14 वृहत संहिता, 10 12।
15 अमरकोश, 4 33।
16 वही, 5 10।
17 वही, 4 38।
18 वही, 4 61।
19 वही, 4 65।
20 वही, 4 108।
21 वही, 4 113।
22 वही, 4 169।
23 वही, 4 170।
24 वृहत्सहिता, 55 10-11।

600 ई० से 1200 ई० के बीच कृषि उपज—मध्य युग तक आकर कृषि का सुव्यवस्थित विकास हो चुका था। अनेक प्रकार के चावल, कोदो, सरसों, प्रियंगु, जर्तिल, निवार आदि की खेती होती थी। मसूर, कलाय, इल्ला और आढ़क की दालें खायी जाती थी जिन्हें सुनियोजित ढ़ंग से बोया जाता था।[1] सत्रह प्रकार के अन्नों का उल्लेख मेधातिथि (825-900 ई०) ने किया है।[2] शालि, ब्रीहि, को द्रव, मुद्ग, माष, सरसों, भंग, तिल, सन, अलसी, बाजरी, सब्जी आदि विशेष भूमि में बोयी जाती थी।[3] अरब लेखकों ने पश्चिमी भारत की भूमि को अत्यधिक उपजाऊ बताया है जहाँ नारियल, बादाम, संतरा, अंगूर, नीबू, आम आदि फल अधिकता से उत्पन्न होते थे।[4] हेमचन्द्र ने गोधूम, ज्वार, धान आदि का उल्लेख किया है।[5]

पूर्व मध्य काल के साहित्य में उन सब धान्यों का उल्लेख है जिनका प्रयोग गुप्तकाल में होता था। अभिधानरत्नमाला में अनेक धान्यों और उनके पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख है। उसमें तीन प्रकार के शालि चावल, कोदो, दो प्रकार की सरसों, पीपल, केसर, प्रियंगु, जंगली तिल, नीवार (जंगली चावल), मसूर, मटर, रल्ला[6] और अरहर की चार किस्मों का वर्णन है। क्षीर स्वामी (11वीं सदी का उत्तरार्द्ध) ने ब्रीहि चावल, जौ, मसूर, गेहूँ, मूँग, उड़द, तिल, चना, अणु, प्रियंगु कोद्रव (कोदो), मोठ, शालि चावल, अरहर, मटर, कुलथी और सन का उल्लेख किया है।[7]

मेधातिथि ने ईख,[8] कपूर और अगुरू (अगर)[9] का उल्लेख किया है। काव्यमीमांसा के एक श्लोक में पुंड्र (उत्तर बंगाल) की ईख की प्रशंसा की गयी है।[10] उपमितिभव प्रपंच कथा के अनुसार चंदन की गौशीर्ष किस्म बहुमूल्य समझी जाती थी। इस काल में नारंगी, अंगूर, खजूर, नारियल, अनार, आम, करौंदा लकुच, केला, कटहल और कैथ सभी फल उगाये जाते थे।[11]

कल्हण के अनुसार अंगूर कश्मीर में बोये जाते थे।[12] इदरिसी ने लिखा है कि खजूर और नारियल के पेड़ रत्नगिरि जिले और नारियल के पेड़ दक्षिणी कनारा जिले में बोये जाते

---

1 अभिधानरत्नमाला, 2 421-429।

2 मेधातिथि, मनु०, 8 320।

3 अभिधानरत्नमाला, 2 3-9।

4 ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ० 236-237।

5 देशीनाममाला, 8 8।

6 अभिधानरत्नमाला, 2.42, 5 29।

7 फूड एण्ड ड्रिंक्स इन ऐशियट इडिया, पृ० 203, टिप्पणी।

8 मेधातिथि, मनु०, 8.326।

9 वही, 8 321।

10 काव्यमीमासा, पृ० 12।

11 उपमितिभवप्रपंच कथा, पृ० 585।

12 राजतरगिणी, 1 42।

थे।[1] मानसोल्लास में छः प्रकार के शाकों का उल्लेख किया गया है।[2] सागों में काशीफल ककड़ी, मूली, बैगन, प्याज सभी की खेती होती थी।[3] पत्ते के सागों में विशेष रूप से पाठा, शूषा, शटी, वास्तुक (बथुआ) और सुनिषण्णक का उल्लेख मिलता है।[4]

इस काल के साहित्य से ज्ञात होता है कि मगध में बढ़िया किस्म का चावल बहुतायत से होता था।[5] मार्कोपोलो के अनुसार अदरक और दालचीनी पाण्ड्य राज्य में बहुतायत से होता था।[6] कपास और नील की खेती गुजरात में की जाती थी। बारहवीं सदी के लेखक सर्वानन्द ने अमरकोश पर टिप्पणी लिखते हुए कहा है कि ब्रीहि (चावल), आशुब्रीहि (शीघ्र पैदा होने वाला चावल), गोधूम, मुद्ग, कलाय, कुलत्थ आदि विभिन्न प्रकार के अन्न उत्पन्न होते थे। पटोल (परवल), कारवेल्लक (करेला), सोवंज (संजा), हिंचा शाक, कूष्मांड आदि अनेक सब्जियाँ भी उत्पन्न की जाती थी।[7]

600 ई0 से 1200 ई0 के बीच कृषि का पर्याप्त विकास हुआ। बारहवीं शताब्दी में भी यह प्रक्रिया तेजी से चलती रही। ग्यारहवीं सदी के मध्य में लिखे गये ग्रंथ कृषि परासर और 12 वीं सदी के ग्रन्थ वृक्षायुर्वेद से इस बात के स्पष्ट प्रमाण प्राप्त होते हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य में कृषि से संबंधित वनस्पतियों का वर्णन प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। संबंधित साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि किस समय विशेष में किस तरह के अन्न एवं फलों का उत्पादन किया जा रहा था। आगे चलकर इनके उत्पादन में किस तरह विकास संभव हो सका एवं संबंधित पौधे की अधिक उपजाऊ प्रजातियां विकसित की गयी। अधिक उत्पादन संभव होने से व्यापार-वाणिज्य का विकास हुआ एवं मानव जीवन में एक नयी क्रांति आयी। इस तरह कृषि से संबंधित साहित्य प्रकारांतर से मानव जीवन के विविध पहलुओं को भी रेखांकित करते हैं।

●

---

1 अरब ज्योग्राफर्स नालिज आफ सदर्न इडिया, अध्याय।

2 मानसोल्लास, 3 1548।

3 क्षीरस्वामी, अमर,,165।

4 काव्यमीमांसा, पृ० 245।

5 याज्ञवल्क्य स्मृति पर टीका, अपरार्क 1 212।

6 मार्कोपोलो, 2 389।

7 प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास जयशंकर मिश्र, पृ० 587।

अध्याय-3

औषधि-रूप में पेड़-पौधे और वनस्पतियाँ

प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ कृति है—मानव। अपने इस सर्वश्रेष्ठ कृति के संरक्षण संवर्द्धन के लिये प्रकृति अपनी व्यवस्था करती है। कहीं पर कोई भी व्यतिक्रम पड़ने पर रुग्णता की संभावना हुई तो उसके निवारण एवं जीवनी-शक्ति-संवर्द्धन हेतु धरती पर हरीतिमा की चादर बिछा दी। यह हरीतिमा न केवल पोषक तत्वों से भरपूर है अपितु इसमें अद्भुत गुणों वाली औषधियों का समुच्चय भी है। अमृत के समान गुणों वाली जड़ी-बूटियों को उसने अपने प्राकृतिक रूप में ही जीवित रखा, ताकि आवश्यकता पड़ने पर मनुष्य उसका प्रयोग कर सके।

वस्तुतः शरीर वनस्पतियों का ही परिवर्तित रूप है। वायु, अन्न, फल-फूल, शाक, शहद, शक्कर सभी वनस्पतियों के ही उत्पाद हैं। इन्हीं के आधार पर मनुष्य जीवित रहता है। यहाँ तक कि मांस भी उन्हीं प्राणियों का खाने योग्य होता है जो शाकाहारी होते हैं। जिन वनस्पतियों से शरीर बना है, उनमें कई प्रकार के रासायनिक तत्व होते हैं। इनका संतुलित मात्रा में बने रहना ही सबल एवं सुदृढ़ स्वास्थ्य का आधार है। इस रासायनिक संतुलन के बिगड़ने पर ही आ घेरती हैं तमाम किस्म की व्याधियाँ। इन गड़बड़ियों को ठीक करने के लिये रासायनिक संतुलन को बनाना पड़ता है। इसके लिये हमें वनस्पतियों का ही आश्रय लेना पड़ता है। यूँ तो शरीर में अनेकों तरह के खनिज, लवण, वसा, प्रोटीन आदि पदार्थ पाये जाते हैं पर वे अवयवों में रमते तभी हैं जब वनस्पतियों के माध्यम से उन्हें उपलब्ध कराया जाये। अन्य माध्यमों से उन्हें शरीर में प्रवेश कराने पर वे टिकते नहीं। शरीर की संरचना उन्हें धकेल कर बाहर निकाल देती है।[1]

भारतीय विद्याओं में आयुर्वेद की गौरवमयी परम्परा है। ऋषियों ने इसे अतिपुरातन एवं शाश्वत कहा है। सुश्रुत के अनुसार, ब्रह्म ने सृष्टि के पूर्व ही आयुर्वेद की रचना की। सभी संहिताकारों ने ब्रह्म से आयुर्वेद का प्रादुर्भाव माना है। भारतीय वांगमय के प्राचीनतम् ग्रंथ वेदों में आयुर्वेदीय तथ्यों का पाया जाना इसका प्रमाण है।

आयुर्वेद उतना ही पुराना है जितना इस सृष्टि का इतिहास। पीड़ित मानवता के लिये आदि देव ब्रह्म द्वारा इसे जन-जन के लिये सुलभ कराया गया। 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्' की मान्यता के

---

1 अखंड ज्योति, मथुरा, जून, 1998, पृ० 18।

अन्तर्गत शरीर एवं उसके अंदर सुरक्षित मन-मस्तिष्क एवं अंत:करण रूपी दिव्य भाण्डारागार की सुरक्षा करना, उसे सही स्थिति में बनाये रखना एक धर्म-साधन बताया गया है। महर्षि चरक के अनुसार ब्रह्म से आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष प्रजापति ने प्राप्त किया। प्रजापति से अश्विनी कुमारों ने और उनसे इंद्र ने उस ज्ञान को प्राप्त किया।[1] कई शास्त्रों-पुराणों में आचार्य धन्वंतरि को आयुर्वेद का जनक कहा गया है जिनकी उत्पत्ति समुद्र-मंथन के बाद निकले 14 रत्नों के रूप में हुई।

विद्वानों ने आयुर्वेद को ऋग्वेद के उपवेद के रूप में स्वीकार किया है। यद्यपि कुछ विद्वान इसे ऋग्वेद का तथा अधिकांश अथर्ववेद का अविच्छिन्न अंग मानते हैं। 'चरण व्यूह' तथा 'प्रस्थान भेद' में आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद माना गया है जबकि चरक, सुश्रुत, काश्यप आदि आयुर्वेदीय संहितायें आयुर्वेद का सम्बन्ध अथर्ववेद से मानती हैं। आज अधिकांश विद्वान इस मत पर सहमत हैं कि चिकित्सा शास्त्र का उपजीव्य मुख्यत: अथर्ववेद ही है। गोपथ ब्राह्मण में इसे 'यद् भेषजं तद् अमृतं यद् अमृतं तद् ब्रह्म' के रूप में निरुपित किया गया है।[2]

वेदों में रुद्र, अग्नि, वरुण, इंद्र, मरुत आदि देवताओं को भिषक कहा गया है, परन्तु अश्विनी कुमारों को 'देवानां भिषजौ' के रूप में निरुपित किया गया है। अश्विनी कुमार आरोग्य, दीर्घायु, शक्ति, प्रज्ञा, वनस्पति तथा समृद्धि के प्रदाता कहे गये हैं। वे सभी प्रकार के औषधियों के ज्ञाता थे। औषधियों से संबंधित दूसरे प्रमुख देवता 'रुद्र' हैं जिन्हें श्रेष्ठतम चिकित्सक कहा गया है—

भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि।[3]

रुद्र से ही औषधियों की याचना हुई है।

स्तुतस्त्वं भेषजा राशस्यमे।[4]

औषधि का अर्थ है—वेदना को दूर करने वाली वस्तु 'ओषं रुग्ज धयति इति औषधि:।' वेदों में औषधि के लिये माता शब्द प्रयोग किया गया है—'औषधि रीतिमातस्तद्रोदेवी रुपव्रके'।[5] वस्तुत: रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव के सिद्धांत को ही मूलभूत आधार मानकर आर्यो ने औषधि गुण धर्म शास्त्र की रचना की। प्राचीन आर्य ऋषियों के अवलोकन में जो-जो उपयुक्त वनस्पतियाँ आयी उन सबका रस, गुण, वीर्य आदि के आनुरोध से अभ्यास एवं शोध करने का दीर्घ परिश्रम उन्होंने किया तथा उनका वर्गीकरण करके उन्हें भिन्न-भिन्न गुणों में विभक्त कर दिया। दस-दस वनस्पतियों के 50 गण चरक ने किये। 760 वनस्पतियों के 37 गण गुण साम्यानुसार सुश्रुत ने किया।[6]

---

1 अखड ज्योति, मथुरा, जून, 1998, पृ० 14।

2 वही, पृ० 14।

3 ऋग्वेद, 2.33 4।

4 वही, 2 33 12।

5 अखड ज्योति, मथुरा, जून, 1998, पृ० 15।

6 धन्वन्तरि, वनौषधि विशेषांक, फरवरी-मार्च, 1961, पृ० 16।

वनस्पतियों का औषधीय गुण धर्मशास्त्र का पसंदीदा विषय रहा है।इससे यह तथ्य स्पष्ट होता है कि आर्य वैद्यक का यह विभाग प्राचीन काल में लम्बे अरसे तक प्रभावशाली था। परवर्ती ग्रन्थकारों ने इस विभाग में नूतन औषधियों का समावेश कर मानव जाति को चिरन्तन उपकृत किया है। यद्यपि विषय की प्रतिपादन शैली में भिन्नता है, किन्तु इस बात पर प्रायः सबने जोर दिया है कि जिन वनस्पतियों का उपयोग करना हो, वे सब वैद्य को अच्छी तरह परिचित होनी चाहिये। वैद्य को स्वयं जंगलों में जाकर स्थानीय निवासियों की सहायता से उपयुक्त वनस्पतियों को यथा-योग्य काल में संग्रह करना चाहिये।

वेदों में औषधीय वनस्पतियाँ—ऋग्वेद में औषधियों का वर्णन अपेक्षाकृत कम ही प्राप्त होता है, परन्तु अथर्ववेद में यह पर्याप्त रूप से वर्णित है। अथर्ववेदीय औषधीय विज्ञान पर्याप्त रूप से उन्नत था, जो दीर्घकालीन अनुभव एवं शोध का परिणाम था।

'सोम' नामक वनस्पति का उल्लेख ऋग्वेद में प्रमुखता से प्राप्त होता है। आयुर्वेद शास्त्रों में भी सोम का वर्णन किया गया है। सोम का प्रयोग प्राचीन काल में सोम याग में हुआ करता था। इसका वर्णन सुश्रुत ने विस्तार से किया है—

सर्वेषामेवं सामोनां पत्राणि दशपंच च। तानि शुक्ले च कृष्णे च जायंते निपतंति च॥
एकैकं जायते पत्रं सोमास्या हरहस्तदा। शुक्लस्य पौर्णमास्यांतु भवेत पंचदशच्छदः॥
शीर्यते पत्रमेकैकं दिवसे पुनः। कृष्णपक्ष क्षये चापि लता भवति केवला॥

इसके विषय में यह वर्णन मिलता है कि आरम्भ में इसका एक ही पौधा होता है—बिना पत्ते का। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को उसमें एक पत्ते का उद्भव होता है। द्वितीया को दो, तृतीया को तीन इसी तरह क्रमानुसार पूर्णिमा तक पन्द्रह पत्ते निकल आते हैं। तथा कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से क्रमशः एक-एक पत्ता रोज झड़ने लगता है। अमावस्या तक यह पौधा सूखी लकड़ी के सदृश्य रह जाता है परन्तु इस स्थिति में इसकी उपयोगिता काफी बढ़ जाती है। यह घटाटोप अंधकार में रेडियम धातु की तरह चमकता है तथा अत्यंत गुणकारी हो जाता है। इसके प्रमुख गुणों को बताते हुए कहा गया है।[1]—

अणिमा गरिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा। ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामाव संमिता॥

अर्थात—'अणिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा ईशत्व और वशित्व इन आठ ऐश्वर्ययुक्त सिद्धियों को संजीवनी उपलब्ध कराती है। इसे पाकर व्यक्ति देवतुल्य बन जाता है।'

शारीरिक स्तर पर संजीवनी (सोम) अग्नि, जल, विष, आदि का प्रभाव नहीं पड़ने देती। इसके सेवन से सुदृढ़ माँसपेशी, तेजस्वी दृष्टि, उच्च श्रवण शक्ति तथा नवजीवन की प्राप्ति होती है। तपेदिक, बाल रोग, मानसिक रोग, बुखार, दृष्टि-दोष, सर्प-दंश तथा भूत-प्रेत बाधा आदि से उत्पन्न

---

1 अखड ज्योति, मथुरा, जून, 1998, पृ० 22।

रुग्णता को दूर करने में भी इसका प्रयोग किये जाने का उल्लेख शास्त्रों में प्राप्त होता है। वर्तमान समय में यह दुर्लभ वनस्पति है। यद्यपि आयुर्वेद में चमकने वाली अन्य दिव्य औषधियों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार हैं—विपदा, गायत्री, रैक्त, अनिष्टम्, स्वयंप्रभ, एष्टम, पार्वत, जाग्रत, शांकर, अंशवान, करवीर, लालवृत्त, प्रतानदान, कनकप्रभ, श्वेतान, कनियान, दूर्वा, रजत प्रभ, अंशुमान, मंजुमान, चन्द्रमा, महासोम आदि।

यह सोमलता कहाँ पायी जाती है इस विषय पर महर्षि सुश्रूत[1] ने लिखा है—

हिमवत्यर्वुदे सह्ये महेन्द्रे मलये तथा। श्री पर्वते देवगिरौ गिरौ देवसहे तथा।
पारियात्रे च विन्ध्ये च देवसुंदे ह्रदे तथा।

आगे उन्होंने यह बताया है कि प्राचीन काल में इस पर बहुत अन्वेषण किया गया था पर किसी परवर्ती निघंटुकार ने इस पर प्रकाश नहीं डाला और अब यह औषधि सर्वथा लुप्त हो गयी है। कुछ लोग सोम का तादात्म्य आज के इफेड्रा वल्गेरिस (Ephedra vulgaris) से करते हैं लेकिन उक्त वर्णन को देखते हुए वह उचित प्रतीत नहीं होता।

ऋग्वेद के 10.145 सूक्त के छः श्लोकों में प्रथम पाँच द्वारा सपत्नीमर्दनी औषधि की प्रार्थना की गयी है। और अन्त में पति से कहा गया है कि इस अत्यंत बलवती औषधि लता को मैं खोद रही हूँ जिससे सौत को बाधा पहुँचती है और पति अनुकूल हो जाता है। औषधि से कहा गया है—'तू मेरी सौत को पराभूत कर दे और मेरे पति को पूर्णतया मेरे लिए अकेला कर दे।' फिर वह पति से कहती है—

उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधां सहीयसा मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा गरिव धावतु।।[2]

अर्थात—'हे पति! तुम्हारे तकिये के नीचे मैंने सौत को बाधा देने वाली सहमाना (पाठा) औषधि रख दी है। वह तकिया अब सपत्नीमर्दन हो गया है। तुम्हारा मन मेरे पीछे ऐसे दौड़े जिस प्रकार गाय बछड़े के पीछे भागती है या पानी मार्ग से चलता है।'

यजुर्वेद में औषधियों का उपयोग यज्ञकर्म एवं स्वास्थ्य के लिए करने का विधान है। शुक्ल यजुर्वेद में औषधियों की प्रशस्ति मिलती है तथा उनके द्वारा बलाश, अर्श, श्लीपद, हृदय रोग, कुष्ठ आदि रोगों के निवारण का उल्लेख मिलता है।

नाशयित्री बला सस्यार्शसऽउपचिंतामसि। अर्थोशतस्य यक्ष्माणाम्पाकारोरसिनाशिनी।।[3]

इसी क्रम में फलवाली, फलरहित, फूल वाली, फूल रहित इन सभी औषधियों द्वारा रोग मुक्ति की याचना की गयी है—

---

1 सुश्रुत संहिता, 6 8।

2 ऋग्वेद, 10 145 6।

3 वाजसनेयी—श्री शुक्ल यजुर्वेद संहिता, प० ज्वाला प्रसाद मिश्र, मुम्बई, संवत 1969, 12 97।

या फलिनीर्य्या अफला अपुष्पाया श्च पुष्पिणी। वृहस्पति प्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्व छ हंसः॥[1]

औषधीय गुण-धर्म वाली वनस्पतियों की कोई कमी नहीं है। वे असंख्य हैं एवं माता के समान है—

शतंव्वोऽ अम्बधामानिसहस्त्रमुतवोरुह। अधाशत क्रत्वोयूषमिमम्मेऽ अगदंकृत्॥[2]

अर्थात्-'हे माता की समान औषधियों, तुम्हारे नाम सैकड़ों हैं और तुम्हारे अंकुर असंख्य हैं। तुम्हारे सत्व से जगत के सब कार्य निर्वाहित होते हैं। इस कारण हे अनंतकर्मसाधक औषधियों तुम मेरे इस यजमान को क्षुधा, पिपासा, षडूर्मि आदि रोगों से रहित करो।'

औषधीय वनस्पतियों में पीपल, पलाश आदि का स्पष्ट उल्लेख यजुर्वेद में प्राप्त होता है।

अश्वत्थेवो निषद नम्पर्णे वोवसविष्कृता। गोभाजऽ इत्किलासथत्सनवध पुरुषम्॥[3]

'अश्वत्थ के फलने से सर्वोषधि फलवती होती है। पलाश फलने से ब्रीहि आदि में फलता होती है। इसलिए हे औषधि तुम भूमि में निवास करो।'

सामवेद में औषधियों का वर्णन परोक्ष रूप में ही प्राप्त होता है। वैसे भी सामवेद के मौलिक सूक्तों की संख्या अत्यल्प ही है और अधिकाँश सूक्त पूर्ववर्ती वेदों से ही लिये गये हैं। एक श्लोक में कहा गया है कि 'देदीप्यमान अग्नि को औषधियाँ अपने भीतर रस-रूप से धारण करती हैं और उसी (अग्नि) को बड़े-बड़े वृक्ष एवं लतायें धारण करती हुई अपनी-अपनी वंश वृद्धि में प्रदत्त रहती हैं।

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयंत मातरः।
तमित समानं वनिनश्च वीरुधो ऽ न्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा॥[4]

उक्त श्लोक में वनस्पतियों के अन्दर की औषधीय शक्ति का वर्णन किया गया है जो अग्नि के समान ही रोगों को अपने ताप से जला डालता है। एक अन्य श्लोक में कहा गया है—

तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि॥[5]

अर्थात—'हे परमेश्वर, ज्ञान प्रकाशक तेरी विभूतियाँ मेघ की विभूतियों के समान या प्रभातकाल में निकलती हुई किरणों के समान सर्वत्र जानी जाती हैं। मुख में अन्न के समान समस्त औषधियों, वृक्षादि वनस्पतियों को तू अपने भीतर ले लेता है।'

---

1 वाजसनेयी श्री शुक्ल यजुर्वेद संहिता, पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र, मुम्बई, सवत 1969, 12 89।

2 वही, 12 76।

3 वही, 12 79।

4 सामवेद, संपा०—श्रीरामशर्मा आचार्य, बरेली, 1996, आरण्यकाड, 20 1-3।

5 वही, उत्तरार्चिक 6 3 1।

औषधीय वनस्पतियों की वायु भी रोग-व्याधि नाशक होती है।

वात आ वातु भेषज शंभु मयोभु नो हृदे। प न आयूषि तारिषत ।।[1]

अर्थात—'हमारे हृद्य के लिए कल्याणकारी, सुखदाता औषधि की वायु हमें प्राप्त करायें जिससे हमारी आयु की वृद्धि हो।'

ऋग्वेद में जो तथ्य सूत्ररूप में हैं, उनका विस्तृत विवरण अथर्ववेद में प्राप्त होता है। आयुर्वेद का मौलिक सिद्धान्त त्रिदोष है, जिस पर उसके सभी अंग आधारित हैं। आयुर्वेद की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि के विकास का निदर्शन अथर्ववेद में मिलता है। अथर्ववेद में वनस्पतियों का उपयोग अलग-अलग तथा स्वतन्त्र रूप में मिलता है। इसमें रसायन के द्वारा मनुष्य को अजर-नीरोग एवं दीर्घायु बनाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

महारोगों का नाश करने वाली औषधियों का वर्णन करते हुए पृश्निपर्णी नामक औषधि से नाना प्रकार के रोग दूर करने की बात कही गयी है। अथर्ववेद में (2.25.1-5) पृश्निपर्णी औषधि का वर्णन मिलता है। इसके गुणों को निम्न श्लोक में स्पष्टतया देखा जा सकता है—

शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निऋत्या अकः। उग्रा हि कण्व जंभनी तामभक्षि सहस्वतीम् ।।[2]

'पृश्निपर्णी नाम की औषधि (देवी) जो दिव्यगुणवाली है, हमारा कल्याण करे और पाप प्रवृत्ति को दूर करे। क्योंकि पाप और पाप से उत्पन्न होने वाले कुष्ठ आदि रोगों को दूर करने वाली वह बड़ी गुणकारी औषधि है। रोग शमन करने वाली उस औषधि का मैं सेवन करता हूँ।' पृश्निपर्णी नामक औषधि का तादात्म्य पृश्निपर्णी, चित्रपर्णी, श्वपुच्छी, कलशी, धावनी, गुहा, शृंगालविन्ना, सिंह पुच्छी आदि नाम वाली वनस्पतियों से भी किया जाता है। यह अतिसार, कास, वातरोग, ज्वार, उन्माद आदि रोगों का नाश करती है।

अथर्ववेद के चौथे अध्याय के सूक्त 17 से 20 तक अपामार्ग के बारे में वर्णन प्राप्त होता है। अपामार्ग के रोग नाशक गुणों का उल्लेख करते हुये कहा गया है।

क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामन पत्यताम्। अपामार्ग त्वया वयं सर्व तदप मृज्महे ।।[3]

बहुत भूख और प्यास लगना, इंद्रिय या वाणी का दोष, वंध्यापन अर्थात नपुंसकता, हे अपामार्ग तेरी सहायता से उक्त सब दोषों को हम दूर करते हैं। एक अन्य श्लोक[4] में कहा गया है—'हे अपामार्ग औषधि। तू सब औषधियों को वश में रखने वाली औषधि है। उससे शरीर में स्थित अनेक रोगों को हम दूर करते हैं।'

---

1 सामवेद, संपा०—श्रीरामशर्मा आचार्य, बरेली, 1996; आग्नेय कांड 1 4 10।

2 अथर्ववेद संहिता, प्रथम खण्ड, भा०-प० जयदेव शर्मा, अजमेर, सं० 1985 वि०, 2 25.1।

3 वही, 4 17 6 ।

4 वही, 4 17 6 ।

इसी तरह कुष्ठ रोग दूर करने वाली औषधियों के रूप में नक्त (गुग्गुलू, करंज, फँजी), रामा (रोचना, लक्ष्मणा), कृष्णा (काली तुलसी, नील, पुनर्भवा, द्राक्षा या पिप्पली), असिक्नी एवं रजनी (हरिद्रा,दारुहरिद्रा, शिशपा या मूर्वा) का उल्लेख किया गया है—

नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च। इदं रजनि रजय किलासं पालितं च यत।।[1]

पीपल, दर्भ (कुशा),सोमलता, यव और धान को भी अनेक रोगों का शामक बताया गया है—

अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः। ब्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्राव मर्त्यौ।।[2]

अन्य रोग नाशक वनस्पतियों में वरण (तमाल)[3], पिप्पली[4], सुपर्ण (सप्तपर्णी)[5] और कूठ[6] आदि का विस्तृत वर्णन अथर्ववेद में प्राप्त होता है। एक अन्य स्थल पर[7] दशवृक्षमणि का वर्णन आया है। विद्वानों के अनुसार ढ़ाक, गूलर, जामुन, काम्पील, स्रक, वंध, शिरीष, स्रक्ति, वरण, बिल्व, कुटज, गृह्य, गलाबल, वेतस, शिम्बल, सिपुन, स्यंदन, अरणि, अष्मयोक्त, तुन्यु, और पुतदारु, इन 21 वृक्षों में से किसी 10 वृक्षों की लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े की मणि ही दशवृक्षमणि कही जाती है।

दशवृक्ष! मुंचेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु। अथो एनं वनस्पते! जीवानां लोकमुन्नय।।

अर्थात—'हे दस वृक्ष! राक्षसी जकड़ने वाली गठिया (रोग) की पीड़ा से इसे छुड़ा दे, जिस रोग ने इसको जोड़ों में पकड़ रखा है। हे वनस्पति! इसको जीवित लोगों के स्थान में जाने योग्य ऊपर उठा।[8]

एक अन्य मन्त्र में कहा गया है—

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः। तत परे परेताप्सरसः प्रतिवुद्धा अभूतन।।

अर्थात—'जहाँ पीपल, वट आदि महावृक्ष और मोर आदि पक्षी या चूड़ामणि या काकमाची (मकोय) के पौधे हैं वहाँ से इनके प्रभाव से हे प्रजाओं में फैलने वाली व्याधियों। दूर भाग जाओ क्योंकि तुमको पहचान लिया गया है।[9]

---

1 अथर्ववेद संहिता, प्रथम खण्ड, भा०-प० जयदेव शर्मा, अजमेर, स० 1985 वि० 1 23 1।

2 वही, 8 7.20।

3 वही, 6 85 1।

4 वही, 6 110 3।

5 वही, 1 24.1।

6 वही, 5 4 1-10।

7 वही, 2 7।

8 काव्य मे पादप पुष्प—प्रो० श्रीचन्द्र जैन, भोपाल, 1958, पृ० 61।

9 वही, पृ० 60।

वैदिकोत्तर ग्रन्थों में औषधीय वनस्पतियाँ—ब्राह्मण ग्रंथों तथा उपनिषदों में भी आयुर्वेद की प्रचुर सामग्री मिलती है। ऐतरेय ब्राह्मण में औषधियो के रोग निवारक तत्व अंजन से नेत्र रोग निवारण, वरुण कोप से जलोदर रोग की उत्पत्ति आदि का उल्लेख किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ से रोग-निवारण की विधियों का विस्तार से उल्लेख किया गया है। इसमें अग्निहोत्र में प्रयुक्त किये जाने वाली वनौषधियों का वर्णन मिलता है। एक वर्णन के अनुसार अपामार्ग होम द्वारा देवताओं ने राक्षसों को अपने मार्ग से हटा दिया था। ध्यातव्य है कि यहाँ रोगों को प्रतीक रूप में 'राक्षस' की संज्ञा दी गयी है। मार्कण्डेय पुराण में इस पौधे का नाम आघाट दिया गया है। एकलिग रचित शतपथ ब्राह्मण (भाग 3) में यह स्पष्ट किया गया है कि अर्क को हवियों के रूप में प्रयुक्त किया जाता था। अर्क को अन्न कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण के नवम खंड के शतरुद्रीय में रुद्र को समर्पित 425 हवियों में से एक हवि अर्क पत्र की भी है। तैतरीय संहिता के अनुसार 'अवका' यज्ञ विषयों में प्रयुक्त किया जाता था। वस्तुतः यह एक जलीय वनस्पति है। क्रमुक लाल रंग के मीठे फल वाला एक ऐसा वृक्ष है जिसे हवन करने के बाद उसका भस्म नहीं मिलता। वैद्यक ब्राह्मणों से अश्वत्थ, अश्ववाल, उदुम्बर, कापर्मर्य, छादिर, गवेधुक, सोम आदि औषधि-वनस्पतियों का वर्णन मिलता है जिनका प्रयोग शरीर एवं मन को निरोग तथा शांति बनाये रखने के लिए किया जाता था।[1]

यज्ञ संबंधी प्रयोजनों में वनस्पतियाँः वर्तमान विमर्श—वेदों में यज्ञ अनुष्ठानों पर विशेष बल दिया गया है। यजुर्वेद की रचना ही यज्ञीय प्रयोजनों के लिए की गयी। इन यज्ञों में अन्नों, विभिन्न वृक्षों की समिधाओं, घृत, फल आदि को अग्नि में समर्पित किया जाता था। आधुनिक काल में बहुत दिनों तक इसे अंधविश्वास माना गया। परन्तु वर्तमान शोधों से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि इसके भी औषधीय संदर्भ हैं।

किसी भी पदार्थ का रासायनिक गुण धर्म उसकी भौतिक अवस्था पर आधारित होता है। पदार्थो की ठोस अवस्था की अपेक्षा सूक्ष्म अवस्था में पदार्थो के घटक अत्यधिक संख्या में परस्पर मिलते हैं। इसलिए पदार्थ की वाष्पीय अवस्था में इनका संबंध बढ़ जाता है। हवन सामग्री को जलाने से उत्पन्न होने वाले अल्डीक्लाइड, एमाइन्स, पिलोनिलिक, सायक्लिक, टर्येनिक श्रेणी के पदार्थो की पहचान हो चुकी है। केसर में लीन रंगद्रव्य, एक उड़नशील तेल, स्थिर तेल, कोसीन नामक ग्लूकोसाइड तथा पिकोकोसीन नामक तिक्त तत्व शर्करा होती है। इसकी भस्म में पोटेशियम और फास्फोरस होता है। यह मस्तिष्क को बल देता है। केसर वातावरण को परिष्कृत करता है। गुलाब में टैनिक एसिड एवं गैलिक एसिड होता है। चंदन का हवन करने से वायुमंडल शुद्ध एवं सुगंधित होता है। यह शामक, दुर्गंधहर, दाहप्रशमन तथा रक्तशोधक है। हवन में इसका प्रयोग मानसिक व्यग्रता एवं दुर्बलता को दूर करने के लिये किया जाता है।

---

1 अखण्ड ज्योति, मथुरा, जून, 1998, पृ० 26।

वनौषधियों में ब्राह्मी मेधावर्द्धक तथा मानसिक विकार, रक्त, श्वांस तथा त्वचा संबंधी रोगों का निवारक माना जाता है। वायुमंडल का शोधन करने के लिए जायफल एवं जावित्री का हवन किया जाता है। शतावरी का हवन वात, पित्त विकारो को दूर करने के लिए किया जाता है। यह नाड़ीबलदायक भी है। अश्वगंधा का हवन बलवर्द्धक एवं पुष्टिदायक होता है। वट-वृक्ष की समिधा का प्रयोग रक्त विकारों को दूर करने के लिए किया जाता है। कपूर के धुयें में नजला नाशक गुण होता है। खांड़ का हवन हैजा, टी०बी०, चेचक आदि बीमारियों की शीघ्र नष्ट करता है।

शिवपुरी महाराष्ट्र के वेद विज्ञान अध्ययन संस्थान के अनुसार अग्निहोत्र में विशिष्ट वनौषधियों का प्रयोग कर न केवल शारीरिक एवं मानसिक रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है, बल्कि वातावरण को भी शुद्ध एवं परिष्कृत किया जा सकता है।

डेंगू रोग के लिए हवन ही एकमात्र सार्थक एवं पूर्ण उपचार हो सकता है। यज्ञ के अन्त में प्राप्त वनौषधियों के भस्मों का भी उपयोग रोगोपचार के लिए किया जाता है। डॉ० सेल्वामूर्ति के अनुसार यज्ञ से तनाव कम होता है एवं मानसिक शांति में अभिवृद्धि होती है। इससे मस्तिष्कीय अल्फा तरंगों में 20% की वृद्धि देखी गयी है।[1]

रोगियों की प्रकृति एवं रोग के आधार पर ही विभिन्न वनौषधियों के प्रयोग का विधान है। प्रत्येक रोग के लिये इसका अनुपात एवं प्रकार अलग-अलग होता है। शीत ज्वर में पटोल पत्र, नागरमोथा, कुटकी, नीम की छाल एवं पुष्प, गिलोय, करंचा आदि से बनी हवन सामग्री का प्रयोग किया जाता है। खाँसी के लिए मुलहठी, पान, हल्दी, अनार, कटेरी, अंजीर की छाल एवं लौंग का उपयोग किया जाता है। जुकाम हेतु दूब, पोस्त, कासनी, अंजीर, सौंफ, बहेड़ा, धनिया, एवं काली मिर्च लिया जाता है। मंद बुद्धि के लिए शतावरी, ब्राह्मी, ब्रह्मदंडी, शंखपुष्पी, मंडूकपर्णी, वच एवं मालकौगनी की हवन सामग्री बनायी जाती है। मस्तिष्क रोग में बेर की गुठली का गूदा, मौलश्री की छाल, पीपल की कोंपल, इमली के बीजों का गूदा, काखजंघा, बरगद के फूल, सिरेटी, गिलोय का प्रयोग किया जाता है। चर्म रोग हेतु शीतलचीनी, चोपचीनी, नीम के फूल, चमेली के पत्ते, दारुहल्दी, कपूर, मेथी एवं पद्माख, और रक्तविकार से छुटकारा पाने के लिए धमासा, शाखा, अडूसा, सरपौंखा, मजीठ, कुल्की तथा रासना की हवन सामग्री का निर्माण किया जाता है।[2]

महाकाव्यों में वर्णित वनौषधियाँ—रामायण में स्पष्टतः वृक्ष-वनस्पतियों का उल्लेख विविध प्रकार के रोगों को दूर करने में प्राप्त होता है। यद्यपि यह वर्णन यत्र-तत्र ही प्राप्त होता है। रामायण में वर्णित वृक्ष वनस्पतियों में कुटज, अर्जुन, कदंब, नीम, अशोक, सप्तपर्ण आदि प्रमुख हैं। इसमें दिये गये आसवों के नाम, यानभूमि का उल्लेख पूर्णतया आयुर्वेद ग्रंथों के सदृश है। रामायण में युद्धकांड

---

1 अखड ज्योति, मथुरा, जून, 1998, पृ० 26-27।

2 वही, पृ० 27।

(औषध पर्वतानयन अध्याय) में औषधि पर्वत का वर्णन हुआ है। इसी पर्वत को हनुमान लंका में लाये थे।

मृतसंजीवनीं चैव विशल्यकरणीमपि। सुवर्णकरणीं चैव संधानीं च महौषधीम्।।
ताः सर्वा हनुमन्गृह्य क्षिप्रमार्गन्तु मर्हसि।[1]

औषधियाँ मृतसंजीवनी, सुवर्णकरणी तथा संधानकरणी थीं, जिन्हें हनुमान लक्ष्मण के मूर्छा के उपचारार्थ हिमालय पर्वत से लाये। इस क्रम में 4 तरह की औषधियों का वर्णन मिलता है—

(1) **विशल्यकरणी**— शरीर में धँसे हुए बाण को निकालकर घाव भरने एवं पीड़ा दूर करने वाली,

(2) **सावर्ण्यकरणी**—शरीर में पहले की सी रंगत लाने वाली,

(3) **संजीवकरणी**—मूर्छा दूर कर चेतना प्रदान करने वाली,

(4) **संधानी**— टूटी हड्डियों को जोड़ने वाली।

एक अन्य उल्लेख में काले छिलके वाले गजकंद का वर्णन मिलता है—

सः लक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा मेध्यं प्रतापवान्। अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्धे जातवेदसि।
ततं तु पक्वं समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम्। लक्ष्मणः पुरुष व्याघ्रमथ राघवमब्रवीत।[2]

लक्ष्मण ने पवित्र एवं काले छिलके वाले गजकंद को उखाड़कर प्रज्ज्वलित आग में डाल दिया। रक्तविकार का नाश करने वाले उस गजकंद को भलीभांति पकाया गया।

टीकाकारों ने 'छिन्नशोणितम्' की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—'छिन्नशोणितम् रक्तविकार रूपं रोगजातः येन सः तम्।' वस्तुतः गजकंद रोगविकार का नाशक है। यह वैद्यक में प्रसिद्ध है। मदनपाल निघण्टु के 'षटदोषादिकुष्ठहंता' आदिवचन से भी यह चर्मदोष एवं कुष्ठ आदि रक्तविकार का नाशक सिद्ध होता है।

महाभारत में अश्विनौ का उल्लेख चिकित्सा के संदर्भ में आता है। भीम को विषपान से मुक्ति, काश्यप द्वारा तक्षक साँप से काटे हुये सुखे वृक्ष को पुनर्जीवित कर हरा-भरा बनाना, भीष्म की चिकित्सा के लिए दुर्योधन द्वारा शल्य चिकित्सा निपुण वैद्यों को साथ लाने की घटनायें स्पष्ट करती हैं कि महाभारत काल में आयुर्वेद अति विकसित अवस्था में था। कच द्वारा संजीवनी विद्या प्राप्त करना एवं युधिष्ठिर के पास वैद्यों का होना भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है।

---

1 वाल्मीकि रामायण, युद्ध काड, 74 33।

2 वही, बालकांड 56 26-27।

बौद्ध ग्रंथ 'सद्धर्म पुण्डरीक' मे आयुर्वेद परम्परा का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अनुसार—'जिस प्रकार इस त्रिसहस्त्र-महासहस्त्र लोक धातु में पृथ्वी, पर्वत और गिरिकंदराओं में उत्पन्न हुये जितने तृण, गुल्म औषधि-वनस्पतियाँ हैं, उन सबको महाजल मेघ समकाल में वारिधार देता है।'एक अन्य ग्रन्थ 'विनय पिटक' में स्वेद कर्म, रक्तमोक्षण, काढ़ा पीने, घाव भरने आदि चिकित्सा कर्मो की विवेचना हुई है। बौद्धकाल के प्रमुख आयुर्वेदिक ग्रंथ 'नवनीतकम' में पाचन, रसायन, बाजीकरण के योग, मुखलेप आदि का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।

संहिता ग्रन्थों में वनौषधियाँ—विषय के समस्त अंग जिसमें समाहित हों, उसे संहिता कहते हैं। प्रारंभिक काल में आयुर्वेद की अनेक संहिताओं की रचना विभिन्न महर्षियों द्वारा हुई। प्राचीन संहिताओं में चरक संहिता, सुश्रुत संहिता तथा काश्यप संहिता प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रथम दो संहितायें पूर्ण रूप से मिलती हैं जबकि अन्य संहिता खंडित रूप में उपलब्ध है। इनमें भी चरक संहिता संदर्भित विषय के मद्देनजर बहुत महत्वपूर्ण है जिसमें विभिन्न रोगों के उपचारार्थ वानस्पतिक औषधियों का उपयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है—

चरक संहिता के पहले अध्याय के अंतर्गत ही 16 मूलिनी (ऐसे पौधे जिनका मूल प्रयोग होता है), 19 फलिनी (जिनका फल प्रयुक्त होता है) तथा 6 शोधनीय वृक्षों का उल्लेख किया गया है।[1] ये 16 मूलिनी द्रव्य हैं—

हस्तिदंती हैमवती श्यामा त्रिवृदधोगुडा। सप्तला श्वेतवामा च प्रत्येक श्रेणी गवाक्ष्यपि।
ज्योतिष्मती चविम्बी च शणपुष्पी विषाणिका। अजगंधा द्रवंती च क्षीरणी चात्र षोडशी।।[2]

हस्तिदंती (नागदंती), हैमवती (सफेद वच), श्यामा (काला निशोथ), त्रिवृत्त (सफेद निशोथ), अधोगुडा-विधारा (वृद्धदारुक), सप्तला (सतधरिया सेंहुड़), श्वेतनामा (श्वेत अपराजिता), प्रत्यश्रेणी (दंती), गवाक्षी (इन्द्रायण), ज्योतिष्मती (मालकांगनी), बिम्बी (कुंदरु), शणपुष्पी (वन सनई), विषाणिका (काकड़ासिंगी), अजगंधा (वन अजवाइन), द्रवंती (दंती भेद), क्षीरिणी (स्वर्णक्षीरी-दुग्धिका)। इनमें से वनसनई, कुंदरु और वच का प्रयोग वमन के लिए, अपराजिता एवं मालकांगनी का प्रयोग शिरोविरेचन के लिए और शेष ग्यारह औषधियों का प्रयोग विरेचन कर्म में होता है। 19 फलिनी द्रव्य इस प्रकार हैं—

शंखिनाथ विडंगानि त्रपुषं मदनानि च। धामार्गवमथेक्ष्वाकु जीमूतं कृतवेधनम्।।
आनूपं स्थलजं चैव क्लीतकं द्विविधं स्मृतम्। प्रकीर्या चोदकीर्या च प्रत्यकपुष्पी तथाऽ भया।।
अंतःकोटरपुष्पी च हस्तिपर्ण्याश्च शारदाम्। कंपिल्लकारग्वधयोः फलं यत कुटजस्य च।।[3]

---

1 चरक सहिता—संपा० राजेश्वर दत्त शास्त्री एवं अन्य, वाराणसी, 1969, दीर्घजीविताध्याय 1 75-76।

2 वही, दीर्घजीविताध्याय 1 79।

3 वही, दीर्घजीविताध्याय 1.82-84।

शंखिनी (यवतिक्ता), विडंग (वायविडग), त्रपुष (तिक्त खीरा), मदन-मैनफल, धामार्गव (तरोई), इक्ष्वाकु (तितलौकी), जीमूत-बंदाल (देवदाली), कृतवेधन (तिक्त तरोई), आनूपक्लीतक (मुलेठी), स्थलक्लीतक (भू-मुलेठी), प्रकीर्या-लता करंज, उदकीर्या (घियाकरंज), प्रत्यकपुष्पी (अपामार्ग), अभया (हरीतकी), अंत:कोटरपुष्पी (नीलवुघ्ना-नील), हस्तिपर्णी शारद (शरद ऋतु में होने वाली कड़वी ककड़ी), कम्पिल्लक (कवीला), आरग्वध (अमलतास), कुटज फल (कुरैया-इंद्रयव)। इनमें से धामार्गव, तितलौकी, बन्दाल, कडुई तरोई, मदनफल, इंद्रयव, खीरा, कड़वी ककड़ी ये औषधियाँ वमन और आस्थापन कर्म में प्रयुक्त होती हैं। अपामार्ग का प्रयोग शिरोविवेचन कर्म में होता है जबकि शेष 10 का प्रयोग विरेचन कर्म में होता है।

शोधनार्थ तीन वृक्ष हैं—

स्नुहार्काश्मन्तका स्तेषामिदं कर्म पृथकपृथक ।।[1]

स्नुही (सेहुड़), अर्क (मदार) और अश्मंतक ये तीन शोधनार्थ वृक्ष हैं। स्नुही का प्रयोग विरेचन के लिए, अर्क का प्रयोग वमन एवं विरेचन दोनों के लिए तथा अश्मंतक का प्रयोग वमन के लिये किया जाता है। इसी क्रम में तीन अन्य वृक्षों का भी उल्लेख है जिनकी छाल शोधनार्थ प्रयुक्त होती है। ये हैं—पूतीक, कृष्णगंधा एवं तिल्वक।[2] विरेचन कर्मो के लिए पूतीक एवं तिल्वक का प्रयोग, विसर्प शोध, अर्श दद्रु, विदधि, गलगंड, कुष्ठ और अलर्जी रोगों में शोधन के लिए कृष्णगंधा का प्रयोग करना चाहिये।

यहाँ पूतीक का अर्थ—'चिरबिल' से, कृष्णगंधा का अर्थ—'सहिजन' से एवं तिल्वक का अर्थ 'सावर लोध' से माना जाता है। कृष्णगंधा की छाल के लेप द्वारा विसर्प, शोथ, दाद आदि रोगों में रक्तशोधन होता है। पूतीक एवं तिल्वक की छाल का प्रयोग विरेचन कर्मो में होता है। महर्षि सुश्रूत ने भी यही उल्लेख किया है—

त्रिवृत्ता श्यामा दंती...तिल्वक कंपिल्लक...पूतीक महावृक्ष सप्तच्छद ज्योतिष्मती चेत्यधोभागहराणि ।।[3]

वानस्पतिक औषधियों का वाह्य प्रयोग भी होता है। इसके लिये संबंधित वनस्पति के विभिन्न अंगों के चूर्ण या लेप को प्रयुक्त किया जाता है। चरक संहिता में ऐसे छः प्रकार के चूर्ण या लेप का उल्लेख किया गया है—

आरग्वधः सैडगजः करंजो वासा गुडूची मदनं हरिद्रे। श्रयाह्वः सुरह्वः खदिरो धवश्च निंबो विडंगकरवीरकल्वम् ग्रंथिश्च भौर्जो लशुनः शिरीषः सलोमशो गुग्गुल कृष्ण गंधे। फणिञ्झको

1 चरक संहिता—संपा० राजेश्वर दत्त शास्त्री एवं अन्य, वाराणसी, 1969, दीर्घजीविताध्याय 1.115।

2 वही, दीर्घजीविताध्याय 1.117।

3 सुश्रुत संहिता, अध्याय 39।

वत्सकसप्तपर्णो पीलूनि कुष्ठं सुमनः प्रवाला ।। वचा हरेणुस्त्रिवृत्ता निकुंभो भल्लातकं गैरिकमंजन च। मनः शिलाले गृहधूम एला काशीसलोध्रार्जुनमुस्तसर्जाः ।[1]

1 अमलतास, चकवड़, करंज, अडूसा, गिलोय, मैनफल, हल्दी, दारुहल्दी, 2 श्रयाह्व (गंधाविरोजा), देवदारु, खदिर, धव, नीम, वायविडंग और कनेर की छाल, 3 भोजपत्र की गाठे, लहसुन, शिरीष, लोमश (काशीस), गुग्गुलु और सहिजन, 4. फणिज्झक (वन तुलसी), कुटज, सप्तपर्ण, पीलू, कुठ, चमेली की पत्तियाँ, 5 कड़वा वच, हरेणु (संभालू के बीज), सफेद निशोथ, दंती मूल, भिलावा, गेरु और काला सुरमा 6. मैनशिल, पिड हरताल, घर का धूम, बड़ी इलायची, काशीस, लोध, अर्जुन, नागरमोथा, राल (करायल)। यह कृच्छ्र साध्य कुष्ठ, नया किलास रोग (Leucoderma), इंद्रलुप्त (Alopecia), कुष्ठ भेद, दाद, भगंदर (Fistula-in-Ano), अर्श (Piles), अपची और पामा (Scabies) रोगों को शीघ्र नष्ट करता है।

चरक संहिता के चौथे अध्याय में 50 महाकाषाय (Decoctives) का वर्णन किया गया है। प्रत्येक महाकाषाय के अंतर्गत दस-दस वानस्पतिक औषधियों को रखा गया है। उदाहरण के लिए वृहणीय महाकाषाय (Weight promoting drugs) का वर्णन इस तरह है—

क्षीरिणी राजक्षवकाश्वगंधा काकोली क्षीर काकोली वाट्यायनी भद्रौदनी।
भारद्वाजी पयस्यर्ष्यगन्धा इति दशेमानि वृहणीयानि भवंति।।[2]

क्षीरिणी (क्षीर लता), राजक्षवक (दुग्धिका), असगंध, काकोली, क्षीरकाकोली, वाट्यायनी (श्वेतबला-कंघी), भद्रौदनी (पीतबला), भरद्वाजी (विदारीकंद), ऋष्यगंधा (विधारा) इन 10 औषधियों को वृहणीय गण कहते हैं।

लेखनीय महाकाषाय (Weight Reducing Drugs) के अतंर्गत आने वाली औषधियाँ हैं—

मुस्तकुष्ठ हरिद्रा दारुहरिद्रा वचातिविषा कटु रोहिणी चित्रक।
चिरबिल्व हैमवत्य इति दशेमानि लेखनीयानि भवंति।।[3]

नागरमोथा, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, वच, अतीस, कटुकी, चित्रक, चिरबिल्व (करंज), हैमवती (सफेद वच) ये 10 लेखनीय महाकाषाय कहे जाते हैं।

बल्य महाकाषाय (Tonics) के अंतर्गत आने वाली औषधियाँ हैं—

ऐन्द्रयृषभ्यतिरसर्ष्य प्रोक्तापयस्याश्वगंधास्थिरा। रोहणी बलातिबला इति दशेमानि बल्यानि भवंति।।[4]

---

1 चरक सहिता, दीर्घजीविताध्याय 3 3-5।

2 चरक सहिता, 4 2।

3 वही, 4 3।

4 वही, 4 7।

ऐन्द्री (गोरक्षकर्कटी), ऋषभी (शूकशिम्बा-केंवाच का बीज), अतिरसा (शतावरी), ऋष्यप्रोक्ता (मांसपर्णी), पयस्या (क्षीर विदारी या काकोली), असगंध, स्थिरा (सरिवन), रोहिणी (कटुकी), बला, अतिबला (कंघी) ये दस औषधियाँ बल्य कही जाती है।

हृद्य महाकाषाय (Cardiac tonics) का वर्णन इस प्रकार है—

आम्राम्रातकलिकुचकरमर्द वृक्षाम्लाम्लवेतसकुवल। बदरदाडिम मातुलुंगानीति दशेमानि हृद्यानि भवंति।।[1]

आम, आमड़ा, बड़हर, करौंदा, वृक्षाम्ल, अम्लवेतस, कुवल (बड़ी बेर), बदर (बेर), दाडिम (अनार), मातुलुंग ये 10 औषधियाँ हृद्य महाकाषाय हैं।

कुष्ठघ्न महाकाषाय (Curative of dermatosis)[2] के अन्तर्गत खदिर, हर्रे, आंवला, हल्दी, भिलावा, सप्तपर्ण (छतिवन), अमलतास, कनेर, वायविडंग, चमेली की पत्ती का वर्णन किया गया है—

कृमिघ्न महाकाषाय (Anthelmintics) का उल्लेख इस तरह है—

अक्षीवमरिचगंडूर केवुकविडंग निर्गुण्डीकिणिही।
श्वदंष्ट्रा वृषपर्णिका खुपर्णिका इति दशेमानि क्रिमिघ्नानि भवंति।।[3]

अक्षीव (सहिजन), मरीच, गंडीर, केबुक, वायविडंग, सिदुवार, किणिही (कटही), गोखरु, वृषपर्णिका तथा मूषाकर्णी ये 10 औषधियाँ कृमिघ्न हैं।

विषघ्न महाकाषाय (Anti-dotes) का उल्लेख इस प्रकार है—

हरिद्रामंजिष्ठा सुवहासूक्ष्मै लापालिन्दी चंदन कतक शिरीष।
सिधुवार श्लाष्मतका इति दशेमानि विषघ्नानि भवंति।।[4]

हल्दी, मजीठ, सुवहा (निशोथ), छोटी इलायची, पालिन्दी (काला निशोथ), चंदन, कतक (निर्मली), शिरीष, निर्गुण्डी, लिसोढ़ा ये 10 औषधियाँ विषघ्न कहलाती हैं।

शुक्रजनन महाकाषाय[5] (Semeno or spermo-poietic) के अन्तर्गत आने वाली औषधियों में जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, वनमूँग, वनउड़द, मेदा, वृद्धरुद्धा (शतावरी), जटिला (जटामांसी), कुलिंग (उच्चटाभेद) का उल्लेख किया गया है। इसी तरह वमनोपग महाकाषाय (Adjuvants in Emetic therapy) के अंतर्गत मधु, मुलेठी, काविदार (लाल कचनार), कर्बुदार (श्वेत

---

1 चरक संहिता, 4 10।

2 वही, 4.13।

3 वही, 4 15।

4 वही, 4 16।

5 वही, 4 19।

कचनार), नीप (कदंब), विदुल (हिज्जल), बिम्बी (कुंदरु), शणपुष्पी (वनसनई), सदापुष्पी (अर्क या मदार), प्रत्यकपुष्पी (अपामार्ग) का वर्णन किया गया है।

मधुमधुक कोविदार कर्वुदार नीपविदुलविम्बी शणपुष्पी
सदापुष्पी प्रत्यकपुष्प इति दशेमानि वमनोपगानि भवंति।।[1]

मूत्रविरजनीय महाकाषाय (corrective of urinary pigments) का वर्णन इस प्रकार है—

पद्मोत्पलनलिनकुमुद सौगंधिक पुंडरीक शतपत्र मधुक प्रियंगु
धातकी पुष्पाणीति दशेमानि मूत्रविरजनीयानि भवंति।।[2]

पद्म (कमल), उत्पल (नील कमल), नलिन, कुमुद, सौगंधिक, पुंडरीक, शतपत्र, मुलेठी, प्रियंगु, धाय के फूल ये 10 औषधियाँ दोषों से दूषित मूत्र के विकृत वर्ण को दूर कर उसमें प्राकृत वर्ण लाती हैं। यहाँ प्रथम 7 औषधियाँ कमल के ही भेद विशेष हैं। इनमें से तीन का परस्पर भेद राजनिघंटुकार ने इस प्रकार दिया है—

ईषच्छवेतं विदुः पद्मीषन्नील मथोत्पलं। ईषद्रक्तं तु नलिनं क्षुद्रं तच्चोत्पलत्रयम्।।[3]

ज्वरहर महाकाषाय (Anti pyretics)4 के अंतर्गत अनंतमूल, शर्करा, पाठा, मजीठ, मुनक्का, पीलु, फालसा, हर्रे, आंवला, बहेरा का जिक्र किया गया है—

सारिवाशर्करा पाठा मंजिष्ठाद्राक्षापीलु परुषका भयामलक
विभीतकानीति दशेमानि ज्वरहराणि भवन्ति।।[5]

वाग्भट्ट ने अपने उल्लेख में शर्करा की जगह गिलोय का समावेश किया है—

द्राक्षापीलुपरुषकमंजिष्ठासारिवा मृतापाठाः। त्रिफलाचेति मणोऽयं ज्वरस्य शमनाय निर्दिष्टः।।[6]

दाहप्रशमन महाकाषाय (Anti-Burning Syndrome drugs) का उल्लेख चरक ने इन पंक्तियों में किया है—

लाजाचंदनकाश्मर्यफलमधूक शर्करा नीलोत्पलोशीरसारिवा।
गुडूची ह्रीवेराणीति दशेमानि दाहप्रशमनानि भवंति।।[7]

---

1 चरक संहिता, 4 23।
2 वही, 4 34।
3 राजनिघटु, 3 26।
4 चरक संहिता, 4 39।
5 वही, 4.39।
6 अष्टाग सग्रह सूत्र, अध्याय 15।
7 चरक संहिता, 4 41।

लाजा, चंदन, गंभार का फल, महुआ, शर्करा, नीलकमल, खस, अनंतमूल, गिलोय, ह्रीवेर (सगंधवाला) ये 10 औषधियाँ दाहप्रशमन महाकाषाय के अन्तर्गत आती हैं। वाग्भट्ट ने 'गुडूची' के स्थान पर पद्मक का उल्लेख किया है—पद्मकलाजोशीर मधुकोत्पलसारिवा सितोदीच्यम्॥[1] महर्षि सुश्रूत ने सारिवादी, अंजनादि, न्यग्रोधादि, गुडूच्यादि एव उत्पलादिगण को दाहनाशक बताया है।

अंतिम महाकाषाय के अंतर्गत वय:स्थापन महाकाषाय (Rejuventors) का उल्लेख महर्षि चरक ने किया है—

अमृताऽभयाधात्रीमुक्ताश्वेता जीवन्त्यति रक्षामंडूकपर्णी
स्थिरापुनर्नवा इति दशेमानि वय:स्थापनानि भवंति।।[2]

गिलोय, हर्रे, आँवला, मुक्ता, रास्ना, श्वेता (अपराजिता), जीवंती, अतिरसा (शतावरी), मडूकपर्णी, स्थिरा (सरिवन), पुनर्नवा ये 10 औषधियाँ वय (आयु) को स्थिर करती हैं।

दांतों की सफाई नित्य क्रिया का महत्वपूर्ण कार्य है। इसके लिये किस वृक्ष के दातुन का उपयोग किया जाये जिससे दाँत स्वस्थ एवं सुन्दर रहें और किस वृक्ष के दातुन का निषेध किया जाये जिससे दाँतों को क्षति पहुँच सकती है, इसके सम्बन्ध में संहिताकारों ने अपने ग्रंथों में पर्याप्त उल्लेख किया है। महर्षि चरक ने उत्तम दातौन के क्रम में निम्न उल्लेख किया है—

करंजकरवीरार्क मालतीककुभासनाः। शस्यन्ते दंतपवने ये चाप्येवंविधा द्रुमाः।।[3]

करंज, करवीर, मदार, मालती, अर्जुन, असन और इन्हीं के समान अन्य वृक्ष दातुन के लिये उत्तम होते हैं। महर्षि सुश्रूत ने दातुन सम्बन्धी वर्णन इस प्रकार किया है—

तत्रादौ दंतपवनं द्वादशांगुलमायतम्। कनिष्ठिका परीणाह मृज्वग्रथितमव्रणम्।।
अयुग्मग्रंथिमच्चापि प्रत्यग्रं शस्तभूमिजम्। अवेक्ष्यर्तु च दोषं च रसं वीर्य च योजयेत।।
कषायं मधुरं तिक्तं कटुकं प्रातरुस्थितः। निम्बश्च तिक्तके श्रेष्ठः कषाये खदिरस्तथा।
मधुको मधुरे श्रेष्ठः करंजे कटुके तथा। एकैकं घर्षयेद्दन्तं मृदुना कूर्च्चकेन च।।[4]

अष्टांग संग्रह में निर्देशित किया गया है कि निम्नांकित वृक्षों की दातौन प्रयोग नहीं करनी चाहिये।

नैवश्लेष्मातकारिष्टविभीतधवधन्वजान। बिल्ववंजुलनिर्गुण्डीशिग्रुतिल्वक तिंदुकान।।
कोविदार शमीपीपुपिप्पलेंगुदगुग्गूलुन। पारिभद्रकमम्लीकामोचक्यौशाल्मली शणम्।।
स्वाद्वम्ललवणं शुष्कं सुषिरं पूति पिच्छितम्। पलाशमासनं दंतधावनं पादुके त्यजेत।।[5]

---

1 अष्टाग संग्रह सूत्र, अ० 15।

2 चरक सहिता, 4 50।

3 वही, 5 73-74।

4 सुश्रूत सहिता, अध्याय 24।

5 अष्टाग संग्रह, अध्याय 3।

भारत में प्राचीन काल से ही मुख में सुगंधित द्रव्यों जैसे ताम्बूल आदि के धारण करने की परम्परा रही है। चरक संहिता में भी इसका विधिवत उल्लेख किया गया है।

धार्याण्यास्येन वैशद्यरुचिसौगंध्यमिच्छता जातीकटुक पूगानाम् लवंगस्य फलानि च
कक्कोलस्य फलं पत्रं तांबूलस्य शुभं तथा। तथा कर्पूरनिर्यासः सूक्ष्ममैलायाः फलानि च।[1]

अर्थात 'मुख की स्वच्छता, भोजन में रुचि और मुख को सुगंधित रखने की इच्छा वाले मनुष्यों के लिये उचित है कि वे जायफल, कंटुक (लता, कस्तूरी), पूगफल (सुपारी), लवंग का वृंत, कंकोल (शीतलचीनी), सुन्दर पान की पत्ती, कर्पूर, छोटी इलायची का फल इन सबको मुख में धारण करे।'

अष्टांग संग्रह सूत्र ने इन सबको पान के साथ ही लेना बताया है।

रुचिवैशद्यसौगंध्यमिच्छन्वक्त्रेण धारयेत।
जातीलवंगकर्पूर कंकोल कटुकैः सह तांबूलीनां किसलय हृद्य पूगफलान्वितम्
विषमूर्च्छामदार्तानामपथ्यं शोषिणां च तत्।।[2]

आचार्य सुश्रूत ने भी इसका समर्थन किया है—

कर्पूरजातिकंकोल लवंगकटुकाह्वयैः। सचूर्णपूगैसहितं पत्रं तांबूलजं शुभम्।।
मुखवैशद्य सौगंध्य कांतिसौष्ठव कारकम्। हंतुदंतस्वर बल जिह्वेन्द्रिय विशोधनम्।।
प्रशेकशमनं हृद्यं गलामय विनाशनम्। पथ्यं सुसोत्थिते भुक्ते स्नाते वांते च मानवे।।
रक्तपित्तक्षतक्षीणे नृणां मूर्छापरीतिनाम्। रुक्षदुर्बलमर्त्यानाम् च हितं चास्यशोषिणाम्।।[3]

चरक संहिता में शाक वर्ग (class of vegetables) का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। साथ ही सम्बन्धित शाक को किस बीमारी में प्रयुक्त करना चाहिए इसका भी उल्लेख किया गया है। इसी क्रम में मकोय, राजशवक, कालशाक, मटर का शाक, खट्टी चांगेरी, पोई का शाक, चौराई का शाक, मंडूकपर्णी आदि शाक, वेत्राग (वेंत के अग्र भाग का कोमल अंश), कुचेला (पाठा), वनतिक्तक, कर्कोटक (खेकसा), अवल्गुज (बकुची की पत्ती), पटोल (परवल), पत्र शकुलादनी (कुटकी की पत्ती), वृषपुष्प (अड़ूसा का फूल), शार्गेष्टा (काली मकोय), केम्बूक (करेमू), कठिल्लक (करेला), नाली (नाली का शाक), कलाय (मटर का शाक), गोजिह्वा, वार्ताक (बैगन), तिलपर्णिक (हुरहुर), कौलक, कार्कश, नैम्ब (नीम), पार्पटक (पित्त पापड़ा) ये सभी शाकवर्ग कफ एवं पित्त के शामक रस में तिक्त, वीर्य में शीतल एवं विपाक में मधुर होता है।[4] इसी क्रम में आगे विवरण प्राप्त होता है—

---

1 चरक सहिता, 5 76-78।

2 अष्टाग संग्रह सूत्र, अध्याय 3।

3 सुश्रूत सहिता, अध्याय 20।

4 चरक संहिता, 27 95-97।

सर्वाणि सूप्यशाकानि फंजी चिल्ली कुतुम्बकः ॥
आलुकानि च सर्वाणि सपत्राणि कुटिजरम्। शणशाल्मलिपुष्पाणि कर्वुदारः सुवर्चला ॥
निष्पावः कोविदारश्च पत्तुरश्वुच्चुपर्णिका। कुमार जीवः लोट्टाकः पालंक्या मारिषस्तथा ॥
कलंबनालिकासूर्यः कुसुंभवृक धूमकौ। लक्ष्मणा च प्रपुन्नाडो नलिनीका कुठेरकः ॥
लोणिका यवशाकं च कुष्मांडकवल्गुजम्। यातुकः शालकल्याणी त्रिपर्णी पीलुपर्णिका ॥[1]

सभी सूप्य शाक-मूँग, मटर, उर्द, अरहर आदि की पत्ती का शाक, फंजी (भारंगी-वभनेठी), चिल्ली (बनबथुवा), कुतुम्बक (गूमा की पत्ती), आलू, कुटिजर (ताम्रमूली), शण (सन की पत्ती या फूल), सेमर का फूल, कर्वुदार (कचनार), सुवर्चला, निष्पाव (सेम), कोविदार (लाल कचनार), पत्तूर (चौराई का साग) चुच्चुपर्णी (बड़ी चेच का भेद), कुमार जीव (जीवंती), लोट्टक, पालंक्या (पालक), मारिष (मर्सा), कलंबी (करेमू), नालिका (नाई), आसुरी (राई), कुसुंभ (बर्रे),वृकधूमक, लक्ष्मणा, प्रपुन्नाड़ (चकवड़), नलिनीका (कमल का डंठल), नील की पत्ती, कुठेरक (वन तुलसी), लोणिका (नोनी), यवशाक (बथुआ), कूष्मांड (सफेद कुम्हड़ा), अवल्गुज (बकुची की पत्ती), यातुक (सफेद सरिवन), शालकल्याणी (चौराई का भेद), त्रिपर्णी (हंसपदी), पीलुपर्णी (मूर्वा) ये सभी शाकवर्ण रस में मीठा, वीर्य में शीतल व मल का भेदन करने वाला होता है।

चरक संहिता का उक्त श्लोक काफी महत्वपूर्ण है। 99वें श्लोक में आलू का वर्णन प्राप्त होता है। प्रथम सदी ई० के आस-पास आलू का यह वर्णन इस अर्थ में आश्चर्यजनक है कि अन्य किसी संदर्भ में इसका उल्लेख नहीं मिलता। आमतौर पर मान्यता है कि अपने देश में आलू का आगमन 15वीं शताब्दी ई० में अमरीका महाद्वीप से हुआ। परन्तु उक्त संदर्भ इस धारणा का खंडन करता है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में आलू का प्रचलन ई० सन की पहली शताब्दी से ही शुरु हो गया था।

फल वर्ग के अंतर्गत भी एक लम्बी सूची चरक संहिता में मिलती है। मुनक्का, खजूर (छुहाड़ा), फल्गु (अंजीर), फालसा और महुआ, आम्रातक, पके हुए ताल और नारियल का फल, भव्य (कमरख), बड़हल, आलूबुखारा, पारावत (अमरुद), गंभारी, शहतूत, टंक (नाशपाती), सिचितका फल (सेव), गांगेरुक (गंगेरन), करील, विम्बी, तोदन (तुन), धन्वन (धामन), लवली फल (हरफारेवरी), कदंब, सोआ, पीलू फल, तृणशून्य (केवड़ा), विकंकत, प्राचीनामलक, इंगुदी, तिंदुक का फल (तेंदू)[2] का उल्लेख इसके अंतर्गत किया गया है। इसी क्रम में आंवले का जिक्र भी आया है

1 चरक सहिता, 27 98-102।

2 वही, 27 125-146।

जो पित्त का नाशक होता है और अपने रस प्रभाव के कारण त्रिदोषशामक होता है।[1] सुश्रूत ने भी आंवले का गुण बताया है—

अम्लं समधुरं तिक्तं कषायं कटुकं सरम्। चक्षुष्यं सर्वदोषघ्नं वृष्यमामलकीफलम्।।[2]

चरक संहिता में एक अन्य वर्ग-हरित वर्ग का वर्णन मिलता है। इसके अंतर्गत बताया गया है कि मूली, वात एवं कफ को दूर करने वाली और सुरस (तुलसी), हिचकी, कास, विष, विकार, दमा आदि को दूर करने वाली होती है। अजवाइन, अर्जक, सहिजन, शालेय (सौंफ), मृष्टक (राई)—ये हृद्य के लिये लाभकारी होते हैं। गंडीर, जलपिप्पली (जलधनियाँ), तुम्बरु (नेपाली धनिया), शृंगवेरिका ये कफ एवं वात की नाशक होती हैं। भूस्तृण (हरद्वारी तृण) पुरुषत्व शक्ति को नष्ट करने वाला तथा खराह्वा (स्याह जीरा) कफ एवं वात को नष्ट करने वाला होता है। धनिया (हरी धनिया), अजगंधा (ममरी), सुमुख (तुलसी का भेद) भोजन में रुचि उत्पन्न करने वाले एवं मुख के दुर्गंध को दूर करने वाले होते हैं। गृंजनक (गाजर)—अर्श रोगियों के लिये हितकारी, पलांडु (प्याज) वातनाशक, लशुन (लहसुन)—कृमिरोग नाशक होता है।[3]

वमनार्थ द्रव्य के अंतर्गत वनौषधियों की एक लम्बी सूची मिलती है। इस क्रम में फल (मदन फल), जीमूतक (बंदाल), इक्ष्वाकु (तितलौकी), धामार्गव, कुटज (इंद्र जौ), कृतबेधन (कड़ुई तरोई) इनके फल और मैनफल, जीमूतक, धामार्गव के पत्र एवं पुष्प, अमलतास, कुरैया, मैनफल, स्वादुकंटक (विकंकत या छोटा गोखरू), पाठा (पाढ़), पाटला, शांर्गेष्टा (गुंजा), पूर्वा (मरोरा), छतिवन, करंज, पिचुमर्द (नीम), पटोल, सुषवी (करेला), गिलोय, सोमवल्क (श्वेत खदिर), शतावर, द्वीपी (रेंगनी), सहिजन का मूल इनका कषाय, मुलेठी, महुआ का फूल, कोविदार (कचनार सफेद), कर्वुदार (लाल कचनार), नीप (कदम्ब), विदुल (बेंत), विम्बी (कुंदरु), शणपुष्पी (वनसनई), सदापुष्पी (रक्त मदार), प्रत्यकपुष्पी (अपामार्ग) इनका कषाय, एला (छोटी इलायची), हरेणु (संभारु बीज), प्रियंगु, पृथ्वीका (मंगरैला), कुस्तुम्बरु, तगर, नलद (जटामासी), ह्वीवेर, तालीश पत्र, खस इनका कषाय, ईख, कांडेक्षु (ईख-भेद), इक्षुबालिका दर्भ (कुश-भेद), पोटगल, कालंकृत (कसौली) इनका कषाय, सुमना (चमेली), सौमनस्यायिनी (जावित्री), हल्दी, दारूहल्दी, वृश्चीर (श्वेत पुनर्नवा), रक्त पुनर्नवा, महासहा (माषपर्णी), क्षुद्रसहा (मुद्गपर्णी) इनका क्वाथ, शाल्मलि (सेमल), शाल्मलिक (छोटा सेमल), भद्रपर्णी, एलापर्णी, उपोदिका (पोई का साग), उद्दालक (लसोड़ा), धन्वन (धामन वृक्ष), राजादन (खिरनी), उपचित्रा (एरण्ड), गोपी (सरिवन), शृंगारिका इनका कषाय पीपर, पीपरामूल, चव्य, चित्रका, सोंठ, सरसों आदि के विधिपूर्वक बनाये गये वर्ति,

---

1 चरक सहिता, 27 147।

2 सुश्रूत सहिता, अध्याय 46।

3 चरक सहिता, 27 167-176।

चूर्ण, अवलेह, स्नेह, कषाय, यवागू (medicated gruels) आदि औषधियों का प्रयोग करने का विधान बताया गया है।[1]

मधुर स्कंध के अंतर्गत भी वानस्पतिक औषधियों की एक लम्बी सूची दी गयी है। यह इस प्रकार है—जीवक, ऋषभक, जीवंती, वीरा, तामलकी (भुइं आंवला), काकोली, क्षीरकाकोली, वनमूँग, वनउड़द, सरिवन, पिठवन, अनसपर्णी, अपराजिता, मधुपर्णी, विकंकत, मेदा, महामेदा, काकड़ासिघी, सिघाड़ा, गिलोय, छत्रा (तालमखाना या सौंफ), अतिच्छत्रा (रक्त तालम खाना), श्रावणी (गोरखमुंडी), महाश्रावणी (बड़ी गोरखमुंडी), सहदेई, विश्वेदेवा (लाल फल वाली सहदेई), क्षीरशुक्ला (सफेद निशोथ), बला (बरियरा), अतिबला (ककही), विदारीकंद, क्षीरविदारी, क्षुद्रसहा, महासहा, ऋष्यगंधा (विधारा), असगंध, वृश्चीर (सफेद पुनर्नवा) रक्त पुनर्नवा, वनभंटा, कंटकारी, उरूबक (एरण्ड), मूर्वा, गोखरु, संहर्षा (बंदाल), शतावर, सौंफ, मधूकपुष्पी (महुआ), मुलेठी, मधूलिका (अपामार्ग), मुनक्का, खजूर, फालसा, केंवाच का बीच, कमलगट्टा, कशेरु, बड़ा कशेरु, खिरनी निर्मली, गंभारी, शीतपाकी (गुंजा), ओदनपाकी (नीली झिण्टी), ताल व खजूर की ताड़ी, ईख, इक्षुवालिका, दर्भ, कुश, कास, धान का मूल, गोनरखा, इत्कट (नरई), सरपत का मूल, नकछिदनी, ऋष्यप्रोक्ता (पीले पुष्प की बला), द्वारदा (सागौन), भरद्वाजी (वनकपास), वनत्रपुष्पी (फूट), अभीरुपत्री (शतावरी का भेद), हंसपदी, काकनासा, कुलिंगासी (सफेद गुंजा), क्षीरवल्ली (विदारीकंद का भेद), कपोलवल्ली, कपोतवल्ली (छोटी इलायची), सोमवल्ली, गोपवल्ली (अनंतमूल), मूलवल्ली (मूलेठी का भेद)।[2]

चिकित्सा ग्रंथों में अलग-अलग अध्यायों में विभिन्न तरह के रोगों के निदान का उपाय बताया गया है। ज्वर (बुखार) रोग एक सर्वव्यापी रोग है। इसकी चिकित्सा हेतु चरक संहिता में पूरा एक अध्याय (ज्वरचिकित्साध्याय) ही दिया गया है। इसके अंतर्गत विभिन्न वनौषधियों का उल्लेख किया गया है। ज्वर की पीड़ा के निवारणार्थ 'अर्गुवादि तेल' का वर्णन किया गया है, जिसके गरम लेप से शीत ज्वर की शांति होती है—

...अगरुकुष्ठ तगरपत्र नलद शैलेय ध्यामतक हरेणुका स्थौणेय कक्षेम कैलावरा-वरांगदलपुरतमालपत्र भूतीकरोहिष सरलशल्लकीदेवदार्वग्निमन्थबिल्व-स्योनाक काश्मर्य पाटला पुनर्नवा वृश्चीर कंटकारी वृहती शालपर्णी पृश्निपर्णी माषपर्णी मुद्गपर्णी गोक्षुर कैरंड शोभांजन वारुणार्क चिरबिल्वतिल्वक शटी पुष्करमूलगंडीरोरुबुक पत्तूराक्षी वाश्मांतक शिग्रुमातुलुंग पीलुकमूलकपर्णी तिलुपर्णी पीलुपर्णी मेषश्रृंगी हिंस्त्रादंतशठैरावतक भल्लातक स्फोतकांडीरात्म-जैकेषीका करंज धान्यकाजमोद पृथ्वी का सुमुख सुरसकुठेरक कालमाल कपर्णा सक्षवक फणिज्झक भूस्तृण शृंगवेर

---

1 चरक संहिता, विमानस्थान खड, 8 135।

2 वही, विमानस्थान खड, 8.139।

पिप्पलीसर्षपाश्वगंधारास्नारुहारोहा वचाबलाति बलागुडूची शतपुष्पा शीतवल्ली नाकुली गंधनाकुली श्वेता ज्योतिष्मती चित्रकाध्यण्डाम्लचांगेरीतिलबदर कुलत्थ माषाणा मेवं विधानाम येषां... ।।[1]

अगर, कूठ, तगर, तेजपत्ता, नलद (जटामांसी), शैलेय (छड़ीला), ध्यामक (गंधतृण), हरेणुका (रेणुका या मेवड़ी का बीज), स्थौणेयक (गठिवन), क्षेमक, चोरपुष्पी, एला (बड़ी इलायची), वरा (त्रिफला), वरांगदल (दालचीनी), पुर (गुग्गुल), तमालपत्र, भूतीक (अजवाइन), रोहिष (हरद्वारी तृण), साल (चीड़), सल्लकी (सर्ज), देवदारु, अरणी, बेल, सोनापाठा की छाल, गंभार की छाल, पाढ़ल की छाल, सफेद गधपुरना, लाल गधपुरना, भटकटैया का मूल, बनभंटा, सरिवन, पिठिवन, बन उड़द, बनमूँग, गोक्षुर (तालमखाना का बीज या गोखरु), रेड़ की जड़, सहिजन की छाल, बरना की छाल, मदार की छाल, चिलबिल, तिल्वक (लोध), कचूर, पुष्करमूल, गंडीर (गंडीर घास), उरुबक (लाल रेड़ की छाल), पत्तूर (सुखारी का साग), अक्षीव (बकायन) की छाल, अश्मांतक (मालधेनु), शिग्रु (लाल सहिजन की छाल), मातुलुंग (बिजौरा नीबू की जड़), पीलू, मूलकपर्णी, तिलपर्णी (हुरहुर), पीलुपर्णी (मूर्वा), मेषशृंगी (मेढ़ासिगी), हिंस्ता (हईस), दंतशठ (गागल नीबू की छाल), ऐरावतक (हस्तिशुंडी), भिलावा, आस्फोत (सारिवा), कांडीर (छोटी करैली), आत्मजा (जियापोता), एकेषीका (काला निशोथ), करंज, धनिया, अजमोदा, मंगरइल, सुमुख, सुरस, कुठेरक, कालमालक, पर्णास (सुमुख) आदि तुलसी के विभिन्न भेद, क्षत्रक (नकछिदनी), फणिज्झक (महुआ की पत्ती), भूस्तृण (मूंज), शृंगवेर (अदरक), पीपर, सरसों, असगंध, रास्ना, रुहा (आकाश बवर), आरोहा (लजालू), बच, बरिअरा, अतिबला (ककही), गुरुचि, सौंफ, शीतवल्ली (नीलदूर्वा), नाकुली, गंधनाकुली, श्वेता (अपराजिता), ज्योतिष्मती (मालकांगनी), चित्रक, अध्यंडा (केंवाच), अम्लचांगेरी (तिनपतिया आमला), काला तिल, बड़ी बेर, कुल्थी, उड़द—इन औषधियों के गरम लेप या पकाये हुए जल में स्नान से शीत ज्वर दूर हो जाता है।

आम जीवन में मनुष्य को अनेक तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है जिससे कभी-कभी वह मौत के कगार तक पहुँच जाता है। विष चिकित्सा अध्याय के अंतर्गत उक्त परेशानियों से छुटकारा पाने के उपाय दिये गये हैं। काकांडादि योग के अंतर्गत यह बताया गया है कि काकाण्ड (केवांच बीज), तुलसी की पत्ती, इंद्रायण का बीज, पुनर्नवा का मूल, मकोय की पत्ती, शिरीष का फल इन द्रव्यों को एक में पीस कर लेप, औषधि, नस्य या पान करने से गले में फाँसी लगाने वाले, विष सेवन करने वाले, जल में डूबने वाले मृतप्राय व्यक्ति को देना चाहिए।

काकांडसुरसगवाक्षीपुनर्नवावायसीशिरीषफलैः। उद्बंधविषजलमृतेलेपौषधिनस्यपानानि ।।[2]

---

1 चरक सहिता, विमानस्थान खंड, 3 267।

2 वही, विमानस्थान खंड, 23.53।

लाल चंदन, तगर, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, दालचीनी, मैनसिल, तमाल की पत्ती रस (पारा), नागकेसर, नखी इन्हें समान भाग में लेकर चावल के पानी से पीसकर पीने से सभी प्रकार के विष के प्रभाव को यह उसी प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार इंद्र के बज्र से राक्षसों का नाश होता है।

चंदनं तगरं कुष्ठं हरिद्रे द्वे त्वगेव च॥ मनः शिला तमालश्च रसः केशर एव च।
शार्दूलस्य नखश्चैव सुपिष्टं तंडुलाम्बुना॥ हंति सर्व विषाण्येय वज्रि वज्र मिवासुरान।[1]

क्षीरी वृक्षों (वट, पीपल, पाकड़, गूलर और पारिस पीपल) की त्वचा विष विकित्सा में काफी उपयोगी होती है। इन वृक्षों की छाल के लेप से सभी प्रकार के कीटों का विष दूर हो जाता है।

क्षीरिवृक्ष त्वगालेपः शुद्धे कीटविषापह्नः॥ मुक्तालेपोवरः शोथदाहतोद ज्वरापहः।[2]

वनस्पतियों के औषधीय उपयोग के अतिरिक्त उनके अन्य प्रचलित नाम, पहचान के आधार तथा उनके उपयोग का तरीका बताया गया है। उदाहरण के तौर पर धामार्गव के पर्याय नाम-कर्कोटकी, कोठफला, महाजालिनी, राजकोशातकी दिये गये हैं। आगे इसके पहचान के बारे में यह बताया गया है कि धामार्गव नाम से कडुवे बीज एवं पीले फूल वाले नेनुआ का प्रयोग किया जाता है।

कर्कोटकी कोटफला महाजालिनिरेव च। धामार्गवस्य पर्याय राजकोशातकी तथा।[3]

धामार्गव का प्रयोग विष सेवन, गुल्म रोग, उदर रोग, कास व आमाशय में वायु के प्रविष्ट होने पर, कंठ एवं मुख में कफ दुष्टि होने, कफ संचय से उत्पन्न होने वाले रोगों में किया जाता है।[4]

कृतवेधन-कडवी तरोई को कहा गया है। इसके अन्य प्रचलित नाम-क्ष्वेड, कोशातकी, मृदंगफल बताये गये हैं। इसके प्रयोग से गंभीर प्रकार के कुष्ठरोग, पांडु रोग, प्लीहा वृद्धि, शोथ रोग, गुल्म रोग एवं कृत्रिम विष आदि व्याधियों से छुटकारा मिलता है।[5]

इसी तरह तिल्वक के पर्याय नामो में लोध्र, वृहत्पत्र, तिरीटक का उल्लेख है।[6] इसमें तिल्वक के दो भेद-लोध पठानी एवं शावर बताये गये हैं। इसमें शावरलोध विरेचन के काम आता है जबकि पठानी लोध ग्राही होता है।

सेहुँड़ नामक वनस्पति बहुत से रोगों में उपयोगी है—पांडु रोग, उदर रोग, गुल्म रोग, कुष्ठ, शोथ, मधुमेह, मानसिक रोग आदि रोगों में इसका प्रयोग किया जाता है। सेहुँड़ के अन्य प्रचलित नाम

---

1 चरक सहिता, विमानस्थान खंड, 23.191-193।

2 वही, 23 199-200।

3 चरक संहिता, कल्पस्थान, 4.3।

4 वही, कल्पथान, 4 4-5।

5 वही, कल्पस्थानं, 6.3-4।

6 वही, कल्पस्थान, 9 3।

है—स्नुक, गुडा, नदा, सुधा, निस्त्रिशपत्रक। सेहुँड़ दो प्रकार का होता है। एक में काँटे अधिक एवं दूसरे में कम पर अत्यंत तीक्ष्ण काँटे होते हैं। अधिक काँटे वाला सेहुँड़ श्रेष्ठ होता है।[1]

दंती और द्रवंती ये दो उपयोगी वनस्पतियाँ कई रोगों में काम आती हैं। दंती के पर्याय नामों में—दंती, उदुम्बरपर्णी, निकुंभ एवं मुकूलक तथा द्रवंती के पर्याय नामों में द्रवंती, चित्रा, न्यग्रोधी, मूधिकाह्वया का उल्लेख किया गया है। मूषिकपर्णी के जितने नाम होते हैं वे सभी द्रवंती के ही हैं—मूषिकपर्णी, उपचित्रा, शम्बरी, प्रत्यकश्रेणी, सुतश्रेणी, दंती, रचंडा।[2] यद्यपि इन दोनों का उल्लेख अलग-अलग किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अलग-अलग क्षेत्रों में लोग इसे अलग-अलग नामों से जानते थे जबकि मूलतः वनस्पति एक ही थी। ऐसा उल्लेख अन्य वानस्पतिक औषधियों के वर्णन में भी स्पष्टतः देखा जा सकता है।

संहिता ग्रंथ अपने समय के जीवित दस्तावेज हैं। पहली शताब्दी ई० के आस-पास लिखे गये चरक संहिता से लेकर छठीं शताब्दी ई० के अष्टांग संग्रह तक की समृद्ध परंपरा में अनेकानेक वनस्पतियों, उनके पर्याय नामों, औषधि बनाने के तरीकों, सेवन की विधि, पथ्य, कुपथ्य आदि के बारे में स्पष्ट जानकारियाँ दी गयी हैं। यद्यपि चरक ने औषधि परंपरा के रूप में वनस्पतियों के वर्णन की शुरुआत की और बाद के रचनाकारों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया तथापि यह तथ्य स्पष्टतः उद्भासित होता है कि सुश्रूत, वाग्भट्ट आदि ने अधिकांश रूप में चरक का ही अनुसरण किया है जो उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है।

पुराणों में वानस्पतिक औषधियाँ—पुराण ग्रंथों के बारे में आम मान्यता यह है कि यह कपोल-कल्पित कथाओं और विभिन्न तरह के उपदेशों का संग्रह है। इसमें समसामयिक राजवंशावलियों का वर्णन, विभिन्न राजाओं के शासन आपसी द्वंद आदि का वर्णन किया गया है। उक्त तथ्यों से इंकार नहीं किया जा सकता परन्तु पुराणों का एक अन्य पहलू भी है जो काफी उपयोगी है। पुराणों में भी तरह-तरह की व्याधियों के उपचारार्थ वानस्पतिक औषधियों का वर्णन मिलता है। चूँकि पुराण समसामयिक ग्रंथ हैं (पहली शती ई० से लेकर 12वीं और कहीं-कहीं 16वीं शताब्दी ई० तक की घटनाओं का समावेश इन पौराणिक ग्रंथों में प्राप्त होता है) इसलिये पुराण अपने समय के लगभग सभी विषयों का वर्णन करते हैं। इसी क्रम में औषधीय वर्णन भी प्राप्त होते हैं। हम इस अध्याय में कुछ प्रतिनिधि पुराणों का ही सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं।

सबसे पुराने माने जाने वाले पुराण-मत्स्य पुराण में उन औषधियों का वर्णन किया गया है जिन्हें राजा को संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु दुर्ग में सुरक्षित संरक्षित रखने के प्रयास करने चाहिये।

अभयामलके चोभे तथैव च विभीतकम्॥

---

1 चरक सहिता, कल्पस्थान, 10.5-8।

2 वही, कल्पस्थान, 12 3।

प्रियगु धातकीपुष्पं मोचारूया चार्जुनासनाः। अनंतास्त्री तुवरिका श्योणाकं कटफलं तथा।।
भूर्जपत्रं शिलापत्रं पाटलापत्रलोमकम्। समंगात्रिवृत्तामूलकार्पासगैरिकांचनम्।।
विद्रमं समधूच्छिष्टं कुंभिका कुमुदोत्पलं। न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थं किंशुकाः शिंशपा शमी।।
प्रियालपीलुकासारिशिरीषाः पद्मकं तथा। बिल्वोऽग्निमंथः प्लक्षश्च श्यामाकं च वकोधनं।।
राजादनं करीरं च धान्यकं प्रियकास्तथा। कंकोलाशोकबदराः कदंब खदिरद्वयं।।[1]

हर्रे, बहेड़ा, आंवला, मालकांगुन, धाय के फूल, मोचरस, अर्जुन, असन, अनंता, कामिनी, तुबरिका, श्योणाक, जायफल, भोजपत्र, शिलाजीत, पाटलवृक्ष, लोहबान, समंगा, त्रिवृत्ता, मूल, कपास, शहद, जलकुंभी, कुमुदिनी, कमल, बरगद, गूलर, पीपल, पलाश, शीशम, शमी, प्रियाल, पीलु, कासादि, शिरीष, पद्म, बेल, अरणी, पाकड़, श्यामाक, बक, धन, राजादन, करीर, धनिया, प्रियक, कंकोल, अशोक, बेर, कदब, दोनों प्रकार के खैर, इन वृक्षों के पत्ते, सारभाग, मूल तथा पुष्प कषाय माने गये हैं। राजा को ये कषाय औषधियाँ दुर्ग में रखनी चाहिये क्योंकि ये मारने एवं घायल करने वाले कीट पतंग तथा वायु, धूप, जल तथा मार्ग को प्रदूषित करने वाले तत्वों का शमन करते हैं।

विषनाशक औषधियों में बिल्वाटकी, जवाखार, पाटला, वाह्लीक, ऊषणा, श्रीपर्णी, शल्लकी इन औषधियों के काढ़ा से विषरहित होने का उल्लेख किया गया है।[2] शेलु, पाटली, अतिविषा, शिग्रु, मूर्वा, पुनर्नवा, समंगा, वृषमूल, कपित्थ, विषशोषित तथा महादंतशठ औषधियों के काढ़े का सेवन भी विषनाशक होता है।[3] जटामांसी, शमी के पत्ते, तुम्बी, श्वेत सरसों, कपित्थ, कुष्ठ एवं मंजीठ इन औषधियों को कुत्ते या कपिला गौ के पित्त के साथ उपयोग करना चाहिये। सौम्याक्षिप्त नामक यह औषधि प्रसिद्ध विषनाशक है।[4] श्वेत धूप, सरसो, एलबालुक, सुवेंगा, तस्कर, सुर एवं अर्जुन के पुष्प इन औषधियों का धूप वास करने वाले घर में स्थित स्थावर-जंगम सभी तरह के विष को नष्ट कर देता है।[5] जहाँ यह धूप जलाया जाता है वहाँ कीट, विष, मेढ़क, रेंगने वाले सर्प आदि जीव तथा कर्मो की कृत्या ये कोई भी नहीं रह सकते। चंदन, दुग्ध, पलाश वृक्ष की छाल, मूर्वा, एलावालुक, सरसों, नाकुली, तंडुलीयक एवं काकमाची का काढ़ा सभी प्रकार के विषयुक्त जल में कल्याणकारी होता है। रोचनापत्र, नेपाली, केसर, तिलक आदि इन औषधियों को धारण करने से मनुष्य को विष का कष्ट नहीं होता एवं विष दोष नष्ट हो जाता है।[6]

---

1 मत्स्य पुराणाक, जनवरी 1985, गीता प्रेस, गोरखपुर, 217 75-80।

2 वही, 218 2।

3 वही, 218 4-5।

4 वही, 218 8-9।

5 वही, 218 15-16।

6 वही, 218 18-20।

हल्दी, मंजीठ, किणिही, पिप्पली,नीम के चूर्ण का लेप करने से सभी प्रकार के विष से पीड़ित शरीर विषरहित हो जाता है। शिरीष वृक्ष का फल, पत्ता, पुष्प, छाल और जड़ इन सबको गोमूत्र में घिस कर तैयार की गयी औषधि सभी प्रकार के विष कर्म में हितकारी कही गयी है।[1]

सर्वश्रेष्ठ औषधियाँ जिनका अनेक तरह की बीमारियों में उपयोग होता है का उल्लेख भी मत्स्य पुराण में प्राप्त होता है। वंध्या, कर्कोटकी, विष्णुक्रांता, उत्कटा, शतमूली, सिता, आनंदा, बला, मोचा, पटोलिका, सोमा, पिडा, निशा, दग्धरुहा, स्थलपद्म, विशाली, शंखमूलिका, चांडाली, हस्तिमगधा, गोपर्णी, अजापर्णी, करभिका, रक्ता, महारक्ता, वर्हिशिखा, कौशीतकी, नक्तमाल, प्रियाल, सुलोचनी, वारुणी, वसुगंधा, गंधनाकुली, ईश्वरी, शिवगंधा, श्यामला, वंशनालिका, जतुकाली, महाश्वेता, श्वेता, मधुयष्टिका, वज्रक, पारिभद्र, सिंदुवारक, जीवानन्दा, वसुच्छिद्रा, नतनागर, कष्टकादि, नाल, जाली, जाती, वट पत्रिका, सुवर्ण, महानीला, कुंदरु, हंसपादिका, मंडूकपर्णी दोनों प्रकारकी वाराही, तंडुलीयक, सर्पाक्षी (नकुल कंद), लवली, ब्राह्मी, विश्वरुपा, सुखाकरा, रुजापहा, वृद्धिकरी, शल्यदा, पत्रिका, रोहिणी, रक्तमाला, आमलक, वृंदाक, श्यामा, चित्रफला, काकोली, क्षीरकाकोली, पीलुपर्णी, केशिनी, वृश्चिकाली, महानागा, शतावरी, गरुड़ी, वेगा, जलकुमुदिनी, स्थलोत्पल, महाभूमिलता, उन्मादिनी, सोमराजी आदि औषधियों को शासक को प्रयत्नपूर्वक दुर्ग में संचित करना चाहिये।[2]

औषधीय उल्लेख की दृष्टि से गरुड़ पुराण का काफी महत्व है। गरुड़ पुराण के अध्याय 167 से लेकर अध्याय 204 तक में औषधीय वनस्पतियों के नाम, सम्बन्धित बीमारियों में उपचार, उनके पर्याय नाम आदि का वर्णन मिलता है। पुराणों में औषधीय वर्णन क्रम की दृष्टि से यह सर्वाधिक समृद्ध पुराण कहा जा सकता है।

आयुर्वेद में 'पंचमूल' काफी महत्वपूर्ण माना गया है। बिल्व, शोणा (श्योनाक), गंभारी(श्रीपर्णी), पाटला (पाढ़र) और अग्निमाद्य इन 5 वृक्षो के मूल को ही 'पंचमूल' कहा गया है। ये पंचमूल मंदाग्नि को तीव्र करने वाले, कफ एवं वात के दोष का विनाश करने वाले हैं। शालपर्णी, पृश्निपर्णी (पेठवन), दो प्रकार की वृहती (भटकटैया), तथा गोक्षुर (गोखरु) इन पाँचों को 'लघुपंचमूल' कहा गया है। यह औषधि वात-पित्त विनाशक तथा ओजवर्द्धक है। उक्त दोनों पंचमूलों से दशमूल औषधि का निर्माण होता है जो सन्निपात ज्वर, खाँसी, श्वाँस, पार्श्वमूल रोगों का विनाश करती है।[3]

शतावरी, गुडूची, अग्निमन्द्य, चित्रा, सोंठ, मूसली, वला, पुनर्नवा, वृहती, निर्गुण्डी, निम्बपत्र, भृंगराज, आंवला, तथा वासक अथवा उसके ही रस से 7 बार या एक बार भावित त्रिफला सभी रोगों का नाशक होता है।[4]

---

1 मत्स्य पुराणांक, जनवरी 1985, गीता प्रेस, गोरखपुर, 218.20-22।

2 वही, 218 23-35।

3 सक्षिप्त गरुड़ पुराणाक, जनवरी-फरवरी-2000, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० 258-59 (अध्याय 168)।

4 वही, पृ० 256।

अन्न जिसे हम नित्य प्रति अपने आहार में शामिल करते हैं स्वयं भी कई रोगों के नाशक हैं। श्यामाक (साँवा) कफ एवं पित्त जनित दोषों का निवारक होता है। प्रियंगु, नीवार एवं कोदो नामक अन्न शरीर के दोषों को दूर करते हैं। जौ कफ एवं पित्तज दोष का अपहारक होता है, जबकि गेहूँ वातनाशक होता है। मूँग, कफ, पित्त तथा रक्त को जीतने वाला, उड़द अत्यंत शक्तिशाली, ओज वृद्धि करने वाला, पित्त-कफ विनाशक, राजमाष (राजमा) वायुरोग का अपहारक होता है।[1] कुलथी प्राणी के श्वांस, हिचकी, हृद्यस्थ कफ, गुल्म एवं वात रोग को दूर करने में समर्थ होती है।[2] चना, मसूर और अरहर कफ एवं पित्त के विनाशक हैं। तिल सभी प्राणियों के लिये बलवर्द्धक होता है।[3]

शाक-सब्जियाँ अपने-आप में अत्यंत गुणकारी होती हैं। गरुड़ पुराण के अनुसार तंडुलीयक (चौराई) का शाक विषनाशक और मूलक (मूली) वात-कफ नाशक होता है। कर्कोटक (ककड़ी), बैगन, परवल और करेला कुष्ठ, मेह, ज्वर, श्वाँस, कास, पित्त तथा कफ के नाशक हैं। कुम्हड़ा सर्वदोषविनाशक होता है जबकि कलिगा (तरबूज) और अलाबुनी (लौकी) पित्तविनाशिनी होती है। त्रपुष (खीरा) तथा उर्वारुक (ककड़ी-फूट) पित्त-दोष को दूर करने वाली होती है।[4]

हरीतकी (हर्रे) भोजन को भली भाँति पचाने वाली, अमृत के समान तथा कफ एवं वात दोष को दूर करने में समर्थ एवं विरेचक होता है। बहेड़ा में वात, पित्त एवं कफ इन दोषों पर विजय प्राप्त करने की क्षमता होती है। तितिडी (इमली) का फल वात तथा कफ का विनाशक होता है।[5]

पका आम माँस, वीर्य, वर्ण एवं शक्ति को बढ़ाने वाला, जामुन वात, पित्त तथा कफ का विनाशक, प्रियाल (चिरौंजी) वातज दोष का नाशक तथा राजादन (खिरनी), मोच (केला), कटहल और नारियल वीर्य तथा मांस के अभिवर्द्धक होते हैं। द्राक्षा (अंगूर), मधुक (महुआ), खजूर तथा कुंकुम वात एवं रक्त दोष को जीतने वाले होते हैं। सोंठ, पिप्पली, काली मिर्च तथा अदरक कफ तथा रोगों के नाशक होते हैं।[6]

शल्लकी (सलई), बेर, जामुन, प्रियाल, आम, अर्जुन और धव नामक वृक्ष की छाल का क्वाथ दूध एवं मधु के साथ पान करने से रक्त सम्बन्धी दोष दूर होते हैं। हरीतकी, सोंठ, पिप्पली, काली मिर्च एवं गुड़ का मोदक कास नाशक होता है। इसका सेवन करने से तृष्णा एवं अरुचि का भी नाश

---

1 सक्षिप्त गरुड पुराणाक, जनवरी-फरवरी-2000, गीता प्रेस, गोरखपुर, अध्याय 169।

2 अष्टाग हृदय सूत्र, 6 18।

3 वही, 6 21।

4 सक्षिप्त गरुड पुराणांक, अध्याय 169।

5 सुश्रूत सहिता, अ० 46, चरक सहिता, अ० 27।

6 सक्षिप्त गरुड पुराण, अध्याय 169।

होता है। स्वर भेद होने पर मुख में तिल के तेल में सिद्ध खदिर (कत्थे) का रस रखना लाभप्रद होता है।[1] दशमूल (बिल्व, श्योणाक, गम्भारी, पाटला, गणकारिका, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वृहती द्वय, कंटकारी एवं गोखरु इन 10 वृक्षों के मूल), हरीतकी, एरण्ड, रास्ना, सोंठ और देवदारु नामक औषधियों से बना क्वाथ, काली मिर्च एवं गुड़ के साथ सेवन करने से महाशोथ दूर होता है।

हस्तिकर्ण अर्थात एरण्ड तथा पलाश पत्र के रस का लेप करने से गलगंड रोग नष्ट हो जाता है। धतूर, एरण्ड, निर्गुण्डी, पुनर्नवा, सहिजन एवं सरसों का मिश्रित लेप अत्यंत दु:खदायी श्लीपद (फीलपाँव) रोग को दूर करता है। नीम की पत्ती का लेप सभी प्रकार के शोथ एवं व्रणों को सुखा देता है। त्रिफला, खदिर, दारुहल्दी तथा वटवृक्ष की छाल या फल के योग से बना लेप व्रणशोधक होता है।

सफेद दाग का उपचार वर्णित करते हुए कहा गया है कि मलपू अर्थात कठूमर नामक वृक्ष की छाल से बने क्वाथ द्वारा छौंके गये सोमराजी (बकुची) के फलों का चूर्ण प्रतिदिन एक कर्ष मात्र बहेड़े एवं अर्जुन नामक वृक्ष से बने क्वाथ द्वारा लेना चाहिये। इस औषधि का पान करते हुए शरीर पर स्थित सफेद चकतों पर अपराजिता (शेफालिका) की लता का लेप करने से रोग दूर हो जाता है। दूर्वा के रस में उससे चौगुना तेल पकाकर औषधि रूप में शरीर पर लगाने से कच्छू, विर्चचिका (एक्जिमा) एवं पामा नामक कुष्ठ रोग विनष्ट हो जाते हैं।

लहसुन के चूर्ण को घिसने से कुष्ठ, विसर्प, फोड़ा, खुजली आदि चर्मरोगों का नाश होता है। लहसुन, अदरक, सहिजन, भृंगराज, मूली, रुदंती (महामाँसी) का गुनगुना रस कर्ण रोग का उत्तम उपचार है।

स्त्री रोगों की चिकित्सा पर भी गरुड़ पुराण में पूरा एक अध्याय दिया गया है। उपचारार्थ प्रयोग में आने वाली वनस्पतियाँ प्राय: चहुँओर उपलब्ध होती हैं। योनि से सम्बन्धित व्याधियों के उपचारार्थ कहा गया है कि बेर की पत्तियों को पीसकर योनि भाग में लेप करने से उसकी वेदना शांत हो जाती है। लोध्र एवं तुम्बी फल का प्रलेप योनि को दृढ़ एवं संकुचित बनाता है। काँजी, जपापुष्प (अड़हुल फूल), ज्योतिष्मती दल, मालकँगनी की पत्ती एवं चित्रक को पीस कर शर्करा के साथ पान करने से योनिरोग दूर हो जाता है।

संतान के रूप में पुत्र की प्राप्ति हेतु भी गरुड़ पुराण औषधियों का विधान करता है। इसी क्रम में यह कहा गया है कि ऋतुकाल में लक्ष्मण (श्वेत कंटकारी) की जड़ को दुग्ध के साथ पान करने या नस्य लेने से स्त्री को पुत्र उत्पन्न होता है। ढ़ाई सेर दुग्ध या सवा सेर घृत में सिद्ध अश्वगंधा का रस सेवन करने से भी पुत्र की प्राप्ति होती है।[2] घृत के साथ व्योष (सोंठ, पिप्पली, काली मिर्च) तथा

---

1 सक्षिप्त गरुड पुराण, अध्याय 170।

2 गरुड पुराण, 172 25।

केसर के चूर्ण का सेवन करने से बंध्या स्त्री भी पुत्रवती बन जाती है। पाठा (पाढ़ा), लांगलि (कलियारी), सिहास्य (कचनार), मयूर (चिचिड़ा), कुटज (गिरिमल्लिका या कुरैया) को अलग-अलग पीस कर नाभि, पेडू एवं योनि भाग में लेप करने से स्त्री को सुखपूर्वक प्रसव होता है। विदारीकंद, शतावर, कपास के बीजों का योग प्रसूता के दुग्धवृद्धि में सहायक होता है।[1]

औषधियों को मधुर, अम्ल, तिक्त आदि द्रव्यों में वर्गीकृत करते हुए उसके औषधीय उपयोग का वर्णन किया गया है। इसी क्रम में कृतमान (केवड़ा-सोमालिका), करीर (वंशांकुर), हल्दी, इंद्रयव, स्वादुकंटक (भुँइकुम्हड़ा), वेत्रलता, वृहतीद्वय, शंखिनी (चोरपुष्पी), गूडूची, द्रवंती, त्रिवृत्त (निशोथ), मंडूकपर्णी (मंजीठ), कारवेल्ल (करेला), वार्ताकु (बैगन), करवीर (कनेर), वास (अडूसा), रोहिणी (कंजा), शंखचूर्ण (शंखपुष्पी), कर्कोट (खेकसी), जयंतिका (वैजयंती), ज्वाती (चमेली), वारुणक (वरुण), नीम, ज्योतिष्मती (मालकँगनी) और पुनर्नवा आदि औषधियों को तिक्त वर्ग में रखा गया है। इनका रस छेदक, रोचक और जठराग्निदीपक होता है।

कृतमालः करीराणि हरिद्रेन्द्रयवास्तथा। स्वादुकंटकवेत्राणि वृहतीद्वयशंखिनी॥
गुडूची च द्रवंती च त्रिवृन्मण्डूकपर्ण्यपि। कारवेल्लक वार्ताकु करवीर कवासकाः॥
रोहिणी शंखपुष्पी च कर्कोटो वै जयंतिका। जातीवरुणकं निम्बो ज्योतिष्मती पुनर्नवा॥[2]

हल्दी, कुष्ठ, मेषशृंगि (मेढ़ासिंगी), बला, अतिबला, कच्छुरा (शूकशिम्बी), सल्लकी (चीड़), पाठा (पाढ़ा), पुनर्नवा, शतावरी, अग्निमंथ (गनियारी) ब्रह्मदंडी, श्वंद्रष्ट्रा (गोखरु), एरण्ड, यव (जौ), कोल (वेर) एवं कुलत्थ (कुलथी) आदि औषधियाँ वातज एवं पित्तज विकारों को नष्ट करती हैं।

हरिद्रा कुष्ठ लवणं मेषशृंगिबलाद्वयं। कच्छुरा शल्लकी चैव पुनर्नवा शतावरी॥
अग्निमंथो ब्रह्मदंडी श्वदंष्ट्रैरण्डके तथा। यवकोलकुलत्थादिकर्षांशी दशमूलकम्॥
पृथक्समस्तो वातान्तः कफपित्तहरस्तथा॥[3]

शतावरी, विदारी, वालक (मोथा), उशीर (खस), चंदन, दूर्वा, वट, पिप्पली, वेर, सल्लकी, केला, नीलकमल, लालकमल, गूलर, पटोल (परवल), हल्दी, गुड़ एवं कुष्ठ ये औषधियाँ कफ विनाशक हैं।[4]

आयुर्वेदिक परंपरा में कुछ ऐसी औषधियाँ भी वर्णित हैं जो समस्त रोगों के लिये उपयोगी मानी जाती हैं। मिसाल के तौर पर गरुड़ पुराण में यह वर्णित है कि शतावरी, गुडूची, चित्रक, बिजौरा नीबू

---

1 गरुड़ पुराण, अध्याय 172।

2 वही, 173 14-16।

3 वही, 173 21-22।

4 वही, 173.23-25।

का रस या कंटकारी के रसादि से समन्वित निर्गुण्डी का रस या पुनर्नवा, चमेली अथवा त्रिफला के साथ अडूसा या ब्राह्मी, एरंड, भृंगराज, कुष्ठ, मूसली, दशमूल, खदिर की घिसकर बनायी गयी बटी या चूर्ण समस्त रोगों को दूर करने वाला है।

शतावर्य्या गुडूच्या वा चित्रकैः व्योषनिम्बकैः। निर्गुण्डया वा प्रसारण्या कंटकार्या रसादिभि। वर्षाभूवालया वापि वासकेन फलत्रिकैः। ब्राह्मि कैरंड केनापि भृंगराजेन यष्टिना। मुषल्या दशमूलेन खदिरेण वटादिभिः।[1]

जीवन में अनेक तरह की घटनाओं-दुर्घटनाओं में अक्सर हड्डियाँ टूट जाती हैं। मानव शुरु से ही हड्डियों को जोड़ने वाली और उसे पहले के स्वरूप में लाने वाली औषधियों के खोज में जुटा हुआ है। गरुड़ पुराण में वर्णन आता है कि अस्थिसंहारक हरजोड़ अर्थात ग्रंथिमान नामक लता की जड़ को भात के साथ खाने से या जटामांसी के रस के साथ पान करने से अस्थिभंग के दोष नष्ट हो जाते हैं।[2]

आम की जड़ का रस एवं घृत भरने से शस्त्राघात का घाव भर जाता है। शरपुंखा (शरफोंका), लज्जालुका (लाजवंती) एवं पाठा (पाढ़ा) नामक औषधियों की जड़ को जल में पीसकर लगाने से शस्त्राघात जनित व्रण ठीक हो जाता है। काकजंघा की जड़ को पीसकर शस्त्राघात के घाव में भरने से वह घाव तीन रात्रियों के बीतते ही सूख जाता है। रोहितक या रोहड़ा की जड़ का लेप भी व्रण को नष्ट कर देता है।[3]

पुख्य नक्षत्र में सुदर्शना (चक्रांगी या वृषकर्णी) नामक लता की जड़ को घर के मध्य डाल देने से सर्प घर से भाग जाते हैं। रविवार को लायी गयी मंदार वृक्ष एवं अग्निज्वलिता (जलपिप्पली) की जड़ को पीसकर बनायी गयी बत्ती, सरसों तेल में जलाने पर मार्ग में दंशप्रहार करने वाले सर्प का विनाश करती है। त्रिफला, अर्जुन के पुष्प, भिलावा, शिरीष, लाक्षारस, राल, विंड व गुग्गुल इन सभी द्वारा बना धूप मक्खियों एवं मच्छरों का नाश करता है।[4]

सभी जीवधारी स्वाभाविक रूप से चाहते हैं कि उनकी आयु लम्बी हो। मानव शुरू से ही ऐसी औषधियों की खोज में लगा रहा जिससे उसके इच्छा की पूर्ति हो सके। गरुड़ पुराण इसका अपवाद नहीं हैं। इसमें कहा गया है कि यदि मनुष्य हस्तिकर्ण (पलाश) के पत्तों का चूर्ण कर 100 पल की मात्रा में इस चूर्ण को दूध के साथ मिलाकर लगातार सात दिनों तक प्रयोग करे तो वह वेद विद्याविशारद, सिह के समान पराक्रमी, पद्मराग के समान कांतियुक्त तथा शतायु में भी नवयुवक बन सकता है।

---

1 गरुड पुराण, 174 13-15।

2 वही, 177 50-51।

3 वही, 177 58।

4 वही, 177 83-84।

हस्तिकर्ण पलाशस्य पत्राणि चूर्णयेद्धर। सर्वरोगविनिर्मुक्तं चूर्ण पलशतं शिव ।।[1]

मधु के साथ उक्त चूर्ण लेने से प्राणी 10,000 वर्ष की आयु प्राप्त कर सकता है जबकि केसर से युक्त इस चूर्ण का प्रयोग करने से मनुष्य 1,000 वर्ष की आयु प्राप्त कर सकता है।[2] पुष्य नक्षत्र में भृंगराज की जड़ लाकर उसका चूर्ण बना कर यदि कांजी के साथ सेवन करे तो वह एक मास में रोग रहित एवं हाथी के समान शक्ति संपन्न हो जाता है।

दैनन्दिन जीवन में हमें अनेक विषैले जीवों, कीड़े-मकोड़ों आदि का सामना करना पड़ता है। इसके उपचार की व्यवस्था भी इस पुराण में दी गयी है। जो मनुष्य पुष्य नक्षत्र में सेमल की जड़ को जल में पीसकर पी लेता है उसके ऊपर विषैले सर्पो का दंत प्रहार भी व्यर्थ हो जाता है।[3] कोदो की जड़ पीसकर पान करने से विष की मूर्छा दूर हो जाती है। कृष्णा (काली तुलसी) एवं अंकोल की जड़ के क्वाथ को तीन रात पीने से सामान्य या कृत्रिम विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है।[4] भविष्य पुराण में विष फैलने के 7 चरणों एवं उसके लिये अलग-अलग वनौषधियों का वर्णन प्राप्त होता है। पहले चरण में आक की जड़, अपामार्ग, प्रियंगु एवं तगर को जल में पीस कर पिलाने से विष बाधा दूर हो जाती है। दूसरे चरण में उशीर (खस), चंदन, कूट, तगर, नीलोत्पल, सिंदुवार की जड़, धतूरे की जड़, हींग और मिरच-इनको पीसकर देना चाहिये। तीसरे चरण में पीपल, शहद, महुआ, घी, तुम्बे एवं इंद्रायण की जड़ को गोमूत्र में पीसकर देना चाहिये। चौथे चरण में पीपल, मिरच, सोंठ, श्लेष्मातक (बहुवार वृक्ष), लोध एवं मधुसार को समान भाग करके गोमूत्र में पीसकर अंजन लगाना चाहिये एवं पिलाना चाहिये। पाँचवे चरण में शोणा (सोनागाछ) की जड़, प्रियाल, गजपीपल, भारंगी, वचा, पीपल, देवदारु, महुआ, मधुसार, सिंदुवार और हींग को पीसकर रोगी को खिलाये। छठे चरण में घी, शहद, शर्करा युक्त खस एवं चंदन को घोंटकर पिलाना चाहिये। सातवें एवं अंतिम चरण में मोर का पित्त, मार्जार का पित्त, गंधनाड़ी की जड़, कुंकुम, तगर, कूट, कासमर्द की छाल तथा उत्पल, कुमुद एवं कमल इन तीनों के केसर सभी को गोमूत्र में पीसकर नस्य देना चाहिये। यह मृतसंजीवनी औषधि है अर्थात मरे हुए को भी जिला देती है।[5]

बरगद, नीम एवं शमी वृक्ष की छाल के क्वाथ से सेंक करने पर मुख एवं दांत की विष वेदना नष्ट हो जाती है। कंजे के वृक्ष, वरुण वृक्ष के पत्ते, तिल एवं सरसो का पीसा लेप विष को दूर कर देता है। नमक एवं घृत से युक्त घृतकुमारी पत्ते का लेप करने से घोड़े के शरीर की खुजली 10 दिन में दूर हो जाती है।[6]

---

1 गरुड़ पुराण, 187 1।

2 वही, 187.4-6।

3 वही, 191.3।

4 वही 191 10-11।

5 सक्षिप्त भविष्य पुराणाक, 1992, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० 66।

6 गरुड पुराण, 191 24।

गरुड पुराण के अध्याय 204 में औषधियों के पर्यायवाची नामों का उल्लेख किया गया है। उदाहरण के तौर पर इस अध्याय में यह बताया गया है कि स्थिरा, विदारीगंधा, शालपर्णी एवं अंशुमती एक ही औषधि के नाम हैं। शतावरी नामक वनौषधि वरा, भीरु, पीवरी, इंदीवरी, वरी नाम से जानी जाती है। पाकड़ के पर्याय प्लक्ष, गर्दभांड, पर्कटी और कपीतन हैं। शल्लकी के प्रचलित नाम हैं—गजभक्ष्या, पत्री, सुरभी, श्रवा, गजारी। पत्थरचट्टा को विभिन्न उल्लेखों में पाषाणभेदक, अरिष्ट, अश्मभित, कुट्टभेदक, पत्थरचूना भी कहा गया है। तुलसी के अन्य भेद हैं—तुलसी, सुरसा, उपस्था, कुठेरक, अर्जुनक, पर्णी, सौगंधिपर्णी।

मध्ययुगीन ग्रन्थों में वानस्पतिक औषधियाँ—वाग्भट्ट प्राचीनकाल के अंतिम संहिताकार थे परन्तु उनके द्वारा दिये गये सिद्धान्तों का अनुसरण मध्यकाल एवं आधुनिक काल तक निरंतर होता रहा है। मध्यकाल (8वीं से 12वीं शताब्दी) में उग्रादित्य कृत 'कल्याण-कारक', नागार्जुन लिखित 'योगशतक', सिद्धिसार संहिता, नागमतृतंत्र, पंडित केशव द्वारा रचित 'आयुर्वेद प्रकाश' प्रमुख ग्रन्थ हैं। इस काल में दामोदर सुनु शार्गधर द्वारा लिखित 'शार्गधर संहिता' विशेष उल्लेखनीय है। यह मध्यकाल की एकमात्र संहिता है जो तत्कालीन प्रवृत्तियों एवं विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। इसके अनुसार उस समय आयुर्वेद जगत में औषधि-द्रव्य, औषधि-कल्पनायें, चिकित्सा क्रम तथा रसौषधियों का भी प्रचलन बढ़ गया था। इस समय कल्पनानुसार ही चिकित्सा अपनायी जाती थी।

मध्य काल में अधिकांश आयुर्वेद विद्वान एवं टीकाकार हुये जिन्होंने आयुर्वेद के प्रचलन एवं परम्पराओं को गति दी। आठवीं शती में अषाढ़ वर्मा, हिमदत्त, क्षीरस्वामी दत्त, शिव-सैंधव, वैष्णव, चेल्लदेव तथा पतंजलि ने आयुर्वेद की परम्पराओं को आगे बढ़ाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की। पतंजलि प्रणीत **'चरकवर्तिका'** आयुर्वेद की मुख्य कृति है। नवीं शती ई० में जेज्जट ने वृहत्त्रयी की सभी संहिताओं पर व्याख्या लिखी। गयदास, चक्रपाणि, डल्हड़, विजय परीक्षित, निश्चलकर, शिवदास सेन प्रभृति विद्वानों ने जेज्जट को उद्धृत किया है। माधव ने 'सुश्रुत श्लोक वर्तिका' की रचना की। इस काल में सुधीर, अमित प्रभ तथा भद्रवर्मा भी प्रसिद्ध हुये। 10वीं शताब्दी में चंद्रनंदन, भासदत्त, ब्रह्मदेव, भीमदत्त, अंगिरी, ईश्वरसेन आदि ने आयुर्वेद की परम्परा को अग्रसर किया। चंद्रनंदन ने 'अष्टांग हृद्य' पर 'पदार्थ चंद्रिका' नामक टीका लिखी। तीसराचार्य के पुत्र चंद्रढ़ ने अपने पिता की रचना 'चिकित्सा कलिका' पर 'योगरत्न समुच्चय' नामक चिकित्सा ग्रंथ लिखा। इन्होंने 'योगमुष्टि', चंद्रढ़सारोद्धार' तथा 'वैद्यक कोष' भी लिखा।[1]

ग्यारहवीं शती में भास्कर भट्ट, नरदत्त, सुवीर, वंगदत्त नंदी, वराह, कार्तिकुंड, वृंदकुंड, श्रीकृष्ण वैद्य, गयीसेन आदि आयुर्वेदाचार्य हुये। चक्रपाणि ने चरक संहिता पर 'आयुर्वेद दीपिका' नामक व्याख्या लिखी। यह बंगाल में बहुत प्रचलित प्रसरित हुई। इसके अलावा इस काल में गदाधर,

---

1 अखड ज्योति, मथुरा, जून, 1998, पृ० 17।

वाष्पचद्र, ईशान देव, गुणाकर, ध्रुवपाद, भव्यदत्त, बबुलकर, सनातन, विजयरक्षित, कंठदत्त प्रभृति विद्वानों ने आयुर्वेद के क्षेत्र में अपना योगदान दिया। आयुर्वेद के चर्चित ग्रंथ भाव मिश्र रचित 'भाव-प्रकाश' 10-11वीं शताब्दी की रचना मानी जाती है जबकि विद्वानों का एक वर्ग इसे 16वीं शताब्दी की रचना मानता है।

भाव प्रकाश निघंटु आयुर्वेद की एक अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है जिसमें औषधि के लिये उपयुक्त अधिकांश वनस्पतियों के बारे में अलग-अलग विस्तृत विवेचन मिलता है। इस प्रकार इसे एक तरह से आयुर्वेदिक कोष की संज्ञा दी जा सकती है। भाव प्रकाश निघंटु में वर्णित कुछ वानस्पतिक औषधियों के बारे में जानकारी निम्नवत है।

नीम—नीम के बारे में आम धारणा है—'सर्व रोग हरो निम्बः' नीम सब रोगों को दूर करने वाली है। नीम की पत्ती का सेवन करने वाले मनुष्य तेजवान हो जाते हैं। भाव प्रकाश में नीम के नामों एवं गुणों के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा गया है—

निम्बः स्यात्पिचुमर्दश्च पिचुमंदश्च तिक्तकः। अरिष्टः पारिभद्रश्च हिंगनिर्यास इन्पयि।
निम्बः शीतो लघुग्रीही कटुपाकोऽग्निवातनुत। अहृदयः श्रमतृटकासज्वारा रुचि कृमि प्रणुत।
व्रण पित्तकफच्छर्दि कुष्ठहल्लास मेहनुत।[1]

निम्ब, पिचुमर्द, तिक्तक, अरिष्ट, पारिभद्र और हिगुनिया—ये नीम के संस्कृत नाम हैं। नीम-शीतवीर्य, लघु, ग्राही, पाक में कटु रस युक्त, हृद्य को अहितकर जठराग्नि को मंद करने वाला तथा वात, श्रम, तृषा, खाँसी, ज्वर, अरुचि, कृमि, व्रण, पित्त, कफ, वमन, कुष्ठ, हल्लास (उबकाई) तथा प्रमेह का नाशक है। आगे की पंक्तियों में नीम के उपयोगी गुणों को इस प्रकार गिनाया गया है—

निम्बपत्रं स्मृतं नेत्यं कृमि, पित्तः विष प्रणुत। वातलं कटुपाकश्च सर्वारोचक कुष्ठनुत॥
निम्बफलं रसे तिक्तं पाके तु कटुभेदनम्। स्निग्धं लघुष्णं कुष्ठघ्नं गुल्मार्शः कृमिमेहनुत।[2]

नीम के पत्ते नेत्र के लिये हितकर, कृमि-पित्त-विष के नाशक, वातकारक, पाक में कटुरस युक्त तथा सभी प्रकार की अरुचि और कुष्ठ को दूर करने वाले होते हैं। नीम का फल इस में तिक्त तथा पाक में कटु, मल का भेदन करने वाला, स्निग्ध, लघु उष्णवीर्य, कुष्ठ, गुल्म, बवासीर, कृमि तथा प्रमेह का नाशक होता है।

आँवला—आँवले के वृक्ष की उपयोगिता सर्वांगीण है। यह कुछ तीखा, सारक, मीठा, कड़ुवा, खट्टा, फीका और शीतल होता है। यह जरा (बुढ़ापा) और व्याधि का नाशक, वृष्य, केश हितकारी

1 भाव प्रकाश, पूर्व खंड, मिश्र प्रकरण, पृ० 318।

2 वही, पृ० 318।

और अरुचि नाशक होता है। तथा रक्त, पित्त, प्रमेह, विष, ज्वर, बंधकोष, सूजन, तृषा, रक्तविकार और त्रिदोष का नाश करता है।[1]

आँवला पुरुष शक्ति की वृद्धि में अद्‌भुत प्रभाव दिखाता है। कहते हैं कि महर्षि च्यवन को यौवन की प्राप्ति इसी फल से हुई थी। सूखे आँवले का प्रयोग अरुचि, खुजली, स्वरभंग, प्रमेह आदि रोगों में किया जाता है। वीर्य वृद्धि के लिये आँवले के रस को घी में मिलाकर खाया जाता है। बालों को काला रखने हेतु यह विशेष तौर पर उपयोगी है। शरीर की कांति-वृद्धि में आँवले के महत्व को सबने एक स्वर से स्वीकार किया है। भाव प्रकाश निघंटु आँवले के बारे में निम्न वर्णन करता है—

त्रिष्वामलकमाख्यातं धात्री तिष्यफलाऽमृता। हरीतकी समं धात्री फलं किंतु विशेषतः।
रक्त पित्त प्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम्। हंति वातं तदम्ल त्वात्पित्तं माधुर्यशैत्यतः।
कफं रुक्ष कषायत्वात्फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित्। यस्य यस्य फलस्येत वीर्य भवति यादृशम्।
तस्य तस्यैव वीर्येण मज्जानमपि निर्दिशेत्।[2]

आमलक, धात्री, तिष्यफला, अमृता, पंचरसा, श्रीफली, धात्रिका, शिवा, अकरा व्यवस्था, वृष्या, कायस्था, बहूफला, शांता, अमृतफला, वृत्तफला, रोचनी, कर्षफला, तिष्या, धात्रीफल, श्रीफल, अमृतफल, शिव, जातीफल ये सब आँवले के संस्कृत नाम हैं।

पुनर्नवा—पुनर्नवा ऐसी वनस्पति है जो 'पुनः पुनर्नवा भवति' के अनुसार हर वर्ष नवीन हो जाती है। इसीलिये इसे पुनर्नवा कहा गया है। सेवन करने वाले के शरीर को यह पुनः नया कर देती है इसलिये भी इसका पुनर्नवा नाम सार्थक सिद्ध होता है। भाव प्रकाश निघँटु में लिखा है—

कटुः कषायानुरसा पाण्डुघ्नी दीपनी परा। शेफानिलगर श्लेष्महरी वघ्नोदर प्रणुत।।[3]

अर्थात 'श्वेत पुनर्नवा चरपरी, कसैली, अत्यंत अग्निदीपक एवं पांडु रोग' सूजन, वायु, विष, कफ एवं उदर रोग नाशक है।' भाव प्रकाश में रक्त पुनर्नवा का भी वर्णन इस प्रकार मिलता है।

पुनर्नवारुणा तिक्ता कटुपाका हिमा लघुः। वातला ग्राहिणी श्लेष्म पित्त रक्त विनाशिनी।।[4]

अर्थात कड़वी, पाक में चरपरी, शीतल, हल्की, वातकारक, ग्राही, कफ, पित्त तथा रुधिर विनाश नाशक है।[5]

---

1 वृक्ष विज्ञान, पृ० 131-132।

2 भाव प्रकाश, पृ० 135।

3 भाव प्रकाश, पृ० 152।

4 वही, पृ० 153।

5 निरोगधाम, इदौर, अप्रैल-जून, 1997, पृ० 11।

हर्रे— आयुर्वेद ने हरड़ (हर्रे) की बहुत प्रशंसा की है और विस्तार से इसके गुण एवं प्रयोगों का वर्णन किया है। भाव प्रकाश निघंटु का शुभारंभ ही 'हरीतक्यादि वर्ग' नामक अध्याय से हुआ है जिसमें सर्वप्रथम हरीतकी अर्थात हरड़ का ही वर्णन दिया गया है। अश्विनी कुमारों के हरड़ विषयक प्रश्न के उत्तर में दक्ष प्रजापति ने कहा—

पपात बिन्दुर्मेदिन्यां शक्रस्य पिवतोऽमृतम्। ततो दिव्या समुत्पन्ना सप्तजातिर्हरीतकी।।[1]

अर्थात किसी समय पूर्वकाल में इंद्र द्वारा अमृत पान करते समय एक बूँद पृथ्वी पर गिर पड़ी। उस स्थान से ही 7 प्रकार की दिव्य गुणों वाली हरीतकी उत्पन्न हुई।' आयुर्वेद हरड़ को अमृत तुल्य मानता है क्योंकि यह बहुत लाभकारी और अनेक गुणों से भरपूर है जो अलग-अलग ढ़ंग से प्रयोग करने पर अलग-अलग प्रकार के लाभ पहुँचाती है।

द्रव गुण विज्ञान के अनुसार हरड़ तीन प्रकार की होती है।[2]

(i) छोटी हरड़, (ii) पीली हरड़, (iii) बड़ी हरड़

वस्तुतः ये तीनों एक ही वृक्ष के फल होते हैं जो अवस्था भेद से भिन्न हो जाते हैं। वृक्ष से कच्चे कोमल फल (गुठली रहित) जो स्वयं गिर जाते हैं या तोड़ कर सुखा लिये जाते हैं, वे छोटी हरड़ कहलाते हैं। गुठली आने के बाद अपरिपक्व (कच्चे) फल लिये जाते हैं, वे पीली हरड़ कहलाते हैं। पूरी तरह पके फल को बड़ी हरड़ कहते हैं।

आयुर्वेद में इसकी रुपरेखा एवं आकृति का वर्णन करते हुए इसे माता के समान बताया गया है—

हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी। कदाचित कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी।।[3]

अर्थात 'हरड़ मनुष्यों के लिये माता के समान हित करने वाली है। कदाचित माता-पिता तो कभी-कभी क्रोधित हो जाते हैं मगर पेट में गयी हरीतकी कभी कुपित नहीं होती।'

भाव प्रकाश में हरड़ के पर्याय बताते हुये कहा गया है—हरीतकी, अभया (अभय करने वाली), पथ्या (सेवन योग्य), कायस्था (शरीर को धारण करने वाली), पूतना (पवित्र करने वाली), अमृता, हेमवती (हिमालय पर होने वाली), अव्यथा (व्यथानाशक), चेतकी (चेतन करने वाली), श्रेयसी (श्रेष्ठ), शिवा (कल्याण करने वाली), वयस्था (आयु स्थापक), विषया (रोगों को जीतने वाली), जीवंती (जीवन दायिनी), रोहिणी (रोपण करने वाली)। हरड़ के गुणों का वर्णन भाव प्रकाश इस प्रकार करता है—'स्वाद में कसैली, रुखी, गरम, जठराग्नि बढ़ाने वाली, बुद्धि के लिये हितकारी, आयुवर्द्धक, वायु को शांत करने वाली, श्वांस-कांस-प्रमेह, बवासीर, कुष्ठ, सूजन, उदर रोग, कृमि

---

1 भाव प्रकाश, पृ० 174।

2 द्रवगुण विज्ञान, II भाग, अध्याय 9, पृ० 754।

3 भाव प्रकाश, पृ० 176।

रोग, ग्रहणी, व्रण, वमन, हिचकी, कठ एव हृद्य के रोग, कामला, शूल, पथरी, मूत्र कृच्छ आदि रोगों को दूर करती है। मधुर, तिक्त एवं कसैली होने से पित्त का, कटु, तिक्त एवं कसैली होने से कफ का एवं अम्ल रस से युक्त होने से वात का शमन करती है यानी त्रिदोषनाशक है।[1]

तुलसी—गुणों के कारण आयुर्वेद ने इसे कई गुणवाचक नामों से संबोधित किया है। भाव प्रकाश निघंटु के अनुसार

तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहुमंजरी। अपेत राक्षसी गौरी भूतघ्नी देवदुंदुभिः ।।[2]

अर्थात 'तुलना रहित होने से तुलसी, उत्तम गुण वाले रस से युक्त होने के कारण सुरसा, ग्राम-ग्राम में उपलब्ध रहने से 'ग्राम्या', आसानी से सर्वत्र सुलभ होने से 'सुलभा', अनेक मंजरियों वाली होने से 'बहुमंजरी' जंतु एवं कीट विरोधी होने से 'अपेत राक्षसी', दैवी गुण वाली होने से 'गौरी', जंतुनाशी होने से 'शूलघ्नी', दुंदुभि के समान लम्बी मंजरी वाली होने से 'देवदुंदुभि' नाम से इसे संबोधित करते हैं।

भाव प्रकाश में इसके गुणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

तुलसी कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्त कृत्त। दीपनी कुष्ठ कृच्छा स्त्रपाश्र्वरुक कफवातजित् ।।[3]

अर्थात चरपरी, कड़वी, अग्निवर्द्धक, हृद्य हेतु हितकारी, गर्म, दाह एवं पित्तकारक तथा कुष्ठ, मूत्रकृच्छ, रक्त विकार, पसली का दर्द, कफ एवं वात का प्रकोप शमन करने वाली, मलेरिया ज्वर तथा शरीर के विकारों को दूर करने वाली है।

पालक—प्रकृति द्वारा पालक में उन सभी गुणों का समावेश किया गया है जो तरह-तरह के मेवों और फलों में भरे होते हैं। इसमें मुख्यतः कैल्शियम, विटामिन ए और सी, प्रोटीन, खनिज-लवण, फास्फोरस, लौह तत्व, सोडियम क्लोरीन आदि तत्व होते हैं। पालक के पत्तों को कच्चा चबाने या भाजी के रूप में सेवन करने से कई विकारों से छुटकारा मिल जाता है। इसके नियमित सेवन से जीभ एवं अन्न प्रणाली के शोथ, दांत के रोग, स्मरण शक्ति का ह्रास, वमन, शरीर का भार घटना, पांडु रोग, रक्त क्षय,, दिल धड़कना, संग्रहणी, चक्कर आना, अतिसार, बेरी-बेरी, रतौंधी, श्वेत प्रदर, अजीर्ण, पायरिया, नेत्र-शूल, बालों का गिरना, सिर दर्द, क्षय रोग में आशातीत लाभ होता है।

भाव प्रकाश में पालक के गुणों का वर्णन इस प्रकार दिया गया है—

---

1 निरोगधाम, इंदौर, अप्रैल-जून 1997, पृ० 55।

2 भाव प्रकाश, पृ० 224।

3 वही, पृ० 225।

पालक्या वातला शीता श्लैष्मला भेदनी गुरु। विष्टंभी च मदश्वांसपित्त रक्त ज्वरा पहा।।[1]

वनौषधि चंद्रोदय के अनुसार—पालक का क्वाथ ज्वर प्रधान रोगों में देना चाहिये। गले की जलन, फेफड़े की सूजन एवं श्वांस नली की सूजन में यह लाभदायक है। प्रमेह और पथरी में इसका रस दिया जाना चाहिये।

इसी प्रकार अन्य औषधीय वनस्पतियों के पर्याय नामों, गुणों, उपचारार्थ प्रयोग आदि का वर्णन इन ग्रंथों में प्राप्त होता है।

पुष्पों के औषधीय प्रयोग—वर्तमान अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि फूलों की सुगंध भी रोग नाशक है। इसके सुगंधित परमाणु वातावरण में घुलकर नासिका की झिल्ली में पहुँचकर अपनी सुगंध का अहसास कराते हैं, वे मस्तिष्क के अलग-अलग हिस्सों पर प्रभाव दिखाकर उत्तेजना सी अनुभव कराते हैं, जिनका मस्तिष्क, हृद्‌य, आँख, कान, पाचन क्रिया, रति क्रिया आदि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। ये थकान को तुरन्त दूर करते हैं। इसकी सुगन्ध से की गयी उपचार प्रणाली को 'एरोमा थैरैपी' कहते हैं। पुष्पों के कुछ औषधीय प्रयोग निम्नलिखित हैं—

कमल के फूलों के गुलकंद का प्रत्येक प्रकार के रोगों में, कब्ज निवारण के लिये उपयोग किया जाता है। इसका सर्वाधिक प्रयोग अंजन की भाँति नेत्र ज्योति बढ़ाने के लिये शहद में मिलाकर किया जाता है। इसकी पंखुड़ियों को पीसकर उबटन में मिलाकर मलने से चेहरे की सुन्दरता बढ़ती है।

केवड़ा के पुष्प दुर्गंधनाशक, मदनोन्मादक हैं। सिर दर्द और गठिया में इसका इत्र उपयोगी है। इसकी मंजरी का उपयोग पानी में उबालकर कुष्ठ, चेचक, खुजली, हृद्‌य रोगों में स्नान करके किया जा सकता है। इसका अर्क पानी में डालकर पीने से सिर दर्द तथा थकान दूर होती है। इत्र की दो बूँद कान में डालने से दर्द ठीक हो जाता है।[2]

गुलाब का गुलकंद रेचक होता है, जो पेट और आंतों की गरमी को शांत करता है। गुलाब जल से आखें धोने से आखों की लाली और सूजन कम होती है। इसका इत्र कामोत्तेजक होता है।

गेंदा की गंध से मच्छर दूर भागते हैं जो अनेक रोगों के वाहक होते हैं। यकृत की सूजन, पथरी एवं चर्म रोगों में गेंदे का फूल प्रयोग किया जाता है।

गुड़हल—इसका पूर्ण सम्बन्ध गर्भाशय से है। ऋतुकाल के बाद यदि इसके फूल को घी में भूनकर महिलाएँ सेवन करें तो उन्हें गर्भनिरोध हो सकता है। गुडहल का फूल चबाने से मुँह के छाले दूर हो जाते हैं। इसके फूलों को पीसकर बालों में लगाने से गंजापन मिटता है। उन्माद को दूर करने हेतु इसका शरबत बनाकर देना चाहिये।

---

1 भाव प्रकाश, पृ० 237।

2 कादम्बिनी, सितम्बर 1998, दिल्ली, पृ० 128।

चंपा—इसके फूलों को पीसकर कुष्ठ रोग के घाव में लगाया जा सकता है इसका अर्क रक्त के कृमि को नष्ट करता है। सूखे फूलों का चूर्ण खुजली में उपयोगी है। यह ज्वरहर, मूत्रल, नेत्र ज्योति वर्द्धक तथा पुरुषों को रतिदायक उत्तेजना प्रदान करता है।

चमेली—चमेली का फूल चर्म रोगों की बेहतरीन औषधि है। पायरिया, दंतशूल, घाव, नेत्र रोगों और फोड़ो-फुंसियों में इसका तेल बनाकर उपयोग किया जाता है। यह शरीर में रक्त संचार बढ़ाकर स्फूर्तिदायक बनाता है। इसके पत्ते चबाने से मुँह के छाले तुरन्त दूर होते हैं।

जूही—जूही के फूलों का चूर्ण या गुलकंद अम्ल पित्त को नष्ट कर पेट के अल्सर एवं छाले को दूर करता है। इसके निरन्तर सान्निध्य में रहने से क्षय रोग नहीं होता।

धतूरा—उन्माद या अनिद्रा रोग से ग्रसित व्यक्ति अगर धतूरा के फूलों को एकत्र कर बारीक कपड़े में बांधकर सिरहाने रखे तो उसे निद्रा आने लगती है।

नीम—नीम के फूलों को पीसकर लुग्दी बनाकर फोड़े-फुंसी पर रखने से जलन एवं गरमी दूर होती है। इसको शरीर पर मलकर स्नान करने से दाद दूर हो जाता है। रक्त को साफ करने में सहायक होता है तथा संक्रामक रोगों से रक्षा करता है।

नागकेशर—यह खुजली नाशक है। इसके फूलों का चूर्ण मक्खन या दही के साथ सेवन करने पर रक्तार्श में लाभ होता है। इसका चूर्ण गर्भ धारण में भी सहायक होता है।

पलाश (ढ़ाक)—पलाश के पुष्प का चूर्ण पेट के किसी भी प्रकार के कृमि का हनन करने में सहायक है। इसके पुष्पों को पानी के साथ पीसकर लुगदी बनाकर पेडू पर रखने से पथरी के कारण दर्द होने या मूत्र न उतरने पर मूत्रल का कार्य करता है।

बकुल (मौलसिरी)—बकुल के फूलों का शरबत स्त्रियों के बांझपन को दूर करता है। इसका फूल सूंघने से हृद्‌य को शक्ति मिलती है और मस्तिष्क की पीड़ा दूर होती है। बकुल के फूल योनिस्राव नाशक, वीर्यवर्धक, कफ एवं रक्त दोष नाशक होते हैं। दाँतो और मसूड़ों के लिये यह एक प्रसिद्ध औषधि है।

बबूल— इसके फूलों को पीसकर सिर में लगाने से सिर दर्द गायब हो जाता है। इसका लेप दाद और एग्जिमा पर लगाने से चर्म रोग दूर होता है। इसके अर्क सेवन से रक्त विकार दूर होकर खाँसी एवं श्वांस रोग में लाभकारी होता है। इसके कुल्ले दंतक्षय रोकते हैं।

बेला—इसके पुष्प पास रखने से पसीने में गंध नहीं आती। इसकी सुगंध प्रदाह नाशक है। स्त्रियों के गर्भाशय को उत्तेजना प्रदान करने वाला यह एकमात्र पुष्प है। यह रतिदायक होता है। इसकी कलियाँ चबाने से मासिक खुलकर आता है।

माधवी— चर्म रोगों के निवारण में इसके चूर्ण का लेप किया जाता है। गठिया रोग मे प्रात:काल फूलों को चबाने से आराम मिलता है। इसके फूल श्वांस रोग भी दूर करते हैं।

रात की रानी— इसके फूल के तीव्र गंध में मच्छर नहीं आते। इसकी गंध मादक और निद्रादायक होती है।

लौंग— यह आमाशय और आंतों में रहने वाले उन सूक्ष्म कीटाणुओं को नष्ट करते हैं जिसके कारण मनुष्य का पेट फूलता है। यह रक्त के श्वेत कणों में वृद्धि करके शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति में वृद्धि करती है, और शरीर तथा मुँह की दुर्गंध का नाश करती है। दंतशूल में इसे मुख में डालकर चूसा जाता है।

शिरीष— खुजली में शिरीष के फूल पीसकर लगाने चाहिये। शिरीष के फूलों के काढ़े से नेत्र धोने से किसी भी प्रकार के विकारों में लाभ मिलता है।

शंखपुष्पी (विष्णुकांता)— फूल, पत्ते तथा डंठल तीनों का मिश्रण मिश्री में मिलाकर पीने से मस्तिष्क में ताजगी रहती है।

सूरजमुखी— सूर्य की रोशनी न मिलने के कारण होने वाले रोगों को रोकता है। इसका तेल हृद्य् रोगों में कोलेस्ट्राल को कम करता है।

हरसिंगार (पारिजात)— हरसिंगार गठिया रोगों का नाशक है। इसका लेप चेहरे की कांति बढ़ाता है।

अनार— शरीर में पित्त होने पर अनार के फूलों का रस मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। मुँह के छालों में इसका फूल रखकर चूसना चाहिये। आँख आने पर अनार की कली का रस आँख में डालने से विकार दूर होता है।

अमलतास— इसके फूलों का गुलकंद बनाकर खाने से कब्ज दूर होता है।

अशोक— इसके फूल, छाल एवं पत्तियों का उपयोग स्त्रियों के अधिकांश रोगों में किया जाता है।

आक— इसका फूल कफ नाशक एवं प्रदाह कारक है। पीलिया के रोगी को आक की कली पान में रखकर देने से आराम मिलता है।

कदम्ब— इसका वृक्ष कामोत्तेजक होता है। गाय की बीमारी में इसकी फूल-पत्ती वाली टहनी लेकर गोशाला में लगाने से बीमारी दूर होती है।

कचनार— इसकी कलियाँ बार-बार मल त्याग की प्रवृत्ति को रोकती है।

केसर— रज दोषों का नाशक, शक्तिवर्द्धक एवं त्रिदोषों का नाशक है। तंत्रिकाओं में व्याप्त उद्विग्नता एवं तनाव को केसर शांत रखती है। इसीलिये इसे प्रकृति प्रदत्त 'ट्रैंकुलाइजर' भी कहा जाता

है। यह काम तथा रति में उद्दीपन का कार्य करती है।[1]

इस प्रकार वनस्पतियों और पेड़-पौधों के पुष्प भी कई रोगों के निराकरण हेतु प्रयोग किये जाते हैं। आधुनिक शोधों से भी इसकी पुष्टि होती है। वस्तुत: पुष्प सूर्य की किरणों से क्रिया करके रंगीन किरणें हमारी आँखों तक पहुँचाते हैं, जिससे शरीर को ऋणात्मक, धनात्मक तथा कुछ उदासीन (Neutral) प्रकाश की किरणें मिलती हैं जो शरीर के अंदर पहुँचकर विभिन्न प्रकार के रोगों को रोकने में सहायता प्रदान करती है। संभवत: इसी को ध्यान में रखते हुये हमारे ऋषि-मुनियों ने पूजा-उपासना में फूलों को काफी महत्व प्रदान किया।

वानस्पतिक औषधियाँ : वर्तमान संदर्भ—जिन वनस्पतियों का विभिन्न रोगों के संदर्भ में हमारे ग्रंथों में वर्णन किया गया है वे आज के सूक्ष्मतम् वैज्ञानिक अनुसंधानों पर भी खरी उतर रही हैं। यहाँ पर विस्तृत विवरण देना संभव नहीं है फिर भी रोजाना प्रयोग में आने वाली कुछ प्रतिनिधि वनस्पतियों और उनके उत्पादों के वर्तमान चिकित्सकीय संदर्भ निम्नलिखित है—

हल्दी—अदरक परिवार का सदस्य हल्दी (curcuma Iouga) सदियों से विभिन्न प्रकार के कार्यो में उपयोगी रहा है। खाद्य पदार्थो के अलावा इसका उपयोग औषधि रूप में भी होता रहा है। भारत के आम परिवार में इस प्राकृतिक उत्पाद को दूध में मिलाकर एक औषधि बनायी जाती रही जो ठंड लगने से बचा सकता है और एक बेहतरीन दर्द निवारक का कार्य करता है। इसके अलावा यह पेट, आँत और खून की सफाई करने वाले पदार्थ के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता रहा है।

अमरीका, जापान और भारत सहित कई अन्य देशों में अनुसंधान के दौरान यह पाया गया कि हल्दी फेनोलिक यौगिकों (Phenolic Compounds) का अकूत स्रोत है जिससे कैंसर और एड्स जैसी जानलेवा बीमारियों के उपचार में अप्रत्याशित सफलता मिल सकती है। हल्दी में प्राकृतिक रूप से 'एन्टी आक्सीडेंट' (Anti-oxident) पाये जाते हैं। इसकी वजह से हल्दी से निर्मित इन औषधियों का कोई उत्तर प्रभाव (Side effect) नहीं होता और रोग का उपचार भी शीघ्र संभव होता है।

चेरी—नवीन अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि चेरी नामक फल को खाने से किसी व्यक्ति को सामान्य प्रकार के दर्द की अवस्था में एस्पिरिन से भी जल्द राहत मिलती है। वैज्ञानिकों के अनुसार चेरी के इस गुण के पीछे उसमें पाये जाने वाले लाल रंग के एक रसायन एन्थोसायनीन्स (Anthocyanins) का हाथ हो सकता है। अनुसंधान के दौरान वैज्ञानिकों ने पाया कि चेरी में पाये जाने वाले इस रसायन के 15-25 मिग्रा० का कार्य किसी एस्पीरिन की फूलने सम्बन्धी (Inflammation ulated) क्षमता से 10 गुनी अधिक है अर्थात दर्द में राहत भी इसी गति से दिलायेगा। साधारण चेरी के 20 फलों से 15-20 मिग्रा० एंथोसायनिन्स प्राप्त होते हैं। इस रसायन में विटामिन ई और सी सदृश प्रति आक्सीकारक गुण भी विद्यमान है। ध्यातव्य है कि प्राकृतिक उत्पाद चेरी मानक अंगो पर पार्श्व प्रभाव (Side effect) भी नहीं डालता।

---

1 कादम्बिनी, नयी दिल्ली, सितम्बर 1998, पृ० 129।

प्याज और लहसुन—पूरे एशिया में प्याज और लहसुन का प्रयोग न सिर्फ भोजन में अपितु विभिन्न रोगों के उपचार में भी किया जाता है। अमरीकी वैज्ञानिकों के सर्वेक्षणों से यह प्रमाणित हो चुका है कि ये शरीर के विषैले पदार्थो से राहत दिलाते हैं। यह बात भी सामने आयी है कि प्याज कोलेस्टराल के स्तर को भी घटाता है। यह एच डी एल-कोलेस्ट्राल के स्तर को बढ़ाकर हृद्‌याघात से बचा सकता है तथा रक्त को पतला करता है, जिससे रक्त का संचरण सुचारु रूप से हो पाता है। यह रक्त में शक्कर की मात्रा को भी नियंत्रित रखता है जो मधुमेह की रोकथाम में सहायक होता हैं। प्याज के रासायनिक तत्व श्वांस रोग तथा जनन में भी लाभप्रद साबित हुये हैं। अनुसंधानों से पता चला है कि प्याज एवं लहसुन के इस्तेमाल से जानवरों के कैंसर रोग की रोकथाम की जा सकती है।

आधुनिक औषधियों के जन्मदाता हिप्पोक्रेटस ने टायफाइड, निमोनिया तथा संक्रामक रोगों में लहसुन का इस्तेमाल किया था। लहसुन कीलों तथा उससे बने घावों को भी ठीक करता है। यह धमनियों मे उत्पन्न हुए एल डी एल कोलेस्ट्राल के स्तर को कम कर एल डी एच कोलेस्ट्राल के स्तर को बढ़ाता है। यह अस्थि रोगों की प्रारम्भिक अवस्था की भी रोकथाम करता है तथा धमनियों से वसीय पदार्थो को कम करता है। विविध प्रकार के जीवाणुओं की रोकथाम तथा उन्हें नष्ट करने में लहसुन सहायक सिद्ध हुआ है। अमरीकी चिकित्सक डा० जान हीनरमैन ने अपनी पुस्तक 'द हीनिग बेनिफिट आफ गारलिक' में दावा किया है कि शरीर में हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट करने के लिये लहसुन का इस्तेमाल एण्टीबायोटिक्स के रूप में किया जा सकता है। प्याज और लहसुन के प्रयोग का सबसे बड़ा फायदा यह है कि इसका कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता।

टमाटर, अमरूद, तरबूज—टमाटर में अनेक पौष्टिक तत्व पाये जाते हैं। नवीन शोधों से पता चला है कि टमाटर खाने से कैंसर से बचा जा सकता है। टमाटर का रंग इसमें प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले लाइसोपेन तत्व के कारण ही लाल होता है। टमाटर के अलावा यह तत्व अमरूद एवं तरबूज मे भी पाया जाता है जो प्रोस्टेट एवं अन्य कई प्रकार के कैंसर से बचाव करने में सक्षम है।

फिलाडेल्फिया के 'अमरीकन एसोसिएशन फार कैंसर रिसर्च सेंटर' के अध्ययनों से पता चला है कि लाइसोपेन तत्व कैंसर के ट्यूमर को छोटा करके उसके विकास को रोककर प्रोस्टेट कैंसर से बचाव कर सकता है। इसके सेवन से प्रोस्टेट के अलावा मुँह, पेट, आहार नली, आमाशय और जिगर के कैंसर से भी बचा जा सकता है। मानव शरीर अपने आप लाइसोपेन तत्व उत्पन्न करने में सक्षम है। इसके लिये टमाटर एवं ऐसे फलों का उपयोग करना चाहिये जिनमें यह बहुतायत में मिलता है। ध्यातव्य है कि यह तत्व पकाने से भी नष्ट नहीं होता। भारतीय वैज्ञानिकों का मानना है कि लाल रंग के किसी भी फल या सब्जी के सेवन से प्रोस्टेट कैंसर से बचा जा सकता है।

पालक—अभी तक खराब या नष्ट हो चुके रेटिना में आँख की रोशनी का वापस आना मुश्किल समझा जाता है लेकिन अब पालक के पत्ते से निकाले गये 'फोटोसिस्टम-1' नामक प्रोटीन से ऐसे

कृत्रिम रेटिना का निर्माण किया जा सकेगा जो नेत्रहीनों की अंधेरी दुनिया को रंग और रोशनी से जगमगा देंगे।

टेनेसी की राष्ट्रीय प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों ने पालक के पत्ते से 'फोटोसिस्टम-1' नामक प्रोटीन को अलग करने में सफलता प्राप्त की है। यह प्रोटीन प्रकाश को ऊर्जा में बदल देता है। इस सूक्ष्म प्रोटीन को हजारों की संख्या में जोड़कर कृत्रिम रेटिना का निर्माण किया जा सकेगा। यह रेटिना प्रकाश को ग्रहण कर उसे मस्तिष्क तक भी पहुँचा सकेगी।

केला—यह ऊर्जा का असीम स्रोत होता है। एक औसत आकार के पके केले से करीब 130 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। इसी कारण व्रत-उपवास में कुछ केलों के भक्षण से ही क्षुधा शांत हो जाती है। निर्जलीकरण एवं दस्त रोगों में केला अत्यन्त उपयोगी होता है। इसके पीछे होता है केले में पर्याप्त ऊर्जा, सभी पोषक तत्व एवं खनिज लवण जो आसानी से पाचित एवं अवशोषित हो जाता है।

बाल्टीमोर स्थित हापकिस संस्थान के अनुसंधानकर्ताओं ने केले में पोटैशियम आयंस की खोज की है जो उच्च रक्तचाप के नियंत्रण में अत्यन्त कारगर साबित हुआ है। दूसरी बड़ी खोज इसकी मुख, फेफड़े एवं मलाशय के कैंसरों में बचाव की भूमिका को लेकर है। एक अन्य अध्ययन में केला आमाशय में अम्ल के दुष्प्रभाव को कम करने में सक्षम पाया गया है।

उक्त उदाहरण कुछ ऐसे वानस्पतिक उत्पादो के हैं जिनका उपयोग हम प्राय: रोज ही किसी न किसी प्रकार करते हैं। यद्यपि हमारे ऋषि-मुनियों ने अपने गहन अनुसंधानों द्वारा इनके औषधीय पहलू की जानकारी बहुत पहले ही प्राप्त कर लिया था। फिर भी आज के नवीनतम अनुसंधानों द्वारा उक्त औषधीय पहलू की पुष्टि और उनके अन्य रोगों में प्रयोग करने की पुष्टि हुई है।

× × ×

आयुर्वेदिक दवाइयाँ मुख्यत: औषधीय पौधों के गुणों पर ही आधारित होती है। यह प्राकृतिक चिकित्सा के काफी समीप समझे जाने वाले पंचभूत सिद्धांत पर आधारित है जिसके अनुसार मनुष्य समेत सारे जीव-जन्तुओं के शरीर और भौतिक पदार्थ पंचभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) से बने हैं जिसे संतुलित कर बिगड़े स्वास्थ्य को सुधारा जा सकता है।

आयुर्वेद समस्त चिकित्सा पद्धतियों का जन्मदाता है। यह आयुर्वेद भारतीय संस्कृति पर आधारित ऋषि-मुनियों द्वारा जड़ी-बूटियों के खोज पर आधारित है जो पूर्णतया नि:शुल्क है। प्राकृतिक औषधियाँ पौधों से ही प्राप्त होती हैं। इन औषधियों का कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता तथा रोग से हमेशा के लिये मुक्ति मिल जाती है।

भारतीय साहित्य में औषधीय वनस्पतियों की चर्चा विस्तार से की गयी है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में लगभग आठ हजार ऐसी वनस्पतियों के नाम आये हैं जो औषधि रूप में हमारे जीवन में सहायक

होती है। इसके विपरीत यूनानी साहित्य कुछ गिने-चुने पेड़-पौधों का ही उल्लेख करता है। होमर के महाकाव्य 'इलियड' में केवल नौ वृक्षों के नाम आये हैं, वे भी हल्के ढ़ंग से। 'ओडिसी' में कुल 20 वृक्षों का उल्लेख मिलता है। यह उल्लेखनीय है कि हमारे मनीषियों ने जितना पेड़-पौधों के बारे में लिखा है, उससे कहीं ज्यादा वनस्पतियाँ आज भी भारत के जंगलों में मौजूद हैं।[1]

मानव शरीर के अत्यधिक अनुकूल काष्ठ औषधियाँ ही हैं। इन औषधियों का स्रोत वृक्ष एवं लतायें ही हैं। वस्तुतः आयुर्वेद ने अपनी गरिमा की रक्षा पादपों और पुष्पों के बल पर ही की है। चिकित्सा-शास्त्र की जीवन-संरक्षण शक्ति के प्रमुख स्रोत वृक्ष एवं प्रसून हैं। वैद्य-विद्या विटप, पल्लव, फूल तथा फल से ही बलवती बनी है। आयुर्वेद ने वैज्ञानिक पद्धति से वृक्षों का अध्ययन कर उनके गुणों को संसार के सम्मुख रखा है। वस्तुतः पृथ्वी पर ऐसी कोई वनस्पति या वृक्ष नहीं है जो उपयोगी न हो। चिरकाल से ऋषि-मुनि,मानव एवं पशु-पक्षी,पादपों से ही जीवन शक्ति प्राप्त करते आ रहे हैं और उनको अपना कर अपनत्व की भावना को सुदृढ़ बना रहे हैं। यदि संसार में वृक्ष न होते तो मनुष्य रोगों के भँवरजाल के बीच कभी जीवित न रह पाता। वस्तुतः जीवन के मूल कारण रूप में ये वनस्पतियाँ एवं पेड़-पौधे ही हैं। भारतीय चिकित्सकों ने ही नहीं अपितु पाश्चात्य चिकित्सा-विशारदों ने भी पेड़ों की औषधीय शक्ति को स्वीकार किया है।

●

---

1 अमर उजाला, रविवासरीय, 24 सितम्बर 2000, इलाहाबाद, पृ० 1।

अध्याय-4

प्राचीन भारतीय धार्मिक परम्परा में पेड़-पौधे

प्राचीन भारतीय संस्कृति का मूलाधार रहा है—धर्म। धर्म जिसका अभिप्राय 'धारयति इति धर्मः' अर्थात धारण करने से लिया जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो किसी भी वस्तु की प्रकृति (Nature) ही उसका धर्म है। मानव जब से इस धरती पर अस्तित्व में आया उसने अपने चारों तरफ हरे-भरे पेड़-पौधों को देखा। उसकी छाया को ही अपना आवास बनाया, फलों-फूलों को आहार बनाया और बाद में कुछ विकसित अवस्था में आने पर पेड़-पौधों के छालों या पत्तों से अपने शरीर को ढ़कना प्रारम्भ किया अर्थात रोटी-कपड़ा-मकान की अवधारणा का विकास पेड़-पौधों के साथ ही शुरू हुआ।

धर्म से अनुप्राणित होने के कारण प्राचीन समय में जितने भी ग्रन्थ रचे गये सबमें धार्मिकता का पुट कुछ न कुछ जरूर रहा। प्राचीन भारतीय बुद्धिजीवियों के लिये धर्म जनता से जुड़ने का एक बेहतरीन साधन था। चूँकि पेड़-पौधों के तले ही मानव का विकास हुआ अतः स्वाभाविक रूप से उसने पेड़-पौधों और वनस्पतियों में देवत्व की महिमा का आरोपण किया जिसका वर्णन प्रायः सभी प्राचीन ग्रन्थों में किसी न किसी रूप में अवश्य मिलता है।

वृक्षारोपण, विभिन्न प्रकार के वृक्षों की प्रतिष्ठा का विधान तथा गोचर भूमि की प्रतिष्ठा सम्बन्धी चर्चायें भारतीय साहित्य के लोकप्रिय विषय रहे हैं। इन ग्रन्थों में प्रायः इस अवधारणा पर बल दिया गया है कि जो व्यक्ति छाया, फूल तथा फल देने वाले वृक्षों का रोपण करता है या मार्ग तथा देवालय में वृक्षों को लगाता है, वह अपने पितरों को बड़े से बड़े पापों से तारता है और रोपण करने वाला व्यक्ति इस विश्व में महती कीर्ति तथा शुभ परिणाम को प्राप्त करता है। कुछ पुराणों में तो यहाँ तक वर्णित है कि जिसे पुत्र नहीं है उसके लिये वृक्ष (का रोपण) ही पुत्र के समान है। वृक्षरोपणकर्ता के लौकिक पारलौकिक कर्म वृक्ष ही करते रहते हैं तथा उसे उत्तम लोक प्रदान करते हैं। यदि कोई अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष का रोपण करता है तो वही उसके लिये एक लाख पुत्रों से भी बढ़ कर है। अशोक वृक्ष लगाने वाले व्यक्ति को कभी शोक नहीं होता। बिल्व वृक्ष दीर्घ आयुष्य प्रदान करता है। इसी प्रकार अन्य वृक्षों के रोपण से विभिन्न फलश्रुतियों का वर्णन पुराण ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में अनेक प्रकार के वृक्षो और वनस्पतियों का उल्लेख किया गया है तथा इसके माध्यम से विभिन्न भावनाओं का प्रकटीकरण किया गया है।

सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे बिवक्षणे। अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥[1]

अर्थात 'जिस प्रकार पक्षीगण वृक्ष का आश्रय लेकर चहचहाते हैं उसी प्रकार गो-रस से मिश्रित मधुर आनन्दप्रद विशेष सुख या मुक्ति में ले जाने वाले तेरे स्वरूप में हम विराजमान होकर हे आत्मन तेरी प्रत्यक्ष रूप से स्तुति करते हैं।'

सामवेद में वृक्ष आदि वनस्पतियों में भी परमात्मा के अस्तित्व होने की बात कही गयी है।

तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः।
यदोषधीरभि सृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि॥
वातो पजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद् वितिष्ठसे।
आ ते यतन्ते रथ्योऽयथा पृथक शर्धास्यग्ने अजरस्य धक्षतः॥[2]

अर्थात 'हे परमेश्वर। ज्ञान प्रकाशक। तेरी विभूतियाँ मेघ की बिजलियों के समान और प्रभातकाल में निकलती हुई किरणों के समान सर्वत्र जानी जाती हैं जबकि औषधियों और वृक्षादि वनस्पतियों में भी व्याप्त होकर मुख में अन्न के समान समस्त पदार्थो को अपने भीतर ले लेता है।'

औषधि, अन्नादि और वनस्पतियों को जिस प्रकार अग्नि अपने भीतर जलाकर मानों ग्रास कर जाता है वैसे ही परमेश्वर सब पदार्थो को अपने भीतर लीन करता है। उसी प्रकार विद्वान भी समस्त वृक्षादि को अन्न के समान जानकर उनका खाद्य रूप से विवेक करें।

मानव के लिये कल्याणकारी देवों की स्तुति करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है—'द्युलोक और पृथ्वी हमारे लिये सुखकारक हों, अंतरिक्ष हमारी दृष्टि के लिये कल्याणप्रद हों, औषधियाँ और वृक्ष हमारे लिये कल्याणकारक हों तथा लोकपति इन्द्र भी हमें शांति प्रदान करें।

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहुतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न औषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णु॥[3]

यजुर्वेद में द्युलोक, अंतरिक्ष, पृथिवी, जल और समस्त देवताओं के साथ वनस्पतियों के शांत होने की बात कही गयी है जिससे मनुष्य की शांति निरन्तर बनी रहे।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ॐ शान्ति पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्ति ब्रह्म शान्ति सर्व ॐ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥[4]

---

1 ऋग्वेद, 8 11 5।

2 सामवेद संहिता, उत्तरार्चिक, 6 3 1-2।

3 ऋग्वेद, 7 35 5।

4 यजुर्वेद, 36 17।

ऋग्वेद में यह कामना की गयी हैं कि हे वनस्पति। तुम पृथ्वी के उत्तम यज्ञ प्रदेश में उन्नत होओ। तुम सुन्दर परिणाम से युक्त हो। यज्ञ निर्वाह के लिये अन्न दान करो।

उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन पृथिव्या अधि। सुमती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥[1]

वनस्पति को हेतु बनाकर ऋग्वेद में मधुर रस, फल और छाया से युक्त होने की अभिलाषा व्यक्त की गयी है। इसी क्रम में आगे यह कहा गया है कि सूर्य और शरीरगत प्राण हमारे लिये मधुर सुखदायी प्रकाश और बल देने वाला हो। हमारे गौ आदि पशु, सूर्य की किरणें, वेद वाणियाँ और देहगत इद्रियाँ हमें क्रम से मधुर दुग्ध, घृत आदि रस, मधुर प्रकार से उत्पन्न होने वाले रोग नाशक, प्रभावकारी ज्ञान तथा सुख प्रदान करने वाले हों।[2]

वृक्षों की सुन्दरता से प्रभावित महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों से एक बार कहा था—'वन एक विलक्षण जीव निकाय है, जिसमें असीम दया और सहिष्णुता भरी हुई है। वह अपने पोषण के लिये किसी से कुछ नहीं माँगता, उसका हृद्य इतना विशाल है कि वह अपने निजी जीवन के फल को बड़ी उदारता के साथ सब लोगों को अर्पण करता रहता है। वह सब जीवों की रक्षा करता है यहाँ तक कि उस लकड़ी काटने वाले को भी अपनी छाया से विश्राम देता है जो उसे सदा नष्ट करता है।'

वृक्षों और वनस्पतियों में धार्मिक आरोपण के पीछे निश्चित रूप से मानव जीवन के लिये उनकी उपयोगिता ही रही होगी। पेड़-पौधों का हरेक अंग हमारे लिये उपयोगी होता है। जड़, तना, पत्तियाँ, फूल, फल, छाल, गोंद, दूध सभी किसी न किसी तरह से हमारे काम आते हैं। मानव शरीर की रचना भी मुख्यत: पृथिवी, जल और तेज से मानी गयी है। इसमें मन को अन्नमय, प्राण को जलमय और वाक् को तेजोमय कहा गया है।

अन्नमयं हि सोम्य मनः। आपोमयः प्राणः। तेजामयी वागिति।[3]

वनस्पतियों से ही हमें अन्न प्राप्त होता है। अन्न को प्रत्यक्ष देवता कहा गया है। अन्न का महत्व समाज में हमेशा से ब्रह्म के समान रहा है। तैत्तिरीय उपनिषद में वर्णित है कि 'अन्न ही ब्रह्म है। अन्न से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्न से ही सबकी आजीविका चलती है। नष्ट होने के बाद सभी अन्न में मिलकर अंततोगत्वा एक रूप हो जाते हैं।[4]

यजुर्वेद में अन्न को ही 'विराट' नाम से पुकारा गया है—

तस्माद्यस्यैवेद भूयिष्ठमन्नं भवति स एव भूयिष्ठं लोके विराजति।'

---

1 ऋग्वेद सहिता, 3 8 3।

2 ऋग्वेद सहिता, भाषा-भाष्य, भाष्यकार-प० जयदेव शर्मा, पृ० 444।

3 छादोग्य उपनिषद, 6 7 6।

4 तैत्तिरीय उपनिषद, 3 3।

अर्थात 'जिसके यहाँ बहुत अन्न होता है वही लोक में विराजमान होता है कारण कि सब उससे अन्न की इच्छा करते हैं। अतएव प्रशंसित होने से अन्न ही विराट है।'[1] ध्यातव्य है कि यहाँ समृद्धि के तत्व के रूप में अन्न की चर्चा की गयी है। इसी ग्रंथ में अन्न से देवताओं को तृप्त करने, पुत्रादि से युक्त करने, समृद्धि प्रदान करने और सभी दिशाओं को विजित करने की सामर्थ्य प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है।

व्वाजपुरस्तादुतमद्ध्यतोनो व्वाजोदेवान्नहविषाव्वर्द्धयाति।
वाजोहिमासर्व्ववीरंचकार सर्व्वा ऽ आशाव्वाजपतिर्ब्भवेयम्।।[2]

जिससे जीवन का अस्तित्व प्राप्त होता है ऐसे अन्नरूप ईश्वर की अभ्यर्थना में कहा गया है अन्न प्राप्ति के निमित्त मैं तुमको उपधान करता हूँ। तुम इंद्रियों को स्व स्व कार्य में समर्थ करने वाले अन्न रूप हो, तुम सम्पत्ति के प्रतिपादक अन्नरूप हो। तुम शरीर में तेजदायक अन्नरूप हो। इस सभी के निमित्त मैं तुमको सादन करता हूँ।

प्रतिपदसिप्प्रतिपदेत्वानुपदस्यनु पदेत्वा सम्पद सिसम्पदेत्वातेजोऽसितेज सेत्वा त्रिवृदसि।।[3]

महाभारत में तो अन्न को इस ब्रह्माण्ड का सबसे महत्वपूर्ण वस्तु बताया गया है। वेदों में अन्न को प्रजापति कहा गया है। प्रजापति संवत्सर माना गया है। संवत्सर यज्ञ रूप है और यज्ञ में सबकी स्थिति है।[4] यज्ञ से ही समस्त चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं अतः अन्न ही सब पदार्थों में श्रेष्ठ है।

तस्माद सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च। तस्मादन्नं विशिष्टं हि सर्वेभ्य इति विश्रुतम्।।[5]

श्रेष्ठ होने के कारण अन्न की नित्य स्तुति करनी चाहिये। और अन्न की निन्दा किये बिना भोजन करना चाहिये। उसका दर्शन कर संतुष्ट एवं प्रसन्न होना चाहिये। पूजित अन्न के भोजन से बल और तेज की वृद्धि होती है जबकि निन्दित अन्न के भोजन से बल और तेज दोनों की हानि होती है।

तथान्नं पूजयेन्नित्य मद्याच्चैतद कुत्सयन। दर्शनात् तस्य हृष्येद वै प्रसीदेच्चापि भारत।।
पूजितं त्वशनं नित्यं बलमोजश्च यच्छति। अपूजितं तु तद्भुक्त मुभयं नाशयेदिदम्।।[6]

अन्न की ब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठा वेदों में प्राप्त होती है। चूँकि अन्न में ही प्राणो की प्रतिष्ठा है अतः मनुष्य को सदा अन्न एवं जल का ही दान करना चाहिये। अन्नदान करने वाला मनुष्य अक्षय

---

1 वाजसनेयि श्री शुक्ल यजुर्वेद सहिता, पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र, व्यकटेश्वर प्रेस मुम्बई, सवत 1969, पृ० 543।

2 वही, 18 34।

3 वही, 15 8।

4 महाभारत, वन पर्व, 200 37-38।

5 वही, 200 39।

6 भविष्य पुराण, ब्राह्म, पर्व 3 37-39।

सुख को पाता है। अन्न और जल के समान दूसरा कोई दान न हुआ है न होगा। अन्नदान सभी वस्तुओं के दान से बढ़कर है।

अन्नं ब्रह्म इति प्रोक्त मन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः। तस्मादन्नप्रदो नित्यं वारिदश्च भवेन्नरः।
वारिदस्तृप्ति मायाति सुखमक्षय्यमन्नदः। वार्यन्नयोः सम दानं न भूतं न भविष्यति॥[1]

'अन्न से ही मनुष्य जन्म लेता और बढ़ता है। अन्न को समस्त प्राणियों का प्राण माना गया है। अन्न दान करने वाला मनुष्य संसार में सब कुछ देने वाला और संपूर्ण यज्ञों का अनुष्ठान करने वाला माना गया है।'[2] सभी दानों से बढ़कर कन्या दान है, उससे अधिक विद्या दान, तत्पश्चात गो दान और सबसे बढ़कर अन्न दान है क्योंकि समस्त संसार अन्न के ही आधार पर जीवित रहता है।[3]

पेड़-पौधों का भारतीय संस्कृति में इतना अधिक महत्व रहा है कि जनमानस में देवताओं को प्रतिष्ठित करने हेतु इन्हें प्रतीक रूप में लेना पड़ा। यहाँ तक कि इस सृष्टि में जितने पेड़-पौधे हैं सबके अपने-अपने देवता है। दूसरे शब्दों में कहें तो हर वनस्पति का किसी न किसी देवता से सीधा जुड़ाव है। ऋग्वेद में शुरू में वर्णित तैंतीस देवताओं[4] की संख्या पहले 3339 और कालांतर में चलकर तैंतीस करोड़ होने के मूल में वनस्पतियाँ ही रही होंगी। जैसे-जैसे मनुष्य सभ्यता की तरफ अग्रसर हुआ, वह वनस्पतियों को और सूक्ष्मता से जानने समझने लगा और आगे चलकर उसमें देवत्व की प्रतिष्ठापना कर डाला। अब उसने अपनी भौतिक समृद्धि एवं दीर्घायु प्रदान करने हेतु वनस्पतियों और औषधियों की प्रार्थना करना शुरू कर दिया।

सं मा सिचन्तु कृषयः सं मा सिंचन्त्वोषधीः।
सोमः समस्मान सिचतु प्रजया च धनेन च। दीर्घमायुः कृणोतु मे॥[5]

ऋग्वेद में अरण्यानी (अरण्य-वन की आत्मा) की पूजा का वर्णन है तथा अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष का उल्लेख है परन्तु वृक्ष पूजा का कोई स्पष्ट विवरण नहीं मिलता। हाँ, उनके प्रति प्रार्थना या कृतज्ञता भाव अवश्य प्राप्त होता है। उत्तर वैदिक युग के साहित्य में वृक्ष पूजा का संदर्भ प्राप्त होता है। अथर्ववेद, ब्राह्मण तथा उपनिषद ग्रन्थों से विदित होता है कि समाज में वृक्षों की पवित्रता और शुद्धता प्रतिष्ठित थी। अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि समाज में वृक्ष पूजा प्रचलित थी।[6] इसकी पुष्टि

---

1 स्कंद पुराण, ब्राह्मखंड, चातुर्मास महात्म्य, 3/2-4।

2 स्कद पुराण, वैष्णवखड-कार्तिकमास महात्म्य, अध्याय 2।

3 वही, अध्याय 2।

4 ऋग्वेद, 3 9 9।

5 दीर्घायुष्य सूक्त, श्लोक 7, सदर्भ-कल्याण वेद कथाक, जनवरी-फरवरी, 1999।

6 अथर्ववेद, 5 43।

ऐतरेय ब्राह्मण[1] छांदोग्य उपनिषद[2] तथा कौषीतकी उपनिषद[3] जैसे ग्रन्थों से भी होती है। बौद्ध ग्रन्थों से विदित होता है कि समाज में वृक्षों की पूजा की जाती थी तथा यह समझा जाता था कि वृक्षों में देवता नाग, अप्सरा, भूत-प्रेत आदि निवास करते हैं। जातको के वर्णन इस बात के स्पष्ट प्रमाण है कि लोग यश, धन, संतान आदि के लिये वृक्षों की पूजा किया करते थे।[4] भरहुत (साँची) के शिल्प मे वृक्ष देवता की उत्कीर्ण आकृतियाँ आज भी देखी जा सकती है।

धार्मिक प्रतीकों में वृक्ष— वृक्ष प्रतीकों में दूर्वा (दूब), कुश, तुलसी, अश्वत्थ (पीपल), न्यग्रोध (वट), बिल्व, आँवला, पलाश, कदम्ब, अशोक, आम्र आदि वृक्षों को देवताओं के प्रतीक के रूप में पूजा जाता है। वैसे वृक्ष का प्रतीक अपने आप में ही अवचेतन प्राण का प्रतीक है। इसी तरह वृक्षों पर फूलने वाले पुष्प भी गहरी प्रतीकात्मकता से संबद्ध हैं। पुष्प प्रतीकों में कमल ऐश्वर्य और सुख-समृद्धि का सूचक है। यह खुली हुई चेतना की ओर इंगित करता है। लाल कमल पृथ्वी पर ईश्वर की अवस्थिति का प्रतीक है। सामान्य तौर पर कमल शृंगार, शोभा और क्रीडा के लिये बराबर प्रयुक्त होता है। इस प्रकार पुष्प भाव भरी सहज श्रद्धा के प्रतीक हैं। उन्हें अर्पित करने का तात्पर्य है—अपनी सम्मान भावना की अभिव्यक्ति। प्रतीकों के संदर्भ और अर्थ व्यापक हैं। प्रतीकों का यह विज्ञान मानव मन के रहस्यों को ही नहीं अपितु समस्त सृष्टि में गतिशील चेतना के रहस्यों का भी बोध कराता है।[5]

कुछ वनस्पतियों पेड़-पौधों का धार्मिक महत्व एवम् देवताओं के साथ उसके सम्बन्ध के बारे मे विवरण निम्नलिखित है—

तुलसी— तुलसी समस्त भारत में देवता की तरह पूजित और सम्मानित पौधा है। प्राचीन ग्रन्थों में तो यहाँ तक कहा गया है कि जिस देश में तुलसी का पौधा नहीं है, ऐसा स्थान निवास करने योग्य नहीं है।[6] ऐसी मान्यता अनायास ही नहीं है बल्कि इसके कुछ सुसंगत एवं तर्कपूर्ण आधार भी हैं। वस्तुत: तुलसी शरीर और मन को निरोग करने वाली अद्भुत औषधि है। उसमें दिव्य तत्वों की प्रधानता मानी गयी है इसीलिये उसे 'पृथ्वी का अमृत' माना गया है। तुलसी पाँच अमृतों में से एक है। इसीलिये इसे पंचामृत में सम्मिलित करते हैं—

या औषधिः पूर्वा जाता देवेभ्य स्त्रियुगं पुरा। मनै नु वभ्रुणामह ॐ शतं धामानि सप्त च॥[7]

---

1 ऐतरेय ब्राह्मण, 7 30-33।

2 छादोग्य उपनिषद, 8 5 3।

3 कौषीतकी उपनिषद, 1 3।

4 जातक, 1.259, 328, 2 440।

5 अखण्ड ज्योति, जनवरी 2000, पृ० 4-5।

6 सक्षिप्त स्कंदपुराण, वैष्णव खड-वैशाख महात्म्य, पृ० 364।

7 यजुर्वेद 12 75।

भारतीय संस्कृति में इस पौधे की पवित्रता और शुद्धि करने की गुणवत्ता को जानकर इसे अत्यंत सम्मानित स्थान दिया गया है। तुलसी में शुद्धिकरण की अकूत क्षमता होती है अतः यह जल और वायु दोनों को शुद्ध करती है।

तुलसी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में स्कंद पुराण में एक दृष्टांत प्राप्त होता है। इसके अनुसार समुद्र मंथन के बाद अमरता प्रदान करने वाले अमृत कलश को लेकर विष्णु बहुत प्रसन्न हुये। उनके नेत्रों से आनंदाश्रु की कुछ बूँदे उस अमृत के ऊपर गिरी, उनसे तत्काल ही मंडलाकार तुलसी उत्पन्न हुई। वहाँ प्रकट लक्ष्मी तथा तुलसी को ब्रह्मा आदि देवों ने विष्णु की सेवा में समर्पित किया और उन्होंने उन्हें ग्रहण कर लिया। तब से तुलसी विष्णु की अत्यंत प्रिय हो गयी। इसी कारण सम्पूर्ण देवता भगवतप्रिया तुलसी की विष्णु के समान ही पूजा करते हैं।[1]

कार्तिक मास में जो भी व्यक्ति नित्य क्रियादि से निवृत्त हो कोमल तुलसी दल से भगवान की पूजा करता है, वह निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है। यदि तुलसी के आधे पत्ते से भी प्रतिदिन भक्तिपूर्वक भगवान की पूजा की जाये तो भी वे स्वयं आकर दर्शन देते हैं।[2]

जनमानस में ऐसी मान्यता है कि तुलसी पाप का नाश और पुण्य की वृद्धि करने वाली है। अपने हाथों द्वारा लगाई गयी तुलसी जितना ही अपने मूल का विस्तार करती है उतने ही सहस्त्र युगों तक मनुष्य ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है। यदि कोई व्यक्ति तुलसी दल संयुक्त जल में स्नान करता है तो वह सब पापों से मुक्त हो विष्णु लोक में आनन्द का अनुभव करता है।[3] जिसके घर में तुलसी का काष्ठ या तुलसी का हरा सूखा पत्ता रहता है उसके घर में कलियुग का पाप नहीं फैलता।[4]

भाव प्रकाश के अनुसार तुलना रहित होने से इसे 'तुलसी', उत्तम गुण वाले रस से युक्त होने के कारण 'सुरसा', ग्राम-ग्राम में उपलब्ध होने की वजह से 'ग्राम्या', अनेक मंजरियों वाली होने से 'बहुमंजरी', जंतु और कीट विरोधी होने से 'राक्षसी', दैवी गुण वाली होने से 'गौरी', जन्तुनाशी होने से 'भूतघ्नी', दर्दनाशक होने से 'शूलघ्नी', दुंदुभी के समान लम्बी मंजरी वाली होने से 'देवदुंदुभि' आदि नामों से इसे जाना जाता है। कहा जाता है कि जिस घर में तुलसी का पौधा होता है वह घर तीर्थ के समान पवित्र वातावरण वाला हो जाता है और उस घर में घातक रोग के कीटाणु रूपी यमदूत नहीं आने पाते।

तुलसी काननं चैव गृहे यस्यावतिष्ठते। तद्गृहतीर्थवतत्र नायांति यमकिंकराः।[5]

---

1 सक्षिप्त स्कंद पुराण, वैष्णव खड-कार्तिक महात्म्य, पृ० 321-322।

2 वही, पृ० 321-22।

3 वही, पृ० 321-22।

4 वही, पृ० 341।

5 गरुड पुराण, 9 7।

तुलसी वन समस्त पापों को नष्ट करने वाला, पुण्यमय और अभीष्ट कामनाओं को देने वाला है। जो श्रेष्ठ मानव तुलसी का बागीचा लगाते हैं उन्हें यमराज नहीं देखते। जो मनुष्य तुलसी काष्ठयुक्त गंध धारण करता है, क्रियमाण पाप उसके शरीर का स्पर्श नहीं करता। जहाँ तुलसी वन की छाया होती है वही पितरों की तृप्ति हेतु श्राद्ध करने का विधान बताया गया है। नर्मदा का दर्शन, गंगा स्नान और तुलसी का ससर्ग ये तीनों एक समान कहे गये हैं। जो तुलसी की मंजरी से संयुक्त होकर प्राण त्याग करता है वह सैकड़ो पापों से युक्त हो तो भी यमराज उसकी ओर नहीं देख सकते।[1]

जहाँ तुलसी का जंगल होता है वहाँ आस-पास कोस भर तक वायुमंडल गंगा जल के समान शुद्ध रहता है।[2] आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों से भी इस मत की पुष्टि हो चुकी है। गरुड़ पुराण में कहा गया है कि ससार के ताप को मिटाने वाली तुलसी वृक्ष की छाया जहाँ भी है उसके समीप मरने से निश्चय ही मुक्ति होती है।[3]

तुलसी पत्र को मुख में रखकर कुशा के आसन पर मरने वाला मनुष्य अगर पुत्रहीन भी हो तो वह बैकुण्ठलोक जाता है।[4] ध्यान देने योग्य बात है कि इन्हीं धार्मिक ग्रंथों में यह उद्धरण प्राप्त होता है कि पुत्रहीन मनुष्य को मरने के बाद सद्गति प्राप्त नहीं होती। गरूड़ पुराण में ही यह कहा गया है कि तीन प्रकार के तिल (श्वेत,कृष्ण और कपिल), कुश और तुलसीपत्र ये सब नरक में जाते हुये, प्राणियों को बचाकर सद्गति प्राप्त कराते हैं।

तिल—धार्मिक आयोजनों में तिल का अतीव महत्व है। औषधि ग्रंथों में भी इसे बेहद गुणकारी बतलाया गया है। ऐसी मान्यता है कि तिल भगवान (विष्णु) के पसीने से उत्पन्न हुये हैं इसलिए यह जगत में पवित्रकारक हैं। तिल दान से समस्त असुर, दैत्य दानव आदि बुरी एवं अशुभ शक्तियां भाग जाते हैं।

मम स्वेदसमुद्भूता यतस्ते पावनास्तिलाः। असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैस्ततः।[5]

दुष्ट ग्रहो की शान्ति के लिये ब्राह्मणों को तिल दान करने अथवा घी के साथ तिलों का हवन करने की बात भविष्य पुराण में बतायी गयी है। तिल देवताओं के लिए स्वाहारूप अमृत, पितरों के लिए स्वधा रूप अमृत तथा ब्राह्मणों के लिए आश्रयस्वरूप कहे गये हैं। ये तिल ऋषि कश्यप के अंग से उत्पन्न हुये हैं इसलिये देवों एवं पितरों को अतिप्रिय हैं। स्नान, दान, हवन, भोजन, तर्पण में ये परम पवित्र माने गये हैं।

---

1 स्कद पुराण, पृ० 329।

2 गरुड पुराण 9 6।

3 वही, 9 6।

4 वही, 9 9।

5 वही, 9 11।

देवानाममृतं होते पितृणा हि स्वधामृतम्। शरणं व्राह्मणानां च सा ह्नेनान विदुर्वुधाः।
कश्यपस्यांगजा ह्येते पवित्राश्च तथा हर। स्नाने दाने तथा होमे तर्पणे ह्नशने पराः ।।[1]

दान को तिल के साथ दिये जाने की परम्परा आमतौर पर प्रचलित है। इस संबंध में एक उद्धरण स्कंद पुराण में प्राप्त होता है। ब्रह्माजी ने सोच विचार कर दान की रक्षा के लिये एक उपाय निकाला। पितरों को तिल के साथ दान दिया जाय, देवताओं को अक्षत के साथ दान दिया जाय तथा जल और कुश का संबंध सर्वत्र रहे। इसीलिए कुश, तिल, अक्षत इन सबको हाथ में लेकर दान दिया जाता है।[2] चातुर्मास्य में तिल मिश्रित जल से स्नान करने वाले व्यक्ति में दोष का लेशमात्र भी नहीं रह जाता।[3]

दूर्वा (दूब)—दर्भ अर्थात दूब को भगवान विष्णु ने अपनी विभूति बताते हुये कहा है कि ये मेरे रोम से उत्पन्न हुये हैं इसलिये इन दर्भो के स्पर्श मात्र से प्राणी स्वर्ग लोक में चले जाते हैं।

दर्भा विभूतिर्मे ताक्ष्र्य। मम रोम सदभवाः। अतस्तत्स्पर्शनादेव स्वर्ग गच्छन्ति मानवाः ।।[4]

दूब धरती पर बहुतायत में उपलब्ध है। बिना बोये ही उग आती है और चारों तरफ फैल जाती है नन्हीं-नन्हीं दूब। यह प्रतीक है इस बात का कि नन्हा होकर भी आस्थावान बना जा सकता है। आस्था जैसी फैलने और श्रद्धा जैसी जागृत होने के गुणों के कारण दूर्वा हर धार्मिक एवं मांगलिक कार्य में उपस्थित रहती है। व्रत, उत्सव, पूजन, शादी- व्याह जैसे मौकों पर दूर्वा अनिवार्य होती है।

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परूषऽपरूष स्प्परि। एवानो दूर्व्वेप्प्रतनुसहस्त्रेण शतेन च ।।[5]

अर्थात 'हे दूर्वा। तुम प्रत्येक कांड और पर्व से सब ओर से अंकुरित होती हो अर्थात भूमि के संबंध वाले और असंबंध वाले सभी पर्वो से बढ़ती हो और निश्चय ही सहस्त्र और सैकड़ों अर्थात असंख्य ऐश्वर्य पुत्र-पौत्रादि से अंकुरवत हमको सब प्रकार से विस्तार या वृद्धि को प्राप्त करो। भाव यह कि हम दूब जैसे संगठित हों, हम दूब जैसे प्रसन्न रहें, हम दूब जैसे परस्पर हिले-मिले।

सुबह की ओस से भीगी दूब पर नंगे पाँव चलना सेहत के लिये काफी फायदेमंद होता है। दूर्वा का दूध पौरूष की अपरिमित क्षमता का स्त्रोत होता है वह मूत्र जनित जटिलताओं को दूर करता है। साथ ही नर्म-विलास में वशीकरण की बेजोड़ ताकत देती है। दूर्वा का जटिल जंजाल धरती को इस तरह जकड़ लेता है कि वृष्टि का बहाव भी उसे बहा नहीं पाता।[6]

---

1 भविष्य पुराण, वाह्मपर्व, 57 25-26।

2 स्कद पुराण, माहेश्वर-कुमारिका खड, अध्याय 35।

3 वही, ब्रह्मखड-चातुर्मास महात्म्य, पृ० 488।

4 गरूड पुराण, 9 12।

5 यजुर्वेद, 13 20।

6 नवनीत, दिसम्बर 1999, प० 28-29।

मृत्यु पर जीवन की विजय का प्रतीक है-दूर्वा। दूसरे शब्दों में कहें तो यह जीवन की निरन्तरता की जीवत मिसाल है। अनेक वनस्पतियां जब समय की धारा के साथ नेस्तनाबूँद होती रही। तब दूर्वा अपनी पुनर्नवा शक्ति के बल पर पुनः-पुनः प्रादुर्भत होती रही है। संभवतः इसीलिए अनेक साहित्यकारों, चितकों एवं विद्वानों ने अपने मत्युलेख मे यह कामना व्यक्त की है कि उनकी मृत्यु समाधियों पर दूर्वा रोप दी जाये। दूब का यह संदेश कि मृत्य भयंकरता को वह अपने हरेपन से, अपनी जीवट से कुछ कम तो कर ही सकता है। इस तरह यह आज के हमारे मुमुर्ष और म्रियमाण-जीवन के लिये एक आश्वस्ति भरा अनुभव देती है।

यज्ञ में बहुत सी कीमती सामग्रियों की अपेक्षा रहती है, इसलिये सभी मनुष्य यज्ञ करने में समर्थ नहीं होते। परंतु भक्तिपूर्वक दूर्वा से भी सूर्यनारायण की पूजा करने से यज्ञ से भी अधिक फल की प्राप्ति हो जाती है।

भक्त्या तु पुरूषैः पूजा कृता दूर्वाकुरैरपि। भानोर्ददाति हि फलं सर्वयज्ञैः सुदुर्लभम्।।[1]

उत्तम पुष्प के न मिलने पर वृक्षों के कोमल पत्ते अथवा दूर्वांकुर से पूजन करना चाहिये। इससे भगवान सूर्य को अतुल तुष्टि प्राप्त होती है।[2]

चूँकि दूर्वा हर जगह आसानी से उपलब्ध होती है अतः अति सामान्य व्यक्ति भी इससे पूजा अर्चना कर यज्ञ आदि के समान पुण्य प्राप्त कर सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जनसामान्य के एक बड़े हिस्से को हिन्दू धर्म से जोड़ने हेतु इस तरह का प्रावधान किया गया होगा।

कुश—कुश पवित्रता और प्रखरता के प्रतीक माने जाते हैं। संभवतः इसीलिये किसी भी किस्म का मागलिक प्रयोजन हो, कुश का प्रयोग निहायत ही जरूरी होता है। कुश के बारे में उल्लेख मिलता है कि हिन्दू परम्परा के त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और शिव जो क्रमशः सृष्टि के उद्भव, विकास एवं संहार के प्रतीक हैं) का निवास कुश में ही है।

कुश मूले स्थितो ब्रह्मा कुश मध्ये जनार्दनः। कुशाग्रे शंकरो देवस्त्रयो देवाः कुशे स्थिताः।।[3]

ऐसी मान्यता है कि अग्नि, तुलसी और धेनु की तरह कुश कभी भी अपवित्र नहीं होता, अपितु यह बारम्बार प्रयोग में लाया जा सकता है। यजुर्वेद में कुश को इंद्र देवता के निवास के कारण दूध शोधक कहा गया है।

वसोऽपवित्रंमसि शतधारं व्वसोऽपवित्रमसि सहस्यधारम्...... ।।[4]

---

1 भविष्य पुराण, ब्रह्म पर्व 66 32-33, संक्षिप्त स्कदपुराण, प्रभास खड, पृ० 999।

2 सक्षिप्त भविष्यपुराणांक, गीता प्रेस, गोरखपुर, जनवरी 1992, पृ० 87।

3 गरूड पुराण, 9 13।

4 बाजसनेयी शुक्ल यजुर्वेद सहिता, 1 3।

अर्थात 'हे(कुश) शाखा पवित्र इन्द्र देवता के निवास के कारण दूध के शोधक तुम पवित्र नाम से विख्यात हो (अर्थात पवित्र द्वारा दूध छानने से दुग्ध मे तृणादिक नहीं जायेंगे।) इंद्र देवता के निवास के कारण दूध के शोधक तुम इस उखा के ऊपर सैकड़ों-सहस्त्रों धारा विस्तार करो। तुम पवित्र हो, इसी क्रम मे आगे भी कुश को पवित्र करने वाले तथा यज्ञ संबंध वाले की संज्ञा दी गयी है।

पवित्रेस्थोव्वैष्णव्यौ....... ।।[1]

पितर समूह भी कुश के आसन पर बैठकर प्रसन्नता का अनुभव करते हैं और अपने हवि को स्वीकार कर तृप्ति पर्यन्त भोगते हैं।

अत्रपितरोमाद्धय्यद्वरयथाभागमावृषायद्धम..... ।।[2]

धार्मिक आयोजनों में कुशकंडिका के अंतर्गत निर्धारित क्षेत्र के चारों दिशाओं में कुश बिछाये जाते हैं। बड़े यज्ञों व विशिष्ट कर्मकांडों में यज्ञशाला यज्ञकुंड तथा पूजा क्षेत्र के चारों ओर मन्त्रों के साथ कुश स्थापित किये जाते हैं। कुशकण्डिका में प्रत्येक दिशा के लिए चार-चार कुश लिए जाते हैं। देवताओं के सहयोग के दिव्य प्रयोजन के लिये कुशाओं जैसी पवित्रता एवं प्रखरता का जागरण और स्थापन किया जाता है।

कुश के अग्रभाग को दैव और मूलसहित अग्र भाग (द्विभग्नकुश) को पैतृक कहा गया है। उसमें अवलंबित कुश को 'कुतुक' माना गया है। पितृ कार्य में रत्नि (कोहनी से कनिष्ठिका तक अंगुली की माप) बराबर कुश श्रेष्ठ माने गये हैं। मूल के पास से कटे हुये कुश वेदी पर आस्तरण करने के लिये उत्तम होते हैं। कुश सदैव पवित्र तथा श्राद्ध कर्म में आदरणीय हैं। ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले पुरुष को कुशों पर ही पिडदान करना चाहिये। इसी प्रकार साँवा (श्यामाक), तिन्नी, और दूर्वा भी श्रेष्ठ माने गये हैं।

स्कन्द पुराण में कुश से संबंधित एक रोचक आख्यान प्राप्त होता है-एक बार भगवान विष्णु देवताओं के बीच बोले-विरिच! मुझे कोई शुद्ध स्थल दिखाइये जो आपसे पृथक न हो और जहाँ स्थिरतापूर्वक स्थित होकर मैं जगत की रक्षा कर सकूँ। तदनत्तर ब्रह्माजी ने एक कुश की मूठी एक उन्नत स्थल भूमि पर बिछाकर विष्णु से कहा-देव आपके लिए यही पवित्र मंडल है। देवताओ से पूजित होकर आप सदा यहीं विराजमान होइये। इन कुशों पर बैठने के कारण ही आप विष्टरश्रवा एवम् कुशेश्वर होंगे और यह तीर्थ कुशस्थली कहलायेगा।[3] भगवानविष्णु को फूलों में

1- वाजसनेयी शुक्ल यजुर्वेद सहिता, 1 12।

2 वही, 2 31।

3 - सक्षिप्त स्कदपुराण, आवन्त्यखड-अवतीक्षेत्र महात्म्य, पृ० 723।

नीलकमल, पौधों मे तुलसी, तृणों में कुश, वृक्षो में पीपल, लताओं में सोमलता और रंगों में श्वेत रंग कहा गया है।

पंचपल्लव—पंचपल्लव के अन्तर्गत बरगद, गूलर, पीपल, आम, पाकड़ का वर्णन मिलता है। प्राय: इनके नवीन पल्लवो को कलश के ऊपर रखा जाता है।

न्यग्रोधो दुम्बरोऽश्वत्थः चूतप्लक्षस्तथैव च॥ [1]

भविष्य पुराण में वट, अश्वत्थ, धव और बिल्व वृक्ष के नवीन पल्लवों को ही कलश के ऊपर रखने की बात कही गयी है।[2] साथ ही कलश में इन्द्रवल्ली(पारिजात), विष्णुक्रांता (कृष्ण शंखपुष्पी), अमृती (आमलकी), त्रपुष (खीरा), मालती, चंपक तथा उर्वारूक (ककड़ी) इन वनस्पतियों को छोड़कर पारिभद्र (नीम) के पत्रों से कलश के कंठ का परिवेष्ठन करने का विधान बताया गया है। कलश के मुख में फणाकार रूप में पंचपल्लवों की स्थापना कर उसके ऊपर श्रीफल, बीजपूर, नारियल, दाड़िम (अनार), धात्री तथा जम्बू फल रखने का उल्लेख उक्त ग्रंथ में ही मिलता है।[3]

बरगद(न्यग्रोध)—बरगद का वृक्ष प्राय: सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है। इसका अपना विशिष्ट धार्मिक महत्व है। स्कंद पुराण के एक श्लोक में पूरे वट वृक्ष में (मूल, मध्य तथा अग्र भाग में) ब्रह्मा, विष्णु और शिव का वास बताया गया है। इस प्रकार वट वृक्ष संपूर्ण देवताओं का आश्रय स्थान है।

वट मूले स्थितो ब्रह्मा वट मध्ये जनार्दनः। वटाग्रे शंकरं विद्यात, वटस्था सर्व देवताः।।[4]

वट वृक्ष के लिए अक्षय वट की संज्ञा प्राचीन ग्रन्थों में मिलती है। ये अक्षयवट सर्वसिद्धिदायक माने जाते हैं। जनमानस में मान्यता है कि प्रयाग में शूलटंक महादेव जी निवास करते हैं, वहीं अक्षयवट है जिसकी जड़ सात पाताल लोकों तक फैली हुई है। प्रलय काल में उसी पर आरूढ़ होकर महर्षि मार्कण्डेय जी ने निवास किया था। स्कंद पुराण के अनसार अक्षयवट को वटवृक्षरूपधारी साक्षात ब्रह्मा जानना चाहिये।

वट वृक्ष विशालता और दृढ़ता का प्रतीक है। धीरे-धीरे इसका बढ़ना धैर्य का सूचक है। बरगद की जटायें भी जड़ और तना बन जाती हैं और अंततः खुद में एक वृक्ष का रूप धारण कर लेती हैं। इसीलिये इसे अक्षय अर्थात जिसका क्षय न हो, संज्ञा से अभिहित किया गया है।

1- नित्यकर्मपूजा प्रकाश, पृ० 186-187।

2 सक्षिप्त भविष्यपुराणाक, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी 1992, पृ० 87।

3 वही, पृ० 218।

4 स्कदपुराण, 5 4 39।

यह विकास विस्तार के साथ-साथ पुष्टि की व्यवस्था है, वृद्धावस्था को युवावस्था में बदलने का स्तुत्य प्रयास है। प्रलय काल में सारी सृष्टि के जलमग्न होने पर बड़ के पत्ते पर मुँह में हाथ से पकड़कर पैर का अंगूठा चूसते हुए बाल रूपी कृष्ण का वर्णन किया गया है।

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तं। वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुंदं मनसा स्मरामि।।[1]

हर वर्ष ज्येष्ठ वदी अमावस्या को सधवा स्त्रियों द्वारा वटसावित्री पर्व बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। इस पर्व में पुत्र की कामना से वट-वृक्ष की पूजा इन स्त्रियो द्वारा किया जाता है।

वामन पुराण के अनुसार वट वृक्ष से ही चारों वर्णो की उत्पत्ति हुई। इसी क्रम में आगे कहा गया है कि 'संनिहित या आदित्य नाम के सरोवर के मध्य में स्थाणु के आकार का एक महान और विशाल वट वृक्ष है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्ण उससे निकले और द्विजों की सुश्रूषा करने के लिये उसी से शूद्रों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार चारों वर्णो की सृष्टि सरोवर के मध्य स्थाणु रूप से स्थित वटवृक्ष से हुई।

तस्मिनमध्ये स्थाणुरूपी वटवृक्षो महामनाः।
तस्माद् विनिर्गता वर्णाः ब्राह्मणाः क्षत्रियाः विश। शूद्राश्च तस्मादुत्पन्नाः शुश्रूषार्थं द्विजन्मनाम्।।[2]

वामन पुराण में विश्व रूप विष्णु को न्यग्रोध और महाशाख बताया गया है। इसी क्रम में आगे यह कहा गया है कि आप ही मूलकुसुमार्चित हैं। स्कंध, पत्र, अंकुर, लता और पल्लव रूप आपको नमस्कार है।

न्यग्रोधस्त्वं महाशाखस्त्वं मूलकुसुमार्चितः। स्कंधपत्रांकुरलतापल्लवाय नमोऽस्तु ते।।[3]

शिवलिग का दर्शन करने और वट वृक्ष का स्पर्श करने से मुक्ति प्राप्त होती है।[4] बरोहों के कारण वट वृक्ष का तादात्म्य जटाधारी शंकर से किया गया है।[5] रात्रि के समय वट वृक्ष के नीचे रहकर परमेश्वर का ध्यान करने वाले को स्थाणुवट के अनुग्रह से मनोवांछित फल प्राप्त होता है।[6]

स्कंद पुराण में वट वृक्ष को विष्णुस्वरूप बतलाया गया है जिसके दर्शन मात्र से पाप-राशि का नाश हो जाता है। वट वृक्ष की प्रार्थना हेतु इसमें यह मन्त्र प्राप्त होता है—

---

1 स्तोत्र रत्नाकर, वल्लभाचार्य, पृ० 16।
2 वामन पुराण, 43 48।
3 वही, 86 24।
4 वही, 46 25।
5 वही, 69 20।
6 वही, 45 31।

अमरस्त्वं सदा कल्प विष्णोरायतनं महत्। न्यग्रोध हर मे पापं विष्णुरूप नमोऽस्तुते॥
नमोऽस्त्वव्यक्त रूपाय महाप्रलयस्थायिने। एकाश्रयाय जगतां कल्पवृक्षाय ते नमः॥[1]

अर्थात—'हे कल्पवट। आप सदा के लिये अमर हैं। भगवान विष्णु के महान निवास स्थान हैं। हे विष्णुरूप वट। आप हमारे पाप को हर लीजिये। आप अव्यक्त स्वरूप महाप्रलयकाल में भी स्थिर रहने वाले, जगत के एकमात्र आश्रय तथा कल्पवृक्ष हैं। आपको नमस्कार है।'

वट वृक्ष की जड़ में साक्षात ब्रह्मा विराजमान रहते हैं ऐसी लोकमान्यता आम है। स्कंदपुराण में तो शिव के आठ लिगों में से एक वटेश्वर लिग को वट वृक्ष की जड़ में स्थित माना गया है।[2] पुरुषोत्तम क्षेत्र में अंतर्वेदी की रक्षा के लिये जो आठ शक्तियाँ बतायी गयी हैं उनमें से एक है वट वृक्ष की जड़ मे मंगला। विष्णु की मूर्ति के अभाव में पीपल अथवा वट की पूजा करनी चाहिए। पीपल विष्णु का और वट शंकर का स्वरूप है।[3] वट वृक्ष पर ही वटयक्षिणी देवी निवास करती हैं जो मनुष्य एक महीने तक प्रतिदिन देवी का दर्शन कर धतूर के फूलों से उनकी पूजा करता है उसकी सिद्धि कभी क्षीण नहीं होती।[4]

पीपल (अश्वत्थ)—भारत के पवित्र एवम् पूजनीय वृक्षों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण वृक्ष है पीपल जिसे प्राचीन ग्रन्थों में 'अश्वत्थ' नाम से अभिहित किया गया है। पीपल देव-योनि का वृक्ष माना जाता है। देवत्व के परमार्थ के संस्कार इसमें सन्निहित हैं। वैरिवल्य ऋषि के मतानुसार अश्वत्थ वृक्ष स्वयं भगवान विष्णु का एक रूप है। अनेक स्थानों पर आज भी इस वृक्ष का यज्ञोपवीत संस्कार होता है और तुलसी के पौधे के साथ इसका विवाह-समारोह आयोजित किया जाता है। इसकी सूखी टहनियों से आज भी यज्ञ-हवनाग्नि प्रज्वलित की जाती है।[5]

पीपल वृक्ष के नीचे ही गौतम बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई। ज्ञान का बोध होने के कारण उन्हें बुद्ध नाम से जाना जाने लगा जबकि पीपल के वृक्ष को 'बोधि वृक्ष' कहा गया। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं को वृक्षों में उत्तम पीपल वृक्ष कहा है।

अश्वत्थः सर्व वृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।[6]

इसी ग्रन्थ में पीपल के वृक्ष को संसार रूप कहा गया है। कृष्ण के अनुसार आदिपुरुष परमेश्वर रूप मूल वाले और ब्रह्मारूप मुख्य शाखा वाले जिस संसार रूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते

---

1 स्कद पुराण, वैष्णव खण्ड, उत्कल खण्ड, पृ० 286।

2 वही, अध्याय 3।

3 वही, वैष्णव खण्ड, कार्तिक महात्म्य, अध्याय 4, पृ० 317।

4 वही, आवन्त्य खण्ड, अवती क्षेत्र महात्म्य, पृ० 706।

5 काव्य मे पादप पुष्प, श्रीचन्द्र जैन, भोपाल, 1958, पृ० 41।

6 श्रीमद्भागवद्गीता, 10 26।

हैं तथा वेद जिसके पत्ते कहे गये हैं, उस संसार रूप वृक्ष को जो मूलसहित तत्व से जानता है वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है।

उर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद से वेदवित ।।[1]

उस संसार वृक्ष की तीनों गुणरूप जल के द्वारा बढ़ी हुई एवं विषय भोग रूप कोपलों वाली देव, मनुष्य और तिर्यक आदि योनिरूप शाखायें नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई है और मनुष्य लोक में कर्मो के अनुसार बॉधने वाली अहंता, ममता और वासना रूप जड़ें भी नीचे और ऊपर, सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं।

अधश्चोर्ध्व प्रसृतास्तस्य शाखा गुण प्रवृद्धा विषय प्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनु संततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।[2]

नित्यक्रियादि प्रसंग में स्नान-ध्यान के बाद दूर्वा, अक्षत आदि का स्पर्श, सुंदर श्वेत पुष्प, चन्दन का दर्शन और अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष का स्पर्श करने के बाद अपने जाति धर्म के पालन का प्रावधान किया गया है।

श्वेतानि पुष्पाण्यथ शोभनानि हुताशनं चंदनमर्कविम्बम्।
अश्वत्थ वृक्षं च समालभेत ततस्तु कुर्यान्नि जजातिधर्मम्।।[3]

वामन पुराण में ही अन्यत्र यह वर्णित है कि विष्णु पीपल के वृक्ष के मूल में सदा निवास करेंगे। उस अश्वत्थ (पीपल) को प्रणाम करने वाला व्यक्ति भयंकर यमराज को नहीं देखेगा।

अश्वत्थस्य तु यन्मूलम् सदा तत्र वसाम्यहम्। अश्वत्थवन्दनं कृत्वा यमं रौद्रं न पश्यति।।[4]

जनमानस में ऐसा विश्वास है कि पीपल में देवताओं का निवास है इसलिये इसे 'देवसदन' भी कहा जाता है—'**अश्वत्थो देवसदनः**।।'[5] शनिदेव की कुदृष्टि को शांत करने के लिये पीपल की आराधना की जाती है।[6] भगवान कार्तिकेय के १०८ नामों में से एक नाम है—'पिप्पली' अर्थात पीपल का सेवन करने वाले।[7] पीपल को 'ज्ञान वृक्ष' और 'ब्रह्म वृक्ष' भी कहा गया है। सूर्य के प्रकाश का विशेष रूप से संश्लेषण करने के कारण इसे 'सौर वृक्ष' भी कहते हैं। औषधीय गुणों के कारण पीपल

1 श्रीमद्भागवद्गीता, 15 1।
2 वही, 15 2।
3 वामन पुराण, 14 37।
4 वही, 36 38।
5 अथर्ववेद, 5 4 3, 19 36 6।
6 वृक्षो मे देवत्व की प्रतिष्ठा—प० रामप्रतापशास्त्री, पृ० 76।
7 स्कंद पुराण, माहेश्वर कुमारिका खण्ड, 23 22।

को 'कल्पवृक्ष' भी कहा जाता है। इसके पंचांग (छाल, पत्ते, फल, बीज, दूध, जटा, कोंपलें और लाख) प्रायः सभी प्रकार के रोगों तथा आधि-व्याधियो के शमन में काम आते हैं। वेदों में पीपल को अमृत तुल्य माना गया है। आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों से भी यह पुष्टि हो चुकी है कि पीपल सर्वाधिक आक्सीजन निःसृत करता है। इसी वजह से इसे प्राणवायु का भंडार कहा जाता है। आज के प्रदूषण भरे वातावरण में इस वृक्ष की उपयोगिता पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गयी है। सर्वाधिक आक्सीजन का सृजन और विषैली गैसों को आत्मसात करने की अकूत क्षमता, भू-रक्षण, भू-स्खलन, भूमि कटाव को रोकने में बहुत ही उपयोगी पीपल सही मायनों में देवता का प्रत्यक्ष स्वरूप है।[1]

हिन्दू परम्परा के अतिरिक्त बौद्ध एवम् जैन परम्परा में भी पीपल वृक्ष की पूजा लोक आस्था के रूप में प्रचलित है। प्रायः इन सभी के मूर्तिशिल्पों में पीपल की उपासना का अंकन प्रत्यक्ष रूप में मिलता है। आज भी इस वृक्ष के प्रति लोगों में इतनी आस्था है कि इसे काटना, जलाना आदि कृत्य धार्मिक अपराध माना जाता है। आदिवासी लोग पीपल के पेड़ को काटना ब्रह्म हत्या के समान निदनीय मानते हैं। धार्मिक ग्रन्थों ने मात्र हवन के लिए समिधा के रूप में तथा शव को जलाने में ही पीपल की लकड़ी का प्रयोग करने की अनुमति प्रदान की है।

आम जनता में यह विश्वास है कि पीपल की पूजा करने से सारे मनोरथ पूर्ण होते हैं। और भूतबाधा तथा अन्य किसी प्रकार के अनिष्ट का भय नहीं रहता, खोटे ग्रहों की शांति होती है और सुख-सौभाग्य प्राप्त होता है। हड़प्पा संस्कृति में पीपल पूजा का विशेष महत्व रहा है, मांगलिक कार्यो और राजकीय मुद्राओं पर भी पीपल वृक्ष का अंकन मिलता है। प्राचीन काल में आर्य जाति अपने शत्रुओं के विनाश की कामना से पीपल को अपना विशेष आराध्य मानकर पूजती थी। मौर्यकाल में प्रत्येक ग्राम तथा जनपद में देवस्थलों पर पीपल वृक्ष रोपकर उसके नीचे चबूतरा अथवा 'थान' अवश्य बनाया जाता था और उसकी पूजा की जाती थी। वैसे ही 'थान' आज भी गाँव-गाँव में पाये और पूजे जाते हैं।

सृष्टि प्रक्रिया में सहायक होने से इसकी विशेषताओं और औषधीय गुणों को आयुर्वेद शास्त्रों में विशेष रूप से उजागर किया गया है। भारत में पीपल को अनेक नामों यथा अश्वत्थ, पिप्पल, पीपर, बोधिवृक्ष, याज्ञिक, गजभक्षक, क्षीर द्रुम, धनुवृक्ष, पिंगल, अरली, अशोयगाछ[2] नाम से जाना जाता है। अंग्रेजी में इसे 'सैक्रेड फिग ट्री' कहते हैं। वानस्पतिक शब्दावली में इसे 'फाइकस रिलिजिओसा' कहा जाता है। समय बदलने के साथ मान्यतायें भले ही बदली हों, किन्तु भारतीय संस्कृति में पीपल के प्रति आस्था आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है।

प्लक्ष (पाकड़)—पंचपल्लवों में पाकड़ का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दू धार्मिक परम्परा मे प्लक्ष वृक्ष को अतीव आदर प्रदान किया गया है। इस वृक्ष के बारे में ऐसी मान्यता है कि इसके

---

1 अखड ज्योति, अप्रैल 1999, पृष्ठ 6।

2 वही, पृष्ठ 6।

दर्शन से सभी कष्ट दूर हो जाते हैं। महाभारत मे उल्लेख मिलता है कि बनवास के दिनों में पाण्डवों से काम्यक वन निवासी ब्राह्मणों ने उनके साथ तीर्थस्थानों, पवित्र नदियों और पर्वतों के अतिरिक्त प्लक्ष (पाकड) वृक्ष का दर्शन करने का अनुरोध किया था।[1] वेदों-पुराणों में वर्णित (वर्तमान में लुप्त प्राय) पवित्र नदी सरस्वती के उद्गम स्रोत के रूप में प्लक्ष वृक्ष का उल्लेख है जिसकी जड़ से टपकती हुई वह नदी निकल रही है।[2]

आम—भारत में प्रायः सभी मांगलिक कार्यो में आम्र पल्लवों का प्रयोग किया जाता है। मांगलिक वृक्ष होने के कारण तोरण बनाने हेतु आम्रपल्लवों का प्रयोग भारतीय संस्कृति की जीवित विशेषता है। संस्कृत काव्य में भी कहा गया है—

अधिश्रीरुद्याने त्वमसि भवतः पल्लवचयो, धुरीणः कल्याणे तव जगति शाखा श्रमहरा।
मुदे पुष्पोल्लेखः फलमपि च तुष्ट्यै तनुभृताम्, रसाल त्वां तस्माच्छ्र्यति शतशः कोकिलकुलम्॥

अर्थात 'हे आम के वृक्ष, तुम सुन्दर उद्यान में रहते हो, तुम्हारे पत्रों का समूह भी सुन्दर है। श्रम को दूर करने वाली तुम्हारी शाखायें संसार में कल्याण करने वाली हैं। तुम्हारे पुष्प आनंदित करने वाले तथा फल संतोषदायक हैं इसीलिये सैकड़ों कोकिलों का समूह तुम्हारा आश्रय लेता है।'[3]

भारत के समस्त भागों में यह वृक्ष पाया जाता है। कहते हैं कि रसीले आम देवताओं को भी लुभाते हैं। आदिवासी लोग आम के वृक्ष की आराधना करके अपने पुण्य कार्य की सफलता मनाते हैं।

गूलर (उदुम्बर)—गूलर के वृक्ष पूरे भारत में चहुँ ओर पाये जाते हैं। हिन्दू धर्म में इस वृक्ष को पवित्र मानकर पूजा करने की व्यवस्था की गयी है। इस वृक्ष के संबंध में एक रोचक आख्यान मिलता है जो इसकी औषधीय उपयोगिता के कारण धार्मिक रूप से पूजित किये जाने की पुष्टि करता है। यह आख्यान इस तरह है—'राक्षसराज हिरण्यकश्यपु के मारने के पश्चात् भगवान नृसिह के नाखून उसके जहरीले खून के असर से जलने लगे। तब वे व्याकुल हो इधर-उधर देखने लगे। इतने में उन्हें एक उदुम्बर का पेड़ दिखायी पड़ा। वे दौड़े हुये उसके पास जाकर उसके तने में अपने नाखूनों को घुसेड़ दिये। उदुम्बर के दूध लगने से जहर का प्रभाव कम हुआ और नृसिह ने शांति का अनुभव किया। उदुम्बर का पेड़ विष के प्रभाव से काँपने लगा। धीमी आवाज में उसने कहा—'भगवान आपके नाखूनों में जो विष लगा था उससे मेरा जीवन नष्ट हो रहा है अब मैं जीवित न रह सकूँगा।' भगवान नृसिह बोले 'हे उदुम्बर वृक्ष' तुम अमर बन चुके हो। तुम्हारे दूध से मुझे शांति मिली है। अब तुम मेरे प्यारे भक्त हो। कुछ समय के बाद दत्तात्रेय के अवतार में मैं ही तुम्हारी

---

1 महाभारत, वन पर्व, 93 10।

2 वही, 84 7, सक्षिप्त स्कद पुराणाक, नागरखण्ड उत्तरार्द्ध, पृष्ठ 909।

3 काव्य मे पादप पुष्प, श्री चन्द्र जैन, पृ० 79।

छाया में तपस्या करूँगा और संसार तुमको पूजकर अपनी मनोकामना पूरी करेगा।'[1] आज भी हिन्दू इस वृक्ष को पवित्र मानकर पूजते हैं साथ ही इसका पत्ता पंचल्लवों के रूप में मांगलिक कलश के ऊपर स्थापित किया जाता है।

आँवला—प्राचीन ग्रंन्थों में आँवला के वृक्ष को सब पापों का नाश करने वाला कहा गया है। इस वृक्ष की उत्पत्ति को धार्मिक परम्परा के साथ जोड़ा गया है। पूर्वकाल में जब सारा जगत एकार्णव जल में निमग्न हो गया था, समस्त चराचर प्राणी नष्ट हो गये थे, उस समय देवाधिदेव सनातन परमात्मा ब्रह्माजी अविनाशी परब्रह्म का जप करने लगे। ब्रह्म का जप करते-करते उनके आगे श्वांस निकला साथ ही भगवद्दर्शन के अनुराग वश उनके नेत्रों से जल निकल आया। प्रेम के आँसुओं से परिपूर्ण वह जल की बूँद पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसी से आँवले का महान वृक्ष उत्पन्न हुआ जिसमें बहुत सी शाखायें-उपशाखायें निकली थीं और वह फलों के भार से लदा हुआ था। सब वृक्षों में सबसे पहले आँवला ही उत्पन्न हुआ। इसीलिए उसे 'आदिरोह' कहा गया। ब्रह्मा ने इसके पश्चात् ही समस्त लोक की सृष्टि की।

स्कंद पुराण में कहा गया है कि 'यह आँवले का वृक्ष सब वृक्षों में श्रेष्ठ है क्योंकि यह भगवान विष्णु को प्रिय है। उसके स्मरण मात्र से मनुष्य गोदान का फल प्राप्त करता है। इसके दर्शन से दुगुना और फल खाने से तिगुना पुण्य प्राप्त होता है। इसलिए सर्वथा प्रयत्न करके आँवले के वृक्ष का सेवन करना चाहिये क्योंकि यह विष्णु को परम प्रिय एवं सब पापों का नाशक है। अतः समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिए आँवले के वृक्ष का पूजन उचित है।[2]

लोकमानस में ऐसी मान्यता है कि जो मनुष्य कार्तिक मास में आँवले के वन में भगवान की पूजा तथा आँवले की छाया में भोजन करता है उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। आँवले की छाया में किया गया पुण्य कोटि गुना हो जाता है। जो मनुष्य आँवले की छाया में बैठकर पिंडदान करता है उसके पितर भगवान विष्णु के प्रसाद से मोक्ष को प्राप्त होते हैं। तीर्थ या घर में जहाँ-जहाँ मनुष्य आँवले से स्नान करता है वहाँ-वहाँ भगवान विष्णु स्थित होते हैं। जिसके शरीर की हड्डिया आँवले के स्नान से धोयी जाती है वह फिर गर्भ में वास नहीं करता। जिसके सिर के बाल आँवला मिश्रित जल में रंगे जाते हैं, वे मनुष्य कलियुग के दोषों का नाश करके भगवान विष्णु को प्राप्त होते हैं जिस घर में सदा आँवला रखा रहता है वहाँ भूत, प्रेत, कुष्मांड और राक्षस नहीं जाते। जो कार्तिक मास में आँवले की छाया में बैठकर भोजन करता है उसके एक वर्ष तक अन्न संसर्ग से उत्पन्न हुये पाप का नाश हो जाता है।[3]

---

1 काव्य मे पादप पुष्प, श्रीचन्द्र जैन, पृ० 230।

2 सक्षिप्त स्कद पुराण, वैष्णव खण्ड, कार्तिक महात्म्य, पृ० 326 27।

3 वही, पृ० 326 27।

कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को आँवले के वृक्ष का पूजन किया जाता है। अक्षय नवमी पर्व के दिन हिन्दू लोग सपरिवार आँवले के वृक्ष के नीचे जाकर भोजन बनाते हैं। पूजा-पाठ के उपरान्त विप्र एवं गरीबों को भोजन कराया जाता है तथा स्वयं पूरा परिवार भी भोजन करता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ऐसा करने से असीम पुण्य की प्राप्ति होती है।

बिल्व (बेल)— भविष्य पुराण के अनुसार सूर्य का परम प्रिय बिल्व वृक्ष गोमय से ही उत्पन्न हुआ है। उस वृक्ष पर कमलहस्ता लक्ष्मी विराजमान रहती हैं अतः यह 'श्री वृक्ष' कहा जाता है। गोमय से पंक और पंक से ही कमल उत्पन्न हुये हैं।[1] ऋषि दुर्वासा ने अपनी सफल तपस्या पवित्र बिल्व वृक्ष के नीचे ही की थी।

बिल्व पत्र भगवान शंकर को बहुत प्रिय हैं। बेल पत्र के बिना शिव की पूजा ही पूरी नहीं होती। बिल्व वृक्ष के नीचे ही भगवान शंकर लिग रूप में प्रकट हुये तभी से शिवलिंग का एक रूप बिल्वेश्वर के रूप में पूजा जाता है। चतुर्थी, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी और अमावस्या तिथियों को, संक्रान्ति के समय और सोमवार को बिल्वपत्र नहीं तोड़ना चाहिये।

अमारिक्तासु संक्रान्त्यामष्टम्यामिन्दुवासरे। बिल्वपत्रं न च छिन्द्याच्छिन्द्याच्चेन्नरवं व्रजेत।।[2]

निषिद्ध समय में पहले दिन का रखा बिल्वपत्र चढ़ाना चाहिये। शास्त्रों में तो यहाँ तक कहा गया है कि यदि नूतन बिल्वपत्र न मिल सकें तो चढ़ाये हुये बेलपत्र को ही धोकर बार-बार चढ़ाया जाना चाहिये।

अर्पिता न्यपि बिल्वानि प्रक्षाल्यपि पुनः पुनः। शंकरायार्पणीयानि न नवानि यदि क्वचिंत।।[3]

स्कंद पुराण के अनुसार बिल्वपत्रों से देवताओं की पूजा करने वाले मनुष्य एक हजार अश्वमेध यज्ञों का फल पाते हैं। बिल्वपत्रों से लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री और दुर्गा का पूजन कर मनुष्य स्वर्ग लोक में जाते हैं। बिल्वपत्र का महत्व तुलसीदल से भी अधिक है अतः सदा यत्नपूर्वक उससे विष्णु का पूजन करना चाहिये। बिल्वपत्र से ब्रह्मा, शिव, सूर्य का पूजन करने वाले अक्षय लोकों में जाते हैं। बिल्वपत्रों से ही लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री और दुर्गा का पूजन कर मनुष्य स्वर्ग लोक में जाते हैं। जो मनुष्य द्वादशी तिथि तथा रविवार को बिल्व वृक्ष की पूजा करते हैं वे सैकड़ों ब्रह्महत्याओं के पाप से भी लिप्त नही होते।[4]

बदरी (बेर)— बदरी या बेर का हमारी धार्मिक परम्परा में इतना महत्व है कि बदरीनाथ के रूप में उसका भगवान विष्णु से ही संबंध स्थापित हो गया। संस्कृत में बदरी का अर्थ होता है—'बेर'

---

1 सक्षिप्त भविष्य पुराणांक, पृ० 180 (मध्यम 187, ब्रह्मपर्व)।

2 लिंग पुराण।

3 आचारेन्दु, पृ० 165।

4 स्कंद पुराण, प्रभास खण्ड, अ० 42, पृ० 1078।

पौराणिक कथाओं में बदरीनाथ तीर्थ क्षेत्र में बेर के वृक्ष पर्याप्त मात्रा में होने का वर्णन मिलता है। कहा जाता है कि बदरी वृक्षों में सदैव लक्ष्मी का वास होता है इसीलिए लक्ष्मीपति विष्णु को यह स्थान बहुत भाता है और वे यहाँ निवास करते हैं। स्कंद पुराण के अनुसार जो सदा भगवान का निकट सान्निध्य प्राप्त करना चाहता हो उसे प्रयत्नपूर्वक बदरी क्षेत्र का सेवन करना चाहिये। इसी पुराण में यह कहा गया है कि विष्णु के समान कोई देवता नहीं, विशाला के समान कोई पुरी नहीं, सन्यासी के समान कोई सेवा का पात्र नहीं और बदरी क्षेत्र (वटषितीर्थ) के समान कोई तीर्थ नहीं है।

न विष्णु सदृशो देवो न विशालासमा पुरी। न भिक्षु सदृशं पात्रमृषि तीर्थसमं न हि ॥[1]

कदली (केला)— भारत के प्रायः सभी अंचलों में स्त्रियाँ आज भी कदली वृक्ष की भक्ति भाव से पूजा-आराधना करती हैं। आम जन में ऐसी मान्यता है कि भगवती पार्वती ने केला के पेड़ को अपना निवास स्थल बनाया। केले के पीताभ हरित वृक्ष स्थान को दिव्यता और भव्यता प्रदान करते हैं इसीलिये इसका प्रयोग मांगलिक अवसरों पर बंदनवार सजाने में किया जाता है।

भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी को रंभा (कदली) व्रत का अनुष्ठान किया जाता है। कहा जाता है कि सभी देवताओं, गंधर्वो तथा अप्सराओं ने इस व्रत का अनुष्ठान कर कदली वृक्ष को सादर अर्घ्य प्रदान किया था। इस दिन व्रती नाना प्रकार के फल, अंकुरित अन्नों, सप्तधान्य, दीप, चंदन, दूर्वा, दही, अक्षत, वस्त्र, पकवान, जायफल, इलायची तथा लवंग आदि उपचारों से कदली वृक्ष का पूजन कर उसे इस मन्त्र से अर्घ्य प्रदान करते हैं—

चित्या त्वं कन्दलदलैः कदली कामदायिनी। शरीरारोग्य लावण्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥[2]

अर्थात 'हे कदली देवि! आप अपने पत्तों से वायु के व्याज से ज्ञान एवं चेतना का संचार करती हुई सभी कामनाओं को देती हैं। आप मेरे शरीर में रूप, लावण्य, आरोग्य प्रदान करने की कृपा करें। आपको नमस्कार हो।' श्रुति है कि इस व्रत को करने पर नारी सुख-सौभाग्य, पुत्र-पौत्र, धन, आयुष्य तथा कीर्ति आदि प्राप्त कर सौ वर्ष पर्यन्त अपने पति के साथ आनन्दपूर्वक रहती हैं।[3]

अशोक—अशोक वृक्ष जो अपनी कवि प्रसिद्धि के लिए विख्यात है, जनकनन्दिनी सीता के कारण अमर हो गया है। सीता जी लंका में अशोक वृक्ष के नीचे ही रही थीं। संस्कृत साहित्य में वर्णन मिलता है कि अशोक वृक्ष गर्मी में अपनी शीतल छाया से सीता को सुख देता और उनके चरणों में पुष्प चढ़ाकर अपनी भक्ति प्रकट करता था। जब कोई राक्षस सीता को अपशब्द कहता तो अशोक क्रोध से काँपने लगता था। कई बार सीता के दुःख को देखकर यह वृक्ष रोया भी था। अयोध्या लौटते समय सीता ने इसकी भक्ति भावना से प्रसन्न हो यह आशीर्वाद दिया—'प्यारे वृक्ष।

---

1 स्कद पुराण, वैष्णव खण्ड, बदरी महात्म्य, 5 58।

2 भविष्य पुराण, उत्तर पर्व, 92 7।

3 संक्षिप्त भविष्य पुराणांक, पृ० 362।

तुमने मेरी पर्याप्त सेवा की है। तुम्हारी श्रद्धा को मैं कभी नहीं भूल सकती। संसार में तुम अमर रहोगे और समस्त नारियाँ तुम्हारी पूजा कर अपनी मनोकामना पूर्ण करेंगी। तुम्हारी छाया में बैठकर मैंने कुछ समय के लिये अपना शोक भुलाया था अत: मैं वर देती हूँ कि जो नारी तुम्हारी छाया में बैठेगी उसका रोग-शोक नष्ट हो जायेगा।[1] सीता की खोज में वन में दर-दर भटक रहे राम ने अशोक वृक्ष से यह आग्रह किया—'हे अशोक! तुम तो शोक दूर करने वाले हो। इधर मैं शोक से अपनी चेतना खो बैठा हूँ। मुझे मेरी प्रियतमा का दर्शन कराकर शीघ्र ही अपने जैसा नाम वाला बना दो मुझे अशोक अर्थात शोकहीन कर दो।

अशोक शोकानुपद शोकोपहृतचेतनम्। त्वन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रियासंदर्शनेनमान।।[2]

अशोक वृक्ष की पूजा करने से सब प्रकार का संताप दूर हो जाता है। यह प्रेम का प्रतीक है और कामदेव को अत्यंत प्रिय है। म्यांमार (वर्मा) निवासी इस वृक्ष को पावन मानकर पूजते हैं। अशोक वृक्ष सतीत्व रक्षक है। ब्लैटर और मिलार्ड अपनी पुस्तक Some Beautıful Indıan trees में अशोक के बारे में लिखते हैं—

The Ashoka ıs one of the sacred trees of the Hındus whıch they are ordered ın the urapaȷ to worshıp on the 13th day of the month chaıtra The tree ıs symbol of love and ıs dedıcated to kama, the Indıan god of love Lıke the Agnus castu ıt ıs belıeved to have a certaın charm ın preservıng chastely Mas on (Burma and ıts people) says the tree ıs held sacred among the Burmans because under ıt Gautam Buddha was born and ımmedıately after hıs bırth delıvered hıs first address [3]

कालिदास के समय में अशोक, अरिष्ट, पुन्नाग, शीरिष और प्रियंगु के वृक्ष मांगल्य समझे जाते थे और उपवनों एवं प्रासादों के अग्रभाग में लगाये जाते थे।[4] चैत्र शुक्ल अष्टमी को व्रत करने और अशोक की आठ पत्तियों के भक्षण से स्त्री की संतान कामना फलवती होती है।[5]

नीम—नीम भारत का चिरपरिचित वृक्ष है। गाँव में आँगन, घर के दरवाजे,खेत की मेड़ों, बागीचों में नीम के वृक्ष लगाने की परम्परा सदियों से रही है। औषधीय दृष्टि से काफी उपयोगी माना जाने वाला नीम का वृक्ष शक्ति की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा का निवास स्थल है।

भारत में वैशाख शुक्ला सप्तमी को 'निम्ब सप्तमी' के रूप में मनाया जाता है। इस पर्व में निम्ब पत्र का सेवन किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि यह सप्तमी सभी तरह के व्याधियों को हरने

---

1 काव्य मे पादप पुष्प, श्रीचन्द्र जैन, पृ० 234।

2 वाल्मीकि रामायण, अरण्य काण्ड, 60.17।

3 Some beautıful Indıan tree, p 96

4 वृहत्सहिता, 55 3

5 अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 12।

वाली है। इस अवसर पर निम्ब की प्रार्थना कर उसे भगवान को निवेदित करके प्राशन करना चाहिये तथा निम्न मन्त्र पढ़ना चाहिये।

त्वं निम्ब कटुकात्मासि आदित्यनिलयस्तथा। सर्वरोगहरः शान्तो भव मे प्राशनं सदा॥

अर्थात् 'हे निम्ब! तुम भगवान सूर्य के आश्रय स्थान हो। तुम कटु स्वभाव वाले हो। तुम्हारे भक्षण करने से मेरे सभी रोग सदा के लिए नष्ट हो जायँ और तुम मेरे लिए शांतिस्वरूप हो जाओ।' [1]नीम की छाया मात्र से बहुत से रोग एवं विकार समाप्त हो जाते हैं। यहाँ तक कि भगवती दुर्गा का क्रोध तक नीम की छाया में शान्त हो जाता है।

शमी—शमी वृक्ष की गणना अत्यंत पवित्र वृक्षों में की जाती है। इसे साक्षात ईश्वर का ही प्रतिरूप समझा जाता है। शमी-पत्र भगवान को विशेष प्रिय है। इस वृक्ष की पूजा करने से पाप कट जाते हैं एवं शत्रुओं का विनाश होता है। इसकी पूजा करते समय निम्न श्लोक पढ़ा जाता है।[2]

शमी शमयते पापं, शमी शत्रु विनाशिनी। अर्जुनस्य धनुर्धारी, रामस्य प्रियवादिनी॥

भविष्य पुराण में सभी तीर्थों, नदियों, सरोवरों, झरनों और तालाबों में स्नान के बाद घर आकर दूर्वा, पीपल और शमी वृक्षों को स्पर्श करने का विधान बताया गया है। शमी वृक्ष को स्पर्श करते समय निम्न मन्त्र पढ़ना चाहिये—

पवित्राणां पवित्रा त्वं काश्यपी प्रथिता श्रुतौ। शमी शमय मे पापं नूनं वेत्सि धराधरान्॥[3]

अपने अज्ञातवास के दिनों में पाण्डवों ने श्मशान भूमि के समीप स्थित शमी के अत्यंत सघन वृक्ष पर हथियारों को छिपाया था।[4] अपने आयुधों की रक्षा करने के कारण ही पांडव शमी वृक्ष को अपनी माता मानते थे। दशहरे के दिन जिस वृक्ष का पूजन शास्त्रकारों ने बताया है वह शमी वृक्ष दृढ़ता और तेजस्विता का प्रतीक है। शमी में अन्य वृक्षों की अपेक्षा अग्नि प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहती है तभी तो यज्ञ में अग्नि उत्पन्न करने के मंथन दंड तथा अरणी आदि उपकरण इस वृक्ष की लकड़ी से तैयार किये जाते हैं। हम भी शमी की भांति दृढ़ और तेजोमय हों, इसी भावना से इस दिन शमी वृक्ष का पूजन किया जाता है।

पलाश—पलाश में ब्रह्मदेवता का निवास माना गया है। प्रायः सभी धार्मिक अवसरों पर पलाश की आवश्यकता पड़ती है। इसकी उत्पत्ति को सोमरस से जोड़ा गया है। संबंधित आख्यान इस प्रकार से उपलब्ध है।

---

1 सक्षिप्त भविष्य पुराणाक, पृ० 193 (ब्रह्मपर्व, भविष्यपुराण, अध्याय 215)।

2 काव्य मे पादप पुष्प—प्रो० श्री चद्र जैन, पृ० 24।

3 भविष्य पुराण, ब्रह्मपर्व, 31 33।

4 महाभारत, विराट पर्व, 5 3 ।

'एक समय गंगा किनारे कुछ ऋषि सोमपान कर रहे थे। आकाश में चंद्रदेव ने ललचायी आँखों से ऋषियो के सोमपान को देखा। उन्होंने अपने प्रिय मित्र बाज को बुलाकर कहा—'सब पक्षियों में तुम बलवान हो। तुम्हारे पंख भी सुदृढ़ हैं। देखो गंगा तट पर ऋषि सोम पी रहे हैं। तुम अपने दोनों पंखों को सोमरस में डुबाकर मेरे पास चले आओ। मैं इस रस की सुगंध से ही अपनी नासिका को तृप्त करना चाहता हूँ।' चंद्र देव की इच्छानुसार बाज ने अपने पंखों से सोम पात्र को फोड़ डाला और जमीन पर पड़े सोम में अपने पंखों को भिगोकर आकाश में उड़ गया। कुपित ऋषियों ने उड़ते बाज को देखा जिससे उसका एक पंख टूटकर जमीन पर गिर पड़ा। इसी टूटे पंख से पलाश का वृक्ष उत्पन्न हुआ और यह पवित्र माना जाता है। इसके पत्रों में भोजन करना हितकर कहा गया है। अनेक धार्मिक कर्मकांडों में पलाश पत्रों का प्रयोग होता है।[1]

पीयूष से समन्वित होने के कारण ही उपनयन संस्कार में पलाश दण्ड ब्रह्मचारी को दिया जाता है। पलाश पुष्प भगवान की पूजा में समर्पित किया जाता है। इसकी महिमा वेदों में भी वर्णित है। पलाश के तीन पत्तों में त्रिदेव की कल्पना की गयी है। मध्य के पत्र में विष्णु, बाँये में ब्रह्मा और दाहिने में शिव का निवास रहता है।[2]

कदम्ब—कदम्ब का भगवान कृष्ण एवं सूर्य के साथ बहुत निकट का संबंध है। महाभारत के अनुसार लाल सागर की कन्या का नाम लोहितायनि है जिसे स्कंद की धाय बताया गया है। उसकी कदम्ब वृक्षों में पूजा की जाती है।[3] ब्रह्मा ने जब सूर्य से अपने निवास स्थान के बारे में पूछा तब सूर्य ने उन्हें बताया जिस स्थान पर मेरा महद-व्योम पृष्ठ शृंग से युक्त उत्तम रूप रहेगा, वहीं कदम्ब के रूप में आप नित्य स्थित रहेंगे।[4]

कमल—कमल भारतीय संस्कृति और सौन्दर्य का प्राण-प्रतीक है। भगवान विष्णु शंख, चक्र, गदा के साथ कमल को धारण करते हैं और 'पद्मधर' कहलाते हैं। उनकी नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई इसलिये उन्हें 'पद्मनाभ' भी कहते हैं। ब्रह्मा की उत्पत्ति विष्णु के नाभि कमल से हुई मानी जाती है।[5]इसी कारण उन्हें 'कमलयोनि', 'पद्मज', 'कमलज', तथा 'कमलभव' कहते हैं। भगवान विष्णु की प्रेयसी लक्ष्मी का निवास पुष्प, कमल और सोम (चंद्रमा) में बताया गया है।

लक्ष्मीर्वसति पुष्पेपु लक्ष्मीर्वसति पुष्करे। लक्ष्मीर्वसति वै सोमे सौमनस्यं सदास्तु मे॥[6]

---

1 Some beautiful Indian trees, p 18

2 Ibid, p 18

3 महाभारत, वन पर्व 230 35, 36, 40।

4 सक्षिप्त भविष्य पुराण, जनवरी, 1992, पृ० 153।

5 महाभारत, वनपर्व, 188 14।

6 सक्षिप्त स्कंदपुराण, पृ० 1013।

कमल की अनेकानेक जातियाँ और नाम है। पुंडरीक श्वेतकमल (शरत्पद्म सिताम्बुज) को कहते हैं। कहा जाता है कि इसकी उत्पत्ति नक्षत्रगण के ज्योति कणों से हुई है। इसका प्रयोग हृद्‌य की उपमा के लिये किया जाता है।[1] कमल से सृष्टि के सर्जक ब्रह्मा की उत्पत्ति और तदनंतर उनके द्वारा विश्व की सृष्टि के गूढ़ वैज्ञानिक अर्थ हैं। अनुसंधानों से यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि जीवन का विकास पहले-पहले जल में ही हुआ तदनन्तर विकास की प्रक्रिया में आदि जीवन (ब्रह्मा) का वह रूप अपने जटिल स्वरूप की तरफ क्रमशः अग्रसर हुआ।

अर्क (अकौवा)—देवों में अग्रगण्य भगवान गणेश का निवास स्थान अर्क-वृक्ष ही है। भविष्य पुराण के अनुसार फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को अर्क सप्तमी कहते हैं। इस दिन अर्क वृक्ष की 'ऊ खखोल्काय नमः' मन्त्र से पूजा कर अर्क पल्लवों को ग्रहण करने तथा अर्क पुष्प से सूर्य की पूजा करने का विधान है। तदनन्तर दाँत और ओठ से स्पर्श किये बिना निम्न मन्त्र से अर्क संपुट की प्रार्थना करते हुए जल के साथ पूर्वाभिमुख होकर अर्क पुट निगलने की बात बतायी गयी है।

ऊँ अर्क सम्पुट भद्रं ते सुभद्रं मेऽस्तु वै सदा। ममापि कुरु भद्रं वै प्राशनाद वित्तदो भव।।[2]

भविष्य पुराण के अनुसार इस प्रकार अर्कसंपुट का प्राशन करने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ गति को प्राप्त होता है। इस व्रत के अनुष्ठान से साम गान करने वाले महर्षि कौथुम कुष्ठ रोग से मुक्त हो गये तथा सिद्धि प्राप्त की।[3]

अन्य पेड़-पौधे—हमारी धार्मिक परम्परा में वृक्ष-पूजा का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति में पाये जाने वाले प्रायः हरेक वृक्ष को किसी न किसी देवता के साथ जोड़ा गया है। इस तरह के अन्यान्य वृक्षों में से कुछ के बारे में शास्त्रों में वर्णित और लोकप्रचलित आख्यान निम्नलिखित है—

वृक्षों की माता करंज वृक्ष पर निवास किया करती हैं। वे वर देने वाली और सौम्य हैं तथा सदा समस्त प्राणियों पर कृपा करती हैं। इसीलिये पुत्रार्थी मनुष्य करंज वृक्ष पर रहने वाली उस देवी को नमस्कार करते हैं।[4] बेंत के वृक्ष को ब्रह्माण्डरूपी बताया गया है जो भोगस्थानरूपी अनन्त शाखाओं से युक्त तथा शब्दादि विषयरूपी पवित्र सुगंध से संपन्न है।[5] वामन पुराण में स्थाणु भगवान को वृक्षों में अर्जुन कहा गया है—

वृक्षाणां ककुभोऽसि त्वं गिरीणां हिमवान गिरिः।।[6]

---

1 अध्ययन और आस्वाद—गुलाब राय, पृ० 421-422।

2 भविष्य पुराण, ब्राह्मपर्व, 210.73।

3 सक्षिप्त भविष्य पुराणांक, गीता प्रेस, गोरखपुर, जनवरी, 1992, पृ० 191।

4 महाभारत, वनपर्व, 230 35, 36।

5 वही, 186.28।

6 वामन पुराण 47 112।

आधुनिक शोधों से यह बात सामने आयी है कि अर्जुन वृक्ष की छाया में रहने से हृद्य रोग शान्त होता है।

बांस का पौधा हमारे जीवन के साथ काफी गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। ऐसा लोक विश्वास है कि बाँस के जलाने से वंश नाश हो जाता है। आदिवासियों का विश्वास है कि पुत्र विवाह के पूर्व बांस की पूजा करना आवश्यक है, ऐसा करने से विवाह में किसी भी प्रकार की बाधायें नहीं आती हैं।[1] बांस की पूजा करने से प्रेत सिद्धि होती है। हिन्दू धर्म में लड़के-लड़कियों की शादी-विवाह की रस्म बाँस से बनाये गये मंडप (मड़वे) में ही संपन्न होती है।

नारियल के बिना किसी याज्ञिक अनुष्ठान का कार्य संपन्न नहीं होता है। इसे कपाल पिड के रूप में कलि के लिए व्यवहृत किया जाता है। कहते हैं कि रविवार को नारियल के फल से यदि पूजा किया जाय तो स्त्री की पुत्र कामना पूर्ण होती है।[2] नारियल के पत्तों की जलती हुई मशालों के दिखाने से फल न देने वाले वृक्ष भी फल देने लगते हैं।

इमली और चम्पा इन दो वृक्षों को उत्तम बताते हुये भगवान वाराह इनकी सुरक्षा करने पर जोर देते हुए कहते हैं—इमली मेरा आश्रय है और चम्पा लक्ष्मी जी का स्थान। अतः राजाओं, ऋषियों देवताओं और मनुष्यों को इन दोनों वृक्षों की वंदना करनी चाहिये।[3] ऐसा लोक विश्वास है कि चम्पा के पेड़ को राधिका जी ने लगाया है और चंपा के वृक्ष में तक्षक रहता है।[4] अतिथि सत्कार की परम्परा में चंदन का अपना विशिष्ट स्थान है। भारतीय संस्कृति में आह्वान करके इष्टदेव का पूजन, अतिथि सत्कार की एक विशिष्ट शैली थी। आज भी पूजनादि कार्यों में चंदन का उपयोग आमतौर पर किया जाता है।

खैर और जामुन का फल कैसा भी क्यों न हो भगवान गणेश को यह अत्यंत प्रिय है—'कपित्थ जम्बू फल चारु भक्षणम्।' चिकित्साशास्त्रियों के अनुसार उपरोक्त दोनों फल मधुमेह में अत्यंत उपयोगी है। श्रुति है कि मोदक के अतिभक्षण से गणेश जी को मधुमेह रोग हो गया था जिसके शमन हेतु उन्होंने इन फलों का प्रयोग किया।[5] कहते हैं खैर के पेड़ की उत्पत्ति भगवान शंकर के मुस्कान से हुई है। कुछ आदिवासियों का ऐसा विश्वास है कि खैर के पेड़ पर खैरा माई रहती हैं। जामुन के पेड़ को लगाने से जमुना देवी (यमुना नदी) का वरदान प्राप्त होता है।[6]

---

1 काव्य में पादप पुष्प—प्रो० श्रीचद्र जैन, पृ० 241।

2 वही, पृ० 249।

3 स्कंदपुराणांक, पृ० 220।

4 काव्य मे पादप पुष्प, पृ० 245।

5 नवनीत, दिसंबर, 1998, पृ० 57।

6 काव्य मे पादप-पुष्प, पृ० 248।

वृक्षों के प्रति भगवान शंकर एवं माता पार्वती को अत्यंत स्नेह था। देवदार नामक वृक्ष को शंकर पुत्रवत प्यार करते हैं क्योंकि पार्वती जी ने इसको सींचकर बड़ा किया है।

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्री कृत्तोऽसौ वृषभध्वजेन।
यो हेम कुंभस्तन निःसृतानां स्कंदस्य मातुः पयसां रसज्ञः ॥[1]

'तुम्हारे सामने जो देवदार का वृक्ष है उसे शंकर पुत्र के समान चाहते हैं क्योंकि पार्वती जी ने इसे अपने सोने के घटरूप स्तनों से सींचा है।'

आदिवासियों का ऐसा विश्वास है कि अंजीर के पेड़ की पूजा करने से पुत्र की प्राप्ति होती है। महाभारत में बताया गया है कि संसार की सृष्टि करने के पश्चात पितामह ब्रह्मा ने शाल्मलि वृक्ष के नीचे विश्राम किया था। कल्पवृक्ष, पारिजात, आम्र और संतान नामक चार दिव्य वृक्षों की उत्पत्ति समुद्र मंथन से हुई। समुद्र मंथन से ही मदिरा, भांग, काकड़ासिगी, लहसुन, गाजर, धतूर, पुष्कर आदि वस्तुयें उत्पन्न हुई।[2]

दीपावली पर्व के एक दिन पहले नरक चतुर्दशी को नरक भय का नाश करने हेतु स्नान के बीच में अपामार्ग (चिचिड़ी) को मस्तक पर घुमाने का विधान बताया गया है। इस समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये।

सीतालोष्ठ समायुक्त सकण्टकदलान्वित। हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः॥

अर्थात—जोते हुए खेत के ढेले से युक्त और कण्टक विहीन पत्तों से सुशोभित अपामार्ग! तुम बार-बार घुमाये जाने पर मेरे पापों को हर लो।[3] ऐसा विश्वास किया जाता है कि अपामार्ग की जड़ से 12 वर्ष तक दातुन करने से वचन सिद्धि प्राप्त होती है।

कचनार के फूलों से भगवान महेश्वर की पूजा करने पर वे शीघ्र प्रसन्न होते हैं। चमेली के वृक्ष के नीचे देवी जगदम्बा सोती हैं। चिकित्साशास्त्रियों के अनुसार चमेली (Pagoda tree) का बीज सर्प दंश की उत्तम औषधि है।

मैसूर निवासी अमलतास के वृक्ष को धार्मिक भावना से पूजते हैं।[4] ऐसी मान्यता है कि मदार वृक्ष इंद्र के उपवन से ही लाया गया है। छोटा नागपुर के आदिवासी साल वृक्ष को देवता मानकर पूजते हैं।

---

1 रघुवंश, द्वितीय सर्ग, 36।

2 सक्षिप्त स्कंदपुराणांक, पृ० 24।

3 सक्षिप्त स्कदपुराण, पृ० 233।

4 काव्य मे पादप पुष्प, पृ० 245।

अन्य धर्मो में भी वृक्ष को काफी सम्मान दिया गया है। ईसाई ओक नामक वृक्ष को देवता मानकर पूजते हैं। मुसलमानों की दृष्टि से खजूर का दरख्त पाक है। मुसलमान जैतून को इज्जत के साथ मानते हैं। मौलसिरी का पेड़ पाक है इसलिये इसे मस्जिद के पास लगाया जाता है। बौद्ध बोधि वृक्ष को पूजनीय मानते हैं।[1]

करमा नृत्य को नाचने वाले आदिवासी करमा वृक्ष को करम देवता मानकर पूजते हैं। हरड़े (हर्रे) के वृक्ष की उत्पत्ति अमृत से हुई है।[2]आदिवासियों का ऐसा विश्वास है कि साज वृक्ष के ऊपर वन के महादेवता, बड़ा देव का निवास है।[3] मुनगा के पेड़ पर भवानी माता रहती हैं।

क्वार मास में गुलाबांस की पूजा करने से अकाल मृत्यु से मरे हुये पूर्वजों की गति में सुधार होता है। भादो मास में काँस वृक्ष की पूजा करने से बन्ध्या भी पुत्रवती होती है। ब्राह्मी लता की जल, चन्दन, अक्षतादि से यथाविधि पूजा करने से मंद बुद्धि मानव प्रकाण्ड विद्वान बन जाता है।[4]

महुआ वृक्ष की पूजा से कुँवारी कन्या शिव के समान सुंदर एवं योग्य वर प्राप्त करती है। रविवार के दिन महुए के वृक्ष के तने पर सात बार कच्चा सूत लपेटने से वात रोग नष्ट हो जाता है।[5] रविवार के ही दिन बहेड़े के वृक्ष की पूजा से मंदाग्नि रोग नष्ट हो जाता है। कनेर (करवीर) के वृक्ष में भगवान गणेश रहा करते हैं। सूर्य की पूजा के लिए फूलों में कनेर का फूल ही श्रेष्ठ है।'[6]

श्राद्ध कर्म हिन्दू धार्मिक परम्परा का एक अनिवार्य कर्मकाण्ड है। श्राद्ध कर्म हेतु विभिन्न पौधों के पत्तों का प्रयोग किया जाता है। स्कंद पुराण के अनुसार पलाश के पत्ते में श्राद्ध करने से ब्रह्मतेज की वृद्धि होती है। पलाश ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न हुआ है अतः पलाश के पत्ते में भोजन करने वाला विष्णुलोक में जाता है। पीपल के पत्ते में श्राद्ध भोजन करने वाला राजाओं को मान्य होता है। पाकड़ के पत्ते में श्राद्ध भोज करने से सब भूतों पर प्रभुत्व प्राप्त होता है। वट के पत्ते में भोजन से पुष्टि, प्रजा वृद्धि, प्रज्ञा, धृति, स्मृति की प्राप्ति होती है। गंभारी के पत्ते में श्राद्ध भोज राक्षसों का नाशक और यशोदायक होता है। महुए के पत्ते में भोजन करने से उत्तम सौभाग्य की प्राप्ति, अर्जुन के पत्ते में श्राद्ध करने से सब अभीष्ट फलों की प्राप्ति, मदार के पत्ते में श्राद्ध करने से उत्तम कांति और प्रकाश की प्राप्ति होती है। बांस के पात्र में श्राद्ध करने वाले पुरुष के खेत बगीचे और पोखरे में मेघ सदैव पानी बरसाते हैं।

---

1 काव्य मे पादप पुष्प, पृ० 245।

2 भावप्रकाश, पृ० 132।

3 Introduction Songs of the forest, p 37

4 काव्य मे पादप पुष्प, पृ० 249।

5 वही, पृ० 250।

6 स्कद पुराण, पृ० 962।

पलाश, अर्जुन, वट, पीपर, पाकड़, विकंकत (कटाय), गूलर, बिल्व और चंदन ये यज्ञ संबंधी वृक्ष माने गये हैं। सरल, देवदार, साखू, खैर ये समिधा के लिए प्रशस्त हैं। श्लेष्मातक, नक्तमाल्य, कैथ, सेमल, नीबू और बहेड़ा ये वृक्ष श्राद्ध कर्म में निन्दित वृक्ष कहे गये हैं।[1]

चमेली, बेला और श्वेत जूही आदि फूलों का श्राद्ध में सदा उपयोग करना चाहिये, ऐसी स्कंदपुराण की मान्यता है। जल से पैदा होने वाले सभी तरह के फूल और चंपा भी विहित है। काला उड़द, तिल, जौ, अगहनी चावल, महायव, ब्रीहि यव, काले तथा सफेद तिल श्राद्धकर्म में सदा ग्राह्य हैं। बेल, आँवला, मुनक्का, कटहल, आमड़ा, अनार, केला, सामयिक साग, मूँग आदि वस्तुयें श्राद्धकर्म में उत्तम तथा मसूर, सौंफ, कुंसुंभ के फूल, लहसुन, प्याज, गाजर, पिंडमूल, मोरट व मूली ये श्राद्धकर्म में वर्जित कहे गये हैं। इनके संपर्क से श्राद्ध व्यर्थ हो जाता है और दाना नर्क में पड़ता है, कमल, उत्पल, सुगंधित और श्वेत रंग के पुष्प श्राद्ध में श्रेष्ठ माने गये हैं।[2]

पेड़-पौधों की उत्पत्ति देवताओं के अंगों से हुई है। इसीलिए पेड़-पौधे प्राय: अपने सर्जक देवता के साथ जोड़े गये हैं या प्रतीक रूप में संबंधित देवता का प्रतिनिधित्व करते हैं। वामन पुराण के अनुसार आश्विन मास में जब विष्णु की नाभि से कमल निकला, तब अन्य देवताओं से भी ये वस्तुयें उत्पन्न हुई। कामदेव के करतल के अग्रभाग से सुंदर कदम्ब वृक्ष उत्पन्न हुआ। यक्षों के राजा मणिभद्र से वट वृक्ष उत्पन्न हुआ, अत: उन्हें उनके प्रति विशेष प्रेम है। शंकर के हृद्य पर सुंदर धतूर वृक्ष उत्पन्न हुआ, अत: यह शिव को सदा प्यारा है। ब्रह्मा के शरीर के बीच से मरकत मणि के समान खैर वृक्ष की उत्पत्ति हुई और विश्वकर्मा के शरीर से सुंदर कटैया वृक्ष उत्पन्न हुआ। पार्वती के कर तल से कुंदलता उत्पन्न हुई और गणपति के कुंभ देश से सेंदुवार वृक्ष उत्पन्न हुआ। यमराज की दाहिनी बगल से पलाश तथा बायीं बगल से गूलर वृक्ष उत्पन्न हुआ। रुद्र से उद्विग्न करने वाले वृष (औषधि विशेष) की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार स्कंद से बंधुजीव, सूर्य से पीपल, दुर्गा से शमी और लक्ष्मी के हाथ से बिल्व वृक्ष उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार शेषनाग से सरपत (मूँज), वासुकि नाग की पुच्छ और पीठ पर श्वेत और कृष्ण दूर्वा उत्पन्न हुई। साध्यों के हृद्य में हरिचंदन वृक्ष उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उत्पन्न होने से उन सभी वृक्षों में उन-उन देवताओं का प्रेम होता है।[3]

वामन पुराण में ही फूल और फल वाले पौधों की उत्पत्ति का प्रतीकात्मक वर्णन प्राप्त होता है। कहा गया है कि जब भगवान शिव ने कामदेव को सिर से चरण तक क्रोध भरी दृष्टि से देखा तो कामदेव पैर से लेकर कटिपर्यन्त दग्ध हो गया। अपने चरणों को जलते हुए देखकर पुष्पायुध काम ने अपने श्रेष्ठ धनुष को दूर फेंक दिया इससे उसके पाँच टुकड़े हो गये। उस धनुष का जो चमचमाता हुआ सुवर्णयुक्त मुठबंध था वह सुगंधपूर्ण चंपक वृक्ष हो गया। उस धनुष का जो हीरा जड़ा हुआ

---

1 संक्षिप्त स्कंदपुराण, पृ० 1010।

2 वही, पृ० 1013।

3 वामन पुराण 17 1-10।

सुंदर कृतिवाला नाहस्थान था वह केसरवन में वकुल (मौलसिरी) नामक वृक्ष बना। इंद्रनील से सुशोभित उसकी सुंदर कोटि शृंगों से विभूषित सुंदर पाटल (गुलाब) के रूप में परिणत हो गयी धनुष के नाह के ऊपर मुष्टि में स्थित चंद्रकांतमणि की प्रभा से युक्त स्थान चंद्रकिरण के समान उज्ज्वल पाँच गुल्म वाली जाती (चमेली) पुष्प बन गया। मुष्टि के ऊपर और दोनों कोटियों के नीचे वाले विद्रूम मणि से विभूषित स्थान से अनेक पुटों वाली मल्लिका (मालती) हो गयी। देव के द्वारा जाती के साथ अन्य सुंदर तथा सुगंधित पुष्पों की सृष्टि हुई। उर्ध्व शरीर के दग्ध होने के समय कामदेव ने अपने बाणों को भी पृथ्वी पर फेंका जिससे हजारों प्रकार के फलयुक्त वृक्ष उत्पन्न हो गये। शिव की कृपा से श्रेष्ठ देवताओं द्वारा अनेक प्रकार के सुगंधित एवं स्वादिष्ट आम्र आदि फल उत्पन्न हुये।[1]

स्कंद पुराण में देवताओं के पेड़-पौधों के रूप में परिणित होने संबंधी एक आख्यान प्राप्त होता है। जो इस प्रकार है—एक दिन भगवान शंकर पार्वती देवी के साथ वन में विहार कर रहे थे। पुष्पों से लदे हुये वृक्ष और पुष्पित लतायें पार्वती के मन को प्रमुदित कर रही थीं। मंद-सुगंध वायु बह रही थी। प्राकृतिक सुषमा देखकर भगवान शंकर मन ही मन विहँस रहे थे। इतने में समस्त देवता उनके दर्शनार्थ वहाँ आ पहुँचे। पार्वती को इनका आना अप्रिय लगा। उन्होंने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि तुम सब देवता वृक्ष बन जाओ। कुछ ही क्षणों में देवता अपने-अपने रूप को त्याग कर वृक्षों में परिणित हो गये। पीपल के रूप में विष्णु, बरगद के रूप में शंकर और पलाश के रूप में ब्रह्मा स्थिर हो गये।

एवं सा पार्वती देवाञ्छ शाप क्रुद्ध मानसाः तस्माद् वृक्षत्वमातन्नाः सर्वे देवगणाः किल...अश्वत्थरूपो भगवान्विष्णुरेव न संशयः रुद्र रूपी वटस्तद्वत्पलाशो ब्रह्मरूप धृक I...[2]

उपर्युक्त कथानकों के विश्लेषण से पेड़-पौधों संबंधी कुछ तथ्य स्पष्टतया उद्‌भासित होते हैं जिनकी वर्तमान वैज्ञानिक शोधों से भी पुष्टि हो चुकी है। पहला यह कि सभी वनस्पतियों के मूल में एक आदि वनस्पति रही होगी जिससे अन्य प्राथमिक वनस्पतियों का विकास हुआ और फिर जटिल वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई। दूसरा यह कि वनस्पतियों का विकास क्रमशः हुआ। ऐसा नहीं है कि पृथ्वी पर सारी वनस्पतियाँ एक साथ उत्पन्न हो गयीं अपितु इनका विकास विभिन्न कालखंडों में विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग तरीके से स्वतंत्र रूप में हुआ। तीसरा यह कि धार्मिक ग्रन्थों के उक्त उद्धरणों से 'जीव से ही जीव की उत्पत्ति होती है' जैसे वैज्ञानिक सिद्धांत की पुष्टि होती है। चौथा तथ्य यह कि धर्मग्रंथों में वनस्पतियों की उत्पत्ति को देवताओं से संबंधित करना भारतीय मनीषियों की बौद्धिक क्षमता की जीवन्त मिसाल है। प्राचीन भारत का जनमानस धर्म पर अटूट विश्वास रखता था। ऐसी स्थिति में किसी भी तथ्य को जन-जन में प्रचारित-प्रसारित एवं स्थापित करने हेतु धार्मिक उद्धरणों तथा आशयों का सहारा लेना ही पड़ता था। अतः इस समय के जनमानस को पेड़-पौधों से

---

1 वामन पुराण 6 97-105।

2 स्कदपुराण, कार्तिक महात्म्य, पृ० 160।

जोड़ने तथा उनके संरक्षण हेतु प्रोत्साहित करने का यह एक बेहतर तरीका था जिसे आमतौर पर अन्य तरीकों द्वारा संभव नहीं बनाया जा सकता था।

प्रगति पथ पर अग्रसर मानव अपनी बस्तियों की स्थापना और कृषि के प्रसार हेतु बड़े पैमाने पर पेड़-पौधों की कटाई कर रहा था। प्राचीन भारतीय मनीषियों को अपने प्रकृति (पर्यावरण) का पूरा ध्यान था। अतएव उन्होंने अपने ग्रंथों के माध्यम से वृक्षों की कटाई को हतोत्साहित किया। समय के साथ उनके द्वारा लिखे गये शब्द लोक विश्वास में बदल गए। इस तरह के कुछ लोक विश्वास इस प्रकार हैं—

पृथ्वी के सच्चे पुत्र वृक्ष ही हैं, इसलिए वृक्षों की पूजा करने से पृथ्वी माता प्रसन्न होती हैं। आदिवासियों का विश्वास है कि वृक्ष पर फटे-पुराने कपड़ों के लटकाने से पुत्र की प्राप्ति होती है। विशाल वृक्ष के नीचे खड़े होकर यदि कोई रोगी रोग-निवृत्ति के लिए प्रार्थना करता है तो रोग नष्ट हो जाता है। आदिवासी लोग वृक्षों की पूजा करके अनेक रोगों से मुक्ति पाते हैं। कष्ट देने पर वृक्ष शाप देते हैं। कुपित वृक्ष काँपने लगते हैं। गंधर्व वृक्षों के अधिष्ठाता हैं। कल्प वृक्ष समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति करता है। नदी के किनारे खड़े हुये वृक्षों पर जलदेवता का निवास होता है।[1] मत्स्य पुराण में वृक्ष लगाने की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा गया है—'जल रहित प्रदेश में जो बुद्धिमान पुरुष एक कुँआ बनवाता है वह कुँयें के जल के एक-एक बूँद के बराबर वर्षों तक स्वर्ग में निवास करता है। इसी प्रकार 10 कुँयें के समान एक बावली, दस बावली के सदृश एक सरोवर, दस सरोवर के समान एक पुत्र और दस पुत्र के समान एक वृक्ष माना गया है।

एवं निरुदके देशे यः कूपं कारयेद् बुधः। बिन्दौ बिन्दौ च तोयस्य वसते संवत्सरं दिवि॥
दशकूप समा वापी दशवापी समो ह्रदः। दश ह्रद समः पुत्रो दश पुत्र समो द्रुमः।।[2]

महाभारत में भी यह बताया गया है कि पेड़-पौधे जीव ही हैं और उन्हें काटने से भी हिंसा होती है।[3] इसी ग्रंथ में यह कहा गया है कि जिस हरे भरे वृक्ष की शीतल छाया का आश्रय लेकर रहा जाय उसके किसी एक पत्ते से भी द्रोह नहीं करना चाहिये। अपितु उसके पहले के उपकारों को सदा याद रखकर उसकी रक्षा करनी चाहिये।

यस्य चा र्द्रस्य वृक्षस्य शीतच्छाया समाश्रयेत। न तस्य पर्ण दुह्येत पूर्ववृत्त मनुस्मरन्।।[4]

प्राचीन काल में राजा नृग ने अपने राज्य में फल देने वाले वृक्ष और फूल देने वाली लताओं का सघन आरोपण कराया था।[5]कुरुक्षेत्र के सात वनों-काम्यक वन, अदिति वन, व्यास वन, फलकी वन,

1 काव्य मे पादप पुष्प, पृ० 243-248।

2 मत्स्य पुराण, 154 511-512।

3 महाभारत, वनपर्व, 208 15-16।

4 वही, विराट पर्व, 16 20।

5 रामायण वाल्मीकि, उत्तरकांड 54 10-12।

सूर्य वन, मधु वन तथा शीत वन के नाम सभी पापों को नष्ट करने वाले एवं पवित्र हैं।[1] बेल, दाडिम (अनार), केसर (मौलसिरी), कटहल, नारियल ये वृक्ष सर्वत्र शुभ होते हैं। नीबू, आम, केला, शृंगारहार, नीम, अशोक, शिरीष तथा मल्लिका ये वृक्ष भी घर के समीप शुभ होते हैं।[2] नवीन गृह निर्मित करते समय वृक्ष-विचार अवश्य करना चाहिये। उत्तर में पाकड़, पूर्व में बरगद, दक्षिण में गूलर तथा पश्चिम दिशा में पीपल वृक्ष शुभ होता है।[3] वृहत्सहिता में चारो वर्णो के लिए शुभदायक अलग-अलग वृक्षों का उल्लेख किया गया है। ब्राह्मणों के लिए देवदार, चंदन, शमी और महुआ, क्षत्रियों के लिए नीम, पीपल, खैर, बेल वैश्यों के लिए जीवक, खैर, सिधुक व स्पंदन तथा शूद्रों के लिए तेंदू, नागकेसर, सर्ज, अर्जुन और साल वृक्ष शुभदायक माने गये हैं।[4] इस तरह समाज के सभी वर्गो को प्रत्येक वृक्ष से जोड़कर संबंधित वृक्ष के रोपण एवं संरक्षण का महत्वपूर्ण दायित्व दिया गया।

जीवन में किसी न किसी रूप में वृक्षों की जरूरत पड़ती ही है। गृह निर्माण, ईधन, धार्मिक एवं मांगलिक कार्यो, सजावट, अंतिम संस्कार आदि कार्यो हेतु वृक्षों या पादपों का काटना जरूरी होता है। शास्त्र इससे अनभिज्ञ नहीं है अपितु वे इसके लिए विधिवत व्यवस्था देते हैं। काटे जाने वाले वृक्ष की पूजा-अर्चना कर उससे क्षमा याचना करने का आदेश हमारे ग्रंथों में दिया गया है। वृक्ष को स्पर्श करके काटने के पूर्व इस मन्त्र का वाचन करना चाहिये 'इस वृक्ष पर जितने जंतु हैं सबके लिये शुभ हो। आप सबों के लिए मैं नमस्कार करता हूँ। इस बलि को ग्रहण करके आप दूसरी जगह वास करें। हे प्रधान वृक्ष! आपके लिए शुभ हो। इंद्रध्वज के लिये राजा आपको पाने की इच्छा कर रहा है अत: मेरी पूजा ग्रहण करें।[5] ध्यातव्य है कि उक्त मन्त्र में वृक्ष देव को दूसरी जगह वास करने के लिये कहा गया है। प्रकारांतर से इसका आशय यह प्रतीत होता है कि काटने के पहले एक वृक्ष जरूर लगाया जाना चाहिये। इसी प्रकार कुछ विशेष उपयोगी वृक्षों को किसी भी स्थिति में न काटे जाने की हिदायत दी गयी है। ये हैं—पक्षियों के घोंसले वाले, देवालय के समीप स्थित, श्मशान में स्थित, दूध वाले, वक्ष, बहेड़ा, नीम, अरलू, आदि।[6]

वनों में रहने वाले आदिवासी वृक्षों को देवता की तरह मानते हैं। वे पीपल के पेड़ को काटना ब्रह्म हत्या के समान निन्दनीय मानते हैं। अपने घर हेतु जब वे पेड़ की शाख या पेड़ को काटते हैं, तब उसमें निवास करने वाले देवता से क्षमायाचना कर अपने को दोषमुक्त कर लेते हैं। कुछ प्रदेशों

1 महाभारत, वनपर्व 34 3-5।

2 वृहज्जोतिषसार—रूपनारायण शर्मा, पृ० 93-94।

3 वृहत्सहिता, 54-119।

4 वही, 59 5-6।

5 वही, 43 17-18।

6 वही, 53 120।

के आदिवासी पुत्र प्राप्ति हेतु वृक्ष-पूजन करते हैं।[1] इस कालखंड में वृक्षों के विनाशक एवं अपहर्त्ता को कठोर दंड दिया जाता था। फले हुए वृक्ष को काटना शासन की दृष्टि से विशेष अपराध था और नियमानुसार अपराधी न्यायालय द्वारा समुचित रूप से दंडित होता था। मनुस्मृति में कहा गया है कि 'वृक्ष आदि सब पौधों के फल, फूल, पत्ता तथा लकड़ी आदि के द्वारा जैसा-जैसा उपभोग होता हो, उनको (काटे आदि से) नष्ट करने वाले अपराधी को वैसा-वैसा ही दंड (उत्तम साहस दंड) देना चाहिये। ऐसा शास्त्र निर्णय है।'

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोग यथा-यथा। तथा-तथा दमः कार्यो हिसयामिति धारणा।।[2]

वराह पुराण में उल्लेख मिलता है कि शीतल छाया देने वाले खड़े हुये वृक्षों को जो काटता है उसे यमराज के दूत असिपत्र वन नामक नरक में दंड देते हैं। नगर के उपवन में खड़े वृक्षों को जो काटता है वह भयानक जृंभण नरक में जाता है।

उपर्युक्त संदर्भों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राचीन ग्रंथों के इन प्रणेताओं को वृक्षों के महत्व के बारे में भलीभाँति जानकारी थी। वृक्षों में देवत्व का आरोपण अपनी तरह की एक महत्वपूर्ण व्यवस्था थी जिसके माध्यम से न केवल वह वृक्ष ही धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बनता था अपितु इन वृक्षों के संरक्षण की बड़ी सुगम व्यवस्था भी हो जाती थी। एक तरह से पर्यावरण संरक्षण की यह मनोवैज्ञानिक प्रविधि थी जिसका उल्लंघन करने पर पारलौकिक दण्ड का भय था। जरूरत पड़ने पर वृक्षों को काटने का भी विधान था पर कदाचित प्रतिबंधों के साथ। उदाहरण के लिए एक विशिष्ट समय पर ही वृक्ष काटे जाय। उसके पूर्व वृक्षों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट किया जाय और कटे पेड़ के एवज में कई और पेड़ लगाये जाय। इससे प्राकृतिक असंतुलन का किंचित भी खतरा नहीं था।

आज अंधाधुंध विकास की अंधी दौड़ में वृक्षों का विनाश कर मनुष्य ने खुद ही तमाम तरह की समस्याओं को पैदा किया है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से किसी भी भूभाग पर सुचारु जीवन प्रक्रिया हेतु 33% वन क्षेत्र का होना आवश्यक है। वनों के विनाश से वर्षा का अभाव, रेगिस्तान का विस्तार, अनावृष्टि व अतिवृष्टि और अंततः मानव जाति का ह्रास प्रत्यक्ष है। राजपूताने के मरुस्थल एवं अफ्रीका का सहारा मरुस्थल विनाश करते हुए लगातार आगे बढ़ रहे हैं।

कलकत्ता यूनिवर्सिटी कालेज ऑफ एग्रीकल्चर के डॉ० टी० एम० दास के अनुसार एक वृक्ष अपने पच्चास साल के जीवनकाल में जितनी सेवा करता है उसकी कीमत लगभग पन्द्रह लाख रुपये से भी अधिक आती है। एक वृक्ष पचास साल की अवधि में ढाई लाख रुपये की आक्सीजन देता है। भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में ढाई लाख रुपये के खाद जितनी सहायता करता है। प्रदूषण नियंत्रण के रूप में वायु प्रदूषक अवयवों की मुफ्त सफाई पाँच लाख रुपये के बराबर करता है। आर्द्रता

---

1 Aftermath A supplement to the Golden Bough—Sir James G Frazer, p 126

2 मनुस्मृति—संपा०—प० गोपालशास्त्री नेने, वाराणसी, सं० 2039, 8 285।

रोकने, वर्षा करने तथा खाद्य प्रोटीनों की कीमत पाँच लाख रुपये के बराबर आती है। इस तरह इतने कीमती वृक्षों को मात्र कुछ हजार रुपये के जलावन और फर्नीचर आदि कामों हेतु नष्ट कर दिया जाता है। वनस्पतिशास्त्री और पर्यावरणविद अब एक स्वर से यह स्वीकार कर रहे हैं कि वृक्ष संपदा पर मानव जाति का अस्तित्व टिका हुआ है। प्रकृति के इस श्रेष्ठ प्रहरी के न रहने पर जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। मौसम को सुव्यस्थित रखने में वनों की भूमिका स्वयंसिद्ध है। वृक्षों के विनाश से असंतुलित मौसम का मानव के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। पशुओं की श्रम शक्ति और दूध देने की क्षमता घट जाती है। दुर्बल और रोगी मनुष्य जो इस असंतुलन को बर्दाश्त नहीं कर पाते उनके जीवन के लिए संकट खड़ा हो जाता है।[1]

पर्यावरण के संतुलन का दायित्व जन-जन का है। बिना जागरुकता के इस दायित्व का बोध होना संभव नहीं है। अभी भी धार्मिक आस्था वाले अपने देश में वृक्षों के महत्व से अवगत कराने में प्राचीन साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इस साहित्य से विमुख जनता को इससे अवगत कराया जाय जिससे वे वृक्षों के धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत से समग्र रूप से परिचित हो सकें। इस तरह एक हरे भरे विश्व की कल्पना को साकार करने के सपने को हम यथार्थ रूप में परिणित कर सकते हैं।

●

---

1 युग निर्माण योजना, अक्टूबर, 1999 पृ० 8-9।

अध्याय-5

ज्योतिष परंपरा में पेड़ और पौधे

वेदों के क्लिष्ट विषय और अर्थ को समझने के लिये वेदांग की रचना की गयी। इनकी संख्या छः थी—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष। वेदांगों में व्याकरण को मुख, ज्योतिष को नेत्र, निरुक्त को कान, कल्प को हाथ, शिक्षा को नासिका और छंद को पैर कहा गया है। तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक जीवन की वैज्ञानिक गतिविधि ज्योतिष साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया। भास्कराचार्य के शब्दों में कहें तो 'वेदपुरुष का नेत्ररूप होने के कारण ज्योतिष शास्त्र सब अंगों में उत्तम गिना जाता है क्योंकि अन्य सब अंगों से समन्वित प्राणी नेत्ररहित होने पर कुछ नहीं कर सकता।'

ज्योतिष की व्युत्पत्ति 'ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रं' से मानी जाती है। स्पष्ट शब्दों में कहें तो सूर्य आदि ग्रह-काल का बोध कराने वाले शास्त्र को ज्योतिष-शास्त्र कहा जाता है। वस्तुतः ज्योतिष विज्ञान वेद कालीन महर्षियों की अलौकिक प्रतिभा की देन है। भारतीय विधाओं में ज्योतिष का स्थान महत्वपूर्ण है। मनुष्य की संरचना और उसकी प्रकृति का इससे गहरा संबंध है। इसके अंतर्गत पिण्ड और ब्रह्माण्ड, व्यष्टि और समष्टि के संबंधों का अध्ययन समग्र रूप से किया जाता है।

ग्रह, नक्षत्र, तारे, राशियाँ, मंदाकिनियाँ, निहारिकायें एवं मनुष्य, प्राणी, वृक्ष, चट्टानें आदि विश्वब्रह्माण्डीय घटक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक-दूसरे को प्रभावित और आकर्षित करते हैं। इन ग्रह-नक्षत्रों का मानव-जीवन पर सम्मिलित प्रभाव पड़ता है। वे कभी कष्ट दूर करते हैं तो कभी कष्ट भी देते हैं। ये तत्व मनुष्य की सूक्ष्म संरचना एवं मनःसंस्थानों पर कार्य करते हैं और उनकी भावनाओं तथा मानसिक स्थितियों को अधिक प्रभावित करते हैं। ज्योतिष के अध्ययन से मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में गहरी अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है।[1]

आमतौर पर भारत को ज्योतिष की जन्मस्थली के रूप में स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद संहिता में प्रयुक्त 'चक्र' शब्द को राशिचक्र का द्योतक माना गया है। एक अन्य मंत्र 'द्वादशारं नहि

1 अखण्ड ज्योति, मथुरा, जून, 1998, पृ० 29।

तज्जराय'[1] में द्वादशारं शब्द को 12 राशियों का बोधक बताया जाता है। ऋग्वेद के अन्य स्थलों और शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रंथों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व भारतीय मनीषियों ने खगोल और ज्योतिष शास्त्र का मंथन किया था। वे आकाश में चमकते हुये नक्षत्रपुंज, शशिपुंज, देवपुंज, आकाशगंगा निहारिका आदि के नाम-रूप-रंग, आकृति आदि से पूरी तरह परिचित थे।

नारद संहिता जैसे ग्रंथों में अट्ठारह ज्योतिर्विदों के उल्लेख के साथ अनेक विवरण प्राप्त होते हैं। कश्यप के मत से भी ज्योतिषशास्त्र के सूर्य आदि अट्ठारह महर्षि प्रणेता हैं। बाद के समय में विशुद्ध ज्योतिष पर आधारित कई ग्रंथों की रचना की गयी। गार्गी संहिता और वृहत्संहिता जैसे ज्योतिष ग्रंथों से सामाजिक जीवन की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। ग्रह-नक्षत्र एवं पेड़ पौधों का उल्लेख पौराणिक, ज्योतिष, आयुर्वेदिक, तांत्रिक एवं अन्य ग्रंथों में मिलता है। पौराणिक ग्रंथों में नारद पुराण, भविष्य पुराण, ज्योतिष ग्रंथ नारद-संहिता एवं वृहत्संहिता, आयुर्वेदिक ग्रंथ-राजनिघंटु, वृहत-सुश्रुत और नारायणी संहिता, तांत्रिक ग्रन्थ शारदा तिलक, मन्त्र-महार्णव, श्री विद्यार्णवं तन्त्र तथा अन्य ग्रन्थों में 'वनस्पति-अध्यात्म', 'नक्षत्र-वृक्ष' आदि में ज्योतिष एवं पेड़-पौधों के संबंधों पर महत्वपूर्ण जानकारी उद्घाटित की गयी है।

भारतीय ज्योतिष के अंतर्गत स्कंध त्रय-होरा, सिद्धांत और संहिता अथवा स्कंध पंच-होरा, सिद्धांत, संहिता, प्रश्न और शकुन ये अंग माने गये हैं। यदि पंचस्कंधात्मक परिभाषा का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय तो आज का मनोविज्ञान, जीव विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, रसायन-विज्ञान चिकित्सा-शास्त्र आदि भी इसी में अंतर्भूत हो जाते हैं। सुदूर प्राचीन काल में केवल ज्योति पदार्थो-ग्रह-नक्षत्र, तारों आदि के स्वरूप विज्ञान को ही ज्योतिष कहा जाता था। वेदों में कई जगह नक्षत्र, सूर्य, चंद्रमा के स्तुतिपरक मन्त्र आये हैं।

हमारे अध्ययन क्षेत्र की दृष्टि से सिद्धांत ही महत्वपूर्ण है। सिद्धांत के अंतर्गत आदिकाल से लेकर प्रलय के अंत तक के काल की गणना सौर, सावन, चाँद, नक्षत्र आदि मानों का भेद, ग्रहों के संचार का ज्ञान प्रकार, दो प्रकार (व्यक्त, अव्यक्त) का गणित, उत्तर सहित प्रश्न, पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रहों की स्थिति और यन्त्र आदि का वर्णन आता है।

प्रारंभिक काल में ज्योतिष विज्ञान अध्यात्म विज्ञान की ही एक शाखा थी। इसे एक पवित्र विद्या माना जाता था जिसका स्वरूप स्पष्टतः धर्मविज्ञान पर आधारित था। अपने इसी रूप में इसने चाल्डियन एवं मिस्री धर्मो तथा प्राचीन भारत, चीन एवं पश्चिमी यूरोपीय देशों में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।

ब्राह्मणों और आरण्यकों के समय में नक्षत्रों की आकृति, स्वरूप, गुण एवं प्रभाव का परिज्ञान प्राप्त करना ज्योतिष माना जाने लगा। आदिकाल में नक्षत्रों के शुभ-अशुभ, फलानुसार कार्यो का

---

1 ऋग्वेद 1 164 11।

विवेचन तथा ऋतु-अयन, दिनमान लग्न आदि के शुभाशुभ अनुसार विधायक कार्यो को करने का ज्ञान प्राप्त करना भी ज्योति ष के अंतर्गत परिगणित हो गया। अभी तक ज्योतिष के गणित और फलित ये दो भेद स्पष्ट नहीं हुये थे। समय के साथ विकसित होती हुई राशि और ग्रहो के स्वरूप रंग-दिशा तत्व, धातु आदि के विवेचन भी इसके अंतर्गत आ गये।

सन पाँच सौ ई० के आस-पास ज्योतिष के गणित सिद्धांत और फलित भेद स्पष्ट दिखाई पड़ने लगते हैं। ग्रहों की गति, स्थिति, अयनांश, पात आदि गणित ज्योतिष के अंतर्गत तथा शुभानुशुभ समय निर्णय, विधायक, यज्ञ-यागादि कार्यो को करने के लिये समय और स्थानों का निर्धारण फलित ज्योतिष का विषय माना जाता था। पूर्व मध्यकाल के प्रारंभ में ज्योतिष का अर्थ स्कंधत्रय-होरा, सिद्धांत और संहिता के रूप में ग्रहण किया गया। आगे चलकर यह पंचरूपात्मक होरा, गणित या सिद्धांत, संहिता, प्रश्न और शकुन रूप में परिवर्तित हो गया।

आमतौर पर यह धारणा है कि ज्योतिष शास्त्र के आविष्कर्त्ता भारतीय महर्षि रहे हैं जो अलौकिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों से संपन्न थे। योगविज्ञान जो भारतीय आचार्यो की देन माना जाता है इसका पृष्ठाधार है। हमारे ऋषि-मुनियों ने योगाभ्यास के माध्यम से अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा से शरीर के भीतर ही सौरमंडल के दर्शन किये और अपना निरीक्षण कर आकाशीय सौरमंडल की व्यवस्था की। पृथ्वी इस सौरमंडल का एकमात्र 'जीवन युक्त ग्रह' है तथा पृथ्वी के जीवन का आधार हैं पेड़-पौधे एवं वनस्पतियां। भारतीय ऋषि पेड़-पौधों और अरण्यों में ही अपना आश्रम बनाकर चितन-मनन किया करते थे। ज्योतिष संबंधी चितन में भी स्वाभाविक रूप से पेड़-पौधों का पर्याप्त वर्णन आया है।

नक्षत्र एवं नक्षत्र-वाटिकाएं— प्राचीन भारतीय मान्यता में सूर्यमंडल के समस्त सदस्यों और उपसदस्यों को ग्रह कहा गया है, जिसमें सूर्य और चंद्रमा भी शामिल है। ग्रहों के धरती से करीब होने से इनकी स्थिति रोज बदलती रहती है। नक्षत्र धरती से अत्यंत दूर स्थित होते हैं अतः वे स्थान बदलते नहीं प्रतीत होते, अतः स्थिर अर्थात नक्षत्र कहे गये। भारतीय मनीषियों ने आसमान में चंद्रमा के यात्रा-पथ को सत्ताइस भागों में बाँटा तथा हर सत्ताइसवें भाग में पड़ने वाले तारामंडल के बीच कुछ विशिष्ट तारों की पहचान कर उन्हें नक्षत्र नाम दिया। इस प्रकार नवग्रहों तथा सत्ताइस नक्षत्रों की पहचान की गयी।

हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रत्येक ग्रह एवं नक्षत्र से संबंधित पौधों के बारे में जानकारी प्राप्त कर नवग्रह एवं नक्षत्र एवं वाटिकायें स्थापित की थीं। भारतीय जनमानस मे आमतौर पर यह धारणा रही है कि ग्रह-नक्षत्रों के कुप्रभावों को वृक्ष एवं वनस्पतियाँ समाप्त या कम कर सकती हैं तथा जीवन को बाधा-रहित बना सकती हैं।

नक्षत्रों से संबंधित वनस्पतियाँ— हर नक्षत्र के अपने-अपने विशिष्ट पेड़-पौधे होते हैं। नक्षत्रों से संबंधित पौधों का वर्णन संबंधित देवता और राशि के साथ इस प्रकार मिलता है। अश्विनी नक्षत्र

जिसके देवता अश्विनी कुमार हैं तथा जिसकी राशि मेष है, का पौधा कुचिला (कारकरा) है। भरणी नक्षत्र के देवता यम और राशि मेष है। इससे संबंधित पौधा आँवला (धात्री) है। कृतिका नक्षत्र के देवता हैं—अग्नि, राशि है—मेष/वृष, जबकि पौधा है उदुम्बर। रोहिणी नक्षत्र जिसके देवता ब्रह्मा और राशि वृष है, से संबंधित वृक्ष है—जामुन (जम्बू)। मृगशिरा नक्षत्र के देवता सोम (वनस्पतियों के देवता) हैं, राशि वृष/मिथुन है और इससे संबंधित पौधा है खैर (खदिर)। आर्द्रा नक्षत्र के देवता रुद्र, राशि—मिथुन तथा संबंधित पौधा है शीशम (कृष्ण)। पुनर्वसु नक्षत्र के देवता अदिति, राशि—मिथुन/कर्क और पौधा है—बांस (वंश)। वृहस्पति देवता है पुष्य नक्षत्र के, संबंधित राशि है कर्क और पौधा है—पीपल (अश्वत्थ)। आश्लेषा नक्षत्र के देवता सूर्य, राशि—कर्क और पौधा नागकेशर (जाग्र) है। मघा नक्षत्र के देवता 'पितर', राशि—सिंह और संबंधित पेड़ है—बरगद (वट)। पूर्वी फाल्गुनी नक्षत्र के देवता भग, राशि—सिंह और पौधा पलाश (ढ़ाक) है। उत्तरी फाल्गुनी नक्षत्र के देवता हैं—अर्यमा, राशि है। सिह/कन्या तथा पौधा है—पाकड़ (प्लक्ष)। हस्त से संबंधित देवता—सविता, राशि—कन्या तथा पौधा रीठा (अरविट) है। चित्रा नक्षत्र के देवता हैं—त्वष्ट्रा, राशि हैं—कन्या/तुला और संबंधित पेड़ है—बेल (बिल्व)। स्वाती नक्षत्र के देवता—वायु, राशि—तुला और वृक्ष अर्जुन है। विशाखा नक्षत्र के देवता—इंद्राग्नि, राशि—तुला/वृश्चिक और पौधा कटाई (विकंकत) है। अनुराधा नक्षत्र के देवता—मित्र, राशि-वृश्चिक और संबंधित पेड़—मौलश्री (बकुल) है। ज्येष्ठा नक्षत्र के देवता इन्द्र, राशि—वृश्चिक तथा पेड़ चीड़ (सरल) है। मूल नक्षत्र के देवता निर्ऋति, राशि—धनु और पौधा साल (सर्ग) है। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के देवता जल और राशि धनु है। इससे संबंधित पौधा जलवेतस (वंगुल) है। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र जिसके देवता हैं—विश्वदेव, राशि है—धनु/मकर, का पौधा है कटहल (पनस)। श्रवण नक्षत्र के देवता—विष्णु, राशि—मकर और पौधा—मदार (अर्क) है। धनिष्ठा नक्षत्र के देवता—वसु, राशि—मकर/कुंभ और पौधा छ्योंकर (शमी) है। शतभिषा नक्षत्र के देवता—वरुण, राशि—कुंभ और पौधा कदंब है। पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र के देवता अजैकपद, राशि—कुंभ/मीन और पौधा—आम्र (आम) है। उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र के देवता अर्हिबुधन्य, राशि—मीन और पौधा—नीम (निम्ब) है। रेवती नक्षत्र के देवता—पूषा, राशि—मीन तथा पौधा महुआ (मधूक) बताया गया है।[1] ध्यान देने योग्य बात है कि नक्षत्रों से संबंधित जिन वनस्पतियों एवं पेड़-पौधों का वर्णन मिलता है वे सभी हमारे आस-पास कहीं न कहीं मिल जाते हैं। उक्त सभी पौधो का धार्मिक महत्व तो है ही इन्हें नक्षत्रों के साथ जोड़कर इनके संरक्षण हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किया गया है। उक्त पेड़-पौधों का पर्यावरणीय महत्व भी ध्यातव्य है। ये पर्यावरणीय घटको को सतुलित बनाये रख पृथ्वी की 'जीवन-गृह' के रूप में मान्यता को अनवरत बनाये हुये हैं। भारतीय जनमानस में ऐसी मान्यता है कि मूल, ज्येष्ठा, अश्लेषा, मघा और रेवती नक्षत्र में पैदा होने वाले शिशु अपने पिता के लिए अनिष्टकारी होते हैं। इस अनिष्ट के शमन हेतु शिशु के जन्म के

---

1 कादंबिनी, नई दिल्ली, नवबर 1999, पृ० 209-211।

सत्ताइसवें दिन सत्तइसा (गंडमूल) नामक संस्कार संपन्न होता है जिसमें पिता पहली बार शिशु का मुख देखता है। इस सस्कार में अनिष्ट ग्रह-नक्षत्रों की शांति के लिए उक्त सत्ताइस पेड़-पौधों की लकड़ियो का हवन किया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इसके पश्चात पितृघाती अनिष्ट समाप्त हो जाते हैं।

नवग्रह से संबंधित वनस्पतियाँ—ज्योतिषशास्त्र के अनुसार अपनी जन्मराशि से दुष्ट स्थान में स्थिति ग्रहों की प्रसन्नता तथा शांति के लिए ग्रह समिधाओं से हवन करना चाहिये। ये समिधायें प्रादेशमात्र लंबी होनी चाहिये। संबंधित ग्रह की शांति के लिये अलग-अलग वनस्पतियों की समिधायें प्रयुक्त किये जाने का विधान बतलाया गया है। सूर्य (रवि) ग्रह के लिए अर्क (मदार) की, चंद्रमा (सोम) ग्रह के लिए पलाश की, मंगल ग्रह के लिए खदिर (खैर) की, बुध के लिए अपामार्ग (लटजीरा) की, वृहस्पति (गुरु) के लिए पीपल की, शुक्र के लिए गूलर की, शनि के लिए शमी की, राहु के लिए दूर्वा (दूब) की और केतु के लिए कुश की समिधा ही हवन के लिए प्रयोग करना चाहिये।[1]

भविष्य पुराण के अनुसार जैसे शरीर में कवच पहन लेने से बाण नहीं लगते वैसे ही ग्रहों की शांति करने से किसी प्रकार का उपघात नहीं होता। यश, धन तथा संतान की प्राप्ति के लिये, अनावृष्टि होने पर, आरोग्य प्राप्ति के लिये तथा सभी उपद्रवों की शांति के लिये ग्रहों की सदा पूजा करनी चाहिये। संतान से रहित, दुष्ट संतान वाली, मृतवत्सा, मात्र कन्या संतान वाली स्त्री, संतान दोष की निवृत्ति के लिये, जिसका राज्य नष्ट हो गया हो वह राज्य के लिये, रोगी पुरुष को रोग की शांति के लिये अवश्य ही ग्रहों की शांति करनी चाहिये।[2]

दुष्ट ग्रहों की शांति में तिल की महत्वपूर्ण भूमिका है। तिल को देवताओं के लिये स्वाहा रूप अमृत, पितरों के लिए स्वधा रूप अमृत तथा ब्राह्मणों के लिए आश्रयस्वरूप बताया गया है। चूँकि ये तिल ऋषि कश्यप के अंग से उत्पन्न हुये हैं इसलिये देवता एवं पितरों को अति प्रिय हैं। स्नान, दान, हवन, तर्पण और भोजन में ये तिल परम पवित्र माने गये हैं।

देवनाममृतं ह्नेते पितृणां हि स्वधामृतं।
शरणं ब्राह्मणानां च सदा ह्वेतान त्रिदुर्वुधाः॥
कश्यपस्यांगजा ह्वेते पवित्राश्च तथा हर।
स्नाने दाने तथा होमे तर्पणे ह्वशने पराः।[3]

---

1 सक्षिप्त भविष्य पुराणाक, पृ० 81।

2 भविष्य पुराण, ब्राह्म पर्व, 56 30-35।

3 भविष्य पुराण, ब्राह्म पर्व, 57.25-26।

जिस ग्रह का जो वर्ण (रंग) हो उसी रग के वस्त्र एवं पुष्प उन्हें समर्पित करना चाहिये। गुग्गुल का धूप सभी ग्रहों को अर्पित किया जा सकता है।[1]

पातक नाशन एवं शारीरिक कष्ट निवारण हेतु ग्रहों के अनुसार रत्नों को धारण करने का ज्योतिष शास्त्र मे प्रावधान मिलता है। ठीक उसी प्रकार ग्रहों एवं नक्षत्रों से संबंधित पौधों को उगाने से भी लोगों को मनोवांछित फल मिल सकता है। महर्षि चरक ने भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थो को प्राप्त करने हेतु आरोग्य रहने को आवश्यक बताया है।[2] यह स्वाभाविक भी है कि स्वस्थ शरीर और दीर्घ जीवन के लिये भोजन-शुद्धि, वायु, जल तथा प्रदूषण रहित पर्यावरण को आवश्यक माना जाय।

पेड़-पौधों के विविध ज्योतिषीय पहलू— ज्योतिष सामाजिक जीवन से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। ज्योतिष ग्रंथों में विविध कार्यो में वनस्पतियों के प्रयोग पर विस्तार से चर्चा की गयी है। उदाहरण के तौर पर प्रतिमा निर्माण हेतु किन वनस्पतियों का काष्ठ प्रयुक्त करना चाहिये। घर के चारों दिशाओं में कौन से पेड़ शुभ माने जाते हैं कौन अशुभ। वृक्ष किस प्रकार से भविष्य में आने वाले संकटों, विपत्तियों की पूर्व सूचना देते हैं? भूमिगत जल के ज्ञान में पेड़-पौधे किस तरह सहायक होते हैं? शय्या एवं आसन हेतु कौन से वृक्ष शुभदायी होते हैं? दाँत की सफाई हेतु किन वनस्पतियों का प्रयोग करना चाहिये, किसका नहीं? ध्यातव्य है कि हजारों वर्ष पूर्व लिखे गये उपर्युक्त विषय आज के वैज्ञानिक अनुसंधानों पर बिल्कुल खरे उतर रहे हैं। विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत पेड़-पौधों के प्रयोग पर ज्योतिषीय अर्थो में दिए गये वर्णन निम्नलिखित हैं—

प्रतिमा निर्माण हेतु उपयुक्त पेड़-पौधे— काष्ठ की प्रतिमा बनाने से संबंधित विवरण अनेक ज्योतिषीय ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। भविष्य पुराण में प्रतिमा निर्माण के सात प्रकारों में काष्ठ का भी वर्णन किया गया है। वृहत्संहिता नामक ग्रंथ में काष्ठ की प्रतिमा बनाने के महत्व को दर्शाते हुये कहा गया है कि लकड़ी और मिट्टी की प्रतिमा आयु, श्री बल और विजय देती है।

आयुः श्रीबल जयदा दारुमयी मृण्मयी तथा प्रतिमा...।[3]

सर्वप्रथम नक्षत्र तथा ग्रहों की अनुकूलता, शुभ मुहूर्त तथा शुभ शकुन देखकर वन में जाकर प्रतिमा हेतु उपयोगी वृक्ष का चयन करना चाहिये। वृक्षों के संबंध में कुछ निषेध भी प्राप्त होते हैं। यथा—श्मशान के मार्ग, देवालय, वल्मीक, उपवन, तपस्वियों के आश्रम में उत्पन्न, चैत्य (प्रधान) नदियों के संगम स्थान में उत्पन्न, घड़ों के जल से सिंचे हुये कुबड़े तथा अन्य वृक्षों के संयोग से पीड़ित, लताओं से पीड़ित, बिजली से भग्न, वायु और हाथी से भग्न, सूखे अग्नि से दग्ध और मधुमक्खियों के छत्ते वाले वृक्षों को त्याग देना चाहिये।

---

1 भविष्य पुराण, ब्राह्म पर्व, अ० 56-57।

2 कादबिनी, नई दिल्ली, नवम्बर 1999, पृ० 211।

3 वृहत्सहिता, सपा०-अच्युतानद झा, वाराणसी, 1977, 60 4।

पितृवनमार्ग सुरालयवल्मीकोद्यान तापसाश्रमजाः।
चैत्यसरित्संग संभवाश्च घटतोयसिक्ताश्च॥
कुब्जानुजात वल्ली निपीडिता वज्रमारुतोपहताः।
स्वपतितहस्ति निपीडित शुष्काग्नि प्लुष्टमधुनिलयाः॥[1]

भविष्य पुराण इस सूची में दूध वाले वृक्ष, कमजोर वृक्ष, चौराहे पर लगे हुये वृक्ष, पुत्रक वृक्ष—जिसको किसी बिना पुत्र वाले व्यक्ति ने पुत्र के रूप में लगाया हो अथवा बाल वृक्ष जिसमें बहुत से कोटर हों, अनेक पक्षी रहते हों, शस्त्र तथा अग्नि से भग्न, जिसका अग्र भाग सूख गया हो—आदि प्रकार के वृक्षों को शामिल करता है। वृहत्संहिता के अनुसार स्निग्ध पत्ते, फूल और फल वाले वृक्ष शुभ होते हैं।[2]

महुआ, देवदारु, वृक्षराज चंदन, बिल्व, खदिर, अंजन, निम्ब, श्रीपर्ण (अग्निमंथ), पनस (कटहल), सरल, अर्जुन और रक्तचंदन—ये वृक्ष प्रतिमा के लिये उत्तम हैं।[3] वृहत्संहिता में चारों वर्णो के लिये अलग-अलग ग्राह्य काष्ठों का विधान मिलता है।

सुरदारुचंदनशमी मधूकतरवः शुभाद्विजातीनाम्।
क्षत्रस्यारिष्टाश्वत्थ खदिरबिल्वा विवृद्धिकराः॥
वैश्यानां जीवक खदिर सिंधुकस्यंदनाश्च शुभफलदाः।
तिंदुक केसरसर्जार्जुनाम्रशालाश्च शूद्राणाम्॥[4]

ब्राह्मणों के लिए चंदन, शमी और महुआ, क्षत्रियों के लिए नीम, पीपल, खैर और बेल, वैश्यों के लिए जीवक, खैर, सिधुक तथा स्यंदन और शूद्रों के लिए तेंदू, नागकेशर, सर्ज, अर्जुन और साल शुभदायक वृक्ष हैं।

वृक्ष के प्रति क्षमा-याचना—प्रतिमा निर्माण हेतु वृक्षों को काटने के पूर्व उनसे क्षमा-याचना का विधान अनेक ग्रंथों में प्राप्त होता है। इस क्षमा-याचना के पीछे संभवतः यह मंतव्य रहा होगा कि बहुत जरूरत पड़ने पर ही वृक्ष को काटा जाय। वृक्षों के प्रति इस प्रकार की विनम्रता भारतीय संस्कृति की अपनी विशिष्ट पहचान है।

क्षमा-याचना की प्रक्रिया के अंतर्गत सर्वप्रथम अभिमत वृक्ष के पास जाकर उसकी पूजा करनी चाहिये। पवित्र स्थान, एकांत, केश-अंगार शून्य, पूर्व एवं उत्तर दिशा की ओर स्थित, लोगों को कष्ट न देने वाला, विस्तृत, सुंदर शाखाओं तथा पत्तो से समृद्ध, सीधा, व्रणशून्य तथा त्वचा वाला वृक्ष शुभ

---

1 वृहत्सहिता, सपा०- प० अच्युतानद झा, वाराणसी, 1977, 59 2-3।

2 वही, 59 4।

3 सक्षिप्त भविष्य पुराणाक, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1992, पृ० 135।

4 वृहत्सहिता, 59 5-6।

होता है। स्निग्ध पत्र समन्वित, पुष्पित तथा फलित वृक्षों का कार्तिक आदि आठ मासों में उत्तम मुहुर्त देखकर उपवास रहकर अधिवासन कर्म करना चाहिये। पूजा और आहुति के पश्चात वृक्ष को इस प्रार्थना के साथ नमस्कार करना चाहिये।

ॐ प्रजापते सत्य सदाय नित्य श्रेष्ठांतरात्मन सचराचरात्मन।
सान्ध्यिमस्मिन कुरु देव वृक्षे सूर्यावृतं मण्डलमाविशेस्त्वं नमः ।।[1]

अर्थात 'प्रजापति सत्यस्वरूप इस वृक्ष को नित्य नमस्कार है। श्रेष्ठांतरात्मन, सचराचरात्मनदेव! इस वृक्ष में आप सान्निध्य करे। सूर्यावृत्त मंडल इसमें प्रविष्ट हो। आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार वृक्ष की पूजा के उपरांत उसको सांत्वना देते हुए कहना चाहिये—'वृक्षराज संसार के कल्याण के लिये आप देवालय में चलें। देव आप वहाँ छेदन और ताप से रहित होकर स्थित रहेंगे। समय पर धूप आदि प्रदान कर पुष्पों द्वारा संसार आपकी पूजा करेगा।[2]

वृहत्संहिता में काटे जाने वाले वृक्ष के प्रति क्षमा-याचना इन शब्दों में वर्णित की गयी है।

अर्चार्थममुकस्य त्वं देवस्य परिकल्पितः। नमस्ते वृक्ष पूजेयं विधिवत सम्प्रगृह्यताम्।।
यानीह भूतानि वसंति तानि वलि गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम्।
अन्यत्र वासं परिकल्पयंतु क्षमंतु तान्यद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ।।[3]

अर्थात 'हे वृक्ष। अमुक देवता की पूजा के लिये कल्पित किए हुये आपको नमस्कार करता हूँ। विधिपूर्वक इस पूजा को ग्रहण करें तथा इस वृक्ष पर जो प्राणीगण निवास करते हैं वे सब विधिपूर्वक इस पूजा को ग्रहण कर कहीं अन्यत्र निवास स्थान कल्पित करें। आज वे सब क्षमा करें, मैं उनको नमस्कार करता हूँ।'

काटे हुए वृक्ष के विविध दिशाओं में गिरने से अलग-अलग शुभानुशुभ फल बताये गये हैं। उदाहरण के तौर पर यदि कटा हुआ वृक्ष पूरब, ईशान कोण या उत्तर दिशा में गिरे तो वृद्धि करने वाला होता है। अग्निकोण में वृक्ष के गिरने से अग्नि दाह, दक्षिण में गिरने से रोग, नैॠत्यकोण तथा पश्चिम में गिरने से रोग तथा वायव्य कोण में गिरने से घोड़े का नाश होता है।

पूर्वेण पूर्वोत्तरतोऽथवोदक्पतेद्यदाः वृद्धिकरस्तदा स्यात्।
आग्नेय कोणात्क्रमशोऽग्निदाह रुग्रोगरोगास्तुरगक्षयश्च ।।[4]

---

1 भविष्य पुराण, ब्राह्म पर्व 131 26।

2 सक्षिप्त भविष्य पुराणाक, गीताप्रेस गोरखपुर 199?, पृ० 136।

3 वृहत्संहिता, सपा०-अच्युतानद झा, वाराणसी 1977, 59.10-11।

4 वृहत्सहिता, 59 13।

वृक्ष से शाखायें सर्वथा अलग हो जायँ तथा गिर कर टूटे नहीं एवं शब्द भी नहीं हो तो उत्तम है। जिस वृक्ष के कटने से वह दो भाग हो जाय, जिस वृक्ष से मधुर द्रव, घी, तेल आदि निकले उसका परित्याग कर देना चाहिये। इन दोषों से रहित अच्छा काल देखकर काष्ठ का संग्रह करना चाहिये।[1]

प्रतिमा की स्थापना हेतु मंडप निर्माण में भी प्रशस्त वृक्ष के खंभों एवं मंडप सजाने के लिये प्रशस्त वृक्ष के पत्तों एवं पुष्पों का प्रावधान किया गया है। भविष्य पुराण के अनुसार वट, पीपल, गूलर, बेर, पलाश, शमी अथवा चंदन द्वारा पाँच-पॉच हाथ के खंभे लगाने चाहिये।[2] प्रतिमा की स्थापना के उपरांत पाकड़, पीपल, सिरस और वट के पत्तों के काढ़े से तथा मंगल संज्ञक जया, जयंती, जीवंती, जीवपुत्री, पुनर्नवा, विष्णुक्रांता और लक्ष्मणा सर्वोषधियों से तथा कुशाओं से प्रतिमा को स्नान कराना चाहिये।

प्लक्षाश्वत्थोदुम्बर शिरीष वट संभवै कषायजलैः।
मंगल्यसंज्ञिताभिः सर्वोषधिभिः कुशाद्याभिः।।[3]

वनस्पतियों की अधिप राशियाँ—ज्योतिष ग्रंथों में शुभानुशुभ फल जानने के लिये द्रव्यों के अधिप राशियों का वर्णन मिलता है। वृहत्संहिता में इस विषय पर पूरा एक अध्याय (अध्याय 41, द्रव्यनिश्चयाध्याय:) ही दिया गया है। मसूर, गेहूँ, जौ और स्थल (जल से रहित भूमि) में उत्पन्न औषधियों का स्वामी मेष राशि है।

वस्त्र, पुष्प, गेहूँ, शालिधान्य तथा जौ आदि का स्वामी वृष राशि है। धान्य, शारदीय लता, शालूक (कुमुद कंद) और कपास का स्वामी मिथुन है। कोदो, केला, दूब, सब फल, कंद (शकरकंद आदि), पत्र (सुगंध पत्र) चोच (नारियल) का स्वामी कर्क है, जबकि भूसी वाले धान्य, रस (मधुर आदि छह रस) तथा गुड़ का स्वामी सिंह है। अतसी (तासी), कलाय (उड़द), कुलथी, गेहूँ, मूँग और निष्पाव (शालि धान्य या शिम्बि धान्य) का स्वामी कन्या राशि है। मसूर, जौ, गेहूँ तथा सरसों का स्वामी तुला है। ईख, लता के फल आदि का स्वामी वृश्चिक तथा तिल, धान्य एवं मूलोत्पन्न धान्यों का स्वामी धनु है। वृक्ष, गुल्म (सामयिक वृक्ष), आदि (लता वल्ली), सैक्य (वल्ली आदि फल), ईख (गन्ना) का स्वामी मकर है। जल में उत्पन्न फल, फूल आदि का स्वामी कुंभ है जबकि विविध प्रकार के तैलीय वनस्पतियों का स्वामी मीन राशि है।[4]

मान्यता है कि जिस राशि से चतुर्थ, दशम, द्वितीय, एकादश, सप्तम, नवम् या पंचम में वृहस्पति तथा द्वितीय एकादश, दशम, पंचम, या अष्टम में बुध बैठा हो उस राशि के कथित द्रव्यों

---

1 सक्षिप्त भविष्यपुराणाक, गीताप्रेस, गोरखपुर 1992, पृ० 136।

2 वही, पृ० 137।

3 वृहत्सहिता, 60 8।

4 वही, 41.1-8।

(वनस्पतियों) की वृद्धि करता है। जिस राशि से षष्ठ या सप्तम में शुक्र हो उस राशि के कथित द्रव्यों की हानि और शेष स्थान (प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम, अष्टम, नवम, एकादश या द्वादश) में स्थित हो तो उनकी वृद्धि करता है तथा जिस राशि से पापग्रह (रवि, मंगल, एवं शनि), उपचय (तृतीय, षष्ठ या एकादश) में स्थित हो उसके द्रव्यों की वृद्धि और शेष स्थान प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम या द्वादश) में स्थित हो तो हानि करता है।[1]

उद्यान/प्रासाद की प्रतिष्ठा हेतु ज्योतिषीय विधान—उद्यान की प्रतिष्ठा हेतु ज्योतिष ग्रंथों में प्रारंभिक विधि-विधानों का वर्णन किया गया है। कलश स्थापन के बाद सभी दिशाओं में देवों का पूजन करना चाहिये। आहुति के बाद यूप का मार्जन कर उसे उद्यान के मध्य में गाड़ देना चाहिये। यूप के प्रांत भाग में सोम तथा वनस्पति के लिये ध्वजाओं को लगाने के बाद वृक्षों का कर्णबेध सस्कार करना चाहिये। रंजित सूत्रों से उद्यान के वृक्षों को आवेष्टित कर उन वृक्षों को जलादि प्राशन के पश्चात यह प्रार्थना करना चाहिये।

वृक्षाग्रात पतितस्यापि आरोहात पतितस्य च। मरणे वास्ति भंगे वा कर्त्ता पापैर्न लिप्यते।।[2]

अर्थात 'विधिपूर्वक उद्यान आदि में लगाये गये वृक्ष के ऊपर से यदि कोई गिर जाय, गिरकर मर जाय या अस्थि टूट जाय तो उस पाप का भागी वृक्ष लगाने वाला नहीं होगा।'

प्रासाद, उद्यान आदि के निर्माण के पहले भूमि परीक्षण की परंपरा अत्यंत प्राचीनकाल से ही रही है जिसका वर्णन समकालीन ग्रंथों में मिलता है। भविष्य पुराण के अनुसार बगीचे के लिए गृहीत भूमि को तीन दिनों तक जुतवा कर उसमें पाँच प्रकार के धान्य बोने चाहिये। दैवपक्ष तथा उद्यान के लिए सात प्रकार के धान्य बोने चाहिये। ये धान्य हैं—मूँग, उड़द, धान, तिल, सांवा, मसूर, मटर और चना। यदि ये बीज तीन, पाँच या सात रातों में अंकुरित हो जाते हैं तो उनके फल इस प्रकार जानना चाहिये—तीन रात वाली भूमि उत्तम, पाँच रात वाली भूमि मध्यम तथा सात रात वाली भूमि कनिष्ठ है।

भारतीय जनमानस में यह धारणा व्याप्त है कि बिना वास्तुदेवता के पूजन के प्रासाद, तड़ाग आदि का निर्माण करने वाले का आधा पुण्य यमराज नष्ट कर देते हैं। जहाँ स्तंभ की आवश्यकता हो वहाँ साल, खैर, पलास, केसर, बेल तथा बकुल इन वृक्षों से निर्मित यूप कलियुग में प्रशस्त माने गये हैं। नदी के किनारे, श्मशान तथा अपने घर से दक्षिण दिशा की ओर तुलसी के पौधे का रोपण नहीं करना चाहिये, अन्यथा यम-यातना भोगनी पड़ती है। विधि-विधानपूर्वक वृक्षों का रोपण करने से उसके पत्र, पुष्प तथा फल के रज-रेणुओं आदि का समागम उसके पितरों को प्रतिदिन तृप्त करता है।[3]

---

1 वृहत्सहिता, 41 9-10।

2 भविष्य पुराण, मध्यम पर्व 3 1 31।

3 वही, प्रथम भाग, अध्याय 10।

ऐसा प्रतीत होता है कि उद्यान निर्माण के पहले भूमि परीक्षण की ज्योतिषीय परम्परा का अपना प्रतीकात्मक अर्थ था जिसे भौतिक स्तर पर उपयोगितावाद के सन्दर्भ में भी जोड़ा जा सकता है। भूमि की जुताई होने से मिट्टी के बंद रंध्र खुल जाते हैं। नीचे की नमीयुक्त मिट्टी ऊपर की सूखी मिट्टी से मिलकर एक उपजाऊ वातावरण तैयार करती है। जुताई के बाद दलहन या तिलहन वर्ग के जिन पौधों को बोने का निर्देश इन ग्रंथों में मिलता है उसका आज की वैज्ञानिक दृष्टि से भी बहुत साम्य है। वस्तुतः ये फसलें भूमि में पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजनी तत्वों का संग्रहण करती हैं जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति काफी बढ़ जाती है। इसके पश्चात आरोपित किये गये वृक्ष बड़ी तेजी से और बड़ी मजबूती से वृद्धि करते हैं और अपेक्षाकृत अधिक घने होते हैं साथ ही पर्याप्त मात्रा में फल-फूल प्रदान करते हैं।

व्रत और उपवास— व्रत और उपवास भारतीय संस्कृति के एक प्रमुख स्तंभ रहे हैं। भविष्य पुराण में व्रत-उपवासों की एक लंबी सूची तथा उसका विधि-विधान मिलता है। इसी क्रम में सर्वफलत्याग चतुर्दशी व्रत का भी वर्णन आया है। यह मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को मनाया जाता है। इस व्रत हेतु यह विधान है कि व्रत का आरंभ कर वर्ष भर निन्द्य फल-मूल और 18 प्रकार के धान्य[1]—सांवा, धान, जौ, मूँग, तिल, अणु (कँगनी), उड़द, गेहूँ, कोदो, कुलथी, सतीन (छोटी मटर), सेम, आढ़की (अरहर) या मयूष्ठ (उजली मटर), चना, कलाय, मटर, प्रियंगु (सरसों, राई या टांगुन) और मसूर का भक्षण नहीं किया जाये। वर्ष के अंत में चतुर्दशी के दिन सुवर्ण के रुद्र एवं धर्मराज की प्रतिमा बनाकर दो कलशों के ऊपर स्थापित कर उसका पूजन करना चाहिए। सोने के 16 कूष्मांड और मातुलुंग, बैगन, कटहल, आम्र, आमड़ा, कैथ, कलिंग (तरबूज), ककड़ी, श्रीफल, वट, अश्वत्थ, जम्बीरी नीबू, केला, बेर तथा दाडिम (अनार) ये फल बनवाये। मूली, आँवला, जामुन, कमलगट्टा, करौंदा, गूलर, नारियल, अंगूर, दो वनभंटा, कंकोल, काकमाची, खीरा, करील, कुटज तथा शमी, ये 16 फल चाँदी के बनवाये और ताल, अगस्त्य, पिड़ार, खजूर, सूरण, कंदक, कटहल, लकुच, खेकसा, इमली, चित्रावल्ली, कूटशाल्मिका, महुआ, कारवेल्ल, वल्ली तथा गुदपटोलक—ये 16 फल ताँबे के बनवायें। इन फलों का वर्षपर्यंत भक्षण न करे तथा इन फलों को ब्राह्मण को दान कर दें। ऐसी मान्यता है कि इन फलों में जितने परमाणु होते हैं, उतने हजार युग वर्ष तक इस व्रत को करने वाला व्यक्ति रुद्रलोक में पूजित होता है।[2]

संभारों के लक्षण के अंतर्गत वानस्पतिक वर्णन— संभारों के लक्षण के अंतर्गत पर्याप्त मात्रा में वनस्पतियों का वर्णन वृहत्संहिता में प्राप्त होता है।

चन्दनकुष्ठसमंगाहरितालमनः शिलाप्रियंगुवचाः। दन्त्यमृतांजनरजनी सुवर्ण पुष्प्यग्निमन्थाश्च॥ नागकुसुमं श्स्वगुप्तां शतावरीं सोमराजीं च॥ कलशेष्वेतान् कृत्वा सम्भारानुपहरेद्वलिं सम्यक्। भक्ष्यैर्नाना कारैर्मधुपायसयावक प्रचुरैः।[3]

---

1 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1 208 की अपरार्क व्याख्या, व्याकरण महाभाष्य 5 2 4, वाजसनेयी सहिता 18 12।

2 भविष्य पुराण, उत्तर पर्व, अध्याय 98, सक्षिप्त भविष्यपुराणांक, पृ० 368।

3 वृहत्सहिता, 44 9-11।

अर्थात चदन,कूठ,मंजीठ, हरिताल, मैनशिल, कंगनी (कौन), वच, गुरूच, अंजन, हलदी सुवर्णपुष्पी, अग्निमंथा (अरणी), श्वेता (गिरिकर्णी=अपराजिता), पूर्णकोशा, महाश्वेता (उजला गंगा फल), त्रायमाण (चिरायते का फल), सहदेवी, नाग पुष्प, स्वगुप्ता (क्यवांच=कवाछ), शतावरी, सोमवल्ली इन औषधियो को बराबर लेकर (पूर्ण कलश में देकर शहद, पायस और यावकों (कुरथियों) से युक्त अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थो के साथ बलि देवे। इसके बाद संभारों के और लक्षणों में समिधा हेतु लकड़ी के प्रयोग के वर्णन का उल्लेख किया गया है।

खदिरपलाशोदुम्बर काश्मर्यश्वत्थ निर्मिताः समिधः.... ।।[1]

यानी खैर, ढ़ाक, गूलर, गम्भारी और पीपल की लकड़ी की समिधा बनाना चाहिये।

वनस्पति द्वारा आपदाओं की पूर्व सूचना—वृक्ष हमे न केवल वर्तमान समय में छाया, फल, फूल आदि ही प्रदान करते हैं अपितु भविष्य में आने वाली आपत्तियों, विपत्तियों और उत्पातों की पूर्व सूचना देते हैं। इसके लिए जरूरत होती है वृक्ष के लक्षणों को ध्यान से देखने की। ज्योतिष ग्रंथ वृहत्संहिता में इसका विस्तृत विवरण दिया गया है। जैसे-अचानक वृक्ष की शाखा टूट जाने से युद्ध की तैयारियाँ, वृक्षों के हँसने से देश का नाश और वृक्षों के रोने से व्याधि की अधिकता होती है।

शाखामंगेऽकस्माद्वृक्षाणां निर्दिशेद्रणोद्योगम्। हसने देशभ्रंशं रूदिते च व्याधिबाहुल्यं।।[2]

ऋतु वर्जित काल में वृक्षों में पुष्प और फलों की उत्पत्ति से राज्य में विभेद, छोटे वृक्ष में बहुत से पुष्प आने से बालकों का नाश और वृक्षों से दूध निकलने से द्रव्यों का नाश होता है।

राष्ट्र विभेदस्त्वनृतौ बालवधोऽतीव कुसुमिते वाले। वृक्षात क्षीरस्त्रावे सर्वद्रव्यक्षयो भवति।।[3]

वृक्ष से मद्य निकलने पर वाहनों (अश्वादिकों) का नाश, रक्त निकलने पर युद्ध, शहद निकलने पर रोग, तेल निकलने पर दुर्भिक्ष का भय और वृक्ष से जल निकलने पर अधिक भय होता है।

मद्ये वाहननाशः संग्रामः शोणिते मधुनि रोगः। स्नेहे दुर्भिक्षभयं महद्भयं निःस्त्रुते सलिले।।[4]

सूखे वृक्षों में पुनः अंकुर होने से बल और अन्न का नाश तथा गिरे हुये वृक्षों के अपने आप उठने से दैवजनित भय होता है।

शुष्क विरोहे वीर्यान्न संघयः शोषणे च विरुजानाम्। पतितानामुत्थाने स्वयं भयं दैवजनितं च।।[5]

---

1 वृहत्सहिता, 44 12।

2 वही, 46 25।

3 वही, 46 26।

4 वही, 46 27।

5 वही, 46 28।

प्रधान वृक्ष में पुष्प और फलों की उत्पत्ति राजा के नाश के लिये और उस पर धूप या अग्नि की ज्वाला भी राजा के नाश के लिये होती है।

पूजितवृक्षे ह्यनृतौ कुसुमफलं नृपवधाय निर्दिष्टम्। धूमस्तस्मिन ज्वालाऽथवा भवेन्नृपवधायैव ।।[1]

वृक्षों के चलने या उनसे किसी प्रकार के शब्द निकलने पर मनुष्यों का नाश होता है। सब वृक्षों के विकार जन्य फल दस मास में फलित होते हैं।

सर्पत्सु तरुषु जल्पत्सु वापि जनसंघयो विनिर्दिष्टः। वृक्षाणां वैकृत्ये दशभिर्मासैः फलविपाकः ।।[2]

उक्त तरह के उत्पातों में सुगंध द्रव्य, धूप और वस्त्रों से पूजित विकार युक्त वृक्ष के ऊपर छत्र रखकर रूद्र के मन्त्र का ध्यान करना चाहिये।

वानस्पतिक-स्नान— पुष्य स्नान के द्रव्यो के अन्तर्गत वनस्पतियों की एक लंबी सूची प्राप्त होती है। ध्यातव्य है कि प्रत्येक पुष्य नक्षत्र में किया हुआ विधिपूर्वक स्नान सुख, यश और धन की वृद्धि करने वाला होता है।

ज्योतिष्मतीं त्रायमाणामभयाम पराजिताम्। जीवां विश्वेश्वरीं पाठां समंगां विजयां तथा।
सहां च सहदेवीं च पूर्णकोशां शतावरीम्। अरिष्टिकां शिवां भद्रां तेषु कुंभेषु विन्यसेत।।
व्राह्मी क्षेमामजां चैव सर्वबीजानि काञ्चनीम्। मंगल्यानि यथा लाभं सर्वौषध्यो रसास्तथा।।
रत्नानि सर्वगंधाश्चबिल्वं च सविकंकतम्। प्रशस्तनाग्न्यश्चौषध्यो हिरण्यं मंगलानि च।।[3]

ज्योतिष्मती (कंगनी=मालकाकणी), त्रायमाण (चिरायते का फल), अभया (हर्र = हर्रे) अपराजिता (विष्णुक्रांता), जीवा (जीवंती = डोडी), विश्वेशरी (सोंठ), पाठा (पाढ़ = पाढ़रि), समंगा (रक्तमंजिष्ठा = पसरन), विजया (भंग), सहा (मुद्गपर्णी = वनमूड़), सहदेवी (सहदेई), पूर्णकोशा (नागरमोथा), शतावरी, अरिष्ठिका (रीठा), शिवा (शमी), भद्रा (बला), इन औषधियों को पूर्व स्थापित चारों कलशों में डाल दें। ब्राह्मी, क्षेमा (काष्ठ = गुग्गुल), अजा (औषधि विशेष), सब प्रकार के बीज, कांचनी (हलदी = हरदी, निशाह्वा कांचनी पीता हरिद्रा वरवर्णनीत्यमरः) अन्य मंगल द्रव्य (दधि, अक्षत, पुष्प आदि) सब औषधि, सब रस, रत्न, सब सुगंध द्रव्य, बेल , विकंकत (कंटा = कंघी) प्रशस्त औषधि (जया, जयन्ती, जीवन्ती, जीव पुत्रिका, पुनर्नवा, विष्णुक्रांता, चक्रांगा, वाराही और लक्षणा), सुवर्ण आदि धातु, मांगलिक औषधि (गोरोचन, सरसों, दूर्वा, हस्तिमद आदि) सब द्रव्यों को पूर्वस्थापित कलशों में डाल देना चाहिए।

वनस्पति द्वारा शुभानुशुभ का ज्ञान— विभिन्न प्रयोजनों से शुभाशुभ फल के निमित्त प्रश्न पूछने की परम्परा आज भी प्रायः दिखायी पड़ती है। ज्योतिषशास्त्र में प्रश्नकर्त्ता की दिशा, उसकी वाणी,

---

1 वृहत्संहिता, 46 29।

2 वही, 46.30।

3 वही, 48.39-42।

स्थान, उसके द्वारा लायी गयी वस्तु, प्रश्नकर्त्ता के अपने या वहाँ स्थित दूसरे के अंग की घटना देखकर शुभाशुभ फल बताने का वर्णन मिलता है। प्रश्नकाल मे वनस्पतियों आदि के दर्शन के फल पर भी कुछ भविष्यवाणी की जा सकती है। वृहत्संहिता के अनुसार यदि प्रश्न काल में पीपल, मिर्च, सोंठ, मुस्ता (नागर मोथा), लोध, कूट, वस्त्र, नेत्र वाला, जीरा, गंधमांसि (बाल छड), सौंफ और तगर के फूल दिखायी पड़े तो क्रम से स्त्री के दोष, पुरुष के दोष, रोगी, सर्वनाश, अर्थनाश, पुत्रनाश, अर्थनाश, धान्य नाश, पुत्रनाश, द्विपद नाश, चतुष्पदनाश और भूमिनाश की चिंता कहनी चाहिये।

पिप्पलीमरिच शुण्ठिवारिदैः रोध्रकुष्ठवसनाम्बुजीरकैः। गंधमांसिशतपुष्पया वदेत्पृच्छतस्तगरकेण चिंतयेत। स्त्रीपुरुष दोष पीड़ित सर्वार्थ सुतार्थ धान्यतनयानाम्। द्विचतुष्पदक्षितीनां विनाशतः कीर्तितैर्दृष्टैः।।[1]

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्त्ता के हाथ में वट, महुआ, तिन्दू, जामुन, पाकड़, आम और बेर का फल हो तो क्रम से धन, सुवर्ण, द्विपद, लोहा, वस्त्र, चाँदी और औदुम्बर की प्राप्ति कहनी चाहिये।

न्यग्रोध मधुकतिन्दुक जम्बूप्लक्षाम्रबदर जातिफलैः।
धनकनक पुरुष लोहां शुकरुप्यौदुम्बराप्तिरपि करगेः।।[2]

घर के चारों तरफ स्थित पेड़-पौधों से शुभ-अशुभ का अनुमान—घर के चारों तरफ स्थित पेड़-पौधों से भी शुभ-अशुभ का अनुमान लगाया जा सकता है। पाकड़, वट, गूलर, पीपल ये चार वृक्ष प्रदक्षिणा क्रम से दक्षिण आदि दिशाओं में अशुभ और उत्तर आदि दिशाओं में शुभ होते हैं। जैसे दक्षिण में पाकड़, पश्चिम में वट, उत्तर मे गूलर और पूर्व में पीपल अशुभ तथा उत्तर में पाकड़ पूर्व में वट, दक्षिण में गूलर और पश्चिम में पीपल शुभ होता है।

याम्यादिष्वशुभफला जातास्तरवः प्रदक्षिणैनैते। उदगादिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः।।[3]

इससे वृक्ष का विचार करके शुद्ध भूमि में गृह का निर्माण कार्य करना चाहिये। जो निषिद्ध वृक्ष हों वह गृह की ऊँचाई की दूरी पर शुभ होते हैं। उसके मध्य में उत्तम वृक्ष शुभ होता है।[4] बेल, दाडिम (अनार), केसर (नागकेसर), मौलसिरी, कटहल, नारियल ये वृक्ष सर्वत्र शुभ होते है। नीबू, आम, केला, श्रृंगारहार, नीम, अशोक, शिरीष तथा मल्लिका ये वृक्ष भी घर के समीप शुभ माने गये हैं।

यत्र तत्र स्थिता वृक्षा बिल्वदाडिमकेसराः। पनसो नारिकेलश्च शुभं कुर्वन्ति नित्यशः।।
जम्बीरश्च, रसालश्च रंभाशेफालिकांस्तथा। निम्बाशोक शिरीषांश्च मल्लिकाद्याः शुभप्रदाः।।[5]

---

1 वृहत्सहिता, 51 15-16।

2 वही, 51 17।

3 वही, 53 85।

4 वृहज्ज्योतिषसार, रूप नारायण शर्मा, सपा—उमाशंकर शुक्ल, वाराणसी, पृ० 99-100।

5 वही, श्लोक 19-20, पृ० 93-94।

कांटेदार वृक्ष के गृह के समीप रहने से शत्रु भय, दूधवाला वृक्ष रहने से धन नाश, फल वाले वृक्ष रहने से सतति नाश होता है। इनके काष्ठ भी गृह में लगाने से शुभ नहीं होता। यदि उपर्युक्त काटेदार आदि वृक्षों को काटकर उनकी जगह पुन्नाग, अशोक, अरिष्ट, बकुल, कटहल, शमी या साल रोप दिये जाय तो उपर्युक्त दोष नहीं होता है।

आसन्नाः कंटकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽर्थनाशाय। फलिनः प्रजाक्षयकरा दारुण्यपि वर्जयेदेषाम्॥
छिन्द्याद्यदि न तरूंस्तान तदंतरे पूजितान वपदन्यान। पुन्नागाशोकारिष्ट बकुलपनसान शमीशालौ॥[1]

इस संबंध में वृहज्जोतिषसार में वृहत्संहिता से अलग व्यवस्था दी गयी है। इसके अनुसार मालती, चपा, केवड़ा, कुंद, अगस्त्य, बृह्मवृक्ष ये घर के समीप वर्जित हैं तथा तेंतर, वट, पाकड़, पीपल तथा खदिर वृक्ष और जिसमें दूध होता हो तथा काटे वाले जितने वृक्ष हैं वे घर के समीप निषिद्ध हैं।

मालती चैव चंपा च केतकी कुंदमेव च। मुनिवृक्ष व्रह्मवृक्ष वर्जयेद् गृहसन्निधौ॥
तिन्तिलीको वटः प्लक्षः पिप्पलश्च सकोटरः। शीरी च कंटकी चैव निषिद्धास्ते महीरुहाः।[2]

वृक्ष की छाया यदि दिन भर घर पर पड़ती हो तो वहाँ से शीघ्र ही उजड़कर दूसरे स्थान पर जाना पड़ता है इसलिये ऐसे स्थान पर वास नहीं करना चाहिये। प्रथम और चतुर्थ प्रहर को छोडकर दूसरे तथा तीसरे प्रहर में वृक्ष अथवा ध्वजा की छाया मकान पर पड़े तो वह अशुभ होती है।[3]

गृह-निर्माण में प्रयुक्त वृक्ष—गृह-निर्माण में पर्याप्त रूप से लकड़ी की आवश्यकता पड़ती है। मिट्टी और घास-फूस से बने मकानों में तो यह आवश्यकता कुछ ज्यादा ही पड़ती है। वाराहमिहिर ने वास्तुविद्याध्याय के अंतर्गत गृह निर्माण में प्रयुक्त होने वाले वृक्षों के बारे में लिखा है—'पक्षियो के घोंसले वाले, टूटे हुये देवालय के समीप में स्थित, श्मशान में स्थित, दूध वाले वृक्ष, बहेड़ा, नीम, अरलू इन सबको छोड़कर शेष वृक्षों को घर बनाने के लिये काटा जा सकता है।

खग निलयभग्नसंशुष्कदग्ध देवालय श्मशान स्थन।
क्षीरतरुधव विभीतक निम्बारणिवर्जितान छिन्द्यात।[4]

जिस वृक्ष को काटना हो उसके निमित्त रात में पूजा और बलि देकर उसके सुबह ईशानकोण से प्रदक्षिणा क्रम से उसको काटना चाहिये। यह वृक्ष कट कर उत्तर या पूर्व दिशा में गिरे तो शुभ और शेष दिशा में गिरे तो अशुभ होता है।

---

1 वृहत्सहिता, 53 86-87।

2 वृहज्जोतिषसार, श्लोक 21-22, पृ० 94।

3 वही, श्लोक 23-24, पृ० 94।

4 वृहत्सहिता, 53 120।

रात्रौ कृतबलिपूजं प्रदक्षिणं छेदयेद्दिवा वृक्षम्।
धन्यमुदक् प्राक्पतनं न ग्राह्योऽतोऽन्यथा पतितः ॥[1]

यदि वृक्ष का कटित प्रदेश विकार रहित हो तो उसकी लकड़ी गृह के लिए शुभ होती है। यदि कटित प्रदेश में पीत वर्ण का मंडल दिखायी दे तो वृक्ष के मध्य में गोधा (सनगोहि), मंजीठ की तरह लाल रंग का मंडल दिखायी दे तो मेढक, नील रंग का मंडल दिखायी दे तो सर्प, लाल रंग का मंडल दिखायी दे तो गिरगिट, मूँग के समान वर्ण का मंडल दिखायी दे तो पत्थर, पीला मंडल दिखायी दे तो चूहे और खंग के सदृश्य मंडल दिखायी पड़े तो जल का निवास स्थान कहना चाहिये।[2]

भूमिगत जल के ज्ञान में सहायक पेड़-पौधे— पेड़ और पौधे भूमिगत जल की जानकारी प्राप्त करने में बहुत सहायक होते हैं। वाराहमिहिर ने भिन्न-भिन्न पेड-पौधों के आधार पर भूमिगत जल कितनी दूरी पर उपलब्ध हो सकता है इसका उल्लेख विशद रूप में किया है। यह उल्लेख निम्नवत है—यदि जलरहित देश में वेदमजनूँ का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में डेढ़ पुरुष (माप की एक इकाई) नीचे जल होगा। जामुन का वृक्ष होने की स्थिति में उससे तीन हाथ उत्तर दिशा में दो पुरुष तुल्य नीचे पूर्व शिरा (जलस्त्रोत) स्थित होती है।[3] गूलर का वृक्ष होने पर उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में ढाई पुरुष नीचे सुदर जल वाली शिरा होती है। यदि अर्जुन वृक्ष से तीन हाथ उत्तर दिशा में बाबी हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में साढ़े तीन पुरुष नीचे जल होता है।[4]वल्मीक युक्त निर्गुण्डी (सिंदुवार) वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में सवा दो पुरुष नीचे सदावाही जल मिलता है।[5] यदि बेर के वृक्ष के पूर्व वल्मीक हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में तीन पुरुष नीचे जल होगा।[6] पलास (ढ़ाक) के वृक्ष से युक्त बेर वृक्ष के बारे में भी यही प्रमाण मिलता है। जहाँ बेल के वृक्ष से युक्त गूलर का वृक्ष हो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में तीन पुरुष नीचे जल होता है। यदि काकोदुम्बरिका (कठुम्बरि) वृक्ष के समीप वल्मीक हो तो उसके सवा तीन पुरुष नीचे पश्चिम दिशा में बहने वाली शिरा निकलती है।[7]

कंपिल्ल (कपिल या कबीला) वृक्ष स्थित होने पर उससे तीन हाथ पूर्व दिशा में सवा तीन पुरुष नीचे दक्षिण शिरा बहने का अनुमान किया जाता है।[8] यदि विभीतक (बहेड़ा) वृक्ष के समीप दक्षिण

---

1 वृहत्संहिता, 53 121।
2 वही, 53 122-123।
3 वही, 54 7-8।
4 वही, 54 11-12।
5 वही, 54 14।
6 वही, 54 16।
7 वही, 54 18-19।
8 वही, 54 21।

दिशा में वल्मीक दिखायी दे तो उस वृक्ष से दो हाथ पूर्व डेढ़ पुरुष नीचे शिरा होती है।[1] जहाँ पर कोविदारक (छितिवन या सप्तपर्ण) वृक्ष के ईशान कोण में कुशायुक्त श्वेत वल्मीक हो तो सप्तपर्ण वृक्ष और वल्मीक के मध्य में साढ़े पाँच पुरुष नीचे अधिक जल होता है।[2]

यदि करंजक वृक्ष के दक्षिण दिशा में वल्मीक दिखायी दे तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण तीन पुरुष नीचे शिरा होती है।[3] यदि महुए के वृक्ष से उत्तर वल्मीक हो तो उससे पाँच हाथ पर पश्चिम दिशा में साढ़े आठ पुरुष नीचे जल होता है।[4] तिलक (तालमखाना) के वृक्ष से दक्षिण दिशा में कुश और दूब से युक्त स्निग्ध वल्मीक हो तो उस वृक्ष से पाँच हाथ पश्चिम, पाँच पुरुष नीचे जल और पूर्ववाहिनी शिरा होती है। कदम्ब वृक्ष से पश्चिम में वल्मीक होने पर उस वृक्ष से तीन हाथ दक्षिण पौने छः पुरुष नीचे जल होता है।[5] यदि वल्मीक से युक्त ताड़ (ताल) या नारियल का वृक्ष हो तो उससे छः हाथ पश्चिम दिशा में चार पुरुष नीचे दक्षिण वाहिनी शिरा और यदि कपित्थ (कैथ) वृक्ष से दक्षिण वल्मीक हो तो उससे सात हाथ उत्तर दिशा में पॉच पुरुष नीचे जल होता है।[6]

अश्मंतक वृक्ष के बायीं तरफ बेर का वृक्ष या वल्मीक हो तो उस वृक्ष से छः हाथ उत्तर दिशा में साढ़े तीन पुरुष नीचे जल होता है।[7] हरिद्र (हलदुआ) वृक्ष की बायीं तरफ वल्मीक होने पर उस वृक्ष से तीन हाथ पूर्व दिशा में एक तिहाई युक्त पाँच पुरुष नीचे जल होता है।[8] जहाँ पर भंगरैया, निसोत, इंद्रदंती (दँतिया या जयपाल), सूकरपादी और लक्ष्मणा आदि औषधियाँ हों वहाँ से दो हाथ पर दक्षिण दिशा में तीन पुरुष नीचे जल मिलता है।

भांगीं त्रिवृत्ता दंती सूकरपादी च लक्ष्मणा चैव। नवमालिका च हस्तद्वयेऽम्बु याम्ये त्रिभिः पुरुषैः।।[9]

जहाँ पर निर्मल वल्मीक से युक्त तिलक, आम्रातक (आमड़ा), वरूणक (वरण), भिलावा, बेल, तेंदु (तेंदुआ), अंकोल, पिंडार, शिरीष, अंजन, परुषक (फालसा), अशोक और अतिबला ये वृक्ष हों वहाँ इन वृक्षों से तीन हाथ पर उत्तर दिशा में साढ़े चार पुरुष नीचे जल होता है।

तिलकाम्रातक वरुणक भल्लातकबिल्व तिन्दु कांकोलाः। पिंडारशिरीषां जन परुषका वंजुलोऽतिवला।।[10]

---

1 वृहत्सहिता, 54 24।

2 वही, 54 27।

3 वही, 54 33।

4 वही, 54 35।

5 वही, 54 37-38।

6 वही, 54 40-41।

7 वही, 54 43।

8 वही, 54 45।

9 वही, 54 48।

10 वही, 54.50।

जहाँ कांटों से रहित और सफेद पुष्पों से युक्त कटेरी का वृक्ष दिखायी दे उसके नीचे साढ़े तीन पुरुष खोदने से जल निकलता है। जहाँ दो सिर वाला खजूर का पेड़ हो वहाँ उस वृक्ष से दो हाथ पश्चिम दिशा में तीन पुरुष नीचे जल प्राप्त होता है।[1] यदि सफेद पुष्प वाला कर्णिकार (कठचंपा) या ढ़ाक का वृक्ष हो तो उससे दो हाथ दक्षिण दिशा मे दो पुरुष नीचे जल होता है।

यदि भवति कर्णिकारः सितकुसुमः स्यात पलाशवृक्षो वा। सव्येन तत्र हस्तद्वयेऽम्बु पुरुषद्वये भवति।।[2]

पीलु वृक्ष के पूर्व दिशा में वल्मीक होने पर उस वृक्ष से साढ़े चार हाथ दक्षिण दिशा में सात पुरुष नीचे जल होता है।[3] करीर (करील) वृक्ष के उत्तर दिशा में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से साढ़े चार हाथ पर दक्षिण दिशा में दस पुरुष नीचे मधुर जल होना चाहिये। रोहितक (लाल करंज) वृक्ष के पश्चिम में वल्मीक होने पर उस वृक्ष से तीन हाथ पर दक्षिण दिशा में बारह पुरुष नीचे खारे जल वाली पश्चिम वाहिनी शिरा निकलती है।[4] यदि धतूरा वृक्ष के उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण पन्द्रह पुरुष नीचे खारा जल प्राप्त होता है।[5]

जिस जगह अर्जुन और करीर या अर्जुन और बेल के वृक्ष का संयोग हो तो उन वृक्षों से दो हाथ पर पश्चिम दिशा में 25 पुरुष नीचे जल होता है। यदि वल्मीक के ऊपर दूब या सफेद कुशा हो तो वल्मीक के नीचे कूप खोदने से 21 पुरुष नीचे जल मिलता है।[6] जहाँ पर अनेक गाँठों से युक्त शमी का वृक्ष हो और उसके उत्तर वल्मीक हो तो उस शमी वृक्ष के पश्चिम पाँच हाथ पर 50 पुरुष नीचे जल होता है।

ग्रंथि प्रचुरा यस्मिन शमी भवेदुत्तरेण वल्मीकः। पश्चात पंचकरान्ते शतार्धसंख्यैर्नरैः सलिलम्।।[7]

यदि वल्मीक के ऊपर जामुन, निसोत, मौर्वी, शिशुमारी, सारिवा, शिवा (शमी), श्यामा, वाराही, ज्योतिष्मती (मालकाकणी) गरुड़वेगा, सूकरिका, माषपर्णी (मूड़), व्याघ्रपदा ये औषधियां हो तो वल्मीक से उत्तर तीन हाथ पर तीन पुरुष नीचे जल होता है।

जम्बूस्त्रिवृत्ता मौर्वी शिशुमारी सारिवा शिवा श्यामा। वीरुधधो वाराही ज्योतिष्मती गरुड़वेगा च।।
सूकरिकमाषपर्णी व्याघ्रपदाश्चेति यद्यहेर्निलये। वल्मीकादुत्तरत स्त्रिभिः करैस्त्रिपुरुषे तोयम्।।[8]

---

1 वृहत्सहिता, 54 57-58।
2 वही, 54 59।
3 वही, 54 65।
4 वही, 54 67-68।
5 वही, 54 70।
6 वही, 54 76-77।
7 वही, 54 81।
8 वही, 54 87-88।

जहाँ वट, गूलर, पीपल ये तीनों वृक्ष इकट्ठे हो तथा जहॉ वट, पीपल ये दोनों वृक्ष इकट्ठे हों वहॉ इन वृक्षों के नीचे तीन हाथ खोदने पर जल और उत्तर शिरा मिलती है।

न्यग्रोध पलाशोदुम्बरैः समेतैस्त्रिभिर्जलं तदधः। वटपिप्पलसमवाये तद्वद्वाच्यं शिरा चोदक् ।।[1]

जहाँ पर स्निग्ध, छिद्र रहित पत्तों से युक्त वृक्ष, गुल्म या लता हो वहाँ तीन पुरुष नीचे जल होता है। अथवा स्थल कमल, गोखरु, उशीर (खस) कुल ये द्रव्य विशेष, गुण्डू (सरकंडा, शर), काश, कुशा, नलिका, नल ये तृण विशेष, खजूर, जामुन अर्जुन, बेंत ये वृक्ष विशेष, दूध वाले वृक्ष, गुल्म और लता छत्री, हस्तकर्णी, नागकेशर, कमल, कदंब, करंज ये सब सिदुवार वृक्ष के साथ, बहेड़ा वृक्ष विशेष, मदयतिका द्रव्य विशेष ये सब जहाँ हों वहाँ पर तीन पुरुष नीचे जल होता है।[2] जहाँ पर छिद्र वाले पत्तों से युक्त शाक, अश्वकर्ण (संखुआ), अर्जुन, बेल, सर्ज, श्रीपर्णी, अरिष्ट, धव, शीशम ये वृक्ष हों तथा जहाँ पर छिद्र वाले रूखे पत्तों से युक्त वृक्ष, गुल्म, लता हो वहाँ बहुत दूर पर जल होता है।[3]

ध्यातव्य है कि उक्त वर्णन में प्रायः संबंधित भूमि की खुदाई में मिलने वाली तरह-तरह की मिट्टियों, पत्थरों तथा जीव-जंतुओं का उल्लेख भी किया गया है। प्राचीन काल में पेय जल हेतु कुएं ही अधिक उपयोग में आते थे और उनकी खुदाई काफी श्रमसाध्य होती थी। ऐसे में यह काफी महत्वपूर्ण बात होती थी कि किसी भी तरह से संबंधित भूमि में स्थित जलस्रोत की स्थिति के बारे में पता चल सके। वृहत्संहिता जैसे ग्रंथों ने इस समय जलस्रोतों का अनुमान लगाने में तत्कालीन लोगों को उपयोगी जानकारी उपलब्ध करायी।

वापी तट पर वृक्ष—प्राचीन ग्रंथों में प्रायः वापी के तट पर वृक्षों को लगाने का निर्देश प्राप्त होता है। इस क्रम में निचुल, जामुन, बेंत, नीप (कदम्ब), अर्जुन, वट, आम, पिलखन, कदम्ब, बकुल, कुरवक, ताड़, अशोक, महुआ, मौलसिरी आदि वृक्षों का उल्लेख प्राप्त होता है।

ककुभवटाम्रप्लक्षकदम्बैः सनिचुल जम्बूवेतसनीपैः।
कुरवक तालाशोकमधूकैः र्वकुलविमिश्रैश्चावृततीराम्।।[4]

यदि कुएं का जल गंदला, कड़ुआ, खारा, बेस्वाद या दुर्गंध वाला हो तो अंजन, मोथा, खस, राजकोशातक, आँवला और कतक का फल इन सबका चूर्ण कुएं में डालना चाहिये।[5] इन औषधियों से वह जल निर्मल, मधुर, सुगंधित और अनेक गुणों से युक्त हो जाता है।

---

1 वृहत्सहिता, 54 96।
2 वही 54.100-102।
3 वही, 54 105।
4 वही, 54 119।
5 वही, 54 121।

बगीचे में वृक्षारोपण— बगीचे में किस तरह के वृक्षों को लगाया जाय, वृक्षों को लगाने के लिए विहित नक्षत्र एवं काल (समय) कौन-कौनसे है? वृक्षों को रोपने का नियम, रोपण-विधि, सिंचाई, रोगोत्पत्ति एवं चिकित्सा संबंधी विधियों का वर्णन वृहत्संहिता में सविस्तार मिलता है। इस ग्रंथ में बताया गया है कि सब वृक्षों के लिए कोमल भूमि अच्छी होती है। जिस भूमि में बगीचा लगाना हो उसमे सबसे पहले तिल बोना चाहिये। जब ये तिल फूल जाय तब उनका उसी भूमि मे मर्दन कर देना चाहिये। पहले बगीचे या घर के समीप शुभदायक वृक्ष नीम, अशोक, पुन्नाग, शिरीष, प्रियंगु (कगुँनी) आदि वृक्षों को लगाना चाहिये।

अरिष्टाशोक पुन्नागशिरीषाः सप्रियगवः। मंगल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा॥[1]

कटहल, अशोक, केला, जामुन, बड़हर, दाडिम (अनार), दाख, पालीवत, बिजौरा, अतिमुक्तक इन वृक्षों की शाखाओ को लेकर गोबर से लीपकर कटे हुए विजातीय वृक्ष की मूल या शाखा पर लगाना चाहिए। यह कलम लगाने की विधि है।

पनसाशोक कदलीजम्बूलकुचदाडिमाः। द्राक्षापालीवताश्चैव बीजपूरातिमुक्तकाः॥
एते द्रुमाः काण्डरोप्या गोमयेन प्रलेपिताः। मूलोच्छेदेऽथवा स्कंधे रोपणीयाः परं ततः॥[2]

जहाँ तक वृक्षारोपण हेतु उत्तम समय की बात है अजातशाखा अर्थात कलमी से भिन्न वृक्षों को शिशिर (माघ, फाल्गुन) ऋतु में, कलमी वृक्षों को हेमंत (मार्गशीर्ष, पौष) ऋतु में और लंबी-लंबी शाखा वाले वृक्षों को वर्षा (श्रावण, भाद्रपद) में लगाना चाहिये। तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी, हस्त इन नक्षत्रों को वृक्षारोपण हेतु उत्तम नक्षत्र कहा गया है।

ध्रुवमृदुमूल विशाखा गुरुभं श्रवणस्तथाश्विनी हस्तः। उक्तानि दिव्यदृग्भिः पादसंरोपणे भानि॥[3]

वृक्षारोपण के उल्लेख में कहा गया है कि घृत, खस, तिल शहद, विडंग (वायविडंग), दूध, गोबर इन सबको पीसकर मूल से लेकर अग्र पर्यन्त लेप करके वृक्ष को एक स्थान से दूसरे स्थान में लगाना चाहिये। पवित्र होकर स्नान, चंदन आदि से वृक्ष की पूजा कर दूसरे स्थान पर लगाने से उन्हीं पत्रों से युक्त वृक्ष लग जाता है, सूखता नहीं है। लगाये हुए वृक्षों को ग्रीष्म ऋतु में सुबह-शाम, शीतकाल में एक दिन बाद और वर्षा ऋतु में भूमि सूखने पर सींचना चाहिये।[4] एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष के बीच दूरी का उल्लेख करते हुये बताया गया है कि 'बीस हाथ की दूरी पर लगाना उत्तम, सोलह हाथ की दूरी

---

1 वृहत्सहिता, 55 3।

2 वही, 54.4-5।

3 वही, 54 31।

4 वही, 54 7-9।

पर मध्यम और बारह हाथ की दूरी पर लगाना अधम है।[1] जामुन, बेत, वानीर (वेंत की एक किस्म), कदम्ब, गूलर, अर्जुन, बिजौरा, दाख, बड़हर, दाडिम, वंजुल (तिनिस), नक्तमाल (करंज), तिलक, कटहल, तिमिर, आमडा ये सोलह वृक्ष बहुत जल वाले देश में होते हैं।

जम्बूवेतसवानीर कदम्बोदुम्बरार्जुनाः। बीजपूरकमृद्वीकालकुलाश्च सदाडिमाः॥
वंजुलो नक्तमालश्च तिलकः पनसस्तथा। तिमिरोऽम्रातकश्चेति षोडशानुपजाः स्मृताः॥[2]

वृक्षों का उपचार—वृक्षों में भी तरह-तरह के रोग होते हैं। अधिक शीत, वायु और धूप लगने से वृक्षों को रोग हो जाता है, पत्ते पीले पड़ जाते हैं, अंकुर नहीं बढ़ते, डालियाँ सूख जाती हैं और रस टपकने लगता है। ऐसे रोगी वृक्षों की चिकित्सा आवश्यक होती है। पहले वृक्ष का विकार युक्त अंश काट डालना चाहिये। फिर वायविडंग, घृत और पंक (कीचड़) को मिलाकर वृक्षों में लेप करना चाहिये। यदि वृक्षों में फल न लग रहे हों तो कुलथी, उड़द, मूँग, तिल, जौ इन सबको दूध में औट कर, बाद में उसी दूध को ठडा करके उससे वृक्षों को सींचना चाहिये।[3] इससे फल और फूलों की वृद्धि होती है।

बीज बोने की विधि के अंतर्गत यह बताया गया है कि बीज को घृत लगे हाथ से चुपड़कर दूध में डाल देना चाहिये दस दिनों तक इस तरह करने के बाद उसे गोबर में अनेक बार मलकर रूखा करके सूकर और हिरण के मांस का धूप देना चाहिये। बाद में मांस और सूकर की चर्बी सहित उस बीज को तिल बोकर शुद्ध भूमि में लगाने और दूध मिश्रित जल से सींचने पर निश्चित रूप से फूल युक्त वृक्ष उत्पन्न होता है। सड़े हुये मांस से युक्त धान, उड़द, तिल आदि के चूर्ण से सींचकर हल्दी का धूप देने से अति कठोर इमली का बीज भी शीघ्र अंकुरित हो जाता है।[4] अंकोल वृक्ष के फल के कल्क या तेल से अथवा श्लेष्मातक (लसोड़े) के फल, कल्क या तेल से 100 बार भावना देकर ओलों से भीगी हुई मिट्टी में जिस बीज को बोया जाय, वह उसी क्षण में अंकुरित हो जाता है और शीघ्र ही उसकी शाखा फलों के भार से झुक जाती है।

शतशोऽंकोल संभूतफलकल्केन भावितम्। एतत्तैलेन वा बीजं श्लेष्मातकफलेन वा॥
वापितं करकोन्मिश्रमृदि तत्क्षणजन्मकम्। फलभारान्विता शाखा भवमीति किमद्भुतम्॥[5]

वज्रलेप हेतु उपयुक्त वनस्पतियाँ—वृहत्संहिता में वज्रलेप बनाने हेतु वनस्पतियों का उल्लेख किया गया है। यह वज्रलेप विविध निर्माण कार्यो में जुड़ाई हेतु प्रयुक्त किया जाता था। तेंदु एवं कैथ

---

1 वृहत्सहिता, 54 12।
2 वही, 54 10-11।
3 वही, 54 14-16।
4 वही, 54 20-21।
5 वही, 54.27-28।

के कच्चे फल, सेमल के फूल, शल्लकी (सालई) वृक्ष के बीज, धन्वन वृक्ष की छाल और वच इन सबको एक द्रोण तुल्य जल में लेकर काढ़ा बनाना चाहिये। जब वह अष्टमांश रह जाय तो उसको उतार लेना चाहिये। बाद में उसमें श्रीवासक (सरल) वृक्ष का गोंद, बोल, गूगल, भिलावा, कुंदरुक (देवदारु वृक्ष का गोंद), सर्ज (संखुआ) का गोंद, अलसी, बेल की गिरी इन सबको पीसकर मिलाने पर यह वज्रलेप नामक काढ़ा बन जाता है।[1]

एक अन्य विधि के अंतर्गत यह बताया गया है कि पूर्व सिद्ध किये क्वाथ में लाख, कुंदरुक, गूगल, घर के धुयें का जाला, कैथ का फल, बेल की गिरी, नागबला का फल, महुए का फल, मंजीठ, राल, बोल, आँवला इन सबको पीसकर डालना चाहिये। इस प्रकार प्रथम वज्रलेप के गुणों से युक्त दूसरा वज्रलेप तैयार हो जाता है। गरम किया हुआ वज्रलेप देव प्रासाद, हवेली, शिवलिंग, देव प्रतिमा, भीत और कूप में लगाने पर वह एक करोड़ वर्ष तक नहीं छूटता है।

शय्या एवं आसन हेतु विशिष्ट वृक्ष—शय्या एवं आसन हेतु विहित विशिष्ट वृक्षों का वर्णन ज्योतिष ग्रंथों में प्राप्त होता है। वृहत्संहिता के अनुसार विजयसार, स्यंदन, हरिद्रा, देवदारु, तिन्दुकी, साल, काश्मरी, अंजन, पद्मक, शाक, शिशपा ये सब वृक्ष शय्या एवं आसन के लिए शुभदायी होते हैं।

असनस्यंदन चंदनहरिद्रसुरदारुतिन्दुकी शालाः। कश्मर्यजन पद्मकशाका वा शिंशपा च शुभाः।।[2]

ऐसी मान्यता है कि अशुभ वृक्ष की लकड़ी से बने हुये शय्या और आसन का प्रयोग करने से कुल का नाश, रोग, भय, धन-हानि, कलह और अन्य अनेक तरह के अनर्थ होते हैं। विभिन्न वृक्षों की लकड़ी से बनी शय्या और उसके शुभानुशुभ निर्णय का उल्लेख वृहत्संहिता में इस तरह प्राप्त होता है—

श्रीपर्णी वृक्ष से बनी शय्या धन देने वाली, असन (विजयसार) वृक्ष से बनी शय्या रोग हरने वाली, तिदुकसार से बनी शय्या धन करने वाली, केवल शिंशपा वृक्ष से बनी शय्या बहुत तरह से वृद्धि करने वाली, चंदन वृक्ष से बनी शय्या से शत्रु नाश, कीर्ति और दीर्घायु प्राप्ति, पद्मक वृक्ष से बनी शय्या दीर्घायु, लक्ष्मी, धर्म एवं धन देने वाली और साल वृक्ष से बनी शय्या कल्याण करने वाली होती है। केवल चंदन वृक्ष से बनी, सुवर्ण से मढ़ी हुई और अनेक तरह के रत्नों से व्याप्त शय्या पर सोने वाले राजा की देवता भी पूजा करते हैं।

यः सर्व श्री पर्ण्या पर्यंको निर्मितः स धनदाता। असनकृतो रोगहरस्तिंदुक सारेण वित्तकरः।।
यः केवल शिशपया विनिर्मितो बहुविधं स वृद्धिकरः। चंदनमयो रिपुघ्नो धर्मायशोदीर्घजीवितकृत।।

---

1 वृहत्सहिता, 57 1-3।

2 वही, 79.2।

यः पद्मकपर्यक. सः दीर्घमायुः श्रियं श्रुतं वित्तम्। कुरुते शालेन कृतः कल्याण शाकरचित्तश्च ॥
केवल चदनरचितं कांचनगुप्तं विचित्ररत्नयुतम्। अध्यासन पर्यकं विबुधैरपि पूज्यते नृपतिः ॥[1]

मिश्रित काष्ठ के फल के अंतर्गत यह बताया गया है कि तिदुकी और शिशपा वृक्ष की लकड़ी में देवदारु या असन वृक्ष की लकडी मिलाकर बने हुए पलग या आसन शुभ फल वाले नहीं होते। साल एवं शाक इन दोनो वृक्षों की परस्पर मिली लकड़ी या अलग-अलग लकड़ी भी शुभ फल देने वाली होती है। केवल स्यंदन वृक्ष की लकड़ी से बनी शय्या शुभ फल वाली नही होती। अंब वृक्ष की लकडी से बनी शय्या प्राणनाशक होती है। अंब, स्यदन एवं चंदन वृक्षो से बने हुए पलंगों के पाये स्यदन वृक्ष की लकड़ी से बनाने से शुभ होता है। फल वाले सारे वृक्षो की लकड़ी से बनी शय्या या आसन से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।[2]

दंतधावन हेतु उपयुक्त पेड़-पौधे—दांत की सफाई मनुष्य के नित्य क्रिया का आवश्यक अंग है। इस हेतु हमारे प्राचीन ग्रंथो में विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। वृहत्सहिता के अनुसार अपरिचित पत्तों से युक्त, युग्म पर्वो से युक्त, फटा हुआ, वृक्ष पर ही सूखा, त्वचा से रहित दातुन (दतुवन) नहीं करना चाहिए। वैकंकत, नारियल और काश्मरी (गंभारी) वृक्ष का दातुन करने से ब्राह्मी द्युति का लाभ, क्षेम वृक्ष के दातुन से उत्तम स्त्री का लाभ, वट वृक्ष के दातुन से धन वृद्धि, आक के वृक्ष से बहुत तेज लाभ, सेहुए के वृक्ष से पुत्र लाभ और अर्जुन वृक्ष का दातुन करने से जनों के प्रियत्व का लाभ होता है।

वैकंकश्रीफलकाश्मरीषु ब्राह्मी द्युतिः क्षेमतरौ सुदाराः।
वृद्धिर्वटेऽर्के प्रचुरं च तेजः पुत्रा मधुके सगुणाः प्रियत्वम्।[3]

शिरीष और करंज वृक्ष के दातुन से लक्ष्मी की प्राप्ति, पाकड़ के वृक्ष से अभीष्ट कार्य की सिद्धि, चमेली वृक्ष से मान लाभ और पीपल के वृक्ष से प्रधानता की प्राप्ति होती है।

लक्ष्मीशिरीषे च तथा करंजे प्लक्षेऽर्थसिद्धिः समभीप्सिता स्यात्।
मान्यत्वमायाति जनस्य जात्यां प्राधानांश्वत्थ तरौ वदंति।[4]

बेर और कटेरी वृक्ष के दातुन से आरोग्य और दीर्घायु का लाभ, खैर और बेल वृक्ष से ऐश्वर्य की प्राप्ति, तिनिश और कदंब वृक्ष से अभीष्ट द्रव्यों का लाभ होता है। नीम के वृक्ष से दातुन करने पर धन लाभ, करवीर (कनेर) से अन्न लाभ, भांडीर वृक्ष से अधिक अन्न लाभ, शमी वृक्ष से शत्रु नाश और अर्जुन एव श्यामा के वृक्ष से दंतधावन शत्रु के लिए मारक होता है। साल और अश्वकर्ण का दातुन

---

1 वृहत्सहिता, 79 11-14।

2 वही, 79 15-18।

3 वही, 85.3।

4 वही, 85.4।

सम्मान बढ़ाने वाला, देवदारु और नासिका वृक्ष भी सम्मान बढ़ाने वाला, प्रियंगु, अपामार्ग, जामुन और अनार वृक्ष का दंतधावन करने से चारो ओर प्रियता की प्राप्ति होती है।[1]

भविष्य पुराण के अनुसार महुआ वृक्ष के दातुन से पुत्र प्राप्ति, भंगरैया से दु:खनाश, बेर और वृहती (भटकटैया) से शीघ्र ही रोगमुक्ति, बिल्व से ऐश्वर्य प्राप्ति, खैर से धन संचय, कदंब से शत्रुनाश, अतिमुक्तक से अर्थ प्राप्ति, आटरुषक (अड़ूसा) से गुरुता, पीपल की दातुन से यश एवं जाति में प्रधानता, करवीर से अचल परिज्ञान, शिरीष से विपुल लक्ष्मी एवं प्रियंगु के दातुन से परम सौभाग्य की प्राप्ति होती है।[2]

स्कंद पुराण में दंतधावन हेतु विहित पौधों की एक सूची दी गयी है। महुआ, बिल्व, आटरुषक (अड़ूसा), पीपल और शिरीष की दातुन से होने वाले लाभ भविष्य पुराण जैसे ही हैं। कुछ अन्य पौधों की दातुन का उल्लेख इस प्रकार किया गया है। मदार की दातुन से नेत्र लाभ, बेर की दातुन से प्रवचन की शक्ति, वृहती (भटकटैया) से दुष्टों पर विजय प्राप्ति, खैर की दातुन से निश्चित ऐश्वर्य की प्राप्ति, कदंब से रोगों का नाश, अतिमुक्तक (कुंद का एक भेद) से धन लाभ, जाती (चमेली) की दातुन से जाति में प्रधानता प्राप्त होती है।[3]

कौवे एवं वृक्ष से वृष्टि संबंधी अनुमान—कौवे की वृक्ष से संबंधित गतिविधियों को देखकर वृष्टि के संबंध में अनुमान लगाये जाने की परंपरा जयोतिष में विहित है। उदाहरण के लिये यदि कौआ वैशाख मास में उपद्रव रहित वृक्ष के ऊपर घोंसला बनाये तो सुभिक्ष और मंगलकारी होता है। यदि निदित, कांटेदार या सूखे वृक्ष पर घोंसला बनाये तो उस देश में दुर्भिक्ष का भय होता है। यदि कौआ शरत्काल में वृक्ष के पूर्व दिशा में स्थित शाखा पर घोंसला बनाये तो पश्चिम दिशा में पहले वर्षा होती है। यदि दक्षिण या उत्तर दिशा में घोंसला बनाये तो प्रधान वृष्टि होती है। अग्नि कोण में घोंसला बनाये तो मंडल वृष्टि (कहीं पर वृष्टि कहीं पर अवृष्टि) होती है। नैऋत्य कोण में घोंसला बनाने पर शारदीय धानों की अच्छी निष्पत्ति, वायव्य और ईशान कोण में घोंसला बनाने पर सुभिक्ष और वायव्य कोण में घोंसला होने से अधिक चूहे होते हैं। जिस देश में कौआ सरकंडा, कुश, गुल्म, लता, धान्य, प्रासाद,गृह और नीचे घोंसला बनावे तो वह देश चोर, अनावृष्टि और रोग से पीड़ित होकर शून्य हो जाता है।[4] दूध वाले वृक्ष, अर्जुन वृक्ष, वंजुल वृक्ष या नदी के दोनों तट पर स्थित होकर कौए शब्द करें या धूलि अथवा जल से स्नान करे तो वर्षाकाल में वृष्टि तथा अन्य ऋतु में दुर्भिक्ष पड़ता है।

---

1 वृहत्सहिता, 85 5-7।

2 सक्षिप्त भविष्य पुराणांक, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1992, पृ० 184।

3 सक्षिप्त स्कंद पुराणाक, गीता प्रेस, गोरपपुर 1951, पृ० 961।

4 वृहत्संहिता, 95 2-5।

सक्षीरार्जुन वंजुलकूलद्वय पुलिनगा रुवंतश्च। प्रावृषि वृष्टिं दुर्दिनमनृतौ स्नाताश्च पांसुजलैः ।।[1]

× × × ×

तन्त्र में वनस्पति—मानव जीवन मे वनस्पतियो की विभिन्न प्रकार से महत्वपूर्ण उपयोगिता है। हमारे मनीषियों ने सदियों तक वनस्पतियों का निरीक्षण परीक्षण किया और स्वरचित ग्रंथों में इसकी प्रभावशीलता को वर्णित किया। तंत्र विशेषज्ञों और वनस्पतिशास्त्र के अध्येताओं ने वृक्षों के पाँच अंगों—(मूल, शाखा, पत्र, पुष्प, फल) के विषय में अध्ययन कर उनकी भूमिका का निर्धारण किया है। उनके निष्कर्ष मानव समुदाय के लिए सर्वथा उपयोगी, परिणाम में हितकारी तथा आश्चर्य को उत्पन्न करने वाले हैं।

ब्रह्मयामल ग्रंथ के अनुसार सूर्य-चंद्रग्रहण, दीपोत्सव पर्व के दिनों में रवि पुष्प योग तथा महानवमी के दिन खदिर-पलाशादि की सहायता से यदि औषधियो को खोदकर उनसे पूजन विधान संपन्न किया जाय तो सर्वसिद्धि प्राप्त होती है—

सूर्येन्दुग्रहणे प्राप्ते दीपोत्सव दिनत्रये। पुष्यमूलार्क योगे च महानवमीवासरे।।
खदिरेण च कीलेन प्रोद्धरेता महौषधिः। बलिपूजाविधानेन सर्वकर्मसु सिद्धिदा।।[2]

तंत्र शास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण तथा तात्विक कार्यो में उपयोगी कुछ वनस्पतियाँ निम्नलिखित हैं—

उदुम्बर (गूलर)— उदुम्बर का वृक्ष सर्वसुलभ है। लंबे समय तक पानी में पड़े रहने पर भी इसकी लकड़ी सड़ती नहीं है। विद्वानों के अनुसार गूलर वृक्ष के नीचे बैठकर जप करने से भगवान दत्तात्रेय प्रसन्न होते हैं। दत्तजी की पूजा में, हवनादि कृत्य में गूलर-काष्ठ ही प्रधान माना गया है।

ऐसी मान्यता है कि षोडशोपचार से पूजित तथा नवार्ण मंत्र से अभिपूरित गूलर की जड़ को तिजोरी में रखने से धनाभाव नहीं होता। उक्त जड़ को शुभ वस्त्र में लपेटकर यदि पूजा गृह मे रखकर संतान की याचना की जाय तो निःसंतानों को भी संतान प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त प्रेम, विवाह तथा सुख-शांति के लिये भी तांत्रिक जन गूलर की जड़ का प्रयोग करते हैं।

अपामार्ग—अपामार्ग का तंत्रशास्त्र में विशिष्ट महत्व है। रवि-पुष्य योग में लायी गयी अपामार्ग की टहनी तथा जड़ फलप्रद होती है। इसकी जड़ का लेप देह पर करने से शस्त्र की चोट का अनुभव नहीं होता, शरीर कठोर हो जाता है। लाल अपामार्ग की जड़ का भस्म बनाकर यदि गो दुग्ध के साथ सेवन किया जाय तो सद्गुणी संतान की प्राप्ति होती है। इसके बीजों की खीर बनाकर खाने से कई दिनों तक भूख नहीं लगती। यह क्षुधा स्तंभन प्रयोग में काम आते हैं। सम्मोहन विद्या में निपुण

---

1 वृहत्संहिता, 95 16।

2 व्रह्नयामल ग्रथ, कलकत्ता, 1934, पृ० 57।

होने के लिये श्वेत अपामार्ग की जड़ का तिलक धारण किया जाता है। वाणी की सिद्धि के लिये अपामार्ग की शाखा की दातुन करने का प्रयोग विहित किया गया है।

सहदेवी (सहदेई)—अद्‌भुत लक्षणों से सपन्न इस वनस्पति का तंत्रशास्त्र में बहुत महत्व है। सहदेवी के पौधे को रवि-पुष्य या किसी अन्य शुभ मुहुर्त के एक दिन पूर्व निमंत्रण देकर अगले दिन पवित्र भावना से उसे ग्रहण करना चाहिये। सहदेवी के पत्ते के रस में केसर और गोरोचन मिलाकर छाया में सुखाकर गोली बना कर विविध प्रयोगों में उपयोग किया जाता है। तंत्र शास्त्र के अनुसार इसे दाहिनी भुजा पर बाँधने से वाद-विवाद तथा मुकदमे में विजय प्राप्त होती है। सहदेवी की जड़ के चूर्ण को गोघृत के साथ सेवन करने से वंध्या स्त्री भी पुत्रवती हो जाती है। किसी आसन्न प्रसवा स्त्री को यदि प्रसव मे पीड़ा हो रही हो तो सहदेवी की जड़ कमर में लाल वस्त्र में लपेटकर बाँधने से सुखपूर्वक प्रसव होता है।

श्रीफल—यह नारियल का लघुरूप होता है। यह देखने में छोटा परंतु प्रभाव तथा गुणों में मूल्यवान होता है तथा विधिपूर्वक प्रयोग करने पर चमत्कारी प्रभाव देता है।

किसी शुभ मुहुर्त में घर लाकर लाल वस्त्र बिछाकर इसे स्थापित कर नैवेद्य आदि से पूजा करना चाहिये। तदुपरांत 'ऊँ श्री श्रियै नम:' मन्त्र से अभिमंत्रित करना चाहिये। ऐसा सुपूजित श्रीफल घर को धन-धान्य से परिपूर्ण कर देता है।

लंवग—तांत्रिक दृष्टि से लवंग का विशेष महत्व है। शुभ मुहूर्त में सात फूलदार लवंग लेकर नवार्ण मंत्र से अभिमंत्रित कर हवन देना चाहिये। इस तरह का लवंग किसी व्यक्ति को वश में करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसके साथ-साथ यह भी जरूरी है कि ऐसे प्रयोग विशुद्ध भावना से ही किये जाने चाहिये, कपट भाव से नहीं।[1]

इस प्रकार तंत्रशास्त्र में भी वनस्पतियों की अतीव महत्ता है। इस प्रक्रिया में यह ध्यान रखा जाता है कि तांत्रिक प्रयोग हेतु ग्रहण की जाने वाली वनस्पति उपयुक्त वार एवं नक्षत्र में ही प्राप्त की जाय। विधि एवं काल विरुद्ध कार्य असफलतादायक, अवसाद पूर्ण एवं अनिष्टकारी होते हैं। तंत्रशास्त्र जो मुहुर्त पर ज्यादा जोर देता है, वैज्ञानिक दृष्टि से खगोल विज्ञान पर आधारित है। वस्तुत: ग्रहों तथा नक्षत्र पुंजों की गतिविधियाँ और स्थितियाँ उनकी किरणों का प्रभाव हमारे प्रत्येक कार्य व्यवहार को अपरिहार्य रूप से प्रभावित करता है।

भोजपत्र—तन्त्र प्रयोगों में भोजपत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसी मान्यता है कि यद्यपि इसके पर्याय तो बहुत है पर इसके जैसा लाभ किसी अन्य से प्राप्त नहीं किया जा सकता। भोजपत्र का प्रयोग अधिकतर मंत्र-यंत्र लेखन में किया जाता है। इस पर लिखे यन्त्र विशेष प्रभावशाली रहते हैं।

---

1 ज्योतिष सागर, जयपुर, अक्टूबर 2000, पृ० 66।

तगर—इसका प्रयोग यंत्र लिखने की सामग्री मे अष्टगंध बनाने हेतु किया जाता है। यह काले रंग का होता है। तंत्र शास्त्र के अनुसार तगर को चौकोर काटकर ताबीज की तरह गले में पहनने से मस्तक रोग, मिरगी, भूत-प्रेत आदि रोग-व्याधियॉ दूर हो जाते हैं।

उपसंहार

आधुनिक विज्ञान प्राचीन ज्योतिष का ही एक अग है। ज्योतिष के तत्वों से पूर्णतया परिचित हुये बिना विज्ञान भी असमय मे वर्षा का आयोजन और निवारण नहीं कर सकता। वस्तुतः चंद्रमा जिस समय जलचर राशि और जलचर नक्षत्रों पर रहता है, उसी समय वर्षा होती है। प्राचीन मन्त्रशास्त्र में वृष्टि के आयोजन एवं निवारण की जो प्रक्रिया बतायी गयी है उसमें जलचर नक्षत्रों को आलोड़ित करने का विधान है। वैज्ञानिक वर्ग जलचर चंद्रमा के तत्वों को ज्ञात कर जलचर नक्षत्रों के दिनों में उन तत्वो को संयोजित कर वृष्टि कार्य संपन्न करा लेता है।[1] ज्योतिष शास्त्र की इस विधा का उपयोग कृषि कार्यो हेतु किया जाता रहा है।

आयुर्वेद को ज्योतिष शास्त्र का चचेरा भाई माना गया है। ज्योतिष के ज्ञान के बिना औषधियों का निर्माण यथासमय नहीं किया जा सकता। ग्रहों के तत्व एवं स्वभाव को ज्ञात कर उन्हीं के अनुसार उस तत्व एवं स्वभाव वाली दवा के निर्माण से वह दवा विशेष गुणकारी होती है। ज्योतिष के ज्ञान द्वारा रोगी की चर्या और चेष्टा को अवगत कर बहुत अंशों में रोग की मर्यादा जानी जा सकती है। इस तरह ज्योतिष तत्वों का जानकार चिकित्सक अपने व्यवसाय में अधिक सफल हो सकता है।

पर्यावरणीय घटकों को संतुलित बनाये रखने में वृक्षों और वनस्पतियों की भूमिका सदैव से रही है। लगभग सभी कालों में बन-बाग, उपवन, वाटिका, सर, कूप वापी की प्रथा रही है। ज्योतिष शास्त्र में बाकायदा वृक्षारोपण एवं उद्यान लगाने की विधि का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। ग्रहों की शांति हेतु पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन में विशेष प्रकार के पल्लव, पुष्प, काष्ठ आदि की आवश्यकता पड़ती है जो नवग्रह एवं नक्षत्रों से संबंधित पौधे ही प्रदान कर सकते हैं। पुराणों में भी इस तथ्य का उल्लेख प्राप्त होता है कि जिस नक्षत्र में ग्रह विद्यमान हो उस समय उस नक्षत्र संबंधी पौधे का यत्नपूर्वक संरक्षण तथा पूजन से ग्रह की शांति होती है तथा जातक को मनोवांछित फल मिलता है।

वृहत्संहिता, पुराणों, कृषि पराशर और 'अल्बरुनी के भारत' आदि ग्रंथों में अंकित फलित-ज्योतिष संबंधी सूत्र एवं भविष्यवाणियाँ इस समय के लोगों की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति को प्रतिविम्बित करती हैं। सितारों और नभोमंडल ग्रहों की गतियों के प्रभावों का संबंध जीवन के उन विशिष्ट लक्षणों से है जो कृषिपरक पर्यावरण में पाये जाते हैं। विवाह, पर्व आदि के लिये कौन-कौन

---

1 भारतीय ज्योतिष—डॉ० नेमिचद्र शास्त्री, नई दिल्ली 1992, भूमिका।

से शुभ अवसर हैं। ये खेतिहर समाज की जरूरत और सुविधा को देखकर बताये जाते हैं। यह कोई संयोग की बात नहीं है कि विवाह के शुभ दिन प्राय: तभी होते हैं जब फसल की कटनी समाप्त हो जाती है और बुवाई में कुछ देर रहती है। स्वभावत: यह किसान की दृष्टि से आदर्श समय है जब वह आर्थिक रूप से मजबूत और खेती के कामों से मुक्त रहता है।[1]

ज्योतिष शास्त्र में वनस्पतियों के माध्यम से बहुत सी भविष्यवाणियाँ की जाती हैं एव शुभ-अशुभ का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। वृक्षारोपण, दंतधावन, शय्या एवं आसन हेतु प्रशस्त पेड़, घर के चारों तरफ स्थित पेड-पौधों से शुभाशुभ का ज्ञान, वृक्षों के माध्यम से भविष्यगत आपदाओं का ज्ञान ज्योतिष के अंतर्गत ही आता है। इसी तरह विशिष्ट पेड़-पौधे को देखकर धरती के अंदर जलस्रोत की स्थिति तथा पानी के गुण के बारे में ज्योतिषशास्त्र आसानी से आंकलन कर लेता है। ज्योतिष में पेड़-पौधों का अतीव महत्व है जिसका वर्णन उपर्युक्त अध्याय में सविस्तार किया गया है। ऐसे में ज्योतिष शास्त्र का प्रयोग कर हम वर्तमान समय में अपने और पूरे समाज के जीवन को उन्नत बना सकते हैं।

●

1 प्रारभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास—डॉ० राम शरण शर्मा, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1993।

अध्याय-6

प्राचीन भारतीय कला में पेड़-पौधे

कला मानव मस्तिष्क की उच्चतम एवं प्रखरतम कल्पना है। किसी भी कला-रचना में एक विशिष्ट कौशल तथा लय होता है, जिसके कारण वह लोगों का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करती है, साथ ही मानव हृद्य में सुखद भाव और अर्थपूर्ण अनुभूतियाँ उत्पन्न करती है।

मन के भावों को अधिकतम सौंदर्य के साथ दृश्य रूप में प्रकट करना ही कला है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कला मनोमय जगत और भूतमय जगत के मध्य एक सेतु की भूमिका निभाती है। कला मनुष्य के हृद्य के इतनी निकट होती है कि जो कुछ मन में होता है वह कला में परिलक्षित हो जाता है। कला मनुष्य की सौन्दर्य कल्पना को साकार करती है। इस तरह कला किसी विचार या कल्पना को सुसंगत अर्थ में दृश्य रूप देती है। कला का यही रहस्य है कि उसमें लोक की सांस्कृतिक परंपरा की व्याख्या होती है। भारतीय कला तत्व के अनुसार कला स्वर्गिक भावों का पृथिवी पर अवतार है।

कला संस्कृत भाषा का शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में मतवैभिन्यता है। कुछ विद्वान कला शब्द का अर्थ सुंदर, कोमल, मधुर या सुख लाने वाला मान कर कला को उसके साथ संबद्ध करते हैं जबकि कुछ इसे कल् धातु (शब्द करना, बजना) से संबंधित मानते हैं। एक अन्य वर्ग इसे कड् धातु (प्रसन्न करना) से जोड़ने के पक्ष में है। यद्यपि 'कला' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण, तैत्तरीय आरण्यक आदि में है पर सुसंगत अर्थ में कला का प्रथम प्रयोग भरत मुनि द्वारा अपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में किया गया।

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।[1]

किसी भी जन समाज की कला उसकी मानसिकता से निर्धारित होती है। उसकी मानसिकता उसकी अवस्थिति का उत्पाद होती है। प्लेखानोव के अनुसार कला मनुष्य के मात्र भावों को ही अभिव्यक्त नहीं करती अपितु वह मनुष्य के भावों और विचारों दोनों को ही अभिव्यक्त करती है। यह अभिव्यक्ति अमूर्तन में नहीं बल्कि 'जीवित विम्बों' में होती है।.....वस्तुत: कला का आरंभ तब होता है जब मनुष्य अपने चारों ओर के यथार्थ के प्रभाव से अनुभव किये गये भावों और विचारों को स्वयं उद्बुद्ध करता है और सुनिश्चित विम्बों में अभिव्यक्त करता है। कहना न होगा कि प्राय: वह ऐसा

1 नाट्यशास्त्र, सपा०—वटुकनाथ शर्मा, वाराणसी, 1929, 1 13।

इस उद्देश्य से करता है कि जो कुछ उसने फिर से उद्भूत और महसूस किया है, उसे दूसरो तक संप्रेषित कर सके।[1] इस तरह कला स्वयं में एक पूर्ण सामाजिक क्रिया है।

वृक्ष एवं वनस्पतियां प्रकृति की एक महत्वपूर्ण कारक हैं। चहुँ ओर बिखरती इनकी छटाओं से कलाकारों का अभिभूत होना स्वाभाविक ही था। इस तरह मन की अभिव्यक्ति से बाहर निकल कर तूलिका के माध्यम से यह कला के रूप में सामने आयी। भारतीय कला में वृक्षों-वनस्पतियों का अंकन कला की शुरुआत से ही दिखायी पड़ता है। हड़प्पा संस्कृति के पुरावशेषों, मुहरो, मृदभांडों आदि पर अकित वृक्षों-वनस्पतियों के माध्यम से तत्कालीन समाज में इसके प्रति अनुरक्ति तथा धार्मिक महत्ता का पता चलता है। शुंग कला में स्तूपों पर अंकित कलाकृतियों में वानस्पतिक अंकनों की ही प्रधानता है। कहीं पर यह अंकन प्रतीक रूप में है, तो कहीं पर प्राकृतिक सौंदर्य के चित्रण रूप में। सांची की कला में पेड-पौधों का इतना प्रचुर अकन है कि मार्शल ने इसे 'वानस्पतिक कला' की संज्ञा दे डाली है।

'शालभंजिका' भारतीय कला का लोकप्रिय अभिप्राय था। मथुरा की कला में स्त्रियों का वृक्षों के साथ अंकन सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में किया गया है। विभिन्न क्रीड़ाओं का अंकन विभिन्न दृश्यों में हुआ है, जो सहकार भंजिका, अभ्यूषरवादिका, उदक क्ष्वेडिका, विसखादिका, अशोकोत्तंसिका, पुष्पावचायिका, दमनभंजिका, इक्षुभंजिका आदि स्वरूपों में स्तंभों पर विद्यमान है। इसी तरह 'दोहद'—'स्त्री एवं वृक्ष' अभिप्राय का एक प्रकार विशेष था। जिसे कलाकारों ने प्रतीक रूप में चयनित किया था।

प्रस्तुत अध्याय में कला में पेड़-पौधों के अंकन एवं उससे संबंधित अन्य अभिप्रायों के उल्लेख को अलग-अलग समय की कला के अंतर्गत विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है जो निम्नलिखित है।

हड़प्पा संस्कृति की कला में पेड़-पौधे—वृक्षों एवं पौधों को देवता के रूप में मानने और पूजने के स्पष्ट साक्ष्य हड़प्पा संस्कृति की कला में प्राप्त होते हैं। यहाँ से प्राप्त पुरावशेषों तथा मुहरों पर अंकित पेड़-पौधों के प्रति अनुरक्ति तथा उसकी धार्मिक महत्ता का पता चलता है। हड़प्पा कला के चित्रों के दो उद्देश्य दिखायी पड़ते हैं[2]— (i) सौंदर्य या शोभा का उत्पादन, और (ii) धार्मिक भावना की पूर्ति। उपलब्ध पुरासाक्ष्यों के आधार पर हड़प्पा संस्कृति में वृक्ष पूजा के दो रूप मिलते हैं।[3] प्रथम-वास्तविक वृक्ष की पूजा पद्धति, जिसके सर्वाधिक मुद्रा साक्ष्य हड़प्पा से प्राप्त हुये हैं। द्वितीय रूप में वृक्ष की पूजा प्रत्यक्षत: न होकर उसके प्रतीकात्मक अधिदेवता की उपासना पर बल मिलता है। ऐसे उदाहरण मोहनजोदड़ो से मिले कतिपय मुहरों पर प्राप्त होते हैं।

---

1 'असबोधित पत्र: कला और सामाजिक जीवन', प्लेखानोव, मास्को, 1957, पृ० 8-9।

2 भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, वाराणसी, 1977, पृ० 33।

3 भारतीय सस्कृति एवं कला, हरि नारायण दूबे, इलाहाबाद, 1999 पृ० 68।

हडप्पा से प्राप्त आयताकार एवं लेखयुक्त एक मुहर में एक तरफ सिर के बल खड़ी एक स्त्री का चित्र है जिसकी योनि से एक पौधा प्रस्फुटित हुआ दिखाया गया है। एक अन्य मुहर पर नारी के गर्भ से वृक्ष निकलता हुआ चित्रित है। एक और मुहर मे पीपल के पेड़ की दो शाखाओं के बीच में एक स्त्री का चित्र है तथा पेड़ के नीचे बकरा लिये हुये मानव का चित्रण है। उक्त चित्रणों मे पीपल के पेड का अंकन महत्वपूर्ण है। जिसे भारतीय परंपरा में विश्व का प्रतीक माना जाता है।[१] स्त्री अंकनों का संबध मातृदेवी से जोडा गया है।

केदार नाथ शास्त्री प्रभृति विद्वान हड़प्पा सस्कृति में मातृदेवी की जगह वृक्ष-देव की प्रमुखता की बात करते हैं।[2] यह रूद्र-शिव से इतर एक सींग वाला देवता था जो संभवत: पीपल के पेड का अधिष्ठाता देवता था। इसके विपरीत अधिकांश विद्वान इस देवता का तादात्म्य रुद्र-शिव के साथ स्थापित करते हैं। ध्यातव्य है कि बाद के समय में रूद्र-शिव को आरोग्यकर वनस्पतियों के अभिभावक के रूप में मान्यता प्रदान की गयी।

हड़प्पा संस्कृति के मुहरों एवं मृद्भांडों आदि पर पीपल, बबूल, नीम, खजूर, ताड़ तथा केले के वृक्षों का अंकन मिलता है।[3] कुछ मुहरों पर पीपल के पेड़ को बाड़ से घिरा हुआ दिखाया गया है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर पर पीपल वृक्ष के एक तने से एकश्रृंगी दो पशुओं के सिर निकलते हुये दिखाये गये हैं। एक अन्य मुद्रा पर एक नग्न देवता को वृक्ष की शाखाओ के मध्य खड़ा अंकित किया गया है। उसके पीछे एक अन्य आकृति है, जिसका मुख पुरूष का, शरीर का कुछ भाग बकरे का तथा शेष भाग बैल का है। कतिपय विद्वान इन्हें अश्वत्थ वृक्ष का वाहन मानते हैं। इसके बाद घुटनों तक वस्त्र पहने हुये सात नारियां एक पंक्ति में सिर पर पीपल की टहनियां लगायें खड़ी हैं। मैके ने उन्हें शीतला देवी तथा उनकी छ: बहनें कहा है।[4] शीतला देवी की पूजा की उक्त परंपरा आज भी भारत के गाँवों मे देखी जा सकती हैं जो पेड़ों के नीचे ही आयोजित होती है।

मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुद्रा पर दो व्यक्ति हाथ में एक-एक वृक्ष धारण किये हुये हैं। हड़प्पा से प्राप्त एक मुद्रांक में पीपल की एक टहनी को झुका हुआ दिखाया गया है। टहनी के गोल घेरे में एक देवता को दिखाया गया हैं। मनुष्य द्वारा वृक्ष उखाड़ने के दृश्य को महाभारत में उल्लिखित कृष्ण द्वारा यमलार्जुन वृक्षों को उखाड़ने वाले आख्यान से संबद्ध किया गया है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक अन्य मुहर में एकश्रृंगी दो पशुओं को पीपल वृक्ष की शाखा से प्रस्फुटित होते हुये दिखाया गया हैं। मृदभांडों पर केले के पौधे और पीपल की पंक्तियों का चित्रण प्राय: मिलता है।

---

1 भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, वाराणसी, 1977, पृ० 43।

2 पुरातत्व विमर्श, जय नारायण पाण्डेय, इलाहाबाद, 1991 पृ० 383।

3 वही, पृ० 387।

4 भारतीय कला, के० डी० बाजपेयी, भोपाल, 1994, पृ० 10।

उक्त कलात्मक अभिप्रायो से ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा संस्कृति के लोग कुछ वृक्षों को पवित्र मानकर पूजा किया करते थे। कुछ विद्वानों के अनुसार पीपल के पेड़ मे हड़प्पा संस्कृति का मुख्य देवता निवास किया करता था, अत: इसे अत्यंत पवित्र माना जाता था। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कालातर मे पीपल के पेड की उपासना स्वतंत्र रूप धारण कर लेती है। आज भी भारत मे पीपल, वट, केला, तुलसी आदि वनस्पतियो की पूजा अत्यंत श्रद्धा एवं विश्वास के साथ की जाती है।

कला में वैदिक प्रतीक: वानस्पतिक संदर्भ में— वैदिक ग्रंथों में कलात्मक अभिप्रायों के रूप में वनस्पतियों का भरपूर उल्लेख प्राप्त होता है। इन उल्लेखों में पद्म या पुष्कर, कल्पवृक्ष, कल्पलता, वनस्पति, पुंडरीक (पुंडरकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृत्तम)[1] हिरण्यस्रक[2] एवं पुष्करस्रज[3] (तुलनीय-गुप्तकाल की किंजल्किनी माला) महत्वपूर्ण हैं।

कमल के साथ लक्ष्मी का अटूट संबंध है। देवी लक्ष्मी कमल के आसन पर विराजमान, कमल-वन में खड़ी पद्मिनी या पद्ममालिनी देवी का रूप है। पद्म या कमल उस जीवन तत्व के सूचक हैं जो सृष्टि के आदि कारण रुप समुद्र मंथन से प्रकट होते हैं।[4]

इसी तरह वेदों में उल्लिखित श्री वृक्ष का अभिप्राय संसार रुपी वृक्ष से है, जिसे 'अश्वत्थ' कहा गया है। बाद में वही पीपल या बोधि वृक्ष के रूप में जाना गया। उसके भीतर की दुर्धर्ष शक्ति फूल एव फलों के रूप में प्रकट होती है। वही पीपली और बड़वट्टों के रूप में प्रकट होती है जो महती प्राणशक्ति का रूप है। स्कंद का जन्म शरवण या सरपत के वन में कहा गया है जहाँ प्रत्येक शरकांड प्राण के अंकुर या घटक कोश का प्रतीक है।

वासुदेव शरण अग्रवाल भारतीय कला को जंबू द्वीप की व्यापक कला का ही एक अंग मानते हैं। पुराणों में चीन से लेकर कास्पियन सागर और भारत से साइबेरिया तक के महाप्रदेश को जंबू द्वीप की भौगोलिक संज्ञा दी गयी है। इस पूरे क्षेत्र में रूप, आकृति, दृश्यों एवं कथानकों का साम्य पाया जाता है। जंबू द्वीप की कला में वानस्पतिक अभिप्रायों का वर्णन प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। इनमें से कुछ अभिप्राय निम्नलिखित हैं।

श्री वृक्ष—श्री वृक्ष को वेदों में 'वनस्पति ब्रह्म वृक्ष' एवं उपनिषदों में 'अश्वत्थ' कहा गया है। वी.एस. अग्रवाल महोदय के अनुसार यूरोप के उत्तरवर्ती देशों की गाथाओं में 'यगद्रशील' नामक वृक्ष को विश्व वृक्ष की संज्ञा दी गयी है। वैदिक मान्यता के अनुसार स्वर्ग में एक सुपलाश वृक्ष था।उसी

1 अथर्ववेद, 10 8 43।

2 वही, 10 6 4।

3 यजुर्वेद, 2 33।

4 भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, वाराणसी, 1977, पृ० 56।

पर विश्वासु गंधर्व द्वारा सुरक्षित सोमघट था वहीं से गरुड़ उसे पृथ्वी पर लाये। कला अंकनों में (उदाहरण के तौर पर साँची महास्तूप के पूर्वी तोरण द्वार पर) श्री वृक्ष की पूजा करते हुये दो सुपर्ण अंकित है। मिस्र एव मेसोपोटामिया की कला में भी इसी प्रकार के वर्द्धमान श्रीवृक्षों की सुपर्णो द्वारा पूजा के दृश्य अकित किये गये हैं। इसे सौभाग्य और समृद्धि का सूचक माना गया है। पश्चिम एशिया के अंकन जैसा ही सांची में इसका अंकन है। देवगढ़ मंदिर के द्वार स्तंभ पर भी प्रथानुसार रूढ़िग्रस्त रूप में श्रीवृक्ष का अंकन हुआ है।[1] वराहमिहिर ने देवमंदिर के द्वार पर इस अलंकरण का होना आवश्यक बताया है।

शेषं मांगल्यविहगैः स्वस्तिकैर्घटैः। मिथुनैः पत्रवल्लीभिः प्रमथैश्चोपशोभयतै।।[2]

तालवृक्ष या तालध्वज—यह बलराम का ध्वज था। मथुरा की कला में इसका अंकन बहुतायत में हुआ है। इसका शीर्षक तालपर्ण या ताल की पंक्तियों के रूप में बनाया जाता था। इसकी संज्ञा तालकेतु भी थी।

मुचकुंद—आनंद कुमार स्वामी ने मुचकुंद पुष्प को नीलोत्पल कहा है। रामपुरवा से प्राप्त अशोककालीन वृष शीर्षक की चौकी पर तालपर्ण और मुचकुंद पुष्प दोनों अलंकरण साथ-साथ अंकित है।

अन्य अलंकरण— उपर्युक्त के अतिरिक्त फूल-पत्तियों के अन्य अलंकरण भी मिलते हैं। जैसे- पदुमक या पुष्कर, चतुर्दल पुष्प (चौफुलिया), पीपल की पत्ती (अश्वत्थ पर्ण), कंटकारि (भटकटैया), अंग्रेजी एकेंथस की पत्ती। कुमार स्वामी के अनुसार ये अलंकरण जंबू द्वीप और भारत दोनों की कला में मिलते हैं।[3]

प्राचीन भारतीय कला में अलंकरणों का ऐसा व्यापक प्रचार सूचित करता है कि शुंग और मौर्य युगों से पूर्व ही काष्ठ शिल्प एवं दंत-शिल्प में सजावट के लिये ये बहुयायत प्रयुक्त होने लगे थे। मौर्य, शुंग और सातवाहन युग की कला में उपलब्ध अभिप्राय कुछ नये नहीं थे अपितु कला के स्वाभाविक विकास में क्रम से प्राप्त थे।

चकियों पर वानस्पतिक अलंकरण—वासुदेव शरण अग्रवाल महोदय तक्षशिला से पाटलिपुत्र तक के क्षेत्र में मिलने वाली ढ़ेर सारी चकियाओं का उल्लेख करते हैं जिन पर मातृदेवी की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं, साथ ही फूल, पत्ती और पशुओं का संयोग भी है अथवा उन पर केवल फूल-पत्ती की लतरों और ज्यामितीय रेखोपरेखाओं के चित्र हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सिंधु घाटी से प्राप्त

---

1 भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, वाराणसी, पृ० 84।

2 वृहत्सहिता, 56 15।

3 भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० 84।

योनिमूर्तियो की परपरा में हैं। इस तरह के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(1) मथुरा से प्राप्त गोल चकरी के टुकडे पर ताड़ के पेड़ का अंकन स्पष्ट दिखायी पड़ता है। यह कलकत्ता के इडियन म्यूजियम में सुरक्षित रखा गया है।[1] मथुरा से प्राप्त एक दूसरी चकिया के बीच मे अष्टदल कमल है। उससे चारों दिशाओ मे चार प्रतान निकले हैं और लतर की ग्रंथियां बनाते हुये बढ़ रहे हैं। कर्णिका भाग पर आठ स्त्री मूर्तियों (अष्टमातृका) के बीच-बीच में मुचकुंद के पुष्प चित्रित हैं।[2]

(11) राजघाट से प्राप्त चकिया के टुकड़े पर तालवृक्ष या तालध्वज का ऊपरी भाग दिखाया गया है। जो पश्चिम एशिया की मातृपूजा में मागलिक समझा जाता था। उसकी शाखा के कई बार दुहराने से श्रीवृक्ष का रूप बनता था।

(111) कोसम से प्राप्त चकिया के टुकड़े पर चार मातृदेवियां और चार तालध्वज हैं। तालकेतुओं का संबध प्राचीन ईरान में मातृदेवी से था। यह पुण्यवृक्ष माना जाता था। उसकी स्मृति भारत के तालध्वजों में और मातृदेवी की चकिया के तालकेतुओं में पायी जाती है। यह स्त्री की उर्वरा शक्ति का सूचक था।

कोसम से ही प्राप्त एक अन्य चकिया के भीतरी भाग में पाँच श्रीवत्स चिन्ह हैं। उनके बीच-बीच में पाँच मुचकुंद पुष्प हैं। बाहरी मंडल मे अनेक रूप अंकित हैं जिनमें तीन तालवृक्ष एवं तीन मातृदेवियां अकित हैं।[3]

(1v) वैशाली से प्राप्त चकिया पर मुचकुंद, पीपल, सपक्ष सिंह एवं मातृदेवी की दो मूर्तियां अंकित हैं।[4]

(v) संकिसा (फर्रूखाबाद) से प्राप्त चकिया पर तीन मातृदेवियां, तीन तालवृक्ष और तीन नंदिपद हैं। दूसरे एवं तीसरे मंडल में चंपाकली की माला है।

(v1) पटना से प्राप्त चकिया पर बीच में पन्द्रह पंखुड़ियों वाला कमल का फुल्ला है। एक अन्य चकिया पर इक्कीस कमल पत्र और दूसरे में बारह पशु-पक्षी हैं।

(v11) रोपड़ से प्राप्त चकिया के टुकड़े पर भीतरी छिद्रयुक्त भाग में मातृदेवी और मुचकुंद अलंकरण प्राप्त होता है।

---

1 पुरातत्व वार्षिकी, 1930-34, फलक 130।

2 भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० 91।

3 वही, पृ० 92।

4 वैशाली एक्सकेवेशन, कृष्णदेव तथा विजयकात मिश्र, पृ० 63-64।

(viii) प्रयाग संग्रहालय में सुरक्षित एक अज्ञात चकिया पर मुचकुंद पुष्पों से अंतरित विहगयुक्त दो सुपर्ण है जो एक वृक्ष की दो शाखाओ पर बैठे हैं। यह 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' का चित्रण प्रतीत होता है।[1]

उपुर्यक्त चकियों पर मातृदेवी के साथ तालवृक्ष या तालध्वज का अनेक बार चित्रण है जिसे देवी मूर्तियों के साथ बहुशः दुहराया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि देवीपूजा से उसका घनिष्ठ संबंध था।

ऋग्वेद के खिल भाग में श्रीसूक्त के अतर्गत देवी का वर्णन प्राप्त होता है। कमल उसका प्रतीक एवं आसन है। उसके चक्र की नाभि में पद्म का चिन्ह है। वह कमलों की माला पहनती है एवं कमल वन में निवास करती हैं। उनका जन्म समुद्र से हुआ जिसके ऊपर पद्म प्रकट होता है। वह कमल के पुष्प और पत्रों से संवेष्टित रहती हैं। उसका मंगल वृक्ष बिल्व है। बहुत बार उसके स्थान पर ताल वृक्ष दिखाया गया है। ताल वृक्ष के फलों की तुलना बिल्व फल से की गयी है। इसी से ताल वृक्ष का प्रतिरुप बिल्व वृक्ष माना गया। ईरान में ताल वृक्ष जीवन, प्राण एवं समृद्धि का द्योतक माना जाता है। वही स्थान भारत में बिल्व का है।

मौर्य कला में वनस्पतियां—हड़प्पा सभ्यता के बाद मौर्य युग में पहली बार कला एवं स्थापत्य के सुसंगठित क्रिया-कलाप के दर्शन होते हैं। मौर्य कला में वनस्पतियों एवं लताओं का पर्याप्त अंकन प्राप्त होता है। चंद्रगुप्त मौर्य की सभा में सजावट के उद्देश्य से अनेक अलंकरण प्रयुक्त हुये थे। उदाहरण के तौर पर रत्नमय वृक्ष, हेममय पादप, गुल्म और अवतान, फल-पुष्पप्रद पुष्पमंजरी जो नील, पीत, लोहित और श्याम वर्णो के रत्नों की पच्चीकारी से बनायी गयी थी। उसके छतनार पल्लवों पर नाना भाँति के पक्षी बिठाये गये थे।[2]

पाटलिपुत्र के राजमहल के पालिशदार स्तंभों को सुनहरी लताओं और चाँदी के पक्षियों से सजाया गया था। इसका वर्णन करते हुये मेगास्थनीज लिखता है—'राजप्रासाद सुनहले स्तंभों से अलंकृत है। उन स्तंभों को परस्पर मिलाने वाली एक सुनहली घनी बेल है। इस बेल पर चाँदी के भाँति-भाँति के विहग नाना मुद्राओं में बैठाये गये हैं।'

अशोक के स्तंभों पर पर्याप्त रूप से वानस्पतिक अलंकरण मिलता है। अशोक स्तंभ के मुख्य भाग यष्टि के ऊपर अधोमुख कमल की आकृति मिलती है। कुछ विद्वान इसकी तुलना पर्सिपोलिस के घंटा शीर्ष से करते हें, जबकि डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे पूर्णघट या मंगल-कलश का प्रतीक बताया है।[3] रमपुरवा के साड़ स्तंभ-शीर्ष वाले स्तंभ की पट्टी पर लता-पुष्प का अलंकरण मिलता है, जो अपरिष्कृत है।

---

1 भारतीय कला, वासुदेव शरण अग्रवाल, वाराणसी 1977, पृ० 94।

2 वही, पृ० 101।

3 स्टडीज इन इंडियन आर्ट, वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० 366।

मौर्य स्तंभ शिराओ या आसन पर अकित कला-अभिप्रायों में बँटी हुई रस्सी की डिजाइन, कॅटीली पत्ती (Acanthus leaf), खजूर की पत्ती की तरह आकृति (palmette), मधुवेल[1] तथा कुछ यूनानी पौधे और पत्तियाँ, जिससे यूनानी कला के प्रभाव का अनुमान किया गया है, स्तंभ शीर्ष की पशुआकृति के नीचे की पट्टी को अलकृत करने के लिये प्राय: उपयोग किया गया है। अशोक स्तंभों पर यूनानी पौधो का अंकन कुछ तथ्यों को स्पष्ट करता है। (i) भारत के यूनान के साथ अच्छे संबंध, (ii)दोनों देशों के बीच कलात्मक लेन-देन, (iii) संभवत: यूनानी कलाकारों को भारत बुलाकर उनके द्वारा भारतीय शिल्पकारो को प्रशिक्षित किया गया, (iv) उपयोगिता के आधार पर कुछ यूनानी वनस्पतियाँ भारत मँगायी गयी। बाद में संबंधों को पुष्ट करने की दृष्टि से इनका अकन अशोक स्तंभों पर किया गया।

मौर्य काल में राजप्रासादों के विन्यास में भवनोद्यान और पुष्करिणी का आवश्यक स्थान था। सभापर्व में कमलों के ताल को नलिनी कहा गया है जिससे सुंदर पद्म और सौगंधिक खिले हुये थे। सभा के दोनों ओर शीतल छाया देने वाले पुष्पवृंत महावृक्ष थे। उक्त वर्णन भी मौर्य कला अभिप्रायों मे वानस्पतिक अलंकरण की महत्ता की तरफ इंगित करता है।

शुंग-कला—शुंग कला में कला एवं स्थापत्य की बहुत उन्नति हुई। शुंग कला के विषय धार्मिक जीवन की अपेक्षा लौकिक जीवन से अधिक संबंधित है। कुमारस्वामी के शब्दो में कहें तो शुंग कला मौर्य कला की अपेक्षा एक बड़े वर्ग के मनुष्यों के मस्तिष्क, परंपरा, संस्कृति एवं विचारधारा को प्रतिविम्बित कर सकने में अधिक समर्थ है। इसका प्रधान विषय आध्यात्मिक अथवा नैतिक न होकर पूर्णतया मानव जीवन से संबंधित है।[2]

शुंग कला के सर्वोत्तम स्मारक स्तूप हैं। स्तूप का संबंध प्राय: बौद्ध धर्म से माना जाता है। ऋग्वेद मे वितान लेकर फैले हुये वृक्ष के साथ स्तूप की तुलना की गयी है।

अबुघ्ने राजा वरूणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्ष।
नीचीना: स्थुरूपरि बुध्न एषामस्मे अंतर्निहिता: केतव: स्यु:।।[3]

स्तूप को नाना भाँति के अभिप्रायों से अलंकृत किया जाता थाइसमें वानस्पतिक अभिप्राय प्रमुख होते थे। पुष्पमाला, पुष्पशाखाधारी देवता, कमल के फुल्ले लिये हुये देवगण आदि अभिप्रायों द्वारा स्तूपों को सजाया जाता था। इस समय के दो स्तूप प्रमुख हैं—

(i) भरहुत स्तूप, (ii) सांची का स्तूप

---

1 भारतीय कला, जे० एन० पाण्डेय, पृ० 38।

2 हिस्ट्री आफ इंडियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट, ए० के० कुमार स्वामी, पृ० 17।

3 ऋग्वेद, 1.24.7।

भरहुत स्तूप—वानस्पतिक अभिप्राय भरहुत स्तूप के मुख्य विषय थे। स्तूप के पृष्ठ भाग में जातकों के दृश्य, फुल्ले, फलों से भरी हुई लुम्बिया हार आदि अलंकरण अंकित किये गये हैं। वस्तुतः ये उत्तर कुरू मे होने वाले कल्प वृक्ष और कल्प लताओं के दृश्य हैं। उनमे लगे हुये कटहल के फल मदिरा-पात्र और आम्र-फल लाक्षाराग से भरे हुये पात्रों के सूचक है। उष्णीष के सम्मुख भाग या बाहर की ओर कमल की भारी लतर के बीच-बीच में सुंदर फल बनाये गये हैं जिसके कारण पूरी वेदिका को ही पद्मवर वेदिका कहा जाता था।[1]

वेदिका स्तंभों के बीच कमल का अंकन कई तरह से मिलता है। कहीं यह सूर्याकृति फुल्ला (पदुमक) के रूप में है, तो कहीं पर चंद्राकृति आधे फुल्लक या अर्धपदुमक रूप में। इनकी आकृति में कर्णिका, पंखुडी, बछेड़ी, पद्म पत्र, पद्म नाल आदि का अंकन अनेक तरह का है। खंभों पर सात मानुषी बुद्धों के प्रतीक बोधि वृक्ष बनाकर उनके नाम भी लिख दिये गये हैं।

तोरण द्वार के खंभे पर अंकित एक दृश्य बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें नागराज इलापत्र को बोधिवृक्ष की पूजा करते हुये दिखाया गया है। इस बोधिवृक्ष के नीचे एक चबूतरा बना हुआ है। यह शिरीष का वृक्ष है, जिसे क्रकुछंद का बोधि वृक्ष कहा गया है।[2] एक अन्य अंकन में जंगली हाथियों को गौतम बुद्ध के बोधिवृक्ष अश्वत्थ और काश्यप बुद्ध के बोधिवृक्ष न्यग्रोध की पूजा करते हुये दिखाया गया है।

भरहुत स्तूप के स्तंभों पर उत्कीर्ण सब देव-मूर्तियाँ स्त्रियों की हैं। चुलकोका देवी एक हाथ से पेड़ के मुख्य तने को और दाहिने हाथ से पत्तियों के गुच्छे को पकड़े हुये हैं। भरहुत में मातृका देवी का जो स्वरूप विकसित हुआ उसमें उसे कमल के फूल पर खड़ी हुई या कमल-वन में बैठी हुई दिखाया गया है।[3]

इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित एक स्तंभ पर वटवृक्ष के नीचे पाँच फन वाले मुचलिंद नागराज की मूर्ति उत्कीर्ण है। जैसा कि उस पर खुदे लेख से ज्ञात होता है एक बड़े अंधड़ के समय मुचलिंद ने बुद्ध की अपने फन फैलाकर रक्षा की।[4] एक अन्य दृश्य में हाथी पर सवार सम्राट अजातशत्रु हाथी से उतर कर अंजलि मुद्रा में वज्रासन की वंदना करते हुये दिखाये गये हैं। पीछे परिदृश्य में आम का वृक्ष, फल एवं पत्तों के साथ दिखाया गया है। एक और दृश्य में एक वृत्त में चार हाथियों को एक के पीछे एक दौड़ते हुये दिखाया गया है। हरेक हाथी के सूड़ में फूल, पत्तियां या फल हैं।

---

1 भारतीय कला, वी० एस० अग्रवाल, पृ० 142।

2 द कल्ट आफ ट्रीज एण्ड ट्री वर्शिप इन बुद्धिस्ट हिदू स्कल्पचर, एम० एस० रधावा, पृ० 13-17।

3 कुमार स्वामी, बोधगया, फलक 117।

4 भारतीय कला, वी० एस० अग्रवाल, पृ० 147।

भरहुत स्तूप की वेदिका और तोरणों पर धार्मिक और देवतामय संसार का उल्लासपूर्ण अंकन हुआ है। इसी क्रम में वृक्षमह परंपरा के अंतर्गत कई बार के बोधिवृक्षों का अंकन किया गया है। ये बोधि वृक्ष निम्नलिखित है।[1]

1 **अश्वत्थ (पीपल)**—यह गौतम बुद्ध का बोधि वृक्ष था। राजा, जनसमूह, हाथी और नाग इस बोधिवृक्ष की पूजा करते हुये अंकित हैं। इसके चारो ओर वेदिका बनायी जाती है अथवा बोधि घर का अकन किया जाता है। जिसमें नीचे खुला हुआ मंडप है और ऊपर पटावदार शाला दिखायी गयी हैं जिसकी कल्पना वास्तु एव शिल्प दोनों दृष्टियों से अत्यंत सुदर है।

2 **वटवृक्ष**—यह काश्यप बुद्ध का बोधि वृक्ष है। कई दृश्यों में इसका सुंदर चित्रण हुआ है। विशेषत: एक दृश्य मे जहॉ जंगली हाथी इस वृक्ष की पूजा करते हुये दिखाये गये हैं। इस पर 'बहुहत्थिको निगोदे' अर्थात बहुत से हाथियों का न्यग्रोध या वट वृक्ष यह लेख अंकित है।

3. **उदुम्बर (गूलर)**—यह कनक मुनि बुद्ध का बोधि वृक्ष है।

4 **पाटलि**—यह बुद्ध विपस्मिन का बोधिवृक्ष है, जिसका नाम फुल्ले के ऊपर उत्कीर्ण है। पाटलि वृक्ष को फूलों से लदा हुआ दिखाया गया है।

5 **शाल वृक्ष**—बुद्ध विश्व भू के बोधि वृक्ष के रूप में शाल वृक्ष का अंकन किया गया है।

6 **शिरीष वृक्ष**—यह बुद्ध क्रकुच्छन्द का बोधि वृक्ष है।

उक्त वृक्षों के अंकन के साथ उन पर बुद्धों के नाम भी अंकित हैं। इनमें प्राचीन रूक्खमह का बौद्ध धर्म में स्वीकृत स्वरूप प्रकट होता है। इन्हीं के साथ प्राचीन उद्यान क्रीड़ाओं का समूह दिखाया गया है जिनमें फुल्ल कुसुमित वृक्षों के नीचे स्त्रियां विविध प्रकार की क्रीडायें करती हैं। इनमें से कुछ क्रीडाओं के नाम थे—शाल भंजिका, अशोक पुष्प प्रचायिका आदि। इनका अंकन भरहुत की वेदिका पर तो है ही, कुषाण युग के वेदिका स्तंभों पर भी बहुत अधिक है।

भरहुत स्तूप के विभिन्न दृश्यों में सिंह, मृग और हाथी जैसे वन्य पशुओं को चैत्य वृक्ष की पूजा करते हुये दिखाया गया है। अग्रवाल महोदय के अनुसार इन वन्य पशुओं को नाना योनियों में उत्पन्न बोधिसत्व के रूप में देखना चाहिये जो बुद्धत्व की प्राप्ति हेतु धार्मिक कार्यों में संलग्न हैं।[2]

स्तूप के अलंकरण में पद्ममाला, पद्मपुष्प, पद्मकलिका और पद्मपत्रों को विशेष स्थान दिया गया है। स्तंभ, सूची और उष्णीषों पर कमल के फुल्लों की पंक्तियाँ दिखायी गयी हैं। इसी कारण इस प्रकार की वेदिका की संज्ञा पद्मवर वेदिका हो गयी। भरहुत स्तूप के अलंकरण की सर्वोत्कृष्ट

---

1 भारतीय कला, वी० एस० अग्रवाल, पृ० 150।

2 वही, पृ० 152।

विशेषता कल्पलताओं का अंकन है, जिसकी ऊँची, नीची लहरिया भाँति से नाना प्रकार के वस्त्राभरण उत्पन्न होते हुये दिखाये गये हैं। इस प्रकार की लतर बनाने के पीछे कलाकारों का प्रकृति से जुडाव एवं जनमानस में इस अभिप्राय के लिये महत्वपूर्ण स्थान अवश्यमेव रहा होगा।

अग्रवाल महोदय का मानना है कि यह प्राचीनकाल से प्राप्त कल्प वृक्ष और कल्पवल्ली का अलंकरण था। वस्तुत: यह साहित्यिक वर्णन के अनुरूप ही शिल्प का अंकन है। इस प्रकार के कल्प वृक्षों का वर्णन उत्तर कुरू की प्रशंसा में आता है। प्रत्येक घर उत्तर कुरू के कल्प बृक्षों की छाया में फूलता-फलता माना जाता था। माता-पिता, भाई और बंधु ये सब कल्पवृक्ष की शाखा-प्रशाखाओं के समान थे जो नवयुवतियों के श्रृंगारिक इच्छाओ की सहज पूर्ति करते थे।

भरहुत के अलावा साँची और भाजा के अनेक अंकनों में कल्प वृक्ष प्रमुखता से वर्णित किये गये हैं। साँची स्तूप के दक्षिण तोरण के पश्चिमी पार्श्व पर उत्तर कुरू के दृश्यों में कल्प वृक्षों के नीचे बैठे हुये मिथुन संगीत और वाद्य का आनंद ले रहे हैं और उन वृक्षों से वस्त्राभूषण प्रकट होते हुये दिखाये गये हैं।[1] भाजा चैत्य गृह के द्वार के एक पार्श्व में चक्रवर्ती मांधाता के उत्तर कुरु में जाने का चित्रण है। उसमें उत्तरकुरु के उद्यान के कई दृश्य हैं। उद्यान में यथाकाम फलने वाले कल्पवृक्षों से मिथुन, वस्त्र और आभूषण उत्पन्न होते हुये दिखाये गये हैं।[2]

वस्तुत: भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण गृहस्थ जीवन को पल्लवित एवं पुष्पित बनाना था। इसीलिये स्तूपों के वेदिका और तोरण स्तंभों पर उत्तर कुरू के अभिप्रायों का अंकन अधिकाधिक किया गया। कल्प वृक्ष का यह विचार बौद्ध, जैन और भागवत धर्म सब में समान रूप से स्वीकृत था। जैन साहित्य में 10 प्रकार के कल्प वृक्ष वर्णित हैं—1. मद्यांग वृक्ष, 2 तूर्यांग वृक्ष, 3. भूषणांग वृक्ष, 4. ज्योतिवृक्ष, 5 गृह वृक्ष, 6 भाजनांग वृक्ष, 7 दीपांग वृक्ष, 8. वस्त्रांग वृक्ष, 9. भोजनांग वृक्ष और 10. मालांग वृक्ष। ये दस प्रकार सर्वोत्तम सुखों के भी प्रतीक हैं। यह कल्प वृक्ष की मूल कल्पना का ही परिवर्धित रूप है। भागवतों ने भी कल्प वृक्ष के भाव को अपनाते हुये इसे पारिजातहरण की कथा का रूप दिया है । किंवदंती है कि पारिजात स्वर्ग का वृक्ष था, जिसे श्रीकृष्ण अपनी पत्नी सत्यभामा के लिये इंद्र से बलपूर्वक छीन कर पृथ्वी पर लाये। कल्पवृक्ष ही श्री वृक्ष के रूप में ब्राह्मण धर्म के देव प्रासादों में स्वीकृत किया गया।[3]

भरहुत की कला में अन्य पेड़-पौधे—भरहुत की कला में अन्यान्य वानस्पतिक अंकन प्राप्त होते हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

---

1 साँची का स्तूप, भाग 1, मार्शल, पृ० 144, भाग 2, फलक 210।

2 भारतीय कला, बी० एस० अग्रवाल, फलक 107-108।

3 वही, पृ० 158।

शरीफा—एक दृश्य में बीच में दो शरीफा के फल पत्तियों के साथ अंकित किये गये हैं। इसके बायीं तरफ एक पौराणिक पशु का अंकन है। जबकि दूसरी तरफ एक आदमी गाय को घास खिलाते हुये दिखाया गया है।

कटहल और आम—जातक कहानियों के एक दृश्य में बीच में आम का पेड़ दिखाया गया है। जिसकी फूलों से पूजा की गयी है, बायीं तरफ पत्तियों सहित एक बड़े कटहल का सुस्पष्ट अंकन है। छह हिरण आम के बोधि वृक्ष की पूजा कर रहे हैं।

कचनार—इस वृक्ष का निचला भाग एक रेलिंग से घिरा है। वृक्ष के नीचे चबूतरे पर फूल और पत्तियों के आभूषण हैं। कुछ मनुष्य खडे तथा कुछ बैठ कर वृक्ष की पूजा कर रहे हैं। दो उड़ते हुये गंधर्व भी पूजा में फूल अर्पित कर रहे हैं।

ताल—दो व्यक्ति खिडकियों से नीचे झांक रहे हैं। नीचे दो ताल वृक्ष दिखायी पड़ रहे हैं। पंखे की आकृति वाली पत्तियां और फल ताड़ के पेड़ की पहचान को और सुस्पष्ट बना रहे हैं।

भरहुत के अन्य चित्रांकनों में चंपा, आम, नागकेसर, केला, कमल, अशोक और बदरी (बेर) की पहचान सुस्पष्ट है। इस तरह आम जनजीवन में प्रयुक्त होने वाली वनस्पतियों को आलंकारिक एवं सोद्देश्यिक अभिप्रायों के रूप में भरहुत स्तूप पर अंकित किया गया है।

सांची का स्तूप—फूल-पत्तियों के अलंकरण में सांची के शिल्पी बेजोड़ हैं। मार्शल के मतानुसार वल्लरी प्रधान अभिप्राय सदा ही भारतीय शिल्पियों ने बड़ी सावधानी एवं कुशलता से बनाये हैं, किंतु सांची के शिल्पी इन सबमें सिरमौर हैं। वृक्ष वनस्पति के सभी अलंकरण भारतीय हैं और उन्हें हूबहू प्राकृतिक जगत से लिया गया है।

फूल पत्तियों के अलंकरण में सबसे प्रधान कमल है जो व्यष्टि मानव और समष्टि विश्व के उद्भव के प्रतीक हैं। द्वार-स्तंभों के बाहरी ओर कमल के फूल बहुत सुंदर बने हैं। कमलों का अंकन उठती हुई लतर या कल्पलता के रूप में हुआ है, जैसा भरहुत में है। कहीं कमल के फूलों को दुहरा कर श्रीवृक्ष के रुप में कल्पित किया गया है। इस प्रकार के श्रीवृक्ष से संबंधित अंगूर की बेल जंबू द्वीप की कलाकृतियों की ओर संकेत करते हैं।[1]

सांची कला में बुद्ध के जीवन दृश्यों को प्रतीकात्मक रुप में दिखाया गया है। बुद्ध के जन्म का अंकन कमल या पूर्णघट से जन्म लेते हुये पद्मों के रूप में किया गया है। संबोधि का चित्र पीपल के नीचे आसन या केवल अश्वत्थ से किया गया है। सांची में बोधिवृक्षों का अंकन भरहुत के समान ही दिखायी पड़ता है।

---

1 भारतीय कला, वी० एस० अग्रवाल, पृ० 165।

स्तूप के तोरणों पर, स्तंभ और नीचे की धरन के बाहरी कोने में भंगिमापूर्ण मुद्रा मे सघन वृक्षो के नीचे खडी शालभंजिका मूर्तियां बहुत आकर्षक हैं। कहीं-कहीं इन्हें 'वृक्षिका' या 'यक्षी' भी कहा गया है।[1]

महास्तूप के पृष्ठ भाग में पहली बड़ेरी पर चार वृक्षों से अंतरित तीन स्तूप हैं। शिरीष वृक्ष-क्रकुच्छद, उदुम्बर-कनक मुनि, न्यग्रोध-काश्यप और पीपल-शाक्य मुनि का बोधि वृक्ष था। बीच की बडेरी पर छदत जातक के एक चित्रण में बोधिसत्व गजयूथ के नेता के रूप में पद्मवन में बिहार करते हुये बीच में न्यग्रोध वृक्ष की ओर आते हुये दिखाये गये हैं।

उत्तरी दिशा के तोरण द्वार के बड़ेरी के मुख भाग पर बोधि वृक्षों के प्रतीक द्वारा सात मानुषी बुद्धों का अंकन है। एक अन्य बड़ेरी पर पद्मासन पर विराजमान देवी के साथ सनाल कमल लिये हाथियों को दिखाया गया है। तीनों बड़ेरियों की सब गजलक्ष्मियों के पार्श्व भाग में आम्र या अशोक शाखाओ का अवलबन किये हुये वृक्षका स्त्रियाँ हैं, जिनकी अनुकृति पर उत्तरकालीन कला में बहुत सी शालभंजिका मूर्तियां बनायी गयी।[2]

पूर्वी दिशा के तोरण द्वार के बड़ेरी के अग्रभाग में सम्राट अशोक का बोधि वृक्ष के समीप आगमन अंकित है। बीच में बोधगया का बोधिघर है जिसमें बोधि वृक्ष की शाखायें-प्रशाखायें दिखायी गयी हैं। दाहिने स्तंभ के पृष्ठ भाग पर बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति का अंकन वेदिका से घिरे पीपल वृक्ष के प्रतीक द्वारा हुआ है।

सांची कला में अन्य वानस्पतिक अंकन—सांची कला अपने वानस्पतिक अंकनों में विशिष्ट है। कुछ प्रमुख अंकन निम्नलिखित हैं—

एक यक्ष जो दरवाजे के रास्ते पर खड़ा है, के ऊपर दाहिनी ओर आम के फल और बायीं ओर पत्तियों सहित कदंब फल लटके हुये हैं। एक दूसरे दृश्य में एक तरफ वेणु की दो झाड़ियां, दूसरे तरफ बाँस, ऊपरी दाहिनी तरफ नागकेशर का पुष्पित वृक्ष और बायीं तरफ अशोक वृक्ष का अंकन है। नीचे बायीं तरफ फलों से आच्छादित आम्र वृक्ष और दाहिनी तरफ एक पुष्पित वृक्ष अंकित किया गया है। इस समय आम के वृक्ष के रूप में बुद्ध की पूजा प्रतीकात्मक रूप में किया जाता था।[3]

सांची के एक अन्य अंकन में बुद्ध को कमल के प्रतीक रूप में नदी पार करते हुये दिखाया गया है। दृश्य के ऊपरी भाग में क्रमशः आम, गूलर, केला, कदंब, नागकेशर और कमल के फूल का चित्रण किया गया है।[4]

---

1 भारतीय कला, वी० एस० अग्रवाल, पृ० 164।

2 वही, 168।

3 प्लाट्स इन इंडियन टेम्पल आर्ट, शक्ति एम० गुप्ता, प्लेट-38।

4 वही पृ० 204।

न्यग्रोध या वट वृक्ष को कला में बोधि वृक्ष के रुप में अंकित करने की सुस्थापित परंपरा रही है। साची के शिल्पियो ने इसे अपने अंकनो में महत्वपूर्ण स्थान दिया। ऐसे ही एक अंकन में अंडाकृति में पत्तियों और छोटे-छोटे फलों द्वारा वट वृक्ष का तादात्म्य दिखायी पड़ता है। लेकिन इसमें वट वृक्ष की सुपरिचित लटकती हुई जड़े अंकित नहीं हैं। एक राजा और रानी अपने परिजनों के साथ इस पवित्र वृक्ष की पूजा कर रहे हैं। उडते हुये गंधर्व इस बोधि वृक्ष को फूलों की माला अर्पित कर रहे हैं।[1]

बोधि वृक्ष के रूप में पीपल का वृक्ष सुपरिचित है। सांची के एक दृश्य में अश्वत्थ वृक्ष से पुष्पों की माला लटकते हुये दिखाया गया है। पेड़ के नीचे पत्थर का चबूतरा है। दो औरतें और एक बच्चा घुटने टेक कर वृक्ष की पूजा कर रहे हैं। पीपल वृक्ष के ऊपर एक कदंब का वृक्ष भी अंकित है।[2]

एक स्तंभ पर सजावटी अभिप्राय के रूप में सूरजमुखी का अंकन है। एक अन्य अंकन में केला, आम, लीची एव कमल जैसी वनस्पतियाँ चित्रित की गयी हैं। साँची कला अभिप्रायो में नागकेशर वृक्ष की पूजा भी चित्रित की गयी है। चार दलों वाले फूल से नागकेशर की पहचान सुस्पष्ट है।[3] एक दूसरे दृश्य में एक बड़े कमल के सामने हाथी अंकित है। हाथी के पीछे ताड़ का वृक्ष दिखायी पड रहा है। लंबी, कँटीली पत्तियाँ ताड़ की पहचान को स्पष्ट कर रही हैं।

सांची की शिल्प कला में पल्लवित, पुष्पित, हरे-भरे पेड़-पौधों, लताओं तथा कल्प वृक्षों को अत्यंत स्वाभाविकता के साथ चित्रित किया गया है। मनुष्य तथा पशु आकृतियाँ भी इसी शैली में बनायी गयी हैं, परिणामत: आकृतियाँ (रिलीफ चित्र) विशेष उभर नहीं पायी हैं। मूर्तियाँ गहरी नहीं हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये सर जान मार्शल ने सांची महास्तूप की कला को 'वनस्पति शैली' नाम दिया है।[4]

भरहुत, सांची और गया में और वस्तुत: इस समय की समस्त बौद्ध मूर्तिकला में स्वयं बुद्ध का प्रदर्शन कभी नहीं किया गया है। प्रतीकों विशेषकर वानस्पतिक अंकनों जैसे पीपल, वट आदि के द्वारा उन्हें प्रतिबिम्बित किया गया है। मूर्ति संबंधी इस विशेषता का स्पष्ट कारण यह है कि वे इतने अधिक सम्मानित थे कि उनका चित्र बनाना उनकी पवित्रता को दूषित करना समझा जाता था। यद्यपि इसकी पुष्टि के लिये कोई साहित्यिक या अन्य प्रमाण नहीं है।[5]

पर्वत में उत्कीर्ण गुहा वास्तु—उड़ीसा में उदयगिरि एवं खंडगिरि की गुफायें महत्वपूर्ण रचना केंद्र रही हैं। उदयगिरि की गुफाओं में प्रमुख हैं—रानी गुफा, स्वर्गपुरी या अलकापुरी, जय-विजय,

---

1 प्लाट्स इन इडियन टेम्पल आर्ट, शक्ति एम० गुप्ता, प्लेट 80-81।

2 वही, प्लेट 99।

3 वही, प्लेट 134।

4 अद्भुत भारत, ए० एल० बाशम, पृ० 306।

5 भारतीय कला, जे० एन० पाण्डेय, पृ० 73।

बैकुठपुर, पातालपुरी, मंचपुरी, गणेश, हाथी, सर्प, व्याघ्र, जगन्नाथ आदि, जबकि खंडगिरि की गुफाओं मे नवमुनि, सतभर, आकाश गगा, देवसभा, अनंत गुफा प्रमुख हैं। इन गुफाओं की भित्तियों पर शिल्पियों ने अत्यंत मनमोहक दृश्यो एव लोक प्रचलित नाट्य कथाओं का अंकन किया है। इन अकनो मे वानस्पतिक अभिप्राय भी पर्याप्त रूप से दिखायी पड़ते हैं।

रानीगुम्फा के एक दृश्य में तीन हाथी भगदड़ में पडी भीड़ पर बिगड़ पड़े हैं। पीछे घबरायी हुई स्त्रियां तितर-बितर होकर भाग रही हैं। इन स्त्रियों के पास एक वृक्ष का अंकन किया गया है।[1]

एक अन्य दृश्य में धनुष-बाण लिये हुये राजा अपने सामने हिरणों के झुंड पर शर-वृष्टि करने की मुद्रा मे है। राजा के ठीक पास सूरजमुखी का पौधा है जो केवल पुष्पों से ही भरा है। इसी दृश्य के अगले भाग में राजा वृक्ष के पास खडा है, जिस पर एक स्त्री बैठी है। वृक्ष की पहचान संदिग्ध है।

गणेश गुम्फा के एक दृश्य में वन के अंत के सूचक एक वृक्ष का अंकन किया गया है।

शिल्पियों ने उक्त दृश्यों में पुष्कर या कमल का अंकन बहुधा किया है। वेदिका और शोभापट्टी मे इस अलंकरण का प्रयोग प्राय: किया गया है। अर्धवृत्ताकार कमांचों पर फूल, पत्ते और कई प्रकार की लतर तथा सिंह, हाथी या मृगों के मुख से निर्गत बल्लरी के कटाव हैं। धार्मिक चिन्हों में वेदिकामय कटघरे में बोधिवृक्ष और आपान-गोष्ठी के दृश्यों में पनस फल की आकृति के पात्र दिखाये गये हैं। जय-विजय गुफा के द्वारमुखों पर उत्कीर्ण वेदिका अलंकरणों के बीच में बोधि वृक्ष बने हैं, स्त्रियां उनकी पूजा कर रही हैं।

खंडगिरि पहाडी की अनंत गुफा की सजावट भरहुत-सांची के स्तूपों के समान बहुमुखी एवं महत्व की है। यहां पंचपट्टिका अलंकरण के बीच में एक सुंदर त्रिकोणाकृति कमल है। उसकी बेल में वेदिका और फिर कमल इस प्रकार का क्रम है। कुछ स्तंभों पर औंधे रखे हुये कमलों के खारेदार या लहराते हुये मौज पत्ते के समान ही हैं जैसे बेसनगर के स्तंभ शीर्षक पर।[2] चतुरस्त्र वेदिका के मध्य में चैत्य वृक्ष है जिसके दाहिनी ओर अंजलि मुद्रा में एक पुरुष एवं बायीं ओर फूल-माला लिये एक स्त्री वृक्ष की पूजा कर रही है। साथ ही चोंच में कमल-पुष्प लिये उड़ते हुये बारह हंसों की श्रेणी है। एक दूसरी मूर्ति में कमलों पर खड़ी देवी श्रीलक्ष्मी दिखायी गयी हैं। उसके दोनो ओर उठते हुये कमलों पर दो हाथी अभिषेक करने की मुद्रा में हैं। श्री लक्ष्मी की यह मूर्ति लगभग समस्त धर्मो एवं पूरे भारत में मान्य थी।

पांचवी शताब्दी की एक कलाकृति जिसमें भगवान वाराह पृथ्वी को अपने दाँतों पर उठाये हुये हैं, बहुत आकर्षक है। वाराह के गले में कभी न मुरझाने वाले फूलों एवं फलों की माला है।

---

1 भारतीय कला, वी० एस० अग्रवाल, पृ० 189।

2 प्लाट्स इन इडियन टेपल आर्ट, शक्ति एम० गुप्ता, प्लेट 10।

परिदृश्य मे अन्नानास, आम के फल एवं पाँच दलों वाले शाल्मलि फूल को दिखाया गया है।[1] एक अन्य अंकन में एक हाथी अपनी सूड में कमल का फूल एव कदंब वृक्ष की एक शाखा लिये हुये दिखाया गया है। [2] रत्नगिरि की गुफा में बोधि वृक्ष पीपल के नीचे ध्यानस्थ बुद्ध को अंकित किया गया है। पत्तियो के नुकीले सिरे पीपल पेड की पहचान को सुस्पष्ट करते हैं।

बौद्ध पर्वतीय चैत्यगृह एवं बिहार— महाराष्ट्र में नासिक के इर्द-गिर्द दो सौ मील के घेरे में पश्चिम भारत के लगभग नौ सौ गुफा मंदिर हैं। इनमें सबसे प्राचीन भाजा की गुफा है। भाजा में तीन अवशेष हैं (i)बिहार, (ii) बड़ा चैत्यगृह एवं (iii) ठोस कटे हुये चौदह स्तूपों का महा समूह।

भाजा बिहार के मुखमंडप के पूर्वी छोर के दाहिनी ओर की मूर्ति में हाथी पर एक राजा एवं उसके पीछे ध्वज लिये अनुचर हैं। हाथी ने अपनी उठी सूड़ से एक पेड़ उखाड़ लिया है। पट्ट के शेष भाग में वेदिकाओं में कुछ वृक्ष लगे हैं। एक वृक्ष से मिथुन मूर्तियाँ जन्म ले रही हैं और वृक्ष के नीचे बैठे हुये मिथुन वाद्य एवं नृत्य का आनंद ले रहे हैं।[3]

कल्प वृक्षों के दृश्य यहाँ बहुधा अंकित मिलते हैं। महावाणिज्य जातक, महाभारत, एवं रामायण के अनुसार उत्तर कुरु प्रदेश के कल्प वृक्ष सब प्रकार की सुख-सामग्री का प्रसव करते हैं।

उन वृक्षों की शाखाओं से उत्तम वस्त्र, अलंकार, अन्न, पान, मद्य-मैरेय आदि जन्म लेते हैं, जिनका मनमाना उपभोग वहाँ के युगल मिथुनों को प्राप्त होता है। एक चित्र में नीचे की ओर बीच में उत्कीर्ण कल्पवृक्ष एक प्रकार का आभरण वृक्ष है, जिसकी शाखाओं में नाना भाँति के अलंकार और वस्त्र फलों की भाँति लगे हैं। भरहुत वेदिका पर उत्कीर्ण लतरों के उतार-चढ़ाव के मोड़ों में जो कल्प लताओं का अंकन है, उनमें भी इसी प्रकार के अलंकारों और वस्त्रों के नाना विकल्प दिखाये गये हैं। इस विटप के महावितान में दो कल्प तरूओं का मेल ज्ञात होता है, जिन्हें 'भूषणांग' और 'वस्त्रांग' कहते थे। ये जैन ग्रंथों में दिये हुये दस प्रकार के कल्पवृक्षों की सूची में आते हैं। नाच-गान वाले वृक्ष को 'तूर्यांग' और पान-गोष्ठी वाले कल्पवृक्ष को 'मद्यांग' कहते थे। इसके ऊपर वेदिका में एक वृक्ष है, जिससे स्त्री-पुरुषों के मिथुन जन्म लेते हुये दिखाये गये हैं। वृक्ष के ऊपर एक स्त्री मूर्ति शयन मुद्रा में आड़ी लेटी हुई दिखायी गयी है। कुमारस्वामी इसे नरबलि का दृष्टांत कहते हैं, जबकि वी0 एस0 अग्रवाल इसे मिथुन प्रसव का दृश्य बताते हैं।[4] भाजा की गुफा में दूसरी शती ई० पू० के एक दृश्य में इंद्र को हाथी की सवारी करते हुये दिखाया गया है, जिसके बार्यी ओर शीशम का वृक्ष है। इस पर बड़ी संख्या में मानव ऊंगलियों को लटकते हुये दिखाया गया है।[5]

---

1 प्लाट्स इन इंडियन टेपल आर्ट, शक्ति एम० गुप्ता, प्लेट 10।

2 वही, प्लेट 24।

3 भारतीय कला, वी० एस० अग्रवाल, फलक 107।

4 वही, पृ० 202।

5 प्लांट्स इन इंडियन टेम्पल आर्ट, शक्ति एम० गुप्ता, पृ० 202, प्लेट-69।

मथुरा कला (कुषाण काल)—कुषाण काल में मथुरा कला का प्रमुख केंद्र था। यहां पर अनेक स्तूपो, बिहारो एव मूर्तियों का निर्माण करवाया गया। अपनी शिल्पकारी एवं मूर्ति निर्माण हेतु मथुरा के कलाकार दूर-दूर तक प्रख्यात हो चुके थे।

यहॉ के कुशाग्र शिल्पियो ने बाहरी प्रभावो का खुले दिल से स्वागत किया। अपनी इसी उदार भावना से उन्होने कितने ही यूनानी तथा ईरानी धर्म एवं कला के अभिप्रायों को अपना कर अपनी कला में सम्मानित स्थान दिया। उदाहरण के तौर पर (1) अंगूर की बेल, (द्राक्षा वल्ली), (11) स्तंभ के ऊपर कोरिंथ शैली का शीर्षक जिसमे भटकटैया की पत्तियों का अंकन है, तथा (111) मालाधारी देवों का अलंकरण जिसमे छोटे यक्ष मोटी माला को कंधों पर टांग कर उठाये हुये हैं। इन मालाओं के पास ही फल-पत्तियों का अलंकरण भी है।

महोली गाँव से मिली कलाकृतियों में मदोन्मत मुद्रा में पान गोष्ठी का दृश्य प्रमुख है। इस दृश्य के अग्र भाग मे चार मूर्तियाँ हैं। बीच की स्त्री मदोमन्त मुद्रा में नीचे झुकी हुई दिखायी गयी है। उसका बांया हाथ एक कुब्जिका के कंधे पर टिका है। पार्श्व में एक वृक्ष उकेरा गया है। यह संभवतः अशोक का वृक्ष है।[1]

मथुरा से हिंदू देवमूर्तियाँ एवं उनके साथ पेड़-पौधों का अंकन प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। ब्रह्मा की सबसे प्राचीन मूर्तियों में ब्रह्मा के तीन मुख नीचे और उनके ऊपर छायामंडल युक्त चौथा पूर्वकाय का भाग है। पृष्ठ भाग में अशोक वृक्ष और उसके पल्लव अंकित हैं।[2] मथुरा की कला में ही सर्वप्रथम सूर्य की मूर्तियों के साथ छुरी की जगह कमल चित्रित किया जाने लगा और गुप्त काल के बाद दो कमलों से युक्त सूर्य मूर्ति सर्वमान्य हो गयी।

कमल से लक्ष्मी के अटूट संबंध को मथुरा कला में भी दर्शाया गया है। एक दृश्य में एक स्त्री मूर्ति अपने हाथों में कमल लिये हुये कमल के आसन पर कमलों के वन में खड़ी है और दो हाथी अपनी सूड़ों में आवर्जित घट उठाये हुये उसका अभिषेक कर रहे हैं। कालांतर में लक्ष्मी का यह अंकन अत्यंत लोकप्रिय हुआ। मथुरा से ही प्राप्त ऐसी एक अन्य मूर्ति भारतीय कला में अनुपम है इसमें देवी श्री लक्ष्मी कमलों से भरे पूर्णघट पर खड़ी हैं। वह अपने बायें हाथ से दुद्धा धारिणी की मुद्रा में दूध की धार छोड़ती दिखायी गयी हैं। उसके पीछे सनाल कमलों का सुंदर चित्रण हुआ है जिसमें पत्तियां, नीलोत्पल की कलियाँ और रक्तोत्पल के पुष्प दिखाये गये हैं। कमल की उठती हुई बेल पर मोर-मोरनी का जोड़ा है। यह किसी प्रतिभाशाली कुषाण शिल्पी की उत्तम कृति है।[3]

---

1 भारतीय कला, बी० एस० अग्रवाल, पृ० 257।

2 वही, पृ० 265।

3 वही, पृ० 272।

देवी श्री लक्ष्मी स्वर्ग के नंदन वन की देवता थीं। श्री सूक्त में उसका विस्तार से वर्णन है। लोक एव वेद दोनो मे उसकी मान्यता थी और उसकी धार्मिक पूजा यजुर्वेद से आज तक निरंतर चली आ रही है।

मथुरा कला में शालभंजिका—शालभजिका का मूल अर्थ फूले हुये शाल वृक्ष के नीचे स्त्रियों की उद्यान क्रीडा विशेष था। पाणिनी ने इसे 'प्राचां क्रीड़ा' कहा है।[1] भारत के पूर्वी भागों में स्त्रियॉ बगीचों मे जाकर पुष्पित शाल वृक्ष की शाखाओं को तोड़कर एक दूसरे पर प्रहार करती हुई खेलती थीं। अवदान शतक में शालभंजिका क्रीड़ा का अच्छा वर्णन है, और उसके पीछे अवश्य ही कोई पुरानी परंपरा थी। 'एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडक के उद्यान जेतवन में ठहरे हुये थे। उस समय श्रावस्ती मे शालभंजिका उत्सव मनाया जा रहा था। उत्सव मे लाखों व्यक्ति एकत्र होकर हाथ मे पुष्पित शाल वृक्ष की डालियॉ लिये खेलते हुये इधर-उधर विचर रहे थे।' निदान कथा में लुम्बिनी उद्यान की शालभंजिका क्रीडा का वर्णन इस प्रकार दिया गया है—'देवदह और लुंबिनी नामक ग्रामों के बीच एक मांगलिक शाल वृक्षों का उद्यान है। उसका नाम लुम्बिनी उद्यान है। लुम्बिनी उद्यान रंग-बिरंगी लताओं से आच्छादित था, जो किसी सम्राट के अलंकृत आहार मंडप जैसा लगता था। माया देवी ने जब उसे देखा तो उनके मन में शाल वन में क्रीड़ा करने की इच्छा उत्पन्न हुई। परिचारिकायें रानी को साथ लेकर शाल वन में आयीं। जब वह एक मांगलिक शाल वृक्ष के नीचे आयीं, तो उन्होंने उसकी एक पुष्पित शाखा को नीचे झुका लिया। शाखा भाप से झुकायी हुई वेत्रलता की तरह नीचे की ओर हो गयी और उसने उसे हाथ से पकड़ लिया। उसी समय रानी को प्रसव-पीड़ा होने लगी।[2]

झुकी हुई पुष्पित शाखा से किसी स्त्री द्वारा पुष्पों का प्रचय करने की पुष्पप्रचायिका मुद्रा भरहुत और सांची के तोरण स्तंभों पर पायी जाती है। कुषाण काल में मथुरा के वेदिका स्तंभों पर तो यह मुद्रा अनेक प्रकार से मिलती है। कुषाणकालीन गांधार कला में भी थोड़े स्तंभों पर इस दृश्य का चित्रण है। किंतु गांधार कला में इनका अंकन फीका सा है। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में इसे 'देश्य क्रीड़ा' कहा है। ऐसी ही अन्य क्रीड़ाओं के नाम थे—'सहकार भंजिका', 'अभ्यूषखादिका' (होले भूल कर खाना), उदक-क्ष्वेडिका, 'विसखादिका' (कमल की जड़ निकाल कर खाना), 'अशोकोतंसिका' (अशोक पुष्प को कान या केशों में पहनना), 'पुष्पावचायिका', 'चूत-लतिका', 'दमन भंजिका', 'इक्षु-भंजिका' आदि।

अश्वघोष, कालिदास, माघ और भारवि जैसे साहित्यकारों ने उद्यान क्रीड़ा का बड़ा खूबसूरत वर्णन किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जीवन की यह सुंदर परंपरा प्राचीन काल से ही चली आ रही थी और कालांतर में साहित्य और कला में उसे बहुत विकसित किया गया। मथुरा के शिल्पियों ने स्त्रियों की क्रीड़ाओं से सम्बन्धित अनेक मुद्राओं को अपनाया। इन क्रीड़ाओं की समुचित संज्ञा

---

1 अष्टाध्यायी, पाणिनी, 6 2 74।

2 भारतीय कला, वी० एस० अग्रवाल, 230-231।

क्रीडा विहार थी। लोकमान्यता थी कि इंद्र अपनी अप्सराओं के साथ इस प्रकार का क्रीड़ा विहार नदन वन मे करता है। उसी आदर्श को पृथ्वी लोक के मनुष्यों के लिये अपनाया गया।[1] राजा अपने मनोविनोद के लिये इस प्रकार के क्रीड़ा विहार या आनंदोत्सव मनाने लगे।

मथुरा के वेदिका स्तभों पर शालभंजिका से सम्बन्धित दृश्यों का समृद्ध अंकन है। अधिकांश स्तंभों पर अशोक-पुष्प-प्रचायिका क्रीड़ा का अंकन है जिसमें अनेक 'वृक्षका' स्त्रियां पुष्प संभारों से अवनत वृक्षों के नीचे खडी हुई पुष्पावचय कर रही हैं। इनके रूप मे शालभंजिका और अशोक पुष्प प्रचायिका का ही चित्रण है।

दोहद अभिप्राय— अशोक-दोहद मथुरा कला का एक नया अभिप्राय है। इस अभिप्राय में एक युवती अशोक वृक्ष के नीचे खड़ी होकर बायें हाथ से उसकी शाखा को झुका कर बायें पैर से आघात या उसका स्पर्श कर रही है। इस दृश्य में उस विश्वास का अंकन है कि किसी सुंदर स्त्री के बायें पैर का स्पर्श पाकर अशोक फूलता है। अपने चौड़े नितम्ब, उन्नत उरोज एवं तनु मध्य द्वारा यह उच्चित्रण मालविकाग्निमित्रम में दोहद-संलग्न नायिका मालविका के शारीरिक गठन एवं रूप-सौंदर्य की प्रमुख विशेषताओं की याद दिलाता है।[2]

दोहद का एक उल्लेखनीय दृश्यांकन राजकीय संग्रहालय मथुरा में प्रदर्शित एक वेदिका स्तंभ (संदर्भ सं० 33 2345, वीथिका 7) पर मिलता है। इसमें विविध आभरणों से मंडित तन्वंगी चौड़ी कमरपेटी धारण किये हरे अशोक वृक्ष के नीचे खड़ी है। वह अपने दोनों ही करों में सनाल पद्म के डंठल को धारण किये रुपायित है। उल्लेखनीय है कि यह बायें की जगह दायें पैर से तरुमूल पर आघात करती निरुपित है।[3]

संघोल (लुधियाना, पंजाब) से कुषाण कालीन भव्य स्तूप के कुछ वेदिका स्तंभ मिले हैं। इन पर दाहिने पैर से तरुमूल को आघात पहुँचाने वाले कुछ दृश्यांकन हैं। एक दृश्य में अशोक वृक्ष के नीचे खड़ी सुंदरी अपने हाथों में कुछ लिये है। उसने विविध आभूषण (मंगटीका, कर्णफूल, कमरपेटी, नूपुर आदि) धारण कर रखे हैं। अशोक वृक्ष तने से लेकर शीर्ष तक सुंदर पल्लव एवं पुष्प गुच्छकों से लदा है। सुंदरी तरुमूल पर अपने दाहिने पैर से स्पर्श कर रही है।[4] यहीं के एक दूसरे दृश्य में प्रफुल्ल पुष्प-गुच्छक एवं हरे पत्तों के भार से लदे अशोक वृक्ष के नीचे खड़ी तन्वंशुका एवं माला आदि आभूषणों से विभूषित सुंदरी अपने दाहिने पैर से ही तरु-मूल पर आघात पहुँचाती चित्रित है। उसकी अर्द्धनग्नता कुषाण-कालीन तक्षण कला की लाक्षणिक विशेषता का परिचायक है।

---

1 भारतीय कला, वी० एस० अग्रवाल, पृ० 232।

2 मालविकाग्निमित्रम, अंक 3, श्लोक 7।

3 भारतीय लोक परपरा मे दोहद, यू० एन० राय, पृ० 27।

4 वही, पृ० 27।

शालभजिका एवं दोहद का संयुक्त अंकन— कुछ कलाकृतियों में शालभंजिका एवं दोहद का सयुक्त अकन मिलता है। भरहुत-कला में ऐसे अभिप्राय बहुलता से प्राप्त होते हैं। इस तरह के अंकनों मे यक्षिणिया प्रदर्शित हैं, जो अशोक वृक्ष के नीचे अपने एक हाथ से उसकी डाली को अवनमित और बाये हाथ एव बायें पैर से तरु मूल को आलिगित करती रूपायित है। प्रसिद्ध कलाविद आनंद कुमार स्वामी के शब्दों मे इस प्रकार के चित्रण रत्यात्मक अभिप्राय (Erotic Motifs) के अंतर्गत आते हैं। इस प्रकार की कला में अशोक वृक्ष नायक एव तरुणी नायिका का प्रतिनिधित्व करती है।

भरहुत स्तूप के एक अंकन मे यक्षिणी हाथी के पीठ पर अपने दाहिने पैर और उसके मस्तक पर बायें पैर को टिकाये खड़ी है। वह अशोक वृक्ष की शाखा को दाहिने हाथ से पकड़े है तथा बायें हाथ एवं बायें पैर से उसके मूल को आलिगित किये प्रदर्शित है। अशोक वृक्ष का उर्ध्व भाग पुष्प गुच्छकों से लदी शाखाओं से युक्त है। स्पष्टत: यह उच्चित्रण शालभंजिका एवं दोहद प्रतीकों की सयुक्त मूर्तन विधा का प्रतिनिधित्व करता है। सी० शिवराम मूर्ति इसे कुरबक-दोहद का उदाहरण मानते हैं, जो सुंदरी के आलिगन से पुष्पित होता है।[1]

शालभंजिका-दोहद के संयुक्त प्रतीक से अलंकृत एक अन्य वेदिका स्तंभ इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता में प्रदर्शित है। इस उदाहरण में एक स्थूलकाय यक्षिणी अशोक के वृक्ष-मूल को अपने बायें हाथ एवं पैर द्वारा आलिंगित करती तथा वृक्ष-शाखा को दाहिने हाथ से स्पर्श करते हुये दिखाया गया है। कलकत्ता के ही एक दूसरे अंकन में एक यक्षिणी अशोक वृक्ष के तने को दाहिने हाथ एवं पैर से आलिगन के भाव में प्रदर्शित है। सामान्यतया यह अशोक दोहद का उदाहरण माना जाता है। पर इस वृक्ष के पत्ते अशोक से भिन्न है। यह कुरबक दोहद का उदाहरण अधिक लगता है, जो पुष्पित होने के पूर्व किसी सुंदरी द्वारा आलिगन की अपेक्षा करता है।[2]

बोधगया के एक शुंगकालीन वेदिका स्तंभ में यक्षिणी वृक्ष-मूल को बायें हाथ एवं पैर से आलिगित करती प्रदर्शित है। उसका दाहिना पैर नीचे बैठे यक्ष के हाथ एवं बायें जंघे पर टिका हुआ है।[3] इस अंकन में विशिष्टता यह है कि स्वयं उसका प्रेमी उसके वाहन के रूप में अंकित है। वृक्ष का उर्ध्व भाग नष्ट होने से उसकी पहचान विवादास्पद है। सी० शिवराम मूर्ति इसे अशोक दोहद का उदाहरण मानते हैं।[4]

सांची महास्तूप के पूर्वी तोरण द्वार के दक्षिण की निम्नतम बड़ेरी पर शालभंजिका-दोहद अभिप्राय का संयुक्त अंकन प्राप्त होता है। इस उदाहरण में यक्षिणी आम्र-वृक्ष के नीचे खडी उसकी

---

1 सस्कृत लिटरेचर ऐड आर्ट . मिरर्स ऑफ इडियन कल्चर—सी० शिवराममूर्ति, पृ० 39।

2 भारतीय लोक परंपरा मे दोहद, यू० एन० राय, पृ० 30।

3 यक्षाज I, ए० के० कुमार स्वामी, फलक 5, आकृति 2।

4 संस्कृत लिटरेचर एण्ड आर्ट : मिरर्स आफ इंडियन कल्चर—सी० शिवराम मूर्ति, पृ० 39।

एक शाखा को बायें हाथ से पकड़ते एवं दाहिने हाथ से उसके तने को आलिगित तथा बाये पैर से उसके मूल को स्पर्श करती रूपायित है। इस दृश्य में वृक्ष के उर्ध्व भाग में पल्लव-गुच्छक एव आम्र-गुच्छक संपूर्ण परिवेश को प्रभावित करते हैं। आनद कुमार स्वामी ने मथुरा के कुषाणकालीन वेदिका-स्तभ पर आधारित अशोक वृक्ष के नीचे मकर-पृष्ठ पर दोहद मुद्रा पर खड़ी यक्षिणी के अकन की तरफ ध्यान आकृष्ट किया है, जो बोस्टन संग्रहालय मे प्रदर्शित है।[1] त्रिभंग मुद्रा मे दृश्यांकित इस अप्रतिम उदाहरण में वह बायें पैर से अशोक तरु के मूल का स्पर्श करती हुई मेघदूत मे वर्णित अशोक-दोहद के यक्षिणी के वामपादाभिलाषी प्रकृति की ओर संकेत करती है।[2]

संयुक्त मूर्तन की यह परंपरा काफी बाद तक चलती रही। इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित मध्यकालीन कला केंद्र जमसोत (इलाहाबाद, 12वीं सदी ई०) से नृत्य सुंदरी का एक उल्लेखनीय उदाहरण मिलता है। इसमें वह आम्रवृक्ष के नीचे तने के निकट सान्निध्य में पूरे हाव-भाव के साथ नृत्य करती रूपायित है। इस मूर्तन के खंडित उर्ध्व भाग में वृक्ष शाखाओं के पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होने का बार-बार आभास होता है। सुंदरी के नृत्य के परिणामस्वरूप वृक्ष के उपर्युक्त प्रसवाभिलाषा का उल्लेख साहित्य में भी निरूपित है। मल्लिनाथ ने स्त्री के कर्णिकार (कनैल) वृक्ष के विकसित होने का उल्लेख किया है।[3]

स्त्रियों का वनस्पति-जगत से सम्बन्ध बहुत पुराना है। रामायण में वृक्ष-गुणों की प्रशंसा करते हुये रूप, यौवन एव गुण संपन्न युवतियों को जन्म देने की कल्पना भी की गयी है।[4] यही तथ्य 'बकुल दोहद' (कामिनी के मुखासव पान) तथा 'कुरबक-दोहद' (सुंदरी द्वारा आलिंगन) के विषय में भी चरितार्थ होता है। इसी प्रकार साहित्य एवं कला में निरूपित अन्य वृक्ष-दोहद (यथा-तिलक दोहद-कामिनी के दृष्टिपात, 'मंदोर-दोहद'-प्रमदाजनों की मीठी वाणी, 'चंपक दोहद'-युवती के मृदु हास्य, 'सहकार-दोहद'-आम्र एवं नवमालिका के प्रतीकात्मक मिलन या प्रकारांतर से नारी के गीत तथा 'कर्णिकार-दोहद'-सुंदरी के नृत्य आदि) रत्यात्मक अभिप्राय के दोहद हैं। आपाततः श्रृंगारिक अभिप्राय के ये विविध प्रकार कल्पित लगते हैं पर विचारणीय है कि उनका संबंध प्रचलित लोकपरंपरा एवं सामाजिक परंपराओं से हैं जिसमें नारियों का उद्यान, उपवन एवं वाटिकाओं के साथ प्रेम दिखाया गया है। इसका वर्णन वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, संस्कृत एवं प्राकृत नाटकों, काव्यों एवं महाकाव्यों में बहुशः किया गया है।[5]

---

1 यक्षाज, भाग 2, आनद के० कुमार स्वामी, पृ० 73।

2 मेघदूत, कालिदास ग्रथावली, उत्तरमेघ, श्लोक 18।

3 मल्लिनाथ टीका, मेघदूत, 2 18, काले।

4 रामायण (बाल्मीकि), किष्किंधा काण्ड, 43 48।

5 भारतीय लोक परपरा मे दोहद, यू० एन० राय, पृ० 40-41।

वस्तुत: 'वृक्ष-दोहद' कला अभिप्राय वृक्ष के प्रति भारतीय कलाकारों की अनन्यता को प्रदर्शित करता है। यह उस लोक परंपरा की तरफ भी इगित करता है जिसमें नारियों के वृक्ष-प्रेम की विशिष्ट गाथाये सुरक्षित है। निर्वनीकरण की भर्त्सना, अरण्य संरक्षण की लोकमंगल से संपृक्तता, वन देवता एवं वन देवी की कल्पना तथा उद्यान विषयक नारी क्रीड़ाये, मनोविनोद के विविध प्रकार एवं वृक्षों के साथ नारी के क्रिया विशेष जैसे तथ्य भी इन कलाकृतियों के माध्यम से सुस्पष्ट होते हैं। ऐसे में वृक्ष-दोहद संबंधी अभिप्राय के निरुपण की यथार्थता को नकारा नहीं जा सकता है।

300 ई0 से 600 ई0 के बीच की कला में वानस्पतिक अंकन— कला संबंधी विकास की दृष्टि से गुप्त काल भारतीय इतिहास में विशिष्ट काल माना जाता है। सौंदर्य एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भी देखा जाय तो इस समय भारतीय कला अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी। भारतीय परंपरा में मंदिरों के निर्माण की शुरूआत गुप्त काल में ही हुई। मंदिरों के आकार के लिये मानव शरीर एवं पर्वत शिखर के अतिरिक्त वृक्ष प्रमुख प्रेरणा स्रोत थे। पवित्रता के प्रतिनिधि रूप में कतिपय वृक्षों को मंदिर निर्माण के प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण किया गया।[1]

जहाँ तक इस समय की कला में वानस्पतिक अंकन की बात है, निश्चित तौर पर शुंग-कुषाणकालीन कला से इसकी बराबरी नहीं की जा सकती। सामान्यत: पेड़-पौधों का अंकन गर्भगृह के प्रवेश द्वार को अलंकृत करने के संदर्भ में किया गया है। तत्कालीन साहित्य में वर्णित सप्तशाखाओं में दो शाखायें पत्र-शाखा एवं पुष्प-शाखा ही वानस्पतिक अलंकरण के रूप में दिखायी पड़ती हैं।

देवगढ़ के दशावतार मंदिर की दीवालों पर रामायण के दृश्य अंकित किये गये है। 'अहिल्या का उद्धार' प्रसंग के चित्रण में राम को एक शिला पर बैठे हुये दिखाया गया है। नीचे उनके पैरों के पास अहिल्या प्रार्थना की मुद्रा में बैठी है। पीछे लक्ष्मण खड़े हैं। इस दृश्य के ऊपरी पत्तियों के बीच से आम के फलों का गुच्छा निकले हुये अंकित किया गया है। इसी दृश्य में बाँये तरफ गौतम ऋषि बैठे हैं जिसके ऊपर कदम्ब का पुष्पित वृक्ष अंकित किया गया है। एक दूसरे दृश्य जिसमें राम और लक्ष्मण धनुष चलाना सीख रहे हैं, में दायीं तरफ अशोक वृक्ष का अंकन किया गया है। एक और दृश्य सूर्पणखा प्रकरण से संबंधित है। छठी शताब्दी ई० के इस अंकन में राम एक शिला पर बैठे हुये दिखाये गये हैं। सीता उनके बगल में खड़ी हैं। लक्ष्मण एक हाथ से सूर्पणखा के बाल पकड़े हुये हैं। दूसरे हाथ से सूर्पणखा का नाक काटने के लिये तलवार उठाये हुये हैं। पृष्ठभूमि में कदम्ब का वृक्ष द्रष्टव्य है। 'नर-नारायण से संबंधित अंकन में नर और नारायण को बदरिकाश्रम में बदरी (बेर) के पेड़ के नीचे तपस्या करते हुये दिखाया गया है। द्वार शिला पर उत्कीर्ण गजेंद्र मोक्ष के दृश्य में हाथी के आगे कमल का अंकन किया गया है। देवगढ़ मंदिर पर ही उत्कीर्ण छठीं शताब्दी ई० के एक अंकन में शेषनाग पर आराम कर रहे विष्णु की नाभि से कमल निकला हुआ है। कमल पर ब्रह्मा विराजमान हैं। यह दृश्य शेषशायी विष्णु से संबंधित है।

---

1 भारतीय कला, कृष्ण दत्त बाजपेयी, पृ० 50।

सारनाथ गुप्त कला का एक प्रमुख केंद्र था। यहाँ से प्राप्त पाँचवीं शताब्दी ई० की एक कलाकृति में देवी तारा अकित की गयी हैं। देवी अपने बायें हाथ में एक पका हुआ अनार लिये हुये हैं। फल ऊपर से थोड़ा फटा हुआ है जिसमें से फल के रस भरे दाने दिखायी पड रहे हैं। धमेख स्तूप को अलंकृत करने की परंपरा में उसकी चारदीवारी के ऊपर विशिष्ट अंकन प्राप्त होता है। विसेंट स्मिथ ने स्तूप के पश्चिमी भाग में किये गये जटिल नक्काशीदार अंकन को भारत में दीवाल पर अलंकृत सबसे बेहतरीन अकन बताया है। समकालीन साहित्य में इस तरह के अंकन को पत्रलता, पत्रांगुलि, पत्र भगार्चना, अनेक भंगकुटिला-पत्रांगुलि आदि संबोधनों से अभिव्यक्त किया गया है।[१]

गधवा से प्राप्त मंदिर की द्वारशाखा पर कल्पलता या वल्लरी अभिप्राय का बेहतरीन अंकन प्राप्त हुआ है। इसकी ग्रथित पत्तियों एवं शाखाओं से युवतियों को झूलते हुये दिखाया गया है। कनिंघम के अनुसार यह विसर्पी लता की तरंगित टहनी है। जिसमें लंबी, तरंगित और एक दूसरे में मुड़ी-हुई पत्तियाँ हैं। साथ ही छोटी-छोटी मानवांगुलियां टहनी पर चढ़ते हूये मुद्रा में और कुछ पत्तियों पर बैठने की मुद्रा में अंकित हैं। भारतीय वास्तुशास्त्रीय अलंकरण में यह एक गरिमामय उदाहरण है।[2]

पवाया से कुछ स्त्री-सिर की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हें। इनके बाल विभिन्न आकर्षक तरीकों से अनेक आभूषणों से सज्जित कर गूँथे हुये उत्कीर्णित किये गये हैं। मस्तक के ठीक ऊपर वालों को अशोक वृक्ष की पत्तियों एवं फूलों से सजाया गया है। इसी तरह पीछे लटकी हुई वेणियों या बांधे हुये जूड़ों में भी अशोक की पत्तिया एवं फूल आभूषण के तौर पर लगाये गये हैं। इस तरह के अलंकरण को गुप्त काव्य साहित्य में 'धम्मिला' कहा गया है। वस्तुत: इस तरह की साज-सज्जा दक्षिण भारत और पर्वतीय गुहाओ के अलंकरणों में ही अंकित मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त शिल्पियों ने इस अलंकरण विद्या को दक्षिण भारतीय शिल्पियों एवं गुहा के शिल्पियों से सीखा एवं अपनी कला में चित्रित किया था।

इस समय चित्रों के सौंदर्य को बढ़ाने के लिये उसकी पृष्ठभूमि में प्राकृतिक दृश्य चित्रित किये जाते थे, जिसमें वानस्पतिक अभिप्राय प्रमुख होते थे। अभिज्ञानशाकुंतलम में राजा दुष्यंत शकुंतला के चित्र की पृष्ठभूमि में प्राकृतिक दृश्यों को चित्रित करने की अद्‌भुत योजना प्रस्तुत करता है। जिसमें मालिनी नदी की धारा हो। जिसके सैकत पुलिनों पर हंसों के जोड़े विहर रहे हों। उस मालिनी के चारो ओर हिमालय की पावन पर्वतमालायें चली गयी हों, जिन पर हिरण बैठे हों। दुष्यंत चाहते हैं कि वह शाखाओं में लटकते हुये बल्कल वस्त्रों वाले काव्य के आश्रमों के वृक्षों के चित्र बनाये, जिसमें से एक की छाया में बैठे हुये कृष्ण मृग के सींग से मृगी अपने बायें नेत्र को खुजला रही हो।

---

1 गुप्त आर्ट, वी० एस० अग्रवाल, पृ० 41।

2 वही, पृ० 40।

**कार्या सैकतलीन हंसमिथुना स्त्रोतोवहा मालिनी, पादास्तामभितो निषण्ण हरिणा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बित वल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः, श्रृंगे कृष्ण मृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्॥[1]**

पांचवी शताब्दी ई० की कला में भी वानस्पतिक अकन की समृद्ध परंपरा दिखायी पड़ती है। स्वाभाविक रूप से यह गुप्त काल से ही संबद्ध कला है। ऐसे कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

श्रृंगवेरपुर (इलाहाबाद) से रामायण-दृश्य से संबंधित एक कलाकृति मिली है। इनमें बंदरों का समूह चित्रित है। सम्भवतः इनमें से एक हनुमान हैं। बायीं ओर एक आकृति तरकश के साथ शाल्मली वृक्ष के नीचे खड़ी है। ऊपर दाहिनी ओर अंकित पौधे की पहचान संभव नहीं हो पायी है।[2] भूमरा (सतना, म० प्र०) से प्राप्त एक कलाकृति में आँवले के वृक्ष का स्पष्ट अंकन है। यह कलाकृति इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित है। रामायण से संबद्ध एक अन्य दृश्य में सीता को अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई दिखाया गया है। यह भिंड (म० प्र०) से प्राप्त हुआ है। सामलाजी (गुजरात) से प्राप्त एक मातृका मूर्ति के बालों को अशोक के फूल एवं फलों से सजाया गया है।[3] यह अपने हाथों मे एक बच्चे को उठाये हुये हैं।

एलोरा (महाराष्ट्र) के गुफा नं० तैंतीस से छठीं शताब्दी ई० की एक कलाकृति में कल्पवृक्ष के नीचे देवराज इंद्र को ऐरावत पर विराजमान दिखाया गया है। उनके दूसरी तरफ गंधर्व एवं अप्सरायें हैं। इस कल्पवृक्ष की पहचान न्यग्रोध (वट) वृक्ष से की गयी है। चूँकि यह वृक्ष स्वर्ग में उठा हुआ है, इसलिये उसमें लटकती हुई जड़े अंकित नहीं है, जो वट वृक्ष की अपनी विशिष्ट पहचान हैं।

हर्षचरित में उल्लिखित है कि राज्य श्री के विवाह के अवसर पर मूर्तिकारों (लेप्यकार) का बहुसंख्यक समुदाय नारियल, केला, एवं सुपारी के वृक्षों की मृण्मूर्तियाँ तैयार करने में लगा हुआ था।

लेप्यकरकदम्बका क्रियमाणमरीनमय-मीनकूर्मकारा नारीकेल कदलीपूग वृक्षम्।[4]

गुप्त काल में हम साँचे में ढ़ले हुये ईट एवं फलकों को देखते हैं जो विविध तरह की डिजाइनों एवं अभिप्रायों से अलंकृत हैं। इनमें से कुछ अभिप्राय ये हैं—नंद्यावर्त, कमल, गिलोय, आड़ी-तिरछी रेखाएं, बेल बूटे एवं अरबीय अभिप्राय। इनमें से कुछ अभिप्राय चूड़ियों पर अंकित होते थे, जो 'कतक' कहलाते थे, कुछ पैरों के लिये अंकित होते थे जो 'खड्ग' कहे जाते थे। ये अभिप्राय पत्तियों एवं फूलों की पंखुड़ियों, उनके वाह्य दलों, एवं गुलाब तथा कमल के फूल के साथ चिघाड़ते हुये हाथियों के सिरों सहित अंकित किये गये हैं।[5]

---

1 अभिज्ञान शाकुतलम, 6 17।

2 प्लाट्स इन इडियन टेंपल आर्ट, शक्ति एम० गुप्ता, प्लेट 42।

3 वही, प्लेट 202।

4 हर्षचरित, अनु० कावेल, पृ० 124।

5 गुप्त आर्ट, वी० एस० अग्रवाल, पृ० 46।

उक्त आलोचित अवधि में वानस्पतिक अंकन प्राय: आलंकारिक रुप में ही प्राप्त होता है। शुंग- एवं कुषाण कला की प्रतीकात्मकता गुप्त कला में कदाचित ही दिखायी पड़ती है। वृक्षों एवं वनस्पतियों का अंकन प्राय: धार्मिक कथानको के साथ ही दिखायी पडता है, ऐसे में यह प्रतीत होता है कि दृश्य से संबद्ध वानस्पतिक अंकन प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ धार्मिक दृष्टिकोण से भी अंकित किये गये। मंदिरों के द्वारशाखाओं पर बेल-बूटों का अकन भी सौंदर्य के साथ-साथ वानस्पतिक आध्यात्मिकता की ओर ही इंगित करता है। चूँकि इस समय मंदिर शिल्प के रूप में वास्तुकला की प्रधानता थी, अतएव मूर्ति या चित्र रूप मे अंकन गौण रूप में, इन मंदिरों के अलकरण अभिप्रायों के रूप में मिलते हैं।

अजंता की चित्रकला में वानस्पतिक अंकन— भारतीय चित्रकला के इतिहास में अजंता का स्थान सर्वोपरि है। ई० पू० दूसरी शती से लेकर सातवीं शताब्दी ई० तक यहाँ कला का विकास निरंतर होता रहा। चित्रकला के साथ वास्तु और मूर्ति कला के भी विविध रूप वहाँ संबंधित हुए। भारतीय कला के सम्यक अध्ययन के लिये विभिन्न कलाओं के अन्योन्याश्रित संबंधों का मनोरम निरूपण अजंता में उपलब्ध है।

भाव कला की आत्मा है। साहित्य एवं मनोविज्ञान में जिन भावों का वर्णन है, उन सभी का अवलोकन अजंता भित्तिचित्रों में किया जा सकता है। कलाकारों ने यथार्थ जगत के क्रियाकलापों को तो अंकित किया ही है, साथ ही उसमें लौकिकता से परे की आध्यात्मिक अनुभूतियों को भी कल्पना द्वारा चित्रों में व्यंजना की है। अजंता में प्रकृति अपने वानस्पतिक रूप में जैसे जीवंत हो उठी है। विभिन्न दृश्यों में चित्रित कुछ वानस्पतिक अंकन इस प्रकार हैं।

अजंता की गुफा नं० एक में बोधिसत्व पद्मपाणि अवलोकितेश्वर का चित्रण है। चित्र में प्राकृतिक वातावरण उत्पन्न करने हेतु समस्त पृष्ठभूमि में वनस्पति का अत्यंत सुरूचिपूर्ण अंकन है। सुपारी का वृक्ष, ताड़ का वृक्ष तथा अशोक वृक्ष की पत्तियों में यथार्थपूर्ण अद्भुत कलात्मक अंकन है। बोधिसत्व अपने दायें हाथ में कमल लिये हुये दिखाये गये हैं।

गुफा नं० एक में शिवि जातक का एक दृश्य अंकित है। इसका समय प्रारम्भिक छठीं शती ई० का है। इस चित्र में विलाप करती हुई स्त्रियां अंकित हैं। दृश्य में बायीं ओर पीपल की पत्तियों का स्पष्ट अंकन है। दृश्य के ठीक बीच में दो स्त्रियां, नीचे की ओर दो स्त्रियां एवं दायीं ओर एक स्त्री स्पष्ट दिख रही है।

गुफा नं० दो चौथी शताब्दी ई० के अंत की रचना है। इसमें एक दृश्य में उपासक को पूजा करते हुये दिखाया गया है। दृश्य में दायीं ओर केले के पौधे का सुस्पष्ट अंकन है। पौधे की पत्तियां सुस्पष्ट बनी हुई हैं। उक्त दृश्य में केले के पौधे का अंकन इसकी धार्मिक महत्ता को ही प्रतिबिम्बित करता है। दूसरी गुफा में 'विधुर पंडित जातक' की कथा कई भागों में अंकित है। इसी गुफा में हरीति मंडप

मे बायी ओर भेंट सहित उपासिकाओं का चित्रण है। ये उपासिकायें पूजा मंडप की तरफ प्रस्थान करते हुये चित्रित है। नारियां पुष्पवेणीयों, मुक्ताओं से अलंकृत लंबी-लंबी मालायें, बाजूबद, कंगन, कर्णफूल तथा पैरो मे आभूषण धारण किये हुये हैं। पृष्ठभूमि में दोनों ओर केले के वृक्षों का यथार्थ अकन है।

गुफा नं० सत्रह में भी एक दृश्य में केले के पौधे का सुस्पष्ट अंकन है। पॉचवीं शताब्दी ई० के प्रारभ की इस कृति में 'नंद के अस्वीकार से उद्विग्र युवतियों' का चित्र अंकित है। 'छदत जातक' अजता के चित्रकारों का बहुत प्रिय विषय था। सत्रहवी गुफा के प्रथम दृश्य में हिमालय की तराई में झील के तट पर हाथियों के समूह का अंकन है। पर्वत श्रेणियों का प्रतीकांकन, झील में कमल दल, वट-वृक्ष की लटकती जड़ें तथा विभिन्न मुद्राओं में हाथी की आकृतियों का चित्रण बहुत ही खूबसूरती से हुआ है।[1]

गुफा नं० दस में बायीं ओर की दीवाल पर बोधि वृक्ष की पूजा के चित्र का अंकन किया गया है। यह बोधि वृक्ष न्यग्रोध (वट) का वृक्ष है। यहाँ प्रतीकात्मक रूप में इस वृक्ष का अंकन किया गया है। दसवी गुफा के ही एक अन्य दृश्य में ताड़ के पेड़ का सुस्पष्ट अंकन है। यह 'श्याम जातक' से लिया गया है। संबंधित चित्र पहली शताब्दी ई० पू० का है।

पहली गुफा में एक अंकन 'पत्तियों एव फूलों' का है। पांचवी शताब्दी ई० मध्य के इस दृश्य में हरी-पीली पत्तियां एवं गोले आकार व हरे रंग के दो फल अंकित हैं। पत्तियों एवं फल की पहचान संदिग्ध है।

अजंता की कला में कमल पुष्प, कमल कलिकायें, कमल-पत्र, कमल दंड या कमल गुच्छ की सुशोभित एवं सुसंस्कृत रेखायें, वल्लरियां एवं बंदनवारें, जगह-जगह पर दिखायी देती हैं। अधिकाधिक अंकन के बावजूद भी उनकी नवीनता कम नहीं होती। चित्रकारों को कमल का फूल इतना आकर्षक प्रतीत हुआ है कि बोधिसत्व की मूर्ति के हाथ में, स्तंभों पर पुतलियों के हाथ में या प्रेमी दंपत्तियों के बीच में अलंकरण के लिये उन्होंने अवश्य स्थान दिया है।

कमल के सूक्ष्म निरीक्षण और अभ्यास से चित्रकारों ने मानव शरीर के चित्रों में भी उसका लालित्य लाने की चेष्टा की है।[2] भारतीय शिल्प एवं स्थापत्य की कृतियों मे यद्यपि कमल प्राचीन काल से ही स्थान पाता रहा, परंतु चित्रों में अजंता ने ही उसका महत्व स्वीकार कर उसमें अभिवृद्धि की है।

अजंता के भित्तिचित्रों के रूप काल्पनिक भी हैं और यथार्थ भी। विभिन्न फूल पत्तियों की सहायता से कलाकार ने जो अलंकरण दिये हैं उनमें कलाकार की कल्पना मुखरित हो उठती है। आलंकारिक

---

1 कला तीर्थ अजता, डॉ० स्वर्ण लता मिश्र, नई दिल्ली 1997, पृ० 30।

2 अजता के कला मडप, रवि शकर रावल, अहमदाबाद 1937, पृ० 24।

डिजाइनो मे कमल के अतिरिक्त पशु-पक्षियों से युक्त पुष्प-लताओं, आम, अंगूर, अंजीर, शरीफा, नारियल, केला आदि वनस्पतियों का आलेखनों में सफल प्रयोग किया गया है। गुफाओं की छतों के अलकरण मे भी वृक्षों और लताओं का सफल अकन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

मध्यकाल (600-1200 ई०) की कला में वानस्पतिक अंकन—हर्ष के पश्चात उत्तर भारत में अनेक शक्तियों ने अपने छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिए। 650 से 1200 ई० तक राजनीतिक पटल पर अनेक राजवंशों का आविर्भाव देखने को मिलता है। इन राजवंशों के शासन काल में देश में वास्तु तथा मूर्तिकला का अत्यंत व्यापक विकास हुआ।

मध्यकाल में भारतीय मंदिरो का महत्व बहुत बढ़ गया। वे धार्मिक, सामाजिक तथा शैक्षिक विकास के केन्द्र बने। मंदिरों का महत्व बढ़ जाने से उनके रूप-विन्यास में वृद्धि हुई। मंदिरों के प्रवेश द्वार को अनेक अलंकरणों से सजाया जाता था, जिनमें घटपल्लव, कीर्तिमुख, पुष्प लता, शतदल, कमल, वल्लरियाँ आदि प्रमुख अलंकरण थे। मंदिरों के अन्य भागों को भी विविध अलंकरणों से मंडित करने की परम्परा शुरू हुई। ये अलंकरण धार्मिक एवं लौकिक दोनों थे। प्रतीकों की जो सुदृढ़ परंपरा भारतीय धर्मो में मिलती है, उसको कलाकारों ने वास्तुकला में मूर्त रूप देकर अमर बनाया। ऐहिक एवं पारलौकिक कितनी ही मनोरम कल्पनाएँ इन कलाकृतियों में साकार हुई। आलोचित काल की कला में वानस्पतिक अंकन का क्रमवार अध्ययन निम्नलिखित है।

सातवीं शताब्दी ई०—उड़ीसा में सातवीं शताब्दी ई० का मंदिर है—भुवनेश्वर मंदिर। मंदिर पर 'कालियादमन' से सम्बन्धित प्रसंग के चित्रण में विशिष्ट शैली का कदम्ब वृक्ष गोलाकार फल के साथ अंकित है। वृक्ष में पत्तियाँ नहीं है। कृष्ण कालिया नाग के फन पर नृत्य कर रहे हैं, जबकि कालिया नाग की पत्नी कृष्ण से अपने पति के जीवन की भीख माँग रही है।

ऐहोल के जैन गुफा मंदिर के एक दृश्य में जैन देवी अपनी दो स्त्री सहायकों के साथ एक वृक्ष के नीचे खड़ी हैं। वृक्ष की पहचान अमलतास से की गयी है, जो उसकी पत्तियों से स्पष्ट है। ऐहोल से प्राप्त एक अन्य दृश्य में दो स्त्रियाँ पोस्ते के फल के नीचे खड़ी हैं। दाहिने ओर की स्त्री अपने बायें हाथ में अमलतास की पुष्पित टहनी पकड़े हुये है। अमलतास के ऊपर बीच में एक कमल का पुष्प अंकित है, जो बीज के प्रारंभिक आधान को प्रदर्शित कर रहा है।

आठवीं शताब्दी ई०— भुवनेश्वर के मोहिनी मंदिर से आठवीं शती ई० के परवर्ती काल की एक कलाकृति में कटहल एवं मूली का स्पष्ट अंकन प्राप्त हुआ है। इस दृश्य में गणेश पूजा सामग्री के साथ अंकित किये गये हैं। गणेश के चार हाथ हैं और अपने वास्तविक दाहिने हाथ से वे लड्डुओं से भरा कटोरा उठाये हुये हैं। गणेश जी वास्तविक बायें हाथ में मूली लिये हैं जबकि अन्य दो हाथों में परशु और अक्षमाला धारण किये हैं। उनके आसन के पास कटहल और कुछ अन्य पूजा सामग्री दिख रही है। मोहिनी मंदिर के ही एक दूसरे दृश्य में दो व्यक्तियों को नृत्य की मुद्रा में दिखाया गया

है। दृश्य में बायी ओर एक गदा रखा गया है जबकि दायीं ओर त्रिशूल। नर आकृतियों के पैर के पास दो कटहल अकित किये गये हैं।

ऐहोल से यक्ष श्रवणभूत की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है जो एक वृक्ष के नीचे बैठे हुये अंकित है। यक्ष को दाहिने हाथ में बिजौरा नीबू धारण किये हुये दिखाया गया है। वर्तमान में यह प्रतिमा उदयपुर सग्रहालय में सुरक्षित है।

एलोरा से एक जैन देवी की प्रतिमा प्राप्त हुई है। देवी आम के पेड़ के नीचे बैठी हुई हैं। उनका दाहिना पैर कमल के आधार पर टिका हुआ है। दूसरी ओर दो स्त्री चित्र हैं। उनके पैर के पास एक सिह का अंकन है। इनकी पहचान अंबिका एवं दुर्गा के रूप में की गयी है।

तूमैन (म० प्र०) के विन्ध्यवासिनी मंदिर में भगवान सूर्य के पुत्र रेवंत को एक आम्र वृक्ष के नीचे अश्वारुढ दिखाया गया है। उडते हुये गंधर्व फूलों की माला अर्पित कर रहे हैं। उनके पीछे छाता लिये हुये एक व्यंक्ति खड़ा दिखाया गया है।

गनेरी (बिहार) से मैत्रेय की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है। धोती पहने हुये मैत्रेय सिर पर मुकुट धारण किये हैं और एक कमल के ऊपर एक महिला एवं पुरुष सहायकों के साथ खड़े हैं। मैत्रेय अपने बाये हाथ में नीलोत्पल फूल धारण किये हुये हैं।

आठवीं-नवीं शताब्दी ई० की एक कृति विदिशा (म० प्र०) से प्राप्त हुई है। यह 'धेनुक वध' प्रसंग पर आधारित है। कृति के मध्य में ताल वृक्ष भरपूर फलों के साथ चित्रित है। बायीं ओर बलरामजी धेनुक नामक असुर को मारने हेतु उसे हाथों में ऊपर उठाये हुये हैं और ऐसा लगता है कि वे उसे ताल वृक्ष से नीचे फेंकने ही वाले हैं। दायीं ओर धेनुक को मृत दिखाया गया है। एलोरा से प्राप्त एक चित्रण में जैन देवी अंबिका आम्र वृक्ष के नीचे बैठी हुई अंकित हैं। वे अपना हाथ नंगे बच्चे के ऊपर रखे हुये हैं। उनके पीछे एक नर आकृति अंकित है।

नवीं शताब्दी ई०— राजस्थान में अबनेरी के हर्षा माता मंदिर के अंकन में एक पुरुष एवं नारी संगीतकार को अलग-अलग आसनों पर बैठे हुये दिखाया गया है। नारी संगीतकार एक वाद्य बजा रही है, जिसके साथ चार अन्य संगीतकार ताल मिला रहे हैं। पृष्ठभूमि में आम के दो गुच्छे चित्रित हैं। अवंतिपुर से दीवाल पर चित्रित केले के पौधे का खूबसूरत अंकन प्राप्त हुआ है। वर्तमान में यह कश्मीर सग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है।

अबनेरी से नवीं शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध का 'केशिन वध' का अंकन प्राप्त हुआ है। दृश्य में केशिन घोड़े के वेश में कृष्ण पर आक्रमण कर रहा है। कृष्ण उसके मुँह में अपना हाथ डाल कर उसे मार डालते हैं। कृष्ण एक मुकुट और बैजयंती माला धारण किये हुये हैं जबकि बलराम कृषक वेश में अंकित किये गये हैं। दोनों भाइयों के बीच में एक केला का पौधा अंकित किया गया है।

बगाल से प्राप्त नवी-दसवीं शताब्दी के एक दृश्य में विष्णु को एक पुरुष एवं एक स्त्री सहायकों के साथ चित्रित किया गया है। विष्णु वैजयंती माला धारण किये हुये हैं और अपने दाहिने हाथ मे एक शरीफा का फल लिये हुये हैं।

दसवीं शताब्दी ई०—राजस्थान मे ओसियाँ के मंदिरों में कला की एक समृद्ध परंपरा प्राप्त हुई है। यहाँ के मंदिर नं० एक से एक स्त्री का चित्र प्राप्त हुआ है। यह झीने कपड़े पहने हुई है। इसके कानो मे अपेक्षाकृत बड़ी बालियाँ (ear-rings) अंकित की गयी हैं। स्त्री चित्र के पीछे तीन सीधी लतायें दिख रही है जिनका तादात्म्य (Monstera deliciosa) के साथ किया गया है। ओसियाँ माता मंदिर के स्तंभों को विविध प्रकार की लताओं एवं फूलों से सजाया गया है। इन स्तंभों पर छः दलों वाले फूल अंकित किये गये हैं। इन फूलों में छः छोटे-छोटे व्यवस्थित वाह्यदल भी दिखायी पड़ रहे हैं। इस फूल की पहचान अभी तक संभव नहीं हो पायी है।

तेवार (जबलपुर, म० प्र०) से 'गाथा सप्तशती' के एक दृश्य का अंकन प्राप्त होता है। दृश्य के बायी तरफ दो औरतें एक औरत को अपने प्रेमी के साथ जाने के लिये मना रही हैं। दृश्य में दायीं तरफ एक व्यक्ति अपने पैर पर दूसरा पैर डाले हुये केले के पौधे के नीचे लेटा हुआ है, जिससे एक स्त्री आलिगनबद्ध है।

लखीसराय (बिहार) से गणेश की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है जो वर्तमान में पटना संग्रहालय की वीथियों में सुरक्षित है। मंदिर के ताखे में चार हाथ वाले गणेश उत्कीर्णित किये गये हैं। वे अपने ऊपरी दाहिने हाथ में मूली लिये हुये हैं जब कि ऊपरी बायें हाथ में फरसा लिये हुये हैं। नीचे दाहिने हाथ में अक्षमाला तथा बायें हाथ में मोदक भरा कटोरा धारण किये हुये हैं, जिसमें उनकी सूड़ अवलंबित दिखायी गयी है। गणेश मूर्ति के ठीक ऊपर एक अन्य ताखे में दोहरे दलों वाले कमल पर शिव लिग उत्कीर्णित किया गया है।

मध्यकालीन चंदेल राजवंश के शासन काल में खजुराहो में कला का अप्रतिम उन्मेश हुआ। खजुराहो के मंदिर पूर्व मध्यकालीन भारतीय वास्तु तथा मूर्तिकला के उत्कृष्ट उदाहरण माने जाते हैं। खजुराहो की इस कला राशि में पूर्व मध्यकालीन भारत का जीवन मूर्तिमान हो उठा है। प्रकृति और मानव जीवन की ऐहिक सौंदर्य-राशि को यहाँ के मंदिरों में शाश्वत रूप प्रदान कर दिया गया है। जहाँ तक खजुराहो में वानस्पतिक अंकनों की बात है, ऐसे अंकन पार्श्व भाग में या आलंकारिक रूप में ही दिखायी पड़ते हैं। वृक्ष की शाखा पकड़ कर शालभंजिका मुद्रा में खड़ी कुछ नारी मूर्तियाँ दिखायी पड़ती हैं। मूर्ति कला में यत्र-तत्र कुछ लता-वृक्ष के अंकन भी प्राप्त होते हैं। वानस्पतिक अभिप्राय से सम्बन्धित एक प्रमुख अंकन लक्ष्मण मंदिर में प्राप्त होता है। इस मंदिर के एक दरवाजे के सिरदल पर एक नग्न स्त्री उत्कीर्णित है। यह गहनों से सुसज्जित है और अपने हाथमें वीणा धारण किये हुये है। सिरदल को आम की पत्तियों के बंदनवार से सजाया गया है।[1] ध्यान देने योग्य बात है

1 प्लाट्स इन इडियन टेपिल आर्ट, शक्ति एम० गुप्ता, प्लेट 114।

कि प्राचीन काल मे आम की पत्तियों का धार्मिक आयोजनों में प्रमुखता से उपयोग हुआ करता था, जो आज भी प्रचलन में है।

ग्यारहवीं शताब्दी ई०— मंडोर (राजस्थान) से विष्णु से सम्बद्ध एक अंकन प्राप्त होता है। इसमें भगवान विष्णु मध्य मे खडे अंकित हैं। उनके हाथ दो पुरुष सम्भवत: बच्चों के ऊपर अवलंबित है। विष्णु के कंधे के ठीक पीछे Monstera की दो लंबी पत्तियाँ चित्रित हैं। विष्णु के बायें हाथ में Monstera का फल भी दिखाया गया है।

विष्णुपुर (गया, बिहार) से 'लोकनाथ' से सम्बद्ध एक फलक प्राप्त हुआ है। वर्तमान में यह पटना संग्रहालय मे सुरक्षित है। इस फलक में कमल पर एक बौद्ध देवी की आकृति अंकित है। यह अपने बाये हाथ में आठ दलो वाले कमल को धारण किये हुये हैं।

भुवनेश्वर (उड़ीसा) के ब्रह्मेश्वर मंदिर के वेदिबंध पर केवड़े के गोलाकार फल उत्कीर्णित किये गये हैं।

नालंदा (बिहार) से 11-12वीं शताब्दी ई० की एक कलाकृति प्राप्त हुई है, जिसमें अशोक वृक्ष स्पष्टत: देखा जा सकता है। उक्त अंकन गौतम बुद्ध के जन्म के दृष्टांत से सम्बन्धित है। माया देवी अशोक वृक्ष की शाखा को पकड़े हुये खड़ी हैं। उनके बगल में दाहिनी ओर जन्म लिये हुये सिद्धार्थ दिख रहे हैं। माया देवी के दाहिने ओर युवा सिद्धार्थ को पाँच दलों वाले कमल पर खड़ा दिखाया गया है। देवी और देवता भी उनके सहायक रूप में अंकित किये गये हैं।[1]

बारहवीं शताब्दी ई०— इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता में बारहवीं शताब्दी ई० की गणेश से सम्बद्ध एक कलाकृति संरक्षित है। इसमें आम की पत्तियों का सुस्पष्ट अंकन प्राप्त होता है। दृश्य में कमल पुष्प पर अनेक बाहों वाले भगवान गणेश को नृत्यरत दिखाया गया है। दृश्य के ऊपरी सिरे पर आम की पत्तियों के गुच्छे अंकित हैं। गणेश जी की सूड़ उनके बायें हाथ में मोदक से भरे कटोरे को स्पर्श कर रही है। दूसरे भाग में दो आकृतियों को वाद्य यंत्र बजाते हुये दिखाया गया है।

सेन वंश से सम्बन्धित एक कलाकृति में वातरंगेश्वरी काली का अंकन है। वर्तमान में यह दिल्ली स्थित संग्रहालय में सुरक्षित है। यह देवी 'वात पेड़' अर्थात न्यग्रोध की देवी हैं जो एक कमल के ऊपर आसीन हैं। इसके नीचे एक नर आकृति लेटी हुई है। देवी बुरी शक्तियों की नाशक हैं। इन बुरी शक्तियों के सिर शिकार रूप में वट वृक्ष की शाखाओं से लटके हुये दिख रहे हैं। देवी अपने निचले बायें हाथ में ऐसा ही एक सिर पकड़े हुये हैं। देवी के गले में भी मुण्डों की माला है। देवी के दाहिनी ओर एक हाथी अंकित है। दृश्य में देवी के आठ हाथ दिखाये गये हैं।

वेल्लूर के चेन्नकेश्वर मंदिर से आम का फल धारण किये देवी का अंकन प्राप्त होता है। देवी भारी आभूषणों से सुसज्जित हैं। विशेष प्रकार से सजाये गये उनके बाल आम्र फलों से अलंकृत किये

---

1 प्लाट्स इन इडियन टेपिल आर्ट, शक्ति एम० गुप्ता, प्लेट्स 199, पृ० 213।

गये है। इन आम्र फलो को उनके विविध किस्मों 'तोतापुरी', 'गिनीमोठी', 'किलो मुखी' आदि से समीकृत किया गया है।

माउट आबू (राजस्थान) से 1288-96 ई० के बीच के एक मदिर के वेदिबंध पर कमल का फूल उत्कीर्णित है। कमल के फूल का अंकन इस तरह किया गया है मानो मंदिर इस कमल के फूल से ही निकल रहा हो।

निष्कर्ष—भारतीय कला के विकास में यहाँ की धार्मिक परंपरा की महत्वपूर्ण भूमिका है। वैदिक साहित्य में ब्रह्म की शक्ति के रूप में देवताओं और भौतिक जगत के पदार्थो का उल्लेख किया गया है। समय के साथ मगलकारी मूर्त रूपों और भावों की संख्या में वृद्धि हुई। धर्म से आबद्ध होने के कारण ये मंगल प्रतीक सर्वत्र व्याप्त हो गये। बौद्ध, जैन और हिन्दू सभी धर्मो में इन्हें स्वीकृत किया गया।

प्राचीन मॉगलिक प्रतीको में लता एवं वनस्पति प्रमुख है। इनके मूर्तियों को रूप-कल्पना या प्रतिमा लक्षणों में स्वीकृत किया गया। इन वनस्पतियों में वृक्ष, कल्प वृक्ष, कल्प लता, पद्म, पीपल, वट, मुचकुद, ताल, वल्लरी प्रधान अलंकरण एवं श्री वृक्ष प्रमुख हैं।

भारतीय धार्मिक कला मुख्य रूप से मिथक एवं लोगों के विश्वास पर आधारित है। कला के आलंकारिक अभिप्राय मुख्यत: वनस्पतियों से सम्बद्ध हैं। इन्हें समझने हेतु धार्मिक साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। प्राचीन भारत में पेड़-पौधे देवस्थल के रूप में देखे जाते थे। इसी क्रम में शुरू हुई वृक्ष पूजा की परंपरा आज तक चल रही है। भारत में मंदिर निर्माण अक्सर वृक्ष के नीचे या उसके पास ही होते थे। पेड़-पौधे इस अर्थ में भी महत्वपूर्ण है कि वे हमारे जीवन की अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ शीतल छाया भी प्रदान करते हैं, जहाँ मनुष्य ही नहीं, पशु और पक्षी भी शरण लेते थे। ग्राम पंचायतों की बैठकें वृक्षों के नीचे ही सम्पन्न होती थी। ऐसे में वृक्ष स्वाभाविक रूप से कला-अंकनों में प्रतिष्ठित हुए।

वन देवता या वृक्ष-आत्मा का विश्वास प्राचीन काल से ही मान्य रहा है। वृक्ष में आत्मा (जीवन) की मान्यता को हिन्दू धर्म के अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन धर्म में भी स्वीकृत किया गया। बोधगया से प्राप्त एक कलाकृति में वृक्ष से दो मानव हाथ निकलते हुये दिखाये गये हैं। इनमें से एक हाथ में भोज्य सामग्री जबकि दूसरे में पेय पदार्थ हैं। इनको लेने के लिये एक व्यक्ति अपने हाथ बढ़ा रहा है। यह अंकन वृक्षों में जीवन की परिकल्पना को साकार करने के साथ-साथ मानवीय जीवन हेतु वृक्षों की जरूरत को भी इंगित कर रहा है। गांधार प्रदेश के एक अंकन में बुद्ध के मृत शरीर की रक्षा करते हुये एक वृक्ष उत्कीर्णित है। आख्यानों के अनुसार यह साल वृक्ष है।

वृक्ष आत्मा के निवास रूप में परिकल्पित वृक्षो के पूजन हेतु सम्बन्धित वृक्षों के नीचे एक चबूतरा बना दिया जाता था। भक्त जन उस पर अपनी फूल-मालायें अर्पित करते थे। साँची, भरहुत,

अमरावती और नागार्जुन कौंडा के स्तूपो पर इससे सम्बन्धित अनेक दृश्य अंकित है। कला में शिल्पित ये वृक्ष न्यग्रोध, अश्वत्थ, बदरी, कदम्ब, कटहल, शिरीष, बिल्व, उदुम्बर, अशोक, साल, नागकेशर और आम के हैं।

कला मे अंकित विविध वृक्ष धार्मिकता से इतर अर्थ में भी लिये गये। भरहुत और साची की कला में बहुलता से अंकित कटहल, शरीफा, आम, बेर आदि फलो के वृक्ष इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्बन्धित कला केन्द्र के समीप सामान्यतया पाये जाने वाले वृक्षों एवं वनस्पतियों को कलाकारों ने अपना अभिप्राय बनाया होगा। किसी पौधे, पत्ती या फूल विशेष से प्रभावित कलाकार भी उसे अपनी कला में अंकित कर उसे कालजयी बनाने का प्रयास करते रहे होंगे। भरहुत और बोधगया के स्तूपों की रेलिंग पर कमल एवं कुमुदिनी (लिली) के चित्रण बहुलता से प्राप्त है। सामान्यतया ये पुष्प तालाबों में ही पाये जाते हैं। साँची और भरहुत की कला में समृद्ध वानस्पतिक अंकन से ऐसा प्रतीत होता है कि ये शिल्पी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को साकार करने हेतु प्रयासरत थे।

अधिकांश कलाकृतियों में प्राचीन साहित्य में वर्णित परंपराओं का अंकन किया गया है—विशेष तौर पर धार्मिक अभिप्रायों में। कला प्रतिमानों के अध्ययन से यह बात सामने आती है कि शैव मंदिरों पर अधिकांशत: न्यग्रोध (वट) वृक्ष का, शिवलिग वाले मंदिरों पर बिल्व वृक्ष का अंकन किया गया है। इसी तरह कामदेव के धनुष रूप में ईख और शिव के साथ अर्क (मदार) पौधे का उत्कीर्णन किया गया है। विष्णु से सम्बन्धित आख्यानों या मंदिरों में कमल, कृष्ण से जुड़े आख्यानों में कदंब और अर्जुन, लक्ष्मी से जुड़े आख्यानों में कमल रुढ़ि के रूप में अंकित मिलते हैं।

बौद्ध परंपरा में वृक्षों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। शुरू में जब बौद्ध प्रतिमायें निर्मित नहीं होती थीं, बुद्ध के जीवन से जुड़े वृक्षों को ही प्रतीक रूप में पूजा जाना शुरू हुआ। अश्वत्थ वृक्ष गौतम बुद्ध की ज्ञान प्राप्ति से सम्बन्धित है। वृक्षमह परंपरा के अंतर्गत बोधिसत्व के विभिन्न जन्मों से सम्बन्धित अनेक वृक्ष परिकल्पित किये गये हैं। ये हैं—विपस्वी का अशोक वृक्ष, शिखिन का पुंडरीक, विभांशु का साल, क्रकुच्छंद का शिरीष और कनकमुनि का न्यग्रोध वृक्ष।

प्राचीन काल में महिलायें पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से वृक्ष का पूजन किया करती थीं। इस वास्तविकता को शिल्पियों ने अपनी कला में रूपायित किया। आगे चलकर स्त्री और वृक्ष परस्पर ऐसे घुल-मिल गये कि दोनों एक दूसरे के प्रतीक बन गये। 'शालभंजिका' और 'वृक्ष-दोहद' ये दो मुख्य कला अभिप्राय 'स्त्री और वृक्ष' से ही सम्बद्ध है। कला में स्त्रियों के साथ अंकित कुछ वृक्ष हैं—अशोक, कदंब, आम, चंपा, नागकेशर, बकुल आदि।

आलंकारिक अभिप्राय में चार से लेकर आठ दलों वाले फूलों का दीवालों और स्तम्भों पर उत्कीर्णन मिलता है। इन फूलों के साथ पत्तियाँ, टहनी या फल कुछ भी नहीं पाये जाते। इन फूलो का समीकरण भी किसी फूल के साथ करना सम्भव नहीं है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन फूलों के दलों की सख्या भारतीय परंपरा में वर्णित संख्याओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।[1] फूल के चार दल चार दिशाओं, चार वेदों, जीवन की चार अवस्थाओं, चार आश्रमो एव चार वर्णो को व्यंजित करते है। पॉच दल वाले अभिप्राय पाँच ज्ञानेन्द्रियों एवं पाँच आधारभूत तत्वों (धरती, अग्नि, हवा, आकाश, जल) का प्रतिनिधित्व करते हैं। छः दल षडचक्रो एवं सर्वोच्च सत्ता द्वारा मानव समुदाय को दिये गये छः गुणों (ज्ञान, बल, कीर्ति, वैराग्य, श्री और ऐश्वर्य) तथा छः हिन्दू दर्शनों की ओर इंगित करते हैं। सात दलों वाले फूलों का अंकन यदा-कदा ही प्राप्त होता है। ये सात दल सप्तर्षि, सप्तमातृका, सप्त ताल, सप्त सागर आदि के द्योतक हैं। आठ दलों वाले अभिप्राय आठ दिशाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

वानस्पतिक अंकन में धार्मिक और लौकिक अभिप्रायों के अतिरिक्त कलाकारों के मस्तिष्क मे पर्यावरणीय चेतना भी जरूर रही होगी। पर्यावरण के लिये अति आवश्यक पेड़-पौधो का धर्म में भी प्रतिष्ठित स्थान था। इस तरह कलाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से पेड़-पौधों को विविध अर्थ प्रदान किये। स्तूपों, देवमंदिरों एवं देवस्थलों पर अंकित, उत्कीर्णित वृक्ष-वनस्पति श्रद्धालु जनता के मन में अपने लिये आदर एवं सम्मान की भावना जरूर जगाते रहे होंगे। इस तरह प्राकृतिक सामंजस्य बनाये रखने मे इन कलाकारों एवं कलाकृतियों की महत्वपूर्ण भूमिका दिखायी पड़ती है। कला की यह भूमिका इस अर्थ में और विशिष्ट दिखायी पड़ती है कि इसमें सदैव निरंतरता बनी रही और तत्कालीन जनता के लिये प्रेरणास्रोत का काम करती रही। वर्तमान में जब वृक्ष-वनस्पतियों का विनाश अपने चरम पर है, कला की भूमिका पहले से कहीं अधिक बढ़ गयी है।

●

1 प्लाट्स इन इडियन टेपल आर्ट, शक्ति एम० गुप्ता, पृ० 5।

अध्याय-7

प्राचीन भारतीय चिंतन में पर्यावरण और पेड़-पौधे

दार्शनिक दृष्टि से प्रकृति ईश्वर की प्रथम कृति है और मनुष्य प्रकृति की कृति। इसी कारण से मनुष्य को प्रकृति पुत्र कहा जाता है। मानवीय सभ्यता के विकास का प्रत्येक युग प्रकृति की गोद में ही पोषित हुआ और विकास की सीढ़ियों पर वह क्रमशः आगे बढ़ा। प्राकृतिक दृष्टिकोण से भारत शुरू से ही एक समृद्ध राष्ट्र रहा है। भारतीय संस्कृति के मूल में प्रकृति के साथ समन्वय की भूमिका का निर्वहन एक ऐसा तथ्य है जिसके कारण प्रदूषण की समस्या का विचार कभी पैदा ही नहीं हुआ। संभवतः यही वजह है कि प्राचीन भारतीय साहित्य में 'पर्यावरण' शब्द प्रत्यक्ष रूप से नहीं पाया जाता न ही प्रदूषण की समस्या का विचार ही कभी पैदा हुआ।

भागवद्गीता में भगवान कृष्ण स्पष्ट घोषणा करते हैं कि जड़, चेतन सभी कुछ के निर्माता वे ही हैं। प्रकृति में ही ईश्वर के दर्शन का यह तथ्य भारतीय जीवन एवं परम्परा को प्रदूषण से मुक्त रखता है। फ्रासीसी विचारक दांते के शब्दों में कहें तो 'प्रकृति ईश्वर की कला है'। प्रसिद्ध विचारक बेकन भी कमोवेश यही विचार व्यक्त करते हैं 'प्रकृति की आज्ञा मानकर ही हम उसका नेतृत्व करते हैं।'[1]

वस्तुतः प्रदूषण का अर्थ ही है वातावरण को दूषित करना। जब हम प्रकृति की आनुपातिक संरचना में परिवर्तन कर जीव-जगत को प्रभावित करते हैं तो ऐसी भयावह प्रक्रिया की शुरूआत होती है। इस तरह प्रदूषण की समस्या एक भौतिक समस्या है जो समस्त वातावरण (जीव-जंतु एवं वनस्पतियों) को प्रभावित करती है। स्वच्छ पर्यावरण प्रकृति का अनुशासित एवं संतुलित रूप है। यह अनुशासन एवं संतुलन बना रहे, मानव की सभी गतिविधियां समन्वित रूप से चलती रहें, इस तरफ हमारे मनीषियो का ध्यान बहुत पहले चला गया था। इसलिये उन्होंने धर्म को दैनिक आचरण मानते हुये जीवन में ऐसे सिद्धान्त निर्धारित कर दिये थे कि प्रदूषण की समस्या के उठ खड़े होने का कोई कारण ही शेष न रहे।

पूरी सृष्टि पंचमहाभूत अर्थात पंचतत्वों से निर्मित मानी गयी है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि यही किसी न किसी रूप में जीवन का निर्माण करते हैं एवं उसे पोषण देते हैं। इन सभी तत्वों का सम्मिलित स्वरूप ही पर्यावरण है। पर्यावरण का संतुलन ही जीवन की प्रक्रिया को नियमित एवं नियंत्रित करता है। इसमें किसी तरह का गतिरोध आते ही जीवन संकट मे पड़ जाता है। हमारे

1 नवनीत, दिसबर 1999, पृ० 193 (सत्यनारायण भटनागर का लेख)।

प्राचीन ऋषि-मुनियों ने इसकी सुरक्षागत आवश्यकता एवम् महत्ता को ध्यान में रखकर इसे शुद्ध एवं सरक्षित रखने हेतु नियम बना लिये थे।

वेदों में वर्णित प्रकृति केवल जड़ पदार्थ नहीं अपितु ईश्वर की लीला-भूमि भी है। अतः उसमें सर्वत्र चिद् विलास माना जाता हे अर्थात प्रकृति के कण-कण में ईश्वरीय चेतना क्रीड़ा कर रही है। वेदों को सृष्टि विज्ञान का मुख्य ग्रथ माना जाता है। इसमें सृष्टि के जीवनदायी तत्वो का काफी सूक्ष्म एवं विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।

ऋग्वेद में अग्नि के रूप, रूपांतर, कार्य और गुणों की सम्यक् व्याख्या की गयी है। यजुर्वेद मे मुख्यतः वायु के विविध रूपों और गुण-धर्म का तात्विक विश्लेषण किया गया है। सामवेद का प्रमुख तत्व जल है जबकि अथर्ववेद में पृथ्वी तत्व की व्याख्या की गयी है। आकाश तत्व का वर्णन सभी वेदो में हुआ है। पर्यावरण के निर्माण में इन्हीं पंच तत्वो की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।[1]

ऋग्वेद में वायु के महत्व को भेषज गुणो से युक्त स्वीकार किया गया है। एक ऋचा के अनुसार—'प्रत्यक्षभूत दोनों प्रकार की हवायें सागर पर्यन्त और समुद्र से दूर प्रदेश पर्यन्त बहती रहती है। हे साधक! एक तो तेरे लिये बल को प्राप्त कराती है और एक जो दूषित है उसे दूर फेंक देती है।'

द्वाविमों बातौ वात आ सिन्धोरा परावतः। दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः॥[2]

एक अन्य श्लोक में कहा गया है—

यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः। ततो नो देहि जीवसे॥[3]

इस वायु के गृह मे जो यह अमरत्व की धरोहर स्थापित है वह हमारे जीवन के लिये आवश्यक है।

आ त्वागमं शन्तातिभिरयो अरिष्टतातिभिः। दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते॥[4]

अर्थात ' हे रोगी मनुष्य मैं वैद्य तेरे पास सुखकर और अहिंसाकर रक्षण में आया हूँ। तेरे लिये कल्याण कारक बल को शुद्ध वायु द्वारा लाता हूँ और तेरे जीर्ण रोग को दूर करता हूँ।'

ताजी हवा के महत्व को बताते हुये कहा गया है—

वात आ तु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे। प्र ण आयूँषि तारिषत॥[5]

---

1 अखड ज्योति, जनवरी, 2000, पृ० 35।

2 ऋग्वेद, 10 137 2।

3 वही, 10 186 3।

4 वही, 10.137 4।

5 वही, 10 186 1।

'ताजी वायु अमूल्य औषधि है जो हमारे हृद्‌य के लिये दवा के समान उपयोगी है, आनन्ददायक है। वह उसे प्राप्त करता है और हमारी आयु को बढ़ाता है।'

इसी तरह जल की महत्ता प्रतिपादित करते हुये उसे प्राणियों के साथ-साथ औषधियों एवं वनस्पतियों के लिये भी उपयोगी बताया गया है—

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आ पो जनयथा च नः।।[1]

'हे जल! तुम अन्न की प्राप्ति के लिये उपयोगी हो। तुम पर जीवन तथा नाना प्रकार की औषधियां, वनस्पतियां एवं अन्न आदि पदार्थ निर्भर हैं। तुम औषधि रूप हो।'[2] एक अन्य मन्त्र में जल की शुद्धता का वर्णन इस प्रकार है—'ओह। प्रशंसा के गीत गायें—प्रवाहित जल के, जो हजारो धाराओं से स्फटिक की तरह बहकर आखों को आनन्द देता है।' एक अन्य ऋचा वायु के गुणों को इस तरह प्रस्तुत करती है—'हे वायु अपनी औषधि ले आओ और यहाँ से सब दोष दूर करो क्योंकि तुम ही सभी औषधियों से भरपूर हो।'[3]

ऋग्वेद में यज्ञीय प्रयोजनों हेतु वनस्पति के काटे अथवा छिद्रित किये जाने पर उनके प्रति कृतज्ञता भाव से निम्न ऋचाएं समर्पित की गयी हैं—

यान्वो नरो देवयंतो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष।
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषंतु रत्नं।।[4]

अर्थात 'हे वनस्पते! देव कर्म में प्रवृत्त मनुष्यों ने (हवन सामग्री का रूप देने के लिये) आप में से जिनको (कूटने के लिये) अवट में डाला अथवा (विभाजित करने के लिये) धारदार शस्त्र से काटा है, वे आप की भाँति तेजस्वी, दिव्य गुण संपन्न (यज्ञ) के साथ स्थित होकर, इस याजक को श्रेष्ठ प्रजाओं से युक्त रत्नादिक प्रदान करें।

इसी भाव को एक अन्य ऋचा में इस तरह व्यक्त किया गया है—

वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्त्रवल्शा वि वयं रूहेम्।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय।।[5]

'हे वनस्पते। इस अत्यंत तीक्ष्ण फरसे ने तुम्हें यज्ञीय प्रयोजन के लिये विनिर्मित किया है। यज्ञ के प्रभाव से आप सैकड़ों शाखाओं से युक्त होकर वर्द्धमान हों और हम भी सहस्त्रों शाखाओं से युक्त होकर वृद्धि करने वाले हों।'

---

1 ऋग्वेद, 10 9 3।

2 कल्याण, वेद कथाक, जनवरी-फरवरी 1999 गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० 360-363।

3 अखड ज्योति, जनवरी 2000, पृ० 35।

4 ऋग्वेद, 3 8 6।

5 वही, 3 8 11।

'यजुर्वेद' में प्रमुखतः यज्ञ के विधानों का वर्णन किया गया है। उक्त वेद के शांति पाठ में पर्यावरण के सभी घटको को शात एवं संतुलित बनाये रखने का उत्कट भाव परिलक्षित होता है—

द्यौः शातिरन्तरिक्षशांतिः पृथिवी शांतिः रापः शांति रोषधयःशांतिः वनस्पतयः शातिर्विश्वेदेवाः शांतिर्ब्रह्म शाति सर्व ऊँ शातिः शांतिरेव शातिः सा मा शांतिरेधि॥[1]

उक्त श्लोक का तात्पर्य यह है कि समूचे विश्व का पर्यावरण संतुलित एवं परिष्कृत हो। इसमें उल्लेख है कि द्युलोक से लेकर पृथ्वी के सभी जैविक-अजैविक घटक संतुलन की अवस्था मे रहें। अदृश्य आकाश, पृथिवी एवं उसके सभी घटक जल, औषधियां, वनस्पतियां, संपूर्ण संसाधन एवं ज्ञान शांत रहे। पर्यावरण के प्रति इतना गहन एवं सूक्ष्म चिंतन अन्यत्र दुर्लभ है।

यजुर्वेद में यज्ञों को ही पर्यावरण शुद्धि का केन्द्र माना गया है। एक मन्त्र में कहा गया है 'हे पुरुष! शुद्धि के हेतु वायु को सर्वत्र फैलाने वाले संसार के धारक और सुख का विस्तार करने वाले यज्ञ का त्याग मत कर।' अग्नि को संबोधित एक अन्य मंत्र में कहा गया है—'हे अग्नि! लोकमंगल के लिये तुम सर्वत्र व्याप्त हो जाओ... .विषाक्त अन्न-जल से मेरी रक्षा करो। पृथ्वी को संबोधित एक मन्त्र में कहा गया है—हे पृथ्वी तुम रत्न-धन की खान हो और कृषि कर्मो की सूत्र कर्मो की सूत्रधारिणी हो।[2]

किसी उपयोग हेतु वृक्ष की शाखा ग्रहण करने पर भी उसकी उन्नति की कामना करनी चाहिये।

द्याम्मालेखीरन्तरिक्ष माहि ऊँ सीऽ पृथिव्यासंभव॥ अयहित्वास्वधितिस्ते तिजानप्प्रणिनायमहते सौभगाय॥ अतस्त्वनदेववनस्पतेशतवलशोविरोहसहस्त्रवल शाविवय रुहेम॥[3]

अर्थात 'हे यूपवृक्ष! द्यूलोक को मत बिगाड़ो। अतरिक्ष को मत नष्ट करो। पृथ्वी के साथ संगति करो। अर्थात तीनों लोकों में शांति हो। तुम पृथ्वी की वस्तु हो इस कारण पृथ्वी के सहित संगत हो। हे छिन्न वृक्ष! अवश्य ही अत्यंत तीक्ष्ण यह कुठार बड़े सौभाग्य दर्शनीयत्वादि के निमित्त या शोभन यज्ञ के निमित्त तुझको यूपत्व में प्राप्त करता है। हे वनस्पति देव! इस स्थान से तुम सैकड़ों अंकुर वाले होकर विशेषकर उपजो। इस कार्यबल से सहस्त्र सहस्त्र पुत्रपौत्रादि शाखास्वरूप संपन्न हों।

पर्यावरणीय महत्व के मद्देनजर ही वनस्पतियों के प्रति आदर भाव निम्न श्लोकों में प्राप्त होता है—

वनानाम्पतये नमो नमो रोहिताय।[4]

वनों के पालक के निमित्त नमस्कार है।

---

1 यजुर्वेद, 36 17।

2 नवनीत, दिसबर 1997, पृ० 49।

3 यजुर्वेद, 5 43।

4 वही, 16 18।

वृक्षाणाम्पतये नमो नमो......औषधीनाम्पतयेनमोनमाम्....कक्षाणाम्पतये नमो नमः ।।[1]

वृक्षो के पालक के प्रति नमस्कार है। ग्राम्य और अरण्य औषधियों के पालक के निमित्त नमस्कार है। वन के गुल्म, वीरुध आदि के पालक के निमित्त नमस्कार है।

नमोवन्याय चकक्ष्यायचनमः ।।[2]

वन में वृक्षादि रूप से होने वाले के निमित्त या घर में विद्यमान को भी नमस्कार है और तृणवल्ली में होने के निमित्त नमस्कार है।

नमऽ शुष्क्याय च हरित्याय च नमः... ।।[3]

सूखे काष्ठादि में विराजमान के निमित्त और हरे पत्ते आदि में विराजमान के निमित्त नमस्कार है।

ध्यातव्य है कि उक्त समस्त उदाहरणों में वैदिक मनीषियों ने पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश या वायु (वनस्पति) की शुद्धि पर ही अधिक बल दिया गया है। सृष्टि के इन मूलभूत तत्वों की शुद्धि से ही आत्मिक जीवन का उर्ध्व शिखर विकसित होता है। कहने का आशय यह है कि वैदिक मानव प्रकृति के द्वारा जीवन मांगल्य की ही कामना करता था।[4]

सामवेद मूलतः संगीतात्मक ग्रंथ है। सामवेद में प्राकृतिक सुषमा के वर्णन के साथ वनस्पति और पशु-जगत के अभिरक्षण को रेखांकित किया गया है। साथ ही ऋतुचक्र और औषधि विज्ञान की महत्ता भी प्रतिपादित की गयी है। एक सूक्त में ऋषि का कथन है 'अत्यधिक वर्षा करने वाले इंद्र की जल वृष्टि से सूर्य की किरणों वृक्षों और वनस्पति का पोषण करने में सहायक होती हैं।' एक दूसरे सूक्त मे कहा गया है 'परमात्मा ने औषधियों में रस को प्रेरित किया और सूर्य को द्युलोक में इस रूप में आरोहित किया कि ऋतु अनुसार ताप को ग्रहण कर सकें।' एक अन्य सूक्त में याचना की गयी है—'इंद्र सूर्य रश्मियों और वायु से हमारे लिये औषधियों में वानस्पतिक उत्कर्ष के द्वारा सर्वत्र जीवन मांगल्य की कामना करें।'

जीवन रंग-रस-गंध से ओतप्रोत तभी हो सकता है जब वनस्पति-जंगल फले-फूले, दिव्य औषधियाँ सुलभ हों, पशुधन सुरक्षित रहे और स्नेहिल तादाम्य के साथ मानव, पशु और वनस्पति परस्पर संग्रथित हों।

अथर्ववेद को मानव-जगत के अधिक निकट माना जाता है। व्यक्ति स्वस्थ रहें, दीर्घायु हों, सदाचार का पालन करें, पशु, वनस्पति एवं जीव-जगत के साथ साहचर्य रखें। अथर्ववेद के सूक्तों की

---

1 यजुर्वेद, 16 19।

2 वही, 16 34।

3 वही, 16 45।

4 नवनीत, दिसम्बर 1997, पृ० 49।

सार रूप मे यही भूमिका है। आयुर्वेद के जन्म के बहुत पहले अथर्ववेद में प्राकृतिक जडी-बूटियों तथा वृक्ष-मणियो का जो रहस्यमय वर्णन किया गया है वह विज्ञान के लिये आज भी चुनौती है।[1]

अनेकानेक प्रकार के फल, औषधियाँ, फसलें, अनाज और पेड-पौधे इसी धरती पर उत्पन्न होते हैं, अत: पृथ्वी को माता के समान आदर दिया गया है।

यस्मायन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पंचकृष्टयः। भूम्ये पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे।।[2]

भोजन और स्वास्थ्य देने वाली सभी वनस्पतियाँ इस भूमि पर ही उत्पन्न होती है। पृथ्वी सभी वनस्पतियों की माता एवं मेघ पिता हैं क्योंकि वर्षा रूप में पानी बहाकर यह पृथ्वी में गर्भाधान करता है।

जीवन के समस्त विकारों को दूर कर स्वस्थ, शांत और सौहार्द्रमय जीवन जीने की प्रेरणा और प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने के भावों से ओतप्रोत अथर्ववेद मानव के वैयक्तिक और सामाजिक परिवेश को नियंत्रित करने के विशिष्ट नियम प्रतिपादित करता है,जिनके अनुपालन से मनुष्य की उर्ध्व चेतना का विकास संभव हो सकता है। एक सूक्त में ऋषि की प्रार्थना है—'मधुमयी पृथिवी से उत्पन्न मधुमयी लता। मैं तुझे खोदता हूँ मुझे मधुरता प्रदान करो। मेरी जिह्वा का अग्रभाग मधुर हो। मेरा शरीर, अंत:करण और अधिक मधुर हो। मेरी वाणी में लज्जा और कार्यो में मधुरता होने से मैं सर्वप्रिय होऊं। हे मधुर लता तेरी समीपता से मैं मधु से भी मधुर हो जाऊं।' यह जड़ लता और चेतन-मानव का आत्म-संवाद है जो संपूर्ण प्राणिजगत को माधुर्य का संदेश देता हैं। एक अन्य सूक्त जिसमें ऋषि पृथ्वी की महानता, उदारता, सर्वव्यापकता आदि अनंत गुणों पर मुग्ध हो कह उठे- 'हे माता। आपके लिये ईश्वर ने शीत, वर्षा तथा वसंत ऋतुयें बनायी हैं, दिन-रात के चक्र स्थापित किये हैं। इस कृपा के लिये हम आभारी हैं। मैं भूमि के जिस स्थान पर खनन करूँ वहाँ शीघ्र ही हरियाली छा जाये आपसे प्रार्थना है कि मुझे ऐसी सद्बुद्धि दें जिससे मैं आपके हद्यस्थल को न तो आहत करूँ और न ही आपको दु:ख पहुँचाऊ।'

वैदिक कर्मकांडों की अनेक विधाओं ने भी पर्यावरण संरक्षण एवं सुरक्षा का दायित्व निभाया है। अरण्यों में रहकर पर्यावरण के प्रति विशेष जागरुक रहने वाले ऋषियों ने आरण्यक साहित्य का सृजन कर विश्व में पर्यावरण के महत्व को रेखांकित किया है। आरण्यक, ब्राह्मण-ग्रंथों एवं उपनिषदों के बीच की कड़ी हैं। 'अरण्ये भवमेति आरण्यकम्' कहकर आरण्य का अर्थ स्पष्ट किया गया है। वृहदारण्यक उपनिषद भी 'अरण्येऽनूत्यमानत्वात् अरण्यकम्' के रूप में इसका समर्थन करता है। इसका विषय प्राणविद्या है। अंतरिक्ष एवं वायु का प्राण से संबंध अन्योन्याश्रित है। पर्यावरण के जैविक एवं अजैविक तत्वों में भी वायु एवं अंतरिक्ष का विशेष योगदान रहता है। सृष्टि के सभी तत्वों में इन

1 नवनीत, दिसम्बर 1997, पृ० 50।

2 अथर्ववेद 12.1 42।

दोनों का समावेश है। इन्हीं गुणों के कारण-सृष्टि के सभी तत्वों को प्राणशक्ति मिलती है जिससे विकास की गति प्रशस्त होती है।[1]

पंचभूतों का विशद वर्णन उपनिषदों में भी हुआ है। इसमें प्रकृति की महत्ता को पर्याप्त मान्यता प्रदान की गयी है। इसके अनुसार पदार्थ की उत्पत्ति एवं जीव-जगत की सृष्टि जल एवं पृथ्वी, जल, औषधि, वायु और पुरुष सभी प्रकृति के घटक हैं। पृथ्वी का रस जल, जल का रस औषधि, औषधि का रस पुरुष, पुरुष का रस वाणी, वाणी का ऋचा, ऋचा का रस साम और साम का रस उद्‌गीत है अर्थात पृथ्वी तत्व में सब तत्वों को प्राणवान बनाने के प्रमुख कारण हैं। केनोपनिषद के चतुर्थ खंड में वन संज्ञक ब्रह्मा की उपासना का फल बताते हुये कहा गया है कि यह ब्रह्मा ही वन है। इसकी वन नाम से उपासना करनी चाहिये। जो उसे इस प्रकार जानता है, उसे सभी भूत अच्छी तरह चाहने लगते हैं। ध्यातव्य है कि यहाँ वन की उपासना करने का अर्थ है पृथ्वी को हरा-भरा रखना। इसके लिये आवश्यक है कि वृक्ष एवं वनस्पतियों के विनाश को रोका जाय। इसी को शस्य संवर्द्धन रूपी महापुण्य कहा गया है।[2] वैशेषिक दर्शन के अनुसार पेड़-पौधों को पंचतन्मात्राओं से युक्त माना गया है। जड़ समझे जाने वाले वृक्षों के इन व्यापारों को अनुप्रेरित करने वाले प्राण चेतना के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। पेड़-पौधों तथा जीव-जंतुओं (वायुमंडल) के मध्य गैसों का आदान-प्रदान सतत रूप से चलता रहता है।[3]

रामायण काल में भी पर्यावरण चेतना पर्याप्त रूप से सक्रिय थी। इस समय फल-फूल देने वाली वनस्पतियों के रोपण पर पर्याप्त बल दिया जाता था—

फलवन्तश्च ये वृक्षाः पुष्यवत्यश्च या लताः॥ विरोप्यन्ता वहुविधाश्छायावंतश्च गुल्मिना।
क्रियतां रमणीयं च श्वभ्राणां सर्वतोदिशम्॥ सुख मत्र वसिष्यामि यावत्कालस्य पर्ययः।
पुष्पाणि च सुगन्धीनि क्रियन्तां तेषु नित्यशः॥[4]

'जो फल देने वाले वृक्ष हैं एवं फूल देने वाली लतायें हैं उन्हे उन गड्‌ढों में लगाया जाय। घनी छाया वाले अनेक वृक्षों का वहाँ आरोपण किया जाय। उन गड्‌ढों के चारों ओर डेढ़-डेढ़ योजन (छः-छः कोस) की भूमि घेरकर खूब रमणीय बना दिया जाय।' एक अन्य प्रसंग में उल्लेख मिलता है कि 'जिन स्थानों में वृक्ष नहीं थे वहाँ कुछ लोगों ने वृक्ष भी लगाये।'

अवृक्षेषु च देशेषु केचिद वृक्षानरोपयन्....[5]

---

1 अखंड ज्योति, जनवरी 2000, पृ० 36।

2 वही, मार्च 1997, पृ० 9-10।

3 वही, पृ० 10।

4 वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० 2044, उत्तरकाड, 54 10-12।

5 वही, बालकाड, 80 7।

वृक्षारोपण की इस परपरा से रामायण कालीन स्थल एव पर्वत प्रदेश आम, जामुन, असन, लोध, प्रियाल, कटहल, धव, अंकोल, भव्य तिनिश, बेल, तिदुक, बाँस, काश्मरी (मधुपर्णिका), अरिष्ट (नीम), वरण, महुआ, तिलक, बेर, आवला, कदंब, वेत, धन्वन (इंद्र जौ), बीजक (अनार) आदि घनी छाया वाले वृक्षों से जो फूलो एव फलो से लदे होते थे, के कारण मनोरम प्रतीत होते थे।

आम्रजम्ब्वसनैर्लोधैः प्रियालैः पनसेर्धवैः। अंकोलैर्भव्यतिबिशैर्निल्वतिंदुकवेणुभिः॥
काश्मर्यारिष्ट वरणैर्मधूकैस्तिलकै रपि। वदर्यामलकैर्नीपैर्वत्र धन्वन बीजकैः॥
पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छायावदिभर्मनोरमैः। एवमादिभिराकीर्णः श्रियं पुष्पत्ययं गिरिः॥[1]

पर्यावरण की इस गौरव गरिमा को महाभारत कालीन मनीषियों ने सहज रूप से स्वीकार किया था। इस काल में भगवान कृष्ण द्वारा गीता में प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण बताया गया है। प्रकृति के कण-कण में सृष्टि का रचयिता समाया हुआ है। प्रकृति के समस्त वस्तुओं को परमेश्वर स्वरूप बताते हुये श्रीकृष्ण कहते है—'मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके सभी भूत प्राणियों को धारण करता हूँ। चंद्रमा बनकर औषधियों का पोषण करता हूँ।'

महाभारत काल में वृक्षो की पूजा का प्रचलन था। वृक्षों को काटना महापाप समझा जाता था।

यस्य चार्द्रस्य वृक्षस्य शीतच्छायां समाश्रयेत। न तस्य पर्ण दुह्येत पूर्ववृत्त मनुस्मरन.......... ॥[2]

'जिस हरे-भरे वृक्ष की शीतल छाया का आश्रय लेकर रहा जाय, उसके किसी एक पत्ते से भी द्रोह नहीं करना चाहिये। उसके पहले के उपकारों को सदा याद रखकर उसकी रक्षा करनी चाहिये।'

महाभारत के आदिपर्व में वर्णन मिलता है कि जो जगह पेड़-पौधे, फूल और फलों से भरपूर हो वह स्थान हर तरह से अर्चनीय है।[3] इसमें प्रकृति को अनेक उपमाओं से अलंकृत किया गया है। इस काल में पवित्र एवं शीतल जलाशय तथा जंगल, पहाड़ और पर्वतों आदि को प्रकृति का महत्वपूर्ण घटक माना गया। पंचतत्वरूपी मनोरम प्रकृति एवं पर्यावरण के अद्भुत प्रसंगों से महाभारत के प्रायः सभी पर्व भरे पड़े हैं। वनस्पतियों के प्रति महाभारतकार की मूल भावना इस पंक्ति से स्पष्ट होती है—'पेड़ों से मनुष्यों का महान हित साधन होता है और इस कारण पेड़ लगाना सबसे बड़ा धर्म है।'

महाकवि कालिदास ने अपने संपूर्ण साहित्य में वृक्षादि से मानवीय जीवन का अपूर्व संबंध स्थापित किया है। कदम्ब, सर्ज, अर्जुन और केतकी से भरे हुये जंगल को कँपाता हुआ और इनके पुष्पों की सुगंध से पूरित एवं मेघों तथा चंद्रमा की किरणों के संपर्क से शीतल बहने वाला वायु किसे नहीं मस्त बना रहा है।

---

1 वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर, स० 2044, बालकांड, 94 8.10।

2 महाभारत, गीताप्रेस गोरखपुर, स० 2045, विराटपर्व 16 20।

3 अखड ज्योति, जनवरी 2000, पृ० 37।

कदम्बसर्जार्जुनकेतकीवन विकम्पयंस्त त्कुसुमाधिवासितः।
ससीकराम्भोधर संग शीतलः समीरण. कं न करोति सोत्सुकम॥[1]

एक अन्य श्लोक में प्रकृति के वानस्पतिक स्वरुप का वर्णन करते हुये कालिदास कहते हैं—

मुदित इव कदंबैर्जातपुष्पैः समन्तात्पवनचलितशाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव।
हसितमिव विधत्ते सूचिभिः केतकीनांनवसलिलनिषेकच्छिन्नतापोवनान्तः॥[2]

नूतन जलवृष्टि के सींचने के कारण जिसका ताप नष्ट हो चुका है 'ऐसा यह वन-प्रदेश चारों ओर फूले हुये कदंब के पुष्पों से इस प्रकार मालूम पड़ रहा है जैसे यह अत्यत आनन्द में मग्न हो गया है। वायु से झूमती हुई वृक्षों की शाखाओं को देखकर ऐसा लगता है जैसे यह हाथ मटका-मटका कर नृत्य कर रहा हो और केतकी की उज्जवल कलियों को देखकर ऐसा लगता है जैसे यह खिलखिला कर हँस रहा हो।'

अभिज्ञान शाकुंतलम् मे वनस्पति एवं मानव के संबंधों को महाकवि ने अपने वर्णन से सजीव कर दिया है। कण्व के आश्रम में पली-बढ़ी शकुंतला अपने चारों ओर के परिवेश एवं वातावरण से इतना एकात्म एवं तदाकार हो गयी थी कि उसका बिछोह सभी को विह्वल कर रहा था। उसकी विदाई के समय पशु-पक्षी ही नहीं वनस्पति जगत भी उदास हो गया था।

प्रायः सभी पुराणकारों ने पर्यावरण के घटकों को पूजनीय माना है। प्रकृति के इन घटकों में देवत्व का भाव भी दर्शाया गया है। पौराणिक ग्रंथो में प्रायः इस बात पर बल दिया गया है कि जो व्यक्ति छाया, फूल और फल देने वाले वृक्षों का रोपण करता है वह न केवल अपने पितरों को बड़े-बड़े पापों से तारता है बल्कि स्वयं रोपणकर्त्ता भी इस मनुष्य लोक में महती कीर्ति और शुभ परिणाम को प्राप्त करता है तथा अतीत और अनागत पितरों को स्वर्ग में जाकर भी तारता ही रहता है। वृक्ष लगाना अत्यंत शुभदायक है। ध्यातव्य है कि यहाँ वृक्ष लगाने की महत्ता को मनुष्य के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन दोनों से जोड़कर दोनों में ही उत्तम गति प्राप्त करने की बात कही गयी है। जिस व्यक्ति को पुत्र नहीं उसके लिये वृक्ष ही पुत्र हैं। क्योंकि वृक्षारोपण करने वाले के लौकिक-पारलौकिक कर्म वृक्ष ही करते रहते हैं। यदि कोई अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष का आरोपण करता है तो वही उसके लिये एक लाख पुत्रों से भी बढ़कर है। अतएव अपनी सद्गति हेतु कम से कम दो या तीन अश्वत्थ वृक्ष अवश्य ही लगाना चाहिये। हजार-लाख-करोड़ जो भी मुक्ति के साधन हैं उनमें एक अश्वत्थ वृक्ष लगाने की बराबरी कोई नहीं कर सकते।[3]

मत्स्य पुराण में एक वृक्ष की तुलना दस उत्तम गुण वाले पुत्रों से की गयी है—

---

1 ऋतुसंहार 2 17, कालिदास ग्रंथावली, रामप्रताप शास्त्री, इलाहाबाद, पृ० 456।

2 वही, 2 24।

3 संक्षिप्त भविष्य पुराणाक, गीता प्रेस, गोरखपुर, जनवरी 1992, पृ० 205।

एवम् निरूदके देशे यः कूपं कारयेद बुधः। बिन्दौ-बिन्दौ च तोयस्य वसेत संवत्सरं दिवि॥
दशकूप समा वापी दशवापी समो ह्रदः॥ दशह्रद सम· पुत्रो दश पुत्र समो द्रुमः॥
एषैव मम् मर्यादा नियता लोकभाविनी॥[1]

'जलरहित प्रदेश में जो बुद्धिमान मनुष्य एक कुँआ बनवाता है वह उस कुएँ के जल के बूँद-बूँद के बराबर वर्षो तक स्वर्ग में निवास करता हैं। इसी प्रकार दस कुएं के समान एक बावली, दस बावली के सदृश एक सरोवर, दस सरोवर की तुलना में एक पुत्र और दस पुत्रों के समान एक वृक्ष माना गया है। यही लोको का कल्याण करने वाली मर्यादा है।'

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही पुत्र जन्म को अतीव महत्ता प्रदान की गयी है। जन समुदाय में प्रायः यह धारणा है कि जिस व्यक्ति को कोई पुत्र नहीं है उसे सद्‌गति प्राप्त नहीं होती। क्योंकि पुत्र द्वारा श्राद्ध कर्म करने के पश्चात ही मृत व्यक्ति की आत्मा का भटकाव समाप्त होता है और उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। उक्त उद्धरण में पुत्र के विकल्प में वृक्षारोपण का प्रावधान किया गया है तथा पुत्रहीन व्यक्ति की सद्‌गति का मार्ग प्रशस्त बताया गया है। पर्यावरण की सुरक्षा हेतु वृक्षो के संरक्षण एवं संवर्द्धन का ऐसा अप्रतिम उदाहरण केवल भारतीय साहित्य में ही प्राप्त होता है। पर्यावरण के प्रति पश्चिमी देशों के वैज्ञानिकों की चिंता आधुनिक समय की देन है जबकि भारतीय मनीषी आज से हजारों वर्ष पूर्व पर्यावरणीय चेतना से भलीभाँति अवगत थे।

विभिन्न प्रकार के वृक्षों को लगाने से तरह-तरह के शुभ फल प्राप्त होते हैं। भविष्य पुराण[2] में एक वर्णन में कहा गया है कि अशोक वृक्ष लगाने से कभी शोक नहीं होता। प्लक्ष (पाकड़) उत्तम स्त्री प्रदान कराता है। जामुन का वृक्ष धन देता है। तेंदू का वृक्ष कुलवृद्धि कराता है। दाडिम (अनार) का वृक्ष स्त्री सुख प्राप्त कराता है। बकुल पाप नाशक तथा वंजुल (तिनिश) बल-बुद्धिप्रद है। धातकी (धव) स्वर्ग प्रदान करता है। वट वृक्ष मोक्षप्रद, आम्र वृक्ष अभीष्ट कामनाप्रद और गुणाक (सुपारी) का वृक्ष सिद्धिप्रद है। बल्वक, मधूक (महुआ) तथा अर्जुन वृक्ष सब प्रकार का अन्न प्रदान करता है। कदम्ब वृक्ष से विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। तिंतिडी (इमली) का वृक्ष धर्मदूषक माना गया है। शमी वृक्ष रोगनाशक है। केशर से शत्रुओं का विनाश होता है। श्वेत वट धन-प्रदाता, पनस (कटहल) वृक्ष मंद बुद्धि कारक है। मर्कटी (केंवाच) एवं कदंब वृक्ष के लगाने से संतति का क्षय होता है। शीशम, अर्जुन, जयंती, करवीर, बेल तथा पलाश वृक्षों के आरोपण से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।' उक्त वृक्षों में से अधिकांश को आधुनिक वैज्ञानिकों ने पर्यावरण की दृष्टि से उत्तम वृक्ष ठहराया है। वैज्ञानिक मान्यताओं के अनुसार इन पेड़ों द्वारा अधिकाधिक मात्रा में आक्सीजन निःसृत किया जाता है जिससे पृथ्वी के पर्यावरणीय परिमंडल को शुद्ध एवं स्वच्छ बनाने में काफी मदद मिलती है।

---

1 मत्स्य पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, जनवरी 1985, 154.511-512।

2 भविष्य पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, जनवरी 1992, पृ० 206।

मत्स्य पुराण में स्त्रियों द्वारा वृक्ष दान और उससे प्राप्त होने वाले फल का उल्लेख किया गया है—

आम्रामलकपित्थानि बदराणि तथैव च। कदंबचपकाशोक पुनांग विविधद्रमान॥
अश्वत्थ पिप्पलाश्चैव कदली वटदाडिमान। पिचुमद मधूक च उपोष्य स्त्री ददाति या॥
स्तनौ कपित्थ सदृशावुरू च कदली समौ। अश्वत्थे वदनीया च पिचुमंदे सुगधिनी॥
चपके चंपकाभा स्यादशोके शोकवर्जिता। मधूके मधुरं वक्ति वटे च मृदुगात्रिका॥
बदरी सर्वदा स्त्रीणां सर्वसौभाग्यदायिनी।[1]

जो स्त्री उपवास करके आम, आंवला, कैथ, बेर, कदंब, चंपक अशोक, पुन्नाग, जायफल, पीपल, केला, वट, अनार, महुआ, नीम आदि अनेक प्रकार के वृक्षों का दान करती हैं उसके दोनों स्तन कैथ के समान और दोनों जंघायें केले के समान सुंदर होती हैं। अश्वत्थ (पीपल) के दान से वह वंदनीय और नीम के दान से सुगंध युक्त होती है। चंपा के दान से चंपा की सी कांति वाली और अशोक के दान से शोक रहित होती है। महुआ वृक्ष के दान से मधुरभाषिणी और वट वृक्ष के दान से उसका शरीर कोमल होता है। बेर स्त्रियों के लिये सदा महान सौभाग्यशाली होता है।

उपर्युक्त संदर्भ पर्यावरणीय प्रसग में ध्यातव्य है। स्त्रियो द्वारा उक्त वृक्षो का दान तभी किया जा सकता है जबकि इन वृक्षों को रोपित एवं संरक्षित किया गया हो। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय की स्त्रियां वृक्षारोपण आदि कार्यो में सक्रिय रूप से जुटी हुई थीं। कालिदास ने भी एक प्रसंग में यह उद्धृत किया है कि यह जो देवदारू का वृक्ष है इसे शकर जी ने अपने पुत्र के समान माना है क्योकि पार्वती ने सुवर्ण घट रूपी अपने स्तनों से इसे सींचा है।[2] संभवत: घरेलू कार्यो से निवृत्त होने के पश्चात उनके पास जो पर्याप्त समय बचता होगा, उसका सदुपयोग ऐसे धार्मिक कार्य के लिये करती रही होंगी। इससे उनका मनोरंजन भी हो जाता होगा। वृक्ष-दान की उक्त प्राचीन परम्परा आज भी हिन्दू धर्म में यदा-कदा दिख जाती है। संभवत: इस पंरपरा के पीछे यह मान्यता रही हो कि जो व्यक्ति इस लोक में बागीचा और वृक्ष का दान करते हैं वे फल और फूल वाले वृक्षों की छाया से होकर सुखपूर्वक स्वर्ग की यात्रा करते हैं।[3]

वृक्षों को पुत्र के समान या उससे भी बढकर क्यों माना जाता है इसका उत्तर हमें भविष्य पुराण की इन पंक्तियों में स्पष्टत: मिल जाता है—'वे वृक्ष धन्य हैं जो फल, फूल, मूल,वल्कल, छाल, लकड़ी तथा छाया द्वारा सबका उपकार करते हैं। चाहने वालों को वे कभी निराश नहीं करते। धर्म-अर्थ से रहित बहुत से पुत्रों से तो मार्ग में लगाया गया एक ही वृक्ष श्रेष्ठ है जिसकी छाया में पथिक विश्राम करते हैं। सघन छाया वाले श्रेष्ठ वृक्ष अपनी छाया, पल्लव और छाल द्वारा प्राणियों को, पुष्प द्वारा देवताओं को और फलों द्वारा पितरों को प्रसन्न करते हैं। पुत्र तो निश्चित नहीं है कि एक वर्ष पर भी

---

1 मत्स्य पुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी 1985, पृ० 187.29-33।

2 रघुवश 2 36, कालिदास ग्रथावली, संपा०—राम प्रताप शास्त्री, पृ० 20।

3 सक्षिप्त स्कदपुराणाक, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी 1951, पृ० 163।

श्राद्ध करेगा या नहीं परतु वृक्ष तो प्रतिदिन अपने फल-मूल, पत्र आदि का दान कर वृक्ष लगाने वाले का श्राद्ध करते है। जो फल मार्ग में छायादार वृक्ष के लगाने से प्राप्त होता है वह न तो अग्नि होत्रादि कर्म करने से और न ही पुत्र उत्पन्न करने से प्राप्त होता है।

छायादार वृक्ष, पुष्प देने वाले वृक्ष, फल देने वाले वृक्ष तथा वृक्ष वाटिका कुलीन स्त्री की भाति अपने पितृकुल तथा पतिकुल दोनों कुलों को उसी प्रकार सुख देने वाले होते हैं जैसे लगाये गये वृक्ष अपने लगाने वाले तथा रक्षा आदि करने वाले दोनों के कुलों का उद्धार कर देते हैं।

शास्त्रों में इस मान्यता का उल्लेख मिलता है कि जो भी व्यक्ति वृक्ष या बागीचा आदि लगाता है उसे अवश्य ही उत्तम लोक की प्राप्ति होती है। और वह व्यक्ति नित्य यज्ञ और दान करने का फल पाता है। जो व्यक्ति एक पीपल, एक नीम, एक बरगद, दस इमली तथा एक-एक कैथ, बिल्व (बेल), आमलक (आंवला) तथा पॉच आम के वृक्ष लगाता है वह कभी भी नरक का मुँह नहीं देखता।

अश्वत्थमेक पिचुमंदमेकं न्यग्रोधमेक दश तिन्तिडीकान।
कपित्थ बिल्वामलकी त्रयं च पंचाम्ररोपी नरकं न पश्येत ।।[1]

पुराणकार पूछता है कि 'जिस व्यक्ति ने न तो जलाशय बनवाया हो और न ही एक भी वृक्ष लगाया हो उसने संसार में जन्म लेकर कौन सा कार्य किया?' उक्त प्रश्न को स्पष्ट करते हुये वह आगे कहता है—'वृक्षों के समान कोई भी परोपकारी नहीं है। वृक्ष धूप में खड़े रहकर दूसरों को छाया प्रदान करते हैं तथा फल-फूल आदि से सबका सत्कार करते हैं। मनुष्य की शुभ गति पुत्र के बिना नहीं होती—यह कथन तो उचित है ही किंतु यदि वह पुत्र कुपुत्र हो गया तो वह अपने पिता के लिये कलंक स्वरूप तथा नरक का हेतु भी बन जाता है। इसलिये विद्वान व्यक्ति को चाहिये कि विधिपूर्वक वृक्षारोपण करके उसका पालन-पोषण करे। इससे संसार में न तो कलंक होता है और न निन्द्य गति ही प्राप्त होती है बल्कि कीर्ति, यश और अंत में शुभ गति प्राप्त होती है।[2]

भगवान श्रीकृष्ण ने तो यहाँ तक कहा है कि विधिपूर्वक वापी, कूप, तड़ाग, वृक्षोद्यान आदि का निर्माण कराने वाले तथा इन कार्यो में सहयोगी कर्मकार, शिल्पी, सूत्रधार आदि सभी व्यक्ति सूर्य एवं चंद्रमा की प्रभा के समान कांतिमान विमान में बैठकर दिव्य लोक को प्राप्त करते हैं।[3] उक्त संदर्भ बहुत ही महत्वपूर्ण है। यहाँ पर केवल वृक्षारोपण करने वाला ही नहीं अपितु इस पुण्य कार्य में किसी भी तरह से सहायक व्यक्ति के लिये दिव्य लोक की बात कही गयी है। निश्चित रूप से उक्त विधान वृक्षारोपण कार्य के लिये समाज के सभी वर्गों, जातियों को प्रेरित करने के लिये किया गया है। समाज के सभी व्यक्तियों के सहकार से ही यह संभव हो सकता है। इसी क्रम में आगे यह बताया गया है कि तड़ाग, वापी, देवालय और सघन छाया वाले वृक्ष—ये चारों इस संसार से व्यक्ति का उद्धार

---

1 भविष्य पुराण, उत्तर पर्व, 128 11।

2 भविष्य पुराणाक, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी 1992, पृ० 400।

3 वही, पृ० 399।

करते है। तडाग बनवाकर उसके तट पर वृक्षारोपण कर उसके बीच देवालय बनवाने से संबधित व्यक्ति की कीर्ति सर्वत्र व्याप्त रहती है।[1]

उद्यानों की प्रतिष्ठा पूरे विधि-विधान से की जाती थी। भविष्य पुराण के अनुसार देवताओं, सिद्ध, किन्नर एवं यक्ष की स्तुति, आवाहन, आहुति के पश्चात उद्यान के मध्य में यूप को गाड़ना चाहिए। यूप के प्रांत भाग में सोम तथा वनस्पति के लिये ध्वजाओ को लगाकर वृक्षों का कर्णवेध संस्कार[2] करना चाहिये। रंजित सूत्रों से उद्यान के वृक्षों को आवेष्टित कर यह प्रार्थना करनी चाहिये।

वृक्षाग्रात पतितस्यापि आरोहात् पतितस्य च। मरणे वास्ति भंगे वा कर्त्ता पापैर्न लिप्यते।।[3]

अर्थात' विधिपूर्वक उद्यान आदि में लगाये गये वृक्ष के ऊपर से यदि कोई गिर जाय या अस्थि टूट जाय तो उस पाप का भागी वृक्ष लगाने वाला नहीं होता।'

इस मन्त्र से यह विदित होता है कि वृक्षारोपण करने वाले व्यक्ति पर किसी भी प्रकार के आकस्मिक दुर्घटना आदि का कोई दोष नहीं लगता अपितु वह वृक्ष की भाँति ही सदा पवित्र एवं निर्दोष होता है। पर्यावरण चेतना की उक्त दृष्टि इस तरह काफी महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। इसमें हर प्रकार से वन प्रांत की समृद्धि का प्रयास किया गया है। जहाँ तक धार्मिक आयोजनों की बात है, कहना न होगा कि संबंधित लोग किसी भी तरह के डर से मुक्त होकर पुण्य प्राप्ति की अभिलाषा से व्यापक स्तर पर इस तरह के कार्य में संलग्न रहते रहे होंगे।

वृक्षों के प्रतिष्ठा विधान का विस्तृत वर्णन भविष्य पुराण (मध्यम पर्व, अध्याय 4-5) मे मिलता है। इसके अनुसार वृक्ष की स्थापना कर सूत्र से परिवेष्टित करना चाहिए। तत्पश्चात कलश स्थापना और आहुति का विधान है। कदली वृक्ष तथा यूप का उत्सर्जन कर, लगाये गये वृक्ष के मूल मे धर्म, पृथ्वी, दिशा, दिक्पाल एवं यक्ष की पूजा करनी चाहिये। वृक्ष पूजन के बाद सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना चाहिये।[4] इसी तरह अश्वत्थ (पीपल), न्यग्रोध (बरगद) और बिल्व (बेल) वृक्ष की पूजा का उल्लेख किया गया है।

उद्यान स्थापना के क्रम में ही कहा गया है 'यदि सौ हाथ की लंबाई-चौड़ाई का उद्यान हो, जिसमें सुपारी या आम आदि फलदायक वृक्ष लगे हों तो ऐसे उद्यान की प्रतिष्ठा में वास्तुमंडल की रचना कर वास्तु आदि देवताओं का पूजन कर यजन कर्म करना चाहिये।'[5].

---

1 भविष्य पुराणांक, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० 399-400।

2 यजुर्वेद, 7 48।

3 भविष्यपुराण, मध्यम पर्व, 3 1 31।

4 सक्षिप्त भविष्य पुराणांक, गीता प्रेस गोरखपुर, 1992, पृ० 227।

5 वही, पृ० 228।

भविष्य पुराण में ही (मध्यम पर्व, अध्याय 14-17) पुष्पवाटिका तथा तुलसी की प्रतिष्ठा विधि का सविस्तार वर्णन किया गया है। तुलसी की प्रतिष्ठा के सबंध में कहा गया है कि इसकी प्रतिष्ठा ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में विधिपूर्वक करना चाहिए। तुलसी को पीले सूत्र से आवेष्टित कर उसके चारों ओर दूध और जल की धारा देना चाहिए। दूसरे दिन सुहागिनी स्त्रियों द्वारा मगल-गान पूर्वक उसे स्नान कराने का विधान है।[1] चतुर्दिक कदली स्तंभ स्थापित कर ध्वजा फहराने एव दान देने का उल्लेख भी किया गया है।

कुछ ऐसे वृक्ष भी हैं जिनकी प्रतिष्ठा नहीं होती, जैसे—जयंती, सोमवृक्ष, सोमवट, पनस (कटहल), कदम्ब, निम्ब, कनक, पाटला, शाल्मलि, निम्बक, विम्ब, अशोक आदि। इसके अतिरिक्त भद्रक, शमीकोण, चंडातक, बक तथा खदिर आदि वृक्षों की प्रतिष्ठा तो करनी चाहिये किंतु इनका कर्णवेध संस्कार नहीं करना चाहिए।[2]

उद्यान स्थापना के क्रम में उक्त धार्मिक आयोजना से यह स्पष्ट होता है कि वृक्षारोपण का कार्य एक पवित्र कार्य था जिसे जीवन से अन्य धार्मिक कर्मकांडों के समान ही जोडने का स्तुत्य प्रयास पुराणकारों ने किया। वृक्षों को रक्षा-सूत्र से आवेष्टित करने के मूल में वृक्षों की रक्षा हेतु संकल्पबद्ध होने से ही है। उद्यान स्थापना कार्य से प्रायः हर वर्ग को रोजगार प्राप्त होता था। समाज-सेवा-धार्मिक पुण्य के साथ-साथ आजीविका हेतु धनोपार्जन के उद्देश्य से भी समाज का एक बड़ा वर्ग इस आयोजन से जुड़ा हुआ था। ध्यातव्य है कि जो व्यक्ति बड़े स्तर पर उद्यान लगाने हेतु सामर्थ्यवान नही होते थे उनके लिये छोटे एवं साधारण स्तर के उद्यानों के प्रतिष्ठा की व्यवस्था की गयी थी।[3]

भारतीय परम्परा में कोई भी शुभ कार्य विधि-विधानपूर्वक किये जाने की प्रथा रही है। वृक्षारोपण इसका अपवाद नहीं है। मान्यता है कि विधिपूर्वक वृक्षारोपण करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और रोपण कर्त्ता के तीन जन्मों के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। सौ वृक्षों का रोपण करने वाला व्यक्ति ब्रह्मा रूप और हजार वृक्षों का रोपण करने वाला व्यक्ति विष्णु रूप बन जाता है। हमारे इन ग्रंथों में वृक्षारोपण का उचित समय भी निश्चित किया गया है। भविष्य पुराण (मध्यपर्व, प्रथम भाग, अध्याय 11) के अनुसार वृक्षारोपण हेतु वैशाख मास श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ मास अशुभ है। आषाढ़-श्रावण एवं भाद्रपद ये मास भी श्रेष्ठ है।[4] ध्यातव्य है कि वृक्षारोपण हेतु उन्हीं मासों को श्रेष्ठ बताया गया है जब पृथ्वी का प्राकृतिक वातावरण भी अनुकूल होता है। बारिस की फुहारों से चारों ओर हरियाली ही नजर आती है। ऐसे मे केवल वृक्षारोपण करके भी छोड़ दिया जाय तो प्रकृति स्वयं ही उसकी देखभाल कर उसकी वृद्धि हेतु मार्ग प्रशस्त करती है। इसके विपरीत ज्येष्ठ जैसे मास में जब सूर्य की

---

1 यजुर्वेद, 6 5।

2 सक्षिप्त भविष्यपुराणाक, गीता प्रेस, गोरखपुर, जनवरी 1992, पृ० 229।

3 वही, पृ० 227।

4 वही, पृ० 206।

किरणो का ताप अपने चरम पर होता है पौधे लगाने एवं भलीभांति देखरेख करने के बाद भी सूख जाते हैं। भविष्य पुराण में कहा गया है कि उद्यान में कुँआ अवश्य बनवाना चाहिये। लगाये गये वृक्षों की सिंचाई ही इसका मूल उद्‌देश्य रहा होगा। अश्वत्थ वृक्ष के मूल से दस हाथ चारों ओर का क्षेत्र पवित्र पुरुषोत्तम का क्षेत्र माना गया है। उसकी छाया जहाँ तक पहुँचती है तथा अश्वत्थ वृक्ष के संसर्ग से बहने वाला जल जहाँ तक पहुँचता है वह क्षेत्र गंगा के समान पवित्र कहा गया है।[1]

उद्यान लगाने के पश्चात उसकी दृढ़ता एव सुरक्षा के लिये विशेष प्रंबध किया जाता था। उद्यान के चारो ओर अथवा बीच-बीच में उद्यान की रक्षा हेतु मेंड़ों (धर्मसेतु) का निर्माण किया जाता था। तथा यह प्रार्थना की जाती थी।

पिच्छिले पतितान्तं च उच्छितेनांग संगतः। प्रतिष्ठिते धर्मसेतौ धर्मो मे स्यान्न पातकम्॥
ये चात्र प्राणिनः संति रक्षां कुर्वन्ति सेतवः। वेदागमेन मत्पुण्यं तथैव हि समर्पितम्॥[2]

अर्थात 'यदि कोई व्यक्ति इस धर्मसेतु पर चलते समय गिर या फिसल जाय तो इस धर्मसेतु के निर्माण का कोई पाप मुझे न लगे क्योंकि इस धर्मसेतु का निर्माण मैने धर्म की अभिवृद्धि के लिये ही किया है। इस स्थान पर आने वाले प्राणियों की ये धर्मसेतु रक्षा करते हैं। वेदाध्ययन आदि से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य इस धर्मसेतु के निर्माण करने पर प्राप्त होता है।'

उक्त श्लोक की अंतिम पंक्ति समाज की मान्यताओं में आये बदलाव दूसरे शब्दों में कहें तो समय के साथ समाज को व्यवस्थित करने की तरफ इंगित करता है। अभी तक वेदाध्ययन आदि के पुण्य का भागी समाज का द्विज वर्ग ही था परंतु अब यह पुण्य अन्य तरीकों से भी प्राप्त किया जा सकता था। द्विज वर्ग से इवर तथाकथित निम्न वर्ग (शूद्र) भी इस पुण्य को अन्य तरीकों से ही सही प्राप्त कर सकता था।

ध्यातव्य है कि इस समय की भारतीय सामाजिक व्यवस्था संक्रमण के दौर से गुजर रही थी। सामाजिक मान्यताओं में अनेक तरह के बदलाव आ रहे थे। ऐसे में पुराणकारों ने तत्कालीन समय की माँग के मद्देनजर न केवल सामाजिक व्यवस्था को तहस-नहस होने से बचाया, अपितु समाज के एक बड़े वर्ग को वृक्षारोपण जैसे रचनात्मक कार्यो से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य कर पर्यावरण संरक्षण में भी अपनी महती भूमिका अदा किया।

वृहत्संहिता जैसे ग्रंथों में पेड़-पौधों की प्रजातियों को उत्तम बनाने हेतु 'कलम' विधि का वर्णन दिया गया है। वृहत्संहिता के अनुसार कटहल, केला, जामुन, अनार तथा अंगूर के पेड़ कलम काटकर दूसरे पौधों पर चढ़ाये जाने चाहिये, जिन पौधों में शाखा न हो उन्हें पतझड़ में, जिनमें शाखा

---

1 संक्षिप्त भविष्यपुराणाक, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० 206।

2 भविष्य पुराण, मध्यम पर्व, 3 1.44-46।

हो उन्हें शीत ऋतु में और जिनके तने बड़े हों उन्हें वर्षा ऋतु में एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे स्थान पर लगाना चाहिये।[1] उखाड़ कर लगाने से पहले पौधों के तने पर घी, तेल, मोम, दूध और गोबर लपेटना चाहिये।[2] इस ग्रंथ के अनुसार जामुन, अंजीर, अंगूर, अनार, कटहल आदि के पौधों के लिये आर्द्र भूमि चाहिये।[3] पौधों के अनुसार एक पेड़ से दूसरे पेड़ के बीच अधिकाधिक अठारह फुट तक की दूरी हो सकती है।[4]

भारत में पहले सभी ग्राम-नगरों की सभी दिशाओं मे कुछ दूर तक गोचर भूमि रहती थी। उसमें गायें स्वच्छंद रूप से चरती थीं और वह भूमि सर्वसामान्य के भी घूमने-टहलने और छोटे बच्चों की क्रीडास्थली के रूप में उपयोग में आती थी। उक्त व्यवस्था अभी भी कदाचित कुछ गाँवों में दिख जाती है। भविष्य पुराण में गोचर भूमि के उत्सर्ग का विस्तृत विधान मिलता है। इसके अनुसार गोचर भूमि में जितनी संख्या में तृण गुल्म उगते हैं उतने हजारों वर्षो तक संबंधित व्यक्ति स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है। गोचर भूमि की रक्षा हेतु पूर्व दिशा में वृक्षों का रोपण करने एव दक्षिण मे सेतु (मेड़) बनाने, पश्चिम में कँटीले वृक्ष लगाने और उत्तर दिशा में कूप निर्माण करने का विधान बताया गया है। जो व्यक्ति किसी अन्य प्रयोजन से गोचर भूमि को जोतता, खोदता या नष्ट करता है, वह अपने कुलों को पातकी बनाता है और अनेक ब्रह्महत्याओं से आक्रांत हो जाता है।[5] गोचर भूमि के नष्ट भ्रष्ट हो जाने पर, घास के जीर्ण हो जाने पर पुनः घास उगाने के लिये प्रतिष्ठा करनी चाहिये जिससे गोचर भूमि अक्षय बनी रहे।

वस्तुतः दूर्वा (दूब) घास अपने सघन जड़ों से पृथ्वी को इस तरह जकड़ लेती है कि मिट्टी का बहाव संभव नहीं हो पाता फलतः भूमि का कटाव रूक जाता है। इसी वजह से दूर्वा की उपमा पृथ्वी की अनामिका में धारण की गयी पवित्री से की जाती है। यह पवित्री सृष्टि-पूजा के विधान में अपनी उपस्थिति से संपूर्ण पर्यावरण को यह आश्वस्ति प्रदान करती है कि पृथ्वी मेरे कवच वलय में अभी भी वत्सला है। दूर्वा की इस महती उपयोगिता के मद्देनजर ही कहा जाता है कि जब तक धरती पर दूर्वा है, तब तक धरती की मांगालिक चेतना अक्षुण्ण रहेगी।[6]

वृक्षों से संबंधित कई व्रतों का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। वृक्षों को आम जन-जीवन से जोड़ने का यह अद्भुत तरीका पुराणकारों की अपनी ईजाद थी। यह स्वाभाविक सी बात है कि जिन पेड़-पौधों की मनुष्य पूजा करता है, जिनके नाम पर वह व्रत-उपवास करता है उसे काटने या नष्ट

---

1 वृहत्सहिता, सपा०—अच्युतानंद झा शर्मा, वाराणसी 1977, 55 6।

2 वही, 55 7।

3 वही, 55 10 11।

4 वही, 55 12।

5 सक्षिप्त भविष्यपुराणाक, गीता प्रेस, गोरखपुर जनवरी, 1992, पृ० 226।

6 नवनीत, दिसंबर 1999, पृ० 29।

करने की बात उसके मस्तिष्क में आ ही नहीं सकती। इस प्रकार सुव्यवस्थित जीवन के साथ-साथ पर्यावरणीय संतुलन की सुंदर व्यवस्था इस युग में मिलती है।

अशोक का वृक्ष धार्मिक परंपरा का वृक्ष माना गया है। भविष्य पुराण के अनुसार आश्विन मास की शुक्ल प्रतिपदा को मनोरम पल्लवों से युक्त अशोक वृक्ष का पूजन करने से कभी शोक नहीं होता। अशोक वृक्ष की निम्न श्लोक से प्रार्थना करनी चाहिए

पितृभातृपतिश्वश्रूश्वशुराणां तथैव च। अशोक शोकशमनो भव सर्वत्र नः कुले।।[1]

अर्थात 'हे अशोक वृक्ष। आप मेरे कुल में पिता, भाई, पति, सास तथा ससुर आदि सभी का शोक शमन करें।'

इस व्रत को करने स्त्री दमयंती, स्वाहा, वेदवती और सती की भांति वह अपने पति की अत्यंत प्रिय हो जाती है। वन गमन के समय सीता ने भी मार्ग में अशोक वृक्ष का भक्तिपूर्वक पूजन किया। जो स्त्री विधिवत अशोक का पूजन कर, वंदना करती है वह शोकमुक्त होकर चिरकाल तक अपने पति सहित संसार केसुखों का उपभोग कर अंत में गौरी लोक में निवास करती है। यह अशोक व्रत सभी प्रकार के रोग एवं शोक को हरने वाला है।[2]

ज्येष्ठ मास की शुक्ल प्रतिपदा को सूर्योदय के समय अत्यंत मनोहर देवता के उद्यान में लगे हुये करवीर वृक्ष का पूजन करना चाहिये। तथा इस मन्त्र से उसकी प्रार्थना करनी चाहिये—

करवीर विषावास नमस्ते भानुवल्लभ। मौलिमंडनसद्रत्न नमस्ते केशवेशयोः।।[3]

अर्थात 'भगवान विष्णु और शंकर के मुकुट पर रत्न रूप में सुशोभित, भगवान सूर्य के अत्यंत प्रिय तथा विष के आवास करवीर (जहर कनेर) आपको बार-बार नमस्कार है।' इस करवीर की पूजा जो भी भक्तिपूर्वक करता है वह अनेक प्रकार के सुख भोग कर अंत में सूर्यलोक को जाता है।[4]

भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को 'दूर्वाष्टमी' व्रत होता है। जो पुरुष इस व्रत को श्रद्धापूर्वक करता है, उसके वंश का क्षय नहीं होता। दूर्वा के अंकुरों की तरह उसके कुल की वृद्धि होती रहती है।

दूर्वा की उत्पत्ति से सबधित सुंदर आख्यान भविष्य पुराण के उत्तर पर्व (अध्याय 56) में मिलता है। इसके अनुसार देवताओं द्वारा अमृत की प्राप्ति के लिये क्षीर सागर के मथे जाने पर भगवान विष्णु ने अपनी जंघा पर हाथ से पकड़कर मंदराचल को धारण किया। मंदराचल के वेग से भ्रमण करने के

---

1 भविष्य पुराण, उत्तर पूर्व 9 4।

2 सक्षिप्त भविष्यपुराणांक, गीता प्रेस, गोरखपुर, जनवरी 1992, पृ० 288।

3 भविष्य पुराण, उत्तर पर्व 10 4।

4 सक्षिप्त भविष्य पुराणाक, गीता प्रेस, गोरखपुर, जनवरी 1992, पृ० 288।

कारण रगड़ से विष्णु भगवान के जो रोम उखड़कर समुद्र में गिरे थे, पुनः समुद्र की लहरों द्वारा उछाले गये, वे ही रोम हरित वर्ण के सुंदर एवं शुभ दूर्वा के रूप में उत्पन्न हुए। उसी दूर्वा पर देवताओ ने मंथन से उत्पन्न अमृत का कुंभ रखा, उससे जो अमृत के बिंदु गिरे, उनके स्पर्श से वह दूर्वा अजर-अमर हो गयी तथा वह देवताओं के लिये पवित्र तथा वंद्य हुई। दूर्वाष्टमी व्रत के दिन ही देवताओं ने विविध फल-फूल धूप दीपादि से निम्न मन्त्रों द्वारा उसका पूजन किया।

त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वंदिता च सुरासुरैः। सौभाग्यं संततिं कृत्वा सर्वकार्यकरी भव।।
यथा शाखा प्रशाखभिर्विस्तृतासि महीतले। तथा ममापि संतान देहि त्वमजरामरे।।[1]

वृक्षों से ही संबंधित एक अन्य महत्वपूर्ण व्रत है—श्रीवृक्ष नवमी व्रत। कहा जाता है कि देवता और दैत्यों ने जब समुद्र मंथन किया था तब उस समय समुद्र से निकली हुई लक्ष्मी को देखकर सभी की यह इच्छा हुई कि मैं ही लक्ष्मी को प्राप्त कर लूँ। लक्ष्मी की प्राप्ति को लेकर देवता और दैत्यों में परस्पर युद्ध होने लगा। उस समय लक्ष्मी ने कुछ देर के लिये बिल्व (बेल) वृक्ष का आश्रय ग्रहण कर लिया था, इसलिये उसे 'श्री वृक्ष' भी कहते हैं। भाद्रपद मास के शुल पक्ष की नवमी तिथि को यह व्रत किया जाता है। पूजा और होमादि के बाद निम्नलिखित मन्त्र से बिल्व वृक्ष की पूजा करनी चाहिये—

श्रीनिवास नमस्तेऽस्तु श्रीवृक्ष शिव वल्लभ। ममाभिलषितं कृत्वा सर्वविघ्नहरो भव।।[2]

इस प्रकार भक्तिपूर्वक श्री वृक्ष का पूजन करने वाले स्त्री-पुरूष अवश्य ही सभी सपत्तियों को प्राप्त करते हैं।[3]

वृक्ष और प्राणी जगत के बीच सामंजस्य स्थापित करने के क्रम में एक तरफ वृक्षों को धार्मिक परंपरा से जोड़ा गया, उनकी पूजा एवं व्रत आदि के प्रावधान किये गये वहीं दूसरी तरफ प्राचीन भारतीय ग्रंथों में स्पष्ट रूप से पेड़ों के काटने या नष्ट करने पर प्रतिबंध की व्यवस्था की गयी। वामन पुराण में कुरूक्षेत्र के मध्य में स्थित सात वनों—पवित्र काम्यक वन, महान अदिति वन, पुण्यप्रद व्यास वन, फलकी वन, सूर्य वन,महान मधुवन तथा सर्वकल्मष नाशक पवित्र शीत वन के नाम उच्चारण को ही समस्त पापों को नष्ट करने वाला तथा पवित्र बताया गया है—

श्रृणु सप्त वनानीह कुरूक्षेत्रस्य मध्यतः। येषां नामानि पुण्यानि सर्वपापहराणि च।।
काम्यकं च वनं पुण्यं तथाऽदितिवनं महत्। व्यासस्य च वनं पुण्यं फलकीवनमेव च।।
तत्र सूर्य वनस्थानं तथ मधुवनं महत्। पुण्यं शीतवनं नाम सर्वकल्मषनाशनम्।।[4]

---

1 भविष्य पुराण, उत्तर पर्व 56 12-13।

2 वही, अध्याय 60।

3 सक्षिप्त भविष्य पुराणाक, गीता प्रेस, गोरखपुर 1992, पृ० 331।

4 वामन पुराणाक, जनवरी 1982, गीता प्रेस गोरखपुर, 34 3-5।

भविष्य पुराण में वर्णित किया गया है कि अश्वत्थ, वट वृक्ष और श्री वृक्ष का छेदन करने वाला व्यक्ति ब्रह्मघाती कहलाता है। वृक्षच्छेदी व्यक्ति मूक और सैकडों व्याधियो से युक्त होता है।[1] बड़े बाग के मध्य सेतु नहीं बनवाना चाहिए। वस्तुत: इसके मूल में यही बात रही होगी कि बाग के मध्य सेतु निर्माण कार्य से बागों को अवर्णनीय क्षति पहुँचती है। ऐसे में यह निषेध ही उत्तम है।

अश्वत्थ अर्थात पीपल के वृक्ष को भारतीय संस्कृति में देवता के समान स्थान दिया गया है। आज के वैज्ञानिक प्रमाणों से भी यह पुष्टि हो चुकी है कि पीपल का वृक्ष वातावरण में अन्य वृक्षों की अपेक्षा अधिक प्राणदायक आक्सीजन गैस को नि:सृत करता है। दूसरे शब्दों मे कहें तो पीपल में कार्बन डाई आक्साइड को आक्सीजन में परिवर्तित करने की अकूत क्षमता होती है। उस प्रकार पर्यावरण को संतुलित रखने में पीपल अधिकाधिक योगदान करता है। इसी को दृष्टिगत रखते हुये हमारे ऋषि-मुनियों ने पीपल वृक्ष के काटने पर सख्त रोक लगाया था। वट वृक्ष भी प्राय: इसी परंपरा का वृक्ष है। पीपल एवं वट वृक्ष के बारे मे स्कंदपुराण में कहा गया है—'पीपल भगवान विष्णु का और वट भगवान शंकर का प्रत्यक्ष स्वरूप है।' पीपल के रूप में साक्षात भगवान विष्णु विराजमान होते हैं अतएव कार्तिक मास में प्रयत्नपूर्वक उसका पूजन करना चाहिये। धर्म में आस्था रखने वाले हिंदू लोग आज भी ईधन हेतु पीपल के लकड़ी का भूलकर भी प्रयोग नहीं करते। यही नहीं यत्र-तत्र उग आये पीपल के पौधों को स्वयं नहीं उखाड़ते।

स्कंद पुराण के अनुसार जो मनुष्य किसी वैदिक कर्म के प्राप्त हुये बिना ही पीपल की लकड़ी को काटता है उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है।[2] ध्यान देने योग्य बात है कि आगे वैदिक कर्म में प्रवीण लोगों के लिये भी पीपल वृक्ष को काटना विहित नहीं बताया गया है। प्रतिबंध को तोड़ने वाले लोगों के लिये पुराणकारों ने पाप और नर्क में कष्ट भोगने जैसे धार्मिक भय की व्यवस्था की है, जो उनके लिये संभव था। स्कंदपुराण में कहा गया है कि मदार के वृक्ष में एक बार कुल्हाड़ी मारने पर मनुष्य कई मन्वंतरों तक रौरव नरक की पीड़ा भोगता है। नीम का वृक्ष काटने वाला व्यक्ति कोढ़ी हो जाता है तथा उसके द्वारा किये हुये पूजन, व्रत, दान को भगवान सूर्य ग्रहण नहीं करते।[3] इसी तरह अमावस्या तिथि को किसी भी प्रकार के वनस्पति का छेदन (काटने) करने को प्रतिबंधित करते हुये उल्लंघन करने वाले लोगों को द्वादशी व्रत का पुण्य न मिलने और सबंधित वनस्पति के एक-एक पत्र, पुष्प तथा फल के बदले में ब्रह्महत्या का पाप लगने की व्यवस्था बतायी गयी है। इसी क्रम में आगे यह भी कहा गया है कि ऐसा मनुष्य सात कल्पों तक यमलोक में निवास करता है और उसके किसी भी कार्य में उन्नति नहीं होती।

---

1 संक्षिप्त भविष्यपुराणांक, गीता प्रेस गोरखपुर, जनवरी 1992, पृ० 206।

2 वही, जनवरी 1951, पृ० 1078।

3 वही, जनवरी 1951, पृ० 1078।

वस्तुत: अमावस्या को वनस्पति न काटने के पीछे एक किंवदंती भी जुडी हुई है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस दिन चन्द्रमा वनस्पतियों में व्याप्त रहते हैं। चंद्रमा को वनस्पतियों का देवता भी कहा गया है। ऐसे में यदि उस समय कोई व्यक्ति किसी भी वनस्पति को काटता है तो वह दारूण दु:ख को भोगता है और अपने किये हुये एक वर्ष तक के पुण्य को अनायास ही भस्म कर डालता है।[1]

स्कंदपुराण में ही वर्णित है कि जो व्यक्ति दूसरों के घर खेत, घास, वनस्पति और अनाज आदि में आग लगाता है वह 'रूधिरान्ध' नामक नरक में डाला जाता है। व्यर्थ ही वृक्षों को काटने वाले मनुष्य 'असिपत्रवन' नामक नरक में डाले जाते हैं।[2] वराह पुराण में वर्णित है कि नगर के उपवन मे खड़े वृक्षों को जो काटता है वह भयानक जृंभण नरक मे जाता है।

तद्रूॅश्च छेद येद यस्तु वृक्षान् छाया सुशीतलान्। असिपत्र वने घोरे पीड़यते यम किंकरै: ।[3]

वृक्ष राष्ट्र की निधि हैं। इसी के मद्देनजर स्मृतिकारों ने भी इनके विनाशक अथवा अपहर्ता के लिये कठोर दंड की व्यवस्था की थी। फले हुये तरु को काटना शासन की दृष्टि में विशेष अपराध था और नियमानुसार अपराधी न्यायालय द्वारा समुचित रूप से दंडित होता था। मनुस्मृति में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि—

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोग यथा यथा तथा तथा दम: कार्यो हिंसायामिति धारणा ।।[4]

स्कंदपुराण में यह कहा गया है कि जो व्यक्ति सड़क किनारे बागीचा, पोखरा, कुंआ या मंडप बनवाता है वह धर्मात्मा है।उसे पुत्रों की क्या आवश्यकता है। उत्तम शास्त्र का सुनना, तीर्थयात्रा, सत्संग, जल दान, अन्न दान, पीपल का वृक्ष लगाना और पुत्र इन सात को विज्ञजन संतान ही मानते हैं।[5]

भविष्य पुराण में वन में आग लगाने को सुरापान के समान महापातक कार्य माना गया है। गोचर भूमि में उत्पन्न फसलों, वनस्पतियों को नष्ट करना, चंदन, अगरु आदि की चोरी को सुवस्तेय के समान महापातक माना गया है।[6] महाभारत तो बड़े कड़े शब्दों में वृक्षों से द्रोह करने को मना करता है

---

1 संक्षिप्त भविष्यपुराणाक, गीता प्रेस,गोरखपुर, पृ० 816।

2 वही, पृ० 116।

3 काव्य मे पादप पुष्प, प्रो० श्री चद्र जैन, भोपाल, 1958, पृ० 11।

4 मनुस्मृति, संपा०—पं० गोपाल शास्त्री नेने, वाराणसी, स० 2039, 8 285।

5 संक्षिप्त स्कदपुराणाक, गीताप्रेस, गोरखपुर 1951, पृ० 364।

6 सक्षिप्त भविष्यपुराणाक, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1992, पृ० 182।

यस्य चार्द्रस्य वृक्षस्य शीतच्छायां समाश्रयेत। न तस्य पर्ण दुह्येत पूर्ववृत्त मनुस्मरान ॥[1]

अर्थात 'जिस हरे भरे वृक्ष की शीतल छाया का अश्रय लेकर रहा जाय उसके किसी एक पत्ते से भी द्रोह नहीं करना चाहिए। उसके पहले के उपकारों को सदा याद रखकर उसकी रक्षा करनी चाहिये।'

दैनिक उपयोग के लिये हमें वनस्पतियों की जरूरतें पड़ती ही रहती हैं। नित्य कर्म की प्रक्रिया में दंतधावन हेतु हम रोज ही किसी वनस्पति की पतली शाखा को दातुन बनाते हैं एवं उसका उपयोग करते हैं। लेकिन इन पतली शाखाओं को तोडने से पहले तत्संबंधित वृक्ष के प्रति निम्न श्लोक से क्षमा याचना करने का विधान बताया गया है—

आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाः पशुवसूनि च। ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां न्व त्वं नो देहि वनस्पते ॥[2]

अर्थात 'हे वनस्पति! आप मुझे आयु, बल, यश, तेज, सतति, पशु धन, वैदिक ज्ञान एवं धारणा शक्ति प्रदान करें।' निश्चय ही उक्त कृज्ञता ज्ञापन हममें इस बोध को जाग्रत करने में सहायक सिद्ध होगा कि व्यर्थ में वनस्पति को नुकसान नहीं पहुँचाना चाहिये।

स्पष्टतः प्राचीन भारतीय मनीषियों ने वृक्षारोपण के कार्य को अत्यंत उच्च किस्म का धार्मिक कार्य बताकर बड़े जनसमुदाय को इससे जोड़ने में सफलता प्राप्त की थी। विभिन्न पेड़ों को लगाने का धार्मिक पुण्य स्कंदपुराण में वर्णित करते हुये बताया गया है कि जो आक का पेड़ लगाता है और उसकी रक्षा करता है वह सात कल्पों तक सूर्य के समीप निवास करता है। एक लाख देव वृक्ष लगाने से जो फल प्राप्त होता है वही एक पीपल का पेड़ लगाने से भी प्राप्त हो जाता है। आंवला और तुलसी के पौधे लगाने का भी ऐसा ही फल मिलता है।[3]

परवर्ती साहित्यकारों ने भी अपने ग्रंथों में पर्यावरण को पर्याप्त महत्व दिया। यद्यपि उनके वर्णन का तरीका पहले से अलग हटकर नहीं था, उन्होंने भी वृक्षारोपण के कार्य को धार्मिक परंपरा से बखूबी जोड़ा। श्री मत्पराशराचार्य ने वृक्षारोपण के महत्व को निम्न श्लोकों में स्पष्ट किया है।

अश्वत्थमेकं पिचुमंदमेकं न्यग्रोधमेकं दशचिंचिणीभिः।
षट् चंपकास्ताल शतत्रयं च नवाम्र वृक्षैर्नरकं न पश्येत्॥
यावंति खादंति फलानि वृक्षात्क्षुद्वह्निदग्धास्तनुभृन्नराद्याः।
वर्षाणि तावंति वसंति नाके वृक्षैक वापास्त्वमरौधसेव्याः
यावंति पुष्पाणि महीरूहाणां, दिवौकसां मूर्धनि भूतलेवा।

---

1 महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर स० 2045, विराट पर्व, 16 20।

2 सक्षिप्त स्कद पुराणाक, 5 15।

3 संक्षिप्त स्कंदपुराणाक, गीताप्रेस,गोरखपुर, 1951, पृ० 1078।

पतंति तावंति च वत्सराणां, शतानि नाके रमतेऽग्रवापी।।
यत्काल पक्कैर्मधुरैरजस्त्रं शाखाच्युतैः स्वादुफलैः खगौघाः।
सत्वानि सर्वाण्यपि तर्पयंति तच्छाद्धदानं मनयो वदति।।[1]

'एक पीपल, एक नीम, एक वट, दस इमली, छः चंपक, तीन सौ ताल वृक्ष, नौ आम्र वृक्ष लगाने वाला पुरूष नरकगामी नहीं होता। क्षुधारूप अग्नि से दग्ध मनुष्य, पक्षी आदि प्राणी वृक्षो से लेकर जितने फल खाते हैं उतने वर्ष वृक्ष लगाने वाला मनुष्य देवतागणों से सेव्यमान स्वर्ग में वास करता है। पुण्यात्मा मनुष्य के लगाये हुये बगीचों के जितने फूल देवताओं के मस्तक पर चढ़ाये जाते हैं, या पृथ्वी पर गिरते हैं उतने शत वर्षो तक वह वृक्ष लगाने वाला व्यक्ति स्वर्ग में रमण करता है। जिस मनुष्य के बाग के वृक्ष की डालियों से गिरे हुये पके और मीठे स्वादिष्ट फलों से पक्षियों के झुंड के झुंड तथा सब तरह के प्राणी तृप्त होते हैं। इसे मुनि लोग श्राद्ध के दान के समान कहते हैं।'

उद्यान लगाने की परम्परा भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही चली आ रही है। द्रुमों की अधिकता से वर्षा पर्याप्त मात्रा मे हुआ करती थी। बुद्ध युग के प्रसिद्ध बिहारों में श्रावस्ती का जेतवन, कपिलवस्तु का निग्रोधाराम, वैशाली का आम्र वन, राजगृह का वेणु वन, यष्टि वन और सीत वन था। [2] इन वनों के संरक्षण हेतु समय-समय पर यथेष्ट उपाय किये जाते थे। बुद्ध[3] और महावीर[4] ने अपने उपदेशों में पौधों की रक्षा करने पर अधिक बल दिया। अर्थशास्त्र में भी वृक्षों की हानि न करने का आदेश दिया गया है।[5] अशोक के पाँचवे स्तंभलेख में वर्णित है कि उसने अपने अपने एक राजाज्ञा द्वारा जंगलों को जलाने की मनाही कर दी। मनु ने लिखा है कि जो व्यक्ति हरा पेड काटे उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाना चाहिये।[6] महाभारत के अनुसार जंगलों के पेड़ों को काटना बड़ा पाप है।[7] वनों को आग लगाना इतना ही बड़ा पाप समझा जाता था जितना कि एक ब्राह्मण की हत्या।[8] कौटिल्य ने कहा है कि जो जंगल को आग लगाये, उसे आग में जला देना चाहिये।[9]

रामायण में कुछ विशिष्ट वनों की रक्षा के उदाहरण मिलते हैं। उक्त ग्रंथ में ही वर्णित है कि एक चदन वन की रक्षा गंधर्व करते थे।[10]सुग्रीव के मधु वन का वनपाल दधिमुख अनेक

---

1 वृहत्पराशरी, पृ० 364।
2 चुल्लवग्ग, 6 5, 6 17।
3 महावग्ग, 3 1-3, चुल्लवग्ग, 5 32 1।
4 जैन सूत्राज 2, जैकोबी, पृ० 357।
5 अर्थशास्त्र, कौटिल्य, 2 2।
6 मनुस्मृति, 11 65।
7 महाभारत, 12 32 14, 12 36 34।
8 वही, 13 24 12।
9 अर्थशास्त्र, 4 11।
10 रामायण, 4 41 41।

सैनिको सहित उसकी रक्षा करता था। उसमें से शहद पीने या फल तोड़ने की अनुमति किसी को भी नहीं थी।[1]

राजा जिन वनों के स्वामी होते थे उनमें वे अपनी रानियों सहित आमोद-प्रमोद करते थे किंतु आध्यात्मिक लोग बहुधा वनों और उपवनों में शांति लाभ के लिये निवास करते थे। गौतम बुद्ध अनेक बार काशी के मृगदाय में ठहरे थे।[2] महावग्ग से ज्ञात होता है कि उनके तीन शिष्य गोसिंग के साल के जंगल में आत्मशांति के लिये ठहरे थे।[3] बड़े नगरों में कुछ वन-उपवन आध्यात्मिक शांति और आमोद-प्रमोद दोनों के लिये काम आते थे। श्रावस्ती के जेतवन, अजना वन और राजगृह के जीवक का आम्र वन और विशाखा का आराम इसी प्रकार के उपवन थे।

जंगलों के लिये 'अरण्य' शब्द का प्रयोग किया जाता था। अर्थशास्त्र मे जंगलों के आर्थिक महत्व को ध्यान में रखकर उनकी तीन श्रेणियां बतायी गयी (1) शिकार के जंगल, (11) वन्य वस्तुओं के जंगल और (111) हाथियों के जंगल।[4] शिकार के जंगल मे राजा शिकार करने जाते थे। वन्य वस्तुओं के जंगलों से किले, गाड़ियों और रथ बनाने के लिये लकड़ी लायी जाती थी।[5] हाथियों के वनों का महत्व हाथियों के युद्ध में बहुत उपयोगी होने के कारण था। राजा इन वनों की देखभाल करता और इस प्रकार के नये जंगल स्थापित करता था।[6] जंगलों का सैनिक दृष्टि से भी अतीव महत्व था। कौटिल्य के अनुसार एक ऐसा वन जिसमें नदी भी हो राजा की शत्रुओं से रक्षा कर सकता है।[7] इस प्रकार कौटिल्य ने वनों के सैनिक एवं आर्थिक दोनों प्रकार के महत्व को रेखांकित किया है।

कौटिल्य ने वनों से प्राप्त होने वाली वस्तुओं के कई वर्ग बनाये हैं। जैसे—मजबूत लकड़ी, बाँस, बेल, रस्सी बनाने के लिये वनस्पतियां, लिखने के पत्ते, रंग बनाने के काम आने वाले फूल, औषधियां जहरीली औषधियां, फल आदि। इसके अतिरिक्त उसने पशुओं के लिये मिलने वाले चारे और ईंधन का भी विवेचन किया है।[8] कौटिल्य के अनुसार जो जंगल धार्मिक क्रियाओं आदि के लिये निर्दिष्ट हो उनमें राजा को सब पशु-पक्षियों की रक्षा करनी चाहिए।[9]

---

1 रामायण, 5 61-63।

2 डायलाग्स आव द बुद्ध I, रिज डेविड्स, पृ० 223।

3 मज्झिम निकाय, 1 205, 3 155।

4 अर्थशास्त्र, 2 6।

5 वही, 7 14।

6 वही, 2 1-2।

7 वही, 7 12।

8 वही, 2 17।

9 वही, 2 29।

समुद्रगुप्त के प्रयाग अभिलेख से ज्ञात होता है कि गुप्तकाल में भी वनों के कुछ स्वतन्त्र राज्य थे जिनके शासकों को समुद्रगुप्त ने हराया।[1] हस्तिन के खोह ताम्रलेख में भी वनों के 18 राज्यों का उल्लेख किया गया है।[2] वराहमिहिर के अनुसार भारत के उत्तर-पूर्व में भी कुछ जंगली राज्य थे।[3] कालिदास ने अपने साहित्य में जंगल से प्राप्त होने वाली आर्थिक महत्व की वस्तुओं का वर्णन किया है।[4] कलिंग, कामरूप और अग के जंगलों से हाथी पकड़कर लाये जाते थे।[5] जंगलों की लकड़ी से जहाज बनाये जाते थे।[6] साल की लकड़ी भवन निर्माण में बहुत काम आती थी।[7] नगरों के निकट अनेक उपवन थे।[8] इसमें कुछ उपवनों में राजा के परिवार के लोग आमोद-प्रमोद करते थे।[9]

बागों की सिंचाई नालियों (कुल्या) द्वारा की जाती थी।[10] वनो और उपवनों की देखभाल के लिये सरकार अलग अधिकारी नियुक्त करती थी। फ्लीट[11] के अनुसार जंगलों का अध्यक्ष गौल्मिक कहलाता था परन्तु वासक[12] और घोषाल[13] फ्लीट के उक्त विचार से सहमत नहीं हैं। वृहत्संहिता में भी उपवन लगाने एवं उसके संरक्षण, संवर्द्धन हेतु अनेकानेक वर्णन प्राप्त होते हैं।[14]

शुक्राचार्य ने वनों के लगाने तथा इसके संरक्षण के संबंध में बहुत कुछ लिखा है। किन वृक्षों को ग्राम के भीतर और किन वृक्षों को ग्राम के बाहर लगाया जाय, इस विषय में अपने विचार प्रकट करते हुये आचार्य-प्रवर ने ग्राम वृक्ष और वन-वृक्ष के अंतर को भी स्पष्ट किया है। प्राचीन काल के नराधिप वृक्ष-संरक्षण के प्रति विशेष जागरूक रहा करते थे।

उत्तमान्विंशति करैर्मध्यमांस्तिथिहस्ततः। सामान्यान्दश हस्तैश्च कनिष्ठांपंचभिः करैः।
अजाविगोशकृद्भिर्वा जलैर्मांसैश्च पोषयेत्। उदुम्बराश्वत्थ वट चिंचाचंदनजंभलाः॥
कंदवाशोक वकुल बिल्वाम्रातक पित्थकाः। राजादनाम्र पुन्नाग तदुकाष्ठाम्र चंपकाः।

---

1 फ्लीट, पृ० 7।

2 वही, पृ० 114।

3 वृहत्संहिता, 14 29-30।

4 रघुवंश, 3 31, 4 65, मेघदूत, 2 13, कुमार संभव, 1 13।

5 कुमार सभव, 4 40,4 89, 6 27।

6 रघुवश, 4 31, 36, 14 30, 16 68।

7 वही, 1 38।

8 वही, 6 35, 14 30।

9 मालविकाग्निमित्रम्, अक 3।

10 रघुवश, 12 3।

11 फ्लीट, पृ० 50।

12 एपिग्राफिका इडिका, 12, पृ० 139।

13 हिदू रेविन्यू सिस्टम, पृ० 292।

14 वृहत्सहिता, 55 6-7।

नीप कोकाम्रसरलदाडिमाक्षोटभिः सटाः। शिंशिया शिंशुबदर निंबजंभीरक्षीरिकाः।
खर्जुर देवकर जफल्गु तापिंच्छ सिंभलाः। कुद्दालोल वली धात्री कुमकोमातुंलुगकः।
लकुचो नारिकेलश्चरं भान्येसत्फला द्रुमाः। सपुष्पाश्चैव ये वृक्षा ग्रामाभ्यर्णे नियोजयेत्।
ये च कंटकिनो वृक्षाः खदिराद्यास्तथा परे। आरण्य कास्ते विज्ञेयास्तेषा तत्र नियोजनम्।।[1]

अर्थात 'बहुत बड़े उत्तम-उत्तम वृक्षों को बीस हाथ के, मध्यम वृक्षों को पन्द्रह हाथ के, सामान्य वृक्षों को दस हाथ के और छोटे-छोटे वृक्षों को पाँच हाथ के अंतर पर लगायें। और उनको बकरी, भेड़ और गौ के गोबर से तथा जल एवं मांस से पुष्ट करावे। गूलर, पीपल, वट, इमली, चंदन, जंभल और कदंब, अशोक, बकुल, बेल, आम्रातक, कैथा, राजादनाम्र, पुन्नाग, तुदकाष्ठ, आम्र, चंपा और नीप, कोकाम्र, सरल, अनार, अखरोट, भिस्सट, शीशम, शिंशु, बेरी, निंब, जंभीरी, क्षीरिक, खजूर, देवफरंज, फल्गु, तापिच्छ, सेंभल, कुद्दाल, लवली, आँवला, कुमक, सुपारी, बहेड़ा, नारियल और केला और जो अच्छे फल वाले वृक्ष हैं अथवा अच्छे पुष्प वाले पादप हैं—इन सबको ग्राम के समीप लगवाये। जो काँटे वाले और खदिर आदि वृक्ष हैं उनको वन में लगवाये।

इस प्रकार वनों के रोपण पर बल देकर भारतीय साहित्यकारों ने प्रकारांतर से पर्यावरण को स्वच्छ बनाये रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। रोपण के अतिरिक्त उन्होंने वृक्षों एवं वनों के संरक्षण पर भी विशेष जोर दिया।

वर्तमान वैज्ञानिक संदर्भ—जीवधारियों की श्वाँस से निकलने वाली विषैली कार्बन डाई आक्साइड गैस को सोखकर निरंतर वायु को शुद्ध करते रहने का श्रेय वृक्षों को ही है। वे दिन-रात यह काम करते रहते हैं। आक्सीजन की कमी से जीवन का अस्तित्व संकट में पड जाता है। यह एक ऐसा बहुमूल्य आहार है जिसकी हर पल जरूरत पडती रहती है और जो रक्त में लालिमा से लेकर जीवनधारक अनेक साधन जुटाता है। अगर वृक्ष न हों तो आक्सीजन की सारे विश्व में कमी पड़ जायेगी और शरीर से तथा आग के जलने से निकलने वाली विष वायु कार्बन डाई आक्साइड सारे आकाश को दूषित कर ऐसी घुटन पैदा कर देगी जिससे प्राणियों का जीवन धारण ही संभव नहीं रह जायेगा। आज के औद्योगिक युग में वाहनों और कारखानों आदि से निकले विषैले धुयें, गैस आदि को यह पेड़-पौधे ही शुद्ध बनाने का काम प्रतिपल करते रहते हैं। इस दृष्टि से वृक्षों को जीवनदाता की संज्ञा देना उचित ही है।

वृक्षों में ही ऐसा विशिष्ट आकर्षण है जो बादलों को खींचकर लाता है और वर्षा भी अधिक होती है। वृक्षरहित प्रदेश में स्वयमेव वर्षा की कमी हो जाती है और संबंधित प्रदेश रेगिस्तान में परिवर्तित होने लगता है। वृक्षों की अभिवृद्धि का अर्थ अपने सुख-साधनों को ही बढ़ाना है जबकि उनमें कमी आना अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति पर कुठाराघात होना है।

---

1 शुक्रनीति, पृ० 142।

वृक्ष अपनी जडों से पृथ्वी को जकडे रहते हैं। इसके माध्यम से वर्षा का पानी जमीन के भीतर रूकता है साथ ही धरती का क्षरण भी रूकता है। इस तरह वृक्ष मिट्टी की उपजाऊ परत को संरक्षित करने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। कुंओं, झरनों एव तालाब-बावड़ियों का पानी तभी अधिक दिन टिकता है जब पेड़ों की जड़ें ऊपर की सतह को गीली रखती हैं। अन्यथा कुंये सूख जाते हैं और उनका पानी गहराई में उतर जाता है। इस तरह पेड़-पौधे जीवधारियों को पेयजल उपलब्ध कराने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वैज्ञानिक शोधों से यह बात स्पष्ट हो चुकी हैं कि मौसम को सुव्यवस्थित रखने में वनो की महती भूमिका है। वन क्षेत्र के घटते जाने से उस क्षेत्र का मौसम गड़बड़ाने लगता है। वर्षा के असंतुलित व्यवहार से सर्दी-गर्मी अधिक पड़ने लगती है, जिसका मनुष्य के शारीरिक और मानसिक दोनों स्वास्थ्यों पर बुरा असर पड़ता है। पशु भी दुर्बल होते जाते है, उनकी श्रम शक्ति एवं दूध देने की क्षमता घट जाती है। दुर्बल तथा रोगी मनुष्य तथा बच्चे इस असंतुलन को बर्दाश्त नहीं कर पाते फलत: उनके लिये जीवन संकट खड़ा हो जाता है।[1]

प्रकृति प्रदत्त वृक्ष संपदा से मिलने वाले कुछ भौतिक अनुदानों का लेखा-जोखा लेने पर ज्ञात होता है कि जितनी सेवा ये वृक्ष मुफ्त करते हैं उतनी शायद अन्य कोई न करता हो। उपग्रह से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार अपने देश के कुल 19% भू भाग पर ही वन हैं जबकि पर्यावरण संतुलन के लिये एवं देश के आर्थिक विकास के लिये कुल क्षेत्रफल का एक तिहाई भाग वनों से आच्छादित रहना आवश्यक है। कलकत्ता यूनिवर्सिटी कालेज ऑफ एग्रीकल्चर के डॉ० टी० एम० दास के अनुसार एक वृक्ष अपने पचास वर्ष के जीवनकाल में जितनी सेवा करता है उसकी कीमत मुद्रा में जोड़ने पर पंद्रह लाख रूपये से भी अधिक आती है। इसमें ढ़ाई लाख रूपये की आक्सीजन, ढ़ाई लाख रूपये का उर्वरक, पाँच लाख रूपये के बराबर प्रदूषण निवारण तथा पाँच लाख रूपये की वर्षा कराने जैसी उपलब्धियां शामिल हैं।[2] वृक्षों की अंधाधुंध कटाई के कारण आज पर्यावरण असंतुलित हो गया है। इस स्थिति को कड़ाई से रोकना होगा तथा वृक्षारोपण जैसे पुनीत, भौतिक और आध्यात्मिक लाभ देने वाले कार्य को अविलंब आरंभ करना होगा। वृक्षों की हरीतिमा का आँखों पर बड़ा शांतिदायक प्रभाव पड़ता है। इससे मन-मस्तिष्क भी सहज ही प्रसन्न हो उठता है। वृक्षों की शीतल छाया तले कितने ही मनुष्य एवं पशु-पक्षी विश्राम करते हैं। इस तरह वृक्षों को एक खुली एवं जीवित धर्मशाला कहा जा सकता है। वृक्षों पर खिले फूलों की शोभा देखते ही बनती है। फलों में उपलब्ध जीवन तत्व मनुष्य को निरोगी एवं दीर्घजीवी बनाते हैं। शरीर में जो-जो जीवन तत्व पाये जाते हैं और जिनकी आवश्यकता निरंतर रहती है वे अधिकतर फलों में भरे रहते हैं। फलों में शरीर ही नहीं मस्तिष्क एवं

---

1 युग निर्माण योजना, अक्टूबर 1999, हरिद्वार, पृ० 9।

2 वही, पृ० 8।

स्वभाव को भी उच्चस्तरीय पोषण प्रदान करने की क्षमता है इसलिये धार्मिक दृष्टि से फलों को बहुत प्रधानता दी गयी है।[1]

पूर्वजों की स्मृति में वृक्ष लगाना एक उच्चकोटि का श्राद्ध तर्पण माना गया है। किसी माननीय व्यक्ति के आने पर उसके हाथों वृक्षारोपण कराने की प्रथा आज भी अपने यहाँ देखी जा सकती है। जिस पर्यावरण के बारे में हमारे प्राचीन ऋषियों ने चिंतन-मनन किया और उसके लिये अपनी व्यवस्थायें दी वही आज वैज्ञानिक विकास के साथ उद्घाटित हो रहा है तथा वृक्षों की उपयोगिता एवं महत्वपूर्ण भूमिका पर जोर दिया जा रहा है। विश्व के मूर्धन्य वनस्पतिशास्त्री एवं पर्यावरण विशेषज्ञ अब एक स्वर से स्वीकार कर रहें हैं कि वृक्ष संपदा पर समस्त मानव जाति का अस्तित्व टिका हुआ है। प्रकृति के ये सर्वश्रेष्ठ प्रहरी हैं जिनके न रहने पर सृष्टि की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

प्राचीन भारतीय साहित्य पर्यावरण चितन की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। इन सबमें पर्यावरण के घटकों को पूजनीय माना गया है। प्रकृति के इन घटकों में देवत्व का भाव भी दर्शाया गया है। सतत प्राणदायक वायु का संचार करने की वजह से भारतीय ऋषि-महर्षियों ने वृक्षों के प्रति अगाध अनुराग भावना प्रदर्शित की है। इसी क्रम में शुरू हुआ-वृक्ष पूजा का प्रचलन। वैदिक एवं पौराणिक मान्यता के अनुरूप ही समस्त भारतवासी पीपल, बरगद, अशोक, नीम, आंवला, पलाश, कदंब, बिल्व, तुलसी आदि वृक्षों को देवता के समान पूजते हैं। प्राचीन काल में वृक्षों के साथ वनों की भी पूजा होती थी। इसीलिये मधु वन, वृहद वन, बहुल वन, कुमुद वन, श्री वन, नंदन वन आदि वनों का वर्णन मिलता है।[2] इन सभी उपक्रमों के पीछे पर्यावरण को संरक्षित करने की भावना ही दिखायी पड़ती है।

●

1 युग निर्माण योजना, सितम्बर 1999 हरिद्वार, पृ० 23-24।

2 अखड ज्योति, जनवरी 200 मथुरा, पृ० 37।

अध्याय-8

उपसंहार

हवा के झोंकों से झूमते घने छायादार वृक्ष, उनसे गले मिलती लतायें प्रकृति का शृगार ही नहीं, जीवन का अजस्र स्रोत भी हैं। मानव समुदाय के लिये खाद्यान्न, पालतू जानवरों के लिये चारा, निवास, ईधन औषधियाँ, सौन्दर्य प्रसाधन के विभिन्न पदार्थ और धार्मिक कर्मकांडों के लिये आवश्यक हव्य सामग्री आदि वनस्पति जगत से ही उपलब्ध होती है। वृक्षों के प्रति श्रद्धा, सम्मान एवं प्यार की संवेदनशील भारतीय परम्परा के पीछे यह प्रमुख तथ्य है। विख्यात प्रकृति प्रेमी जेम्स फर्ग्यूसन ने 'ट्रीज एण्ड सर्पेण्ट वर्शिप' में लिखा है 'हम अपनी धार्मिक मान्यताओं से संपर्क करने में वहाँ भूल करते हैं, जब हम यह प्रश्न करते हैं कि किसी के लिये यह आशा करना कैसे संभव है कि एक वृक्ष के प्रति की हुई प्रार्थना का उत्तर कैसे मिलेगा? या फिर किसी वृक्ष की पूजा करने से उसकी संतुष्टि कैसे होगी? वस्तुत: वृक्ष आदि के पूजन के पीछे उसमें निहित चेतना शक्ति के प्रति आभार या कृतज्ञता प्रकट करना होता है जो अपना सर्वस्व लुटाकर भी हमारी हर तरह से सहायता करते हैं।'

प्राचीन भारतीय कला एवं साहित्य वनस्पतियों एवं वृक्षों की चर्चा से भरे हुये हैं। निश्चित तौर पर इन वानस्पतिक प्रतिमानों का अपना विशिष्ट अर्थ था। शिल्पियों एवं साहित्यकारों की अंतश्चेतना में समाज तथा पर्यावरण के साथ पेड़-पौधों की अनन्यता की बात जरूर रही होगी। प्रस्तुत शोध में मैंने प्राचीन भारतीय कला एवं साहित्य के अध्ययन के माध्यम से अनन्यता के इस तह में जाने तथा इस आधार पर पेड़-पौधों के प्रति एक नयी दृष्टि विकसित करने तथा यथासंभव वैज्ञानिक समीक्षा का प्रयास किया है। प्रस्तुत विषय पर यद्यपि पहले भी कुछ कार्य हुआ है तथापि शोध के नवीनतम सिद्धांत एवं मान्यताओ के आलोक में मैंने इस शोध-कार्य को नये सिरे से करने का प्रयास किया है। इसमें नवीन तथ्यों को खोजने पर उतना अधिक आग्रह नहीं है, जितना कि ज्ञात तथ्यों की नये सिरे से विवेचना करने का।

देश एवं काल—प्रस्तुत शोध के अंतर्गत मुख्य रूप से उत्तर भारतीय कला एवं साहित्य में पेड़-पौधों के वर्णन को अध्ययन का विषय बनाया गया है। आलोचित शोध का समय भारतीय इतिहास के प्रारंभिक काल से लेकर राजपूत काल (12वीं सदी) तक है। पेड़-पौधों से संबंधित आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान-परक जानकारियों का भी समावेश इस शोध में किया गया है।

शोध की पद्धति— प्रस्तुत शोध-कार्य, शोध के लिये निर्धारित पद्धति के अनुसार ही किया गया है। अपने इस शोध मे मैं प्राथमिक स्रोतों के अध्ययन पर विशेष तौर पर अवलबित रहा हूँ। द्वितीयक स्रोतों से भी यथा संभव मदद ली गयी है। इसी क्रम में प्रमुख संग्रहालयों मे एकत्रित विभिन्न पुरावशेषों एवं कलाकृतियों का अध्ययन भी किया गया है। साहित्य, कला एवं पुरातत्व से सबंधित विद्वानों से हुई। बातचीत के सार को भी जगह-जगह पर प्रस्तुत किया गया है। आलोचित अध्ययन में पेड़-पौधों के माध्यम से तत्कालीन लोगों के सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन मे ताक-झाँक करने का प्रयास किया गया है। साथ ही पेड़-पौधों से संबद्ध समस्याओं को मिथक एवं वास्तविकता के धरातल पर प्रयुक्त उद्धरणों, मानव समुदाय पर उसके प्रभाव, लोगों का अपनी परंपरा से जुड़ाव आदि तथ्यों को विश्लेषित किया गया है।

अध्याय परक विवेचन— प्रस्तुत शोध को आठ अध्यायों के अंतर्गत बांट कर क्रमवार अध्ययन किया गया है। अध्याय एवं उससे संबंधित विवेचन निम्नलिखित है—

पहला अध्याय— इस अध्याय का शीर्षक है—'सृष्टि विकास, वनस्पतियाँ एवं पेड़-पौधे।' यह अध्याय मूलतः परिचयात्मक है। प्राचीन ग्रंथों में वनस्पतियों का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है। उन ग्रंथों में पेड़-पौधों का वर्गीकरण, विभिन्न वर्गो के अंतर्गत रखी गयी विशेष वनस्पतियाँ एवं आधुनिक वैज्ञानिक वर्गीकरण के उल्लेख के माध्यम से वानस्पतिक परिवेश को विवेचित करने का प्रयास किया गया है, साथ ही सृष्टि उद्गम के बारे में रामायण एवं वाराह पुराण में दिये गये दृष्टांतों से वनस्पतियों के उद्‌भव, विकास एवं वनस्पति-जीवधारियों के अटूट संबंधों पर दृष्टिपात किया गया है।

वनस्पतियो एवं पेड़-पौधों के संदर्भ में चार्ल्स डार्विन, राउल फ्रांस एव जगदीश चंद्र बसु जैसे वैज्ञानिकों के आधुनिक निष्कर्ष हजारों वर्ष पूर्व लिखे गये तथ्यों से काफी मिलते-जुलते हैं। एफ० डब्ल्यू० विल्सन 'दि हिस्ट्री आफ इंडिया' में लिखते हैं कि प्राचीन भारतीय मनीषी वृक्ष-वनस्पतियों आदि के अंतः और बाह्य गुण, धर्म, संरचना आदि के अति सूक्ष्म ज्ञान से भलीभाँति अवगत थे। यही नहीं वे इनके औषधीय गुणों एवं अन्य उपयोगों से पूरी तरह परिचित थे। उन दिनों पेड़-पौधों का, जंगलो का आज की तरह विनाश करके वातावरण को विषाक्तता से भर कर पारिस्थितिकीय संतुलन को बिगाडा नहीं जाता था। इतिहास के पन्ने-पन्ने पर इस बात के प्रमाण भरे पड़े हैं।

नव-पाषाण काल में मानव ने सर्वप्रथम खेती करना शुरू किया इस क्रांतिकारी कदम से मानव यायावर जीवन छोड़कर स्थायी रूप से निवास करने लगा। धीरे-धीरे मानव प्रकृति के मानवीकरण की तरफ बढ़ा। अब उसने अपना तन ढ़कना शुरू किया। नवपाषाण काल में कपास की खोज के बाद उसने कपड़े तैयार करने शुरू किये। आग एवं लोहे की खोज मानव जीवन के आमूलचूल परिवर्तन का आधार बनी। अब उसने अपने निवास तथा कृषि कार्य हेतु जंगलो को जलाना एव काटना शुरू किया। इस तरह प्रगति पथ पर अग्रसर होते मानव का प्रकृति से दूरीकरण शुरू हुआ,

जो क्रमश: बढ़ता ही गया। इस दूरीकरण के पीछे प्रगति का तत्व कितना था और प्रकृति से अलगाव का कितना, इस बिंदु पर विमर्श करने की कोशिश प्रस्तुत शोध में की गयी है।

कृषि की पूरी प्रक्रिया एक आदमी के बस की बात नहीं थी ऐसे में लोगों के बीच काम का बँटवारा हुआ। प्रकारांतर से इसी प्रक्रिया के कारण वर्ण व्यवस्था अस्तित्व में आयी एवं कालक्रम से विभिन्न जातियों का विकास हुआ। सामाजिक विकास के इस पहलू को प्रस्तुत अध्याय मे रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

पेड-पौधे मानव के शुरूआती तकनीकी विकास के माध्यम रहे हैं। पेड़ों की लकड़ियो से उसने हल बनाये तथा कृषि की शुरुआत की। रथों के निर्माण हेतु लकड़ी का ही प्रयोग किया जाता था। पालि साहित्य में पंचमार्क सिक्कों को लौहयुक्त ताम्र के साथ ही बाँस के टुकड़ों या ताड़-पत्तों आदि से बनाये जाने का उल्लेख मिलता है। गुंजा के बीजों को रत्ती के रूप में मानक तौल माना जाता था। इस तौल में विविधता थी जिसके मूल में बीजों के वजन में एकरूपता न होना रहा होगा।

कृषि के विकास और पेड़-पौधों से जुडाव की प्रक्रिया ने समाज संरचना, वर्ग, जाति, धर्म आदि के अभ्युदय एवं तकनीकी विकास में जो योगदान दिया उसे विश्लेषित करने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

दूसरे अध्याय—'प्राचीन भारतीय साहित्य में पेड़-पौधे' के अंतर्गत पेड़-पौधों के संदर्भ मे वर्णित विविध पहलुओं का विश्लेषण किया गया है। भारत ही नहीं अपितु विश्व का ऐसा कोई साहित्य नहीं होगा जो पादपों की कमनीयता और कुसुमों के सौंदर्य से अछूता हो। साहित्य की संवेदनशीलता को सजीव बनाने का दुष्कर कार्य इन पादप-पुष्पों ने ही सुगम बनाया है। इसको सहेजने के लिये मानव ने इसे कई आयाम दिये तथा धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मान्यतायें प्रदान कीं। पेड-पौधों का अस्तित्व ही हमारी भौतिक एवं परमार्थिक साधना को बलवती बनाता है। जीवन में त्याग, परोपकार, निरंतरता, सुदृढ़ साधन तत्परता, पावनता, निरीहता आदि सद्‌गुणों की स्थापना पादप-पुष्पों के साहचर्य से ही संभव हुई है।

इस अध्याय में प्रस्तुत विषय का अध्ययन तीन उपशीर्षकों के अंतर्गत किया गया है। ये हैं—

(1) सामान्य परंपरा में पेड़-पौधे,

(11) कवि-प्रसिद्धि/दोहद परंपरा में वनस्पतियां एवं पेड़-पौधे,

(111) कृषि संबंधी वनस्पतियाँ एवं पेड़-पौधे।

पहले उपशीर्षक के अंतर्गत वेदों एवं पुराणों में वर्णित पेड़-पौधों के यज्ञीय, धार्मिक एव दैवीय उल्लेखों को रेखांकित किया गया है। इसी क्रम में विभिन्न ग्रंथों में वर्णित अनेक प्रजाति के वनस्पतियों का उल्लेख करते हुये इस संबंध मे बढ़ते मानवीय समझ को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

अथर्ववेद में वनस्पतियों के औषधीय प्रयोग को वर्णित किया गया है। यजुर्वेद में प्रमुखत: यज्ञ से संबंधित विधानों का वर्णन किया गया है। 'नमो वृक्षेभ्यो .' उद्‌बोधन से वृक्ष समुदाय के प्रति कृतज्ञता को स्पष्टत: प्रकट किया गया है। 'औषधियाँ शांत हो, विश्वदेव शांत रहें' की कामना यजुर्वेद में ही मिलती है। सामवेद के एक श्लोक में तो वनस्पति एव लताओ के दृष्टांत से आत्मा की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। रामायण, महाभारत के वर्णनों के अतिरिक्त कालिदास के ग्रंथों मे वर्णित प्राकृतिक सौन्दर्य एवं पेड़-पौधों की उत्पत्ति, देवताओं के पूजन हेतु विहित पत्र-पुष्प विशेष आदि प्रसंगों का सम्यक विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

दूसरे उपशीर्षक के अंतर्गत कवियों द्वारा पेड़-पौधो के 'कवि-समय' एवं 'वृक्ष-दोहद' उपमानों को विवेचित किया गया है। वृक्षों एवं पौधों का साहित्य में कवि समयों, उपमानों, उद्दीपन, आलंबन विभावों, वृक्ष-दोहद आदि कई रूपों में वर्णन मिलता है। इन विविध प्रकारों द्वारा कवि और भारतीय गायक अपने हृद्‌य को चिरकाल से स्पंदित करते आये हैं। पेड़-पौधों पर आधारित कवि-समयों द्वारा भावों की अभिव्यक्ति में बल आ जाता है, क्योकि वे बातें एक चिरस्थापित परंपरा से संबद्ध होती हैं। 'कवि-समय' जरुरी नहीं कि प्राकृतिक रूप से यथार्थ ही हो। कवियों का उन विषयो के संबंध में एक अटूट समझौता होने के कारण यह अयथार्थता और यथार्थता के विवेचन से परे होती है। इसमें सभी बातें अयथार्थ नहीं होती।

तीसरे उपशीर्षक के अंतर्गत कृषि-कार्य में प्रयुक्त होने वाली वनस्पतियों एवं बागवानी हेतु प्रयुक्त होने वाले पेड-पौधों का विभिन्न काल के साहित्य के अंतर्गत आये वर्णन के अनुसार विवेचित करने का प्रयास किया गया है। इससे विविध समय में कृषि के अंतर्गत होने वाले विकास एवं सीमित शोध की प्रक्रिया की समझने में सहायता मिलती है।

इस अध्याय के अंतर्गत पेड़-पौधों से मानव की निकटता, वनस्पतियों एवं पेड़-पौधों का तत्कालीन जीवन में हस्तक्षेप, कालक्रमानुसार वनस्पतियों का विकास आदि पहलुओं को समझने की कोशिश की गयी है।

तीसरे अध्याय—का शीर्षक है—**'औषधि · रूप** में पेड़-पौधे और वनस्पतियाँ।' आदिकाल का मनुष्य बीमारियों से राहत पाने के लिये पूर्णरूपेण प्रकृति पर ही निर्भर था। आज की चिकित्सा पद्धति वर्षो पुरानी उसी पद्धति पर आधारित है जिसकी खोज प्राचीन लोगों ने अपने बचाव हेतु किया था। प्रस्तुत अध्याय में प्राचीन ग्रंथों में वर्णित वनस्पतियों के विभिन्न चिकित्सकीय उपयोग की विवेचना की गयी है।

चिकित्सा की आयुर्वेदिक पद्धति प्राचीन भारतीय चिंतन की ही देन है। चिकित्सा शास्त्र का उपजीव्य ग्रंथ मुख्यत: अथर्ववेद है। यजुर्वेद में औषधियो का उपयोग यज्ञ कर्म और स्वास्थ्य के लिये करने का विधान है। शुक्ल यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता, अथर्ववेद, रामायण, महाभारत, पाणिनी,

पतंजलि, चरक संहिता, सुश्रूत संहिता, अग्नि पुराण, गरुड़ पुराण आदि में चिकित्सा के लिये उपयुक्त वनस्पतियों का प्रचुर वर्णन मिलता है।

शरीर वनस्पतियों का ही बदला हुआ रूप है। शहद, शक्कर, शाक, फल, अन्न सभी वनस्पतियों से ही बने हैं। वायु वनस्पतियों का ही उत्पादन है। जिन वनस्पतियों से शरीर बना है उसमें कई प्रकार के रासायनिक तत्व होते हैं। इनका संतुलित रुप में बने रहना ही सुदृढ स्वास्थ्य का आधार है।

यज्ञ संबंधी प्रयोजनों में वनस्पतियों के उपयोग की परंपरा भारतीय संस्कृति में बहुत पुरानी है। वेदों में यज्ञ-अनुष्ठानों पर विशेष बल दिया गया है। बहुत दिनों तक इसे अंधविश्वास माना गया पर आधुनिक शोधों से इसके औषधीय संदर्भ की पुष्टि हो चुकी है। प्रस्तुत अध्याय में विविध वानस्पतिक काष्ठों के हवन से उत्पन्न वाष्पीय तत्वों के तरह-तरह के रोगों में प्रभावकारी होने के तथ्य को सुस्पष्ट किया गया है।

वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि फूलों की सुगंध भी रोगनाशक होती है। इसके सुगंधित परमाणु वातावरण में घुल कर अपनी सुगंध का अहसास कराते हैं, जिससे मस्तिष्क के अलग-अलग हिस्सों पर प्रभाव पड़ता है एवं संबंधित हिस्सा उत्तेजित हो जाता है। इसका ऑख, नाक, कान, दृश्य, पाचन क्रिया, रति क्रिया आदि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। अलग-अलग फूलों के उनके विशिष्ट चिकित्सकीय उपयोग को प्रस्तुत अध्याय में वर्णित करने का प्रयास किया गया है।

बहुत सी ऐसी वनस्पतियॉ हैं, जिनका आज के समय में भी वैसा ही प्रयोग किया जा रहा है, जैसा कि शताब्दियों पहले किया जाता था। वैज्ञानिक शोधों से इन वानस्पतिक औषधियों के चिकित्सकीय महत्व की पुष्टि भी हो चुकी है। उत्तर प्रभाव (Side effect) से रहित ये औषधीय वनस्पतियां काफी उपयोगी हैं। आम प्रयोग में आने वाली कुछ चुनिंदा वनस्पतियों के संबंध में नवीनतम वैज्ञानिक निष्कर्ष एवं संबंधित रोग में प्रयोग का वर्णन इस अध्याय के अंतर्गत किया गया है।

विस्तार भय के कारण प्राचीन ग्रंथों में वर्णित वनस्पतियों द्वारा विधिवत औषधि निर्माण की प्रक्रिया को वर्णित नहीं किया गया है। अपितु विविध रोगों में काम आने वाली वनस्पति के प्रयोग को ही मैंने अपने अध्ययन का आधार बनाया है। अंतत: संक्षेप में औषधीय वर्णन में अन्य देशों के साहित्य की अपेक्षा भारतीय साहित्य की समृद्धि का उल्लेख भी इस अध्याय के अंतर्गत किया गया है।

अध्याय चार— का शीर्षक है—'प्राचीन भारतीय धार्मिक परंपरा में पेड़-पौधे'। भारत में प्रकृति के प्रतीकों की पूजा प्राचीन काल से ही प्रचलित है। वस्तुत: उसमें उपयोगिता के साथ-साथ आध्यात्मिकता का समन्वय किया गया है। इसी क्रम में वृक्ष-वनस्पतियों आदि में देवी-देवताओं का निवास स्थान माना गया है। इस मान्यता के साथ इनमें संरक्षणात्मक शक्ति की भी कल्पना की गयी है। यह मान्यता भी परंपरा से चली आ रही है। और इस शक्ति का अतिक्रमण करने से यही संरक्षणात्मक शक्ति विषाक्तता, प्रदूषण आदि के रूप में घातक भी हो सकती है।

यों तो सभी वृक्ष लाभकारी हैं पर पीपल, वट, नीम, तुलसी, आँवला के वृक्ष औषधीय दृष्टि से बहुत-ही उपयोगी हैं, इसीलिये इनकी पूजा को धर्म में सम्मिलित कर लिया गया। तुलसी का वृक्ष घर में लगाना, नित्य प्रातः उसका पूजन एवं उसे जल देना एक धार्मिक कृत्य है। वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है कि तुलसी के संसर्ग में वायु शुद्ध रहती है, मलेरिया परजीवी आदि विषैले कृमियों का नाश होता है। दूषित जल के शोधन में भी तुलसी पत्र काफी उपयोगी हैं।

इसी प्रकार देवमंदिरों में पीपल रोपित करने एवं उसे पूजने की परंपरा है। वस्तुतः पीपल के फलों में रासायनिक तत्व भरे हुये हैं। इसका चूर्ण पौष्टिक होता है। पीपल की जटा में बंध्यात्वनाशक विशेष गुण होता है। हिंदू स्त्रियों का यह विश्वास है कि पीपल की पूजा नित्य प्रति करने से पुत्रोत्पत्ति होती है। भगवद्‌गीता में तो पीपल को भगवान का स्वरूप तक कहा गया है। इसी तरह पलाश, आंवला, वट आदि भी उपयोगी वृक्ष हैं, जिसमें जीवनी शक्ति बढ़ाने के अनेक तत्व विद्यमान हैं। उपयोग के मद्‌देनजर ही इन्हे धर्म में अत्यंत सम्मानित स्थान प्रदान किया गया है।

प्रकृति (पर्यावरण) के संतुलन को ध्यान में रखते हुये भारतीय आचार्यो ने वृक्षारोपण को महान पुण्य कार्य घोषित करते हुये इसे अपना प्रोत्साहन दिया। हमारे प्राचीन ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के पेड़ों को लगाने पर तरह-तरह के फल प्राप्त होने का वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिये अशोक वृक्ष लगाने वाले व्यक्ति को कभी शोक नहीं होता, बिल्व वृक्ष दीर्घ आयु प्रदान करता है। प्रस्तुत अध्याय में मैने धर्म के आवरण में वृक्षो की पूजा किये जाने का सूक्ष्म अध्ययन करते हुये यह निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है कि हमारे पूर्वजों के मस्तिष्क में वृक्षों की समृद्ध परंपरा को अक्षुण्ण बनाये रखने की बात कहीं न कहीं जरुर थी। आलोचित समय धर्म प्रधान था, अतएव धर्म का भय वृक्षों के विनाश को रोकने हेतु एक कारगर उपाय था।

प्रस्तुत अध्ययन में यह सिद्ध करने का भी प्रयत्न किया गया है कि यह धार्मिक परिकल्पना प्रकृति से दूरीकरण के 'रिएक्शन' का ही प्रतिफल था। इससे जनता स्वयमेव ही प्रकृति से जुड़ी। एक और विशेष बात यह देखने को मिलती है कि धार्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ बताये गये पेड़-पौधे आज के नवीन शोधों के उपरांत औषधीय एवं पर्यावरणीय दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ घोषित किये गये हैं।

धार्मिक प्रतीकों में वृक्ष किस तरह हमारे जीवन में प्रतिस्थापित होते हैं, इस विषय पर भी विमर्श किया गया है। साथ ही धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण (कुछ प्रतिनिधि) वृक्षों के संबध में वैदिक या पौराणिक विवरणों और वर्तमान में उसकी प्रासंगकिता जैसे तथ्यों को अलग-अलग शीर्षकों के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है।

पांचवे अध्याय—के अध्ययन का विषय है—'ज्योतिष परंपरा में पेड और पौधे।' ज्योतिष शास्त्र के अंतर्गत मनुष्य की संरचना और उसके प्रकृति से संबंधो का अध्ययन किया जाता है। प्रकृति में पेड़-पौधे महत्वपूर्ण कारक हैं। इस तरह ज्योतिष से पेड़-पौधों का जुड़ाव बहुत पुराना है।

भारतीय परपरा में ग्रह एव नक्षत्रों का स्थान विशिष्ट है। हमारे मनीषियो ने प्रत्येक ग्रह एवं नक्षत्र के लिये अलग अलग पौधे विहित किये और अपने निवास स्थल के समीप नवग्रह एवं नक्षत्र वाटिकायें स्थापित की थी। आम जनजीवन में यह मान्यता है कि ग्रह-नक्षत्रों के कुप्रभावो को वृक्ष एवं वनस्पतियां समाप्त या कम कर सकती हैं। आलोचित अध्याय के अंतर्गत मैंने इस तथ्य की छानबीन का प्रयास किया है कि पेड़-पौधे हमारे जीवन मे आयी परेशानियों, बाधाओं को किस तरह दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

सभी नक्षत्रों एवं उससे संबधित देवता तथा राशि से जुड़े पौधों का उल्लेख प्राचीन ज्योतिष साहित्य में मिलता है। इस तरह सत्ताइस नक्षत्रो से संबधित सत्ताइस वृक्षो—वनस्पतियों का वर्णन प्राप्त होता है। नवग्रहों के पूजन-हवन हेतु भी विशिष्ट पौधे का विधान है। जैसे-रवि-मदार, सोम-पलाश, मंगल-खैर, बुध-अपामार्ग, वृहस्पति-पीपल, शुक्र-गूलर, शनि-शमी, राहु-दूब और केतु-कुश।

ज्योतिष शास्त्र में प्रावधान है कि ग्रहों तथा नक्षत्रों से संबंधित पौधों को उगाने से भी लोगो को मनोवांछित फल मिल सकता है। स्वस्थ शरीर एवं दीर्घ जीवन प्राप्त करने हेतु भोजन, शुद्धि, वायु, जल तथा प्रदूषण रहित वातावरण आवश्यक है। इन्हें मर्यादित करने में पेड़-पौधों की अहम भूमिका रही है। पुराणों के अनुसार जिस नक्षत्र में ग्रह विद्यमान हों उस समय उस नक्षत्र संबंधी पौधे का यत्नपूर्वक संरक्षण तथा पूजन से ग्रह की शांति होती है तथा जातक को मनोवांछित फल मिलता है। इस प्रकार प्रकारातर से पर्यावरणीय घटकों को संतुलित बनाये रखने में वृक्षों एवं वनस्पतियों की भूमिका को ज्योतिष के माध्यम से रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

ज्योतिष शास्त्र में वनस्पतियों को आधार बना कर बहुत सी भविष्यवाणियां की जाती है एवं शुभ-अशुभ का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। वृक्षारोपण, दंतधावन, शय्या एवं आसन हेतु प्रशस्त वृक्ष, घर के चारों तरफ स्थित पेड़-पौधों से शुभ-अशुभ का ज्ञान, वृक्षों के माध्यम से आने वाली आपदाओं का ज्ञान ज्योतिष के माध्यम से ही संभव है। इसी तरह विशिष्ट पेड-पौधे को देखकर धरती के अंदर जलस्रोत की स्थिति तथा पानी के गुण-दोष के बारे में गुप्तकालीन ज्योतिषी आसानी से आंकलन कर लेता था। ठीक इसी आधार पर आज के वैज्ञानिक धरती के अंदर स्थित खनिज संपदा का पता लगाते हैं। आलोचित अध्याय में ज्योतिष शास्त्र के वैज्ञानिक पहलुओं पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

छठें अध्याय—में 'प्राचीन भारतीय कला में पेड़ और पौधे' के प्राप्त अंकन का वर्णन-विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः कला की शुरुआत के साथ ही पेड़-पौधों का अकन दिखायी पड़ने लगता है। हमारी सबसे पुरानी ज्ञात संस्कृति 'हड़प्पा संस्कृति' में पेड़-पौधों के अंकन की समृद्ध परपरा प्राप्त होती है। हड़प्पा संस्कृति से जुड़े पुरावशेषों, मुहरों, मृदभांडों आदि पर अंकित वृक्षों से तत्कालीन समाज में वृक्षों के प्रति अनुरक्ति तथा उसकी धार्मिक महत्ता का पता चलता है।

हडप्पा संस्कृति में वृक्ष पूजा दो रूपों मे दिखायी पड़ती है। प्रथम-वास्तविक वृक्ष की पूजा पद्धति तथा दूसरा-प्रतीकात्मक अधिदेवता की उपासना पद्धति। आलोचित अध्याय में दोनो रूपो का सूक्ष्म अध्ययन किया गया है। साथ ही यथासंभव उन कला-अभिप्रायों का वर्णन किया गया है जिन पर किसी न किसी रूप में कोई वानस्पतिक अंकन दिखायी पड़ता है। आगे चलकर वृक्ष-देवता (देवी) के रूप में यक्ष-यक्षिणियों को अंकित करने की परंपरा शुंगयुगीन भरहुत तथा सांची स्तूप शिल्प में भी दिखायी पड़ती है।

मौर्य कला के अंतर्गत अशोक स्तंभ पर ताड़ एवं कमल का अंकन मिलता है। शुंग काल में स्तूपों पर पेड़-पौधों का पर्याप्त अंकन किया गया। कहीं पर यह अंकन प्रतीक रूप मे है, तो कहीं पर प्राकृतिक चित्रण के रूप में।

शुंग कलाकृतियों में कल्पवृक्षों एवं कल्पलता का अंकन बहुतायत में मिलता है। इसे जैन साहित्य में वर्णित 10 प्रकार के कल्पवृक्षों से समीकृत किया गया है। ये कल्प वृक्ष हैं—(i) मद्यांग वृक्ष, (ii) तूर्यांग वृक्ष, (iii) भूषणांग वृक्ष, (iv) ज्योति वृक्ष, (v) गृह वृक्ष, (vi) भाजनांग वृक्ष, (vii) दीपांग वृक्ष, (viii) वस्त्रांग वृक्ष, (xi) भोजनांग वृक्ष, एवं (x) मालांग वृक्ष। गया से प्राप्त एक कलाकृति में एक कल्पवृक्ष से विविध प्रकार के आभूषण, फल-फूल एवं वस्त्र आदि निकलते हुये दिखाये गये हैं। वस्तुत: यह इस बात का अंकन है कि वृक्षों से ही हमारी सारी आवश्यकतायें जुड़ी हुई हैं। भोजन, वस्त्र आदि के अलावा जीवनदायी वायु भी पेड़-पौधे ही प्रदान करते हैं। ऐसी स्थिति मे इनको संरक्षित रखकर ही हम अपने जीवन का संरक्षण कर सकते हैं। वानस्पतिक अभिप्राय भरहुत स्तूप के मुख्य विषय हैं। सांची की कला में पेड़-पौधों का इतना प्रचुर अंकन है कि मार्शल ने इसे 'वानस्पतिक कला' की संज्ञा दे डाली है। यहीं से कला एवं वनस्पतियों का अटूट संबंध स्पष्टतया बनता है।

'शालभंजिका' भारतीय कला का एक लोकप्रिय अभिप्राय रहा है। यह स्त्रियों की उद्यान क्रीड़ा से संबंधित है। इस क्रीड़ा में स्त्रियाँ शाल वृक्ष की डाल को झुका कर इनके पुष्पों को तोड़ कर एक दूसरे पर प्रहार करती थीं। सांची, भरहुत, मथुरा, अमरावती एवं नागार्जुनकोंडा स्तूपों की वेदिकाओं पर शालभंजिका दृश्यों का बहुलता से अंकन हुआ है। कुषाणकालीन गांधार कला में भी कुछ स्तभो पर इनका अकन है। वस्तुतः उपर्युक्त कलात्मक उदारहणों में स्त्रियों का वृक्षों के साथ अंकन सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में किया गया है। विभिन्न दृश्यों में अलग-अलग क्रीड़ाओं का अंकन किया गया है जो सहकार भंजिका, अभ्यूषर वादिका, उदक क्ष्वेडिका, विसखादिका, अशोकोत्तंसिका, पुष्पावचायिका, दमनभंजिका, इक्षुभंजिका आदि स्वरूपों में स्तंभों पर विद्यमान है।

'दोहद' स्त्री एवं वृक्ष अभिप्राय का एक विशेष प्रकार था जिसे कलाकारों ने मौर्यकाल से ही प्रतीक रूप में चयनित किया था। मथुरा के अनेक स्तंभों पर अशोक-दोहद अभिप्राय अंकित हैं जिसमें नवयौवना अशोक वृक्ष के नीचे खड़ी होकर एक शाखा बायें हाथ से झुका कर बायें पैर से

स्पर्श कर रही है। ऐसे अंकन कुषाणकालीन वेदिका स्तंभ सघोल (पंजाब), भरहुत, बोध गया, कुम्रहार एवं सांची आदि कला केंद्रों मे मिलते है।

गुप्तकाल से मंदिरों के निर्माण की परंपरा शुरू हुई। इस प्रेरणा के पीछे वृक्ष कहीं-न-कहीं अवश्य था। इन मंदिरों के प्रवेश द्वार को आकर्षक बनाने हेतु पत्रवल्लरी शाखा अंकित की गयी। इस क्रम में अनेक वानस्पतिक अंकन प्राप्त होते हैं। अजंता बाघ आदि गुफाओं के चित्रांकनों तथा खजुराहो के मंदिरों पर उत्कीर्ण वृक्ष अभिप्रायों की समीक्षा आलोचित अध्याय में करने का प्रयत्न किया गया है।

कला अंकनों में उत्कीर्ण किसी विशेष वानस्पतिक अभिप्राय को रेखांकित करने का हमारा प्रयास रहा है। इस अध्याय के अतर्गत इन वृक्षांकनों के धार्मिक या लौकिक अभिप्राय पर भी विश्लेषणात्मक दृष्टि डालने का प्रयत्न किया गया है।

शोध लेखन के समय इस अध्याय के अंतर्गत अंकनों से संबंधित चित्र एवं प्लेट्स दिये जाने की योजना भी थी, लेकिन कुछ महत्वपूर्ण प्लेट्स अंतिम समय तक उपलब्ध न हो पाने से ऐसा करना संभव न हो सका। प्रस्तुत शोध प्रबंध के पुस्तकाकार प्रकाशन के समय चित्र एवं प्लेट्स (संबंधित वर्णनो के साथ) देने का मैं हर संभव प्रयास करूँगा।

अध्याय सात— का शीर्षक है 'प्राचीन भारतीय चिंतन में पर्यावरण और पेड़-पौधे'। वस्तुतः भारतीय परंपरा में सृष्टि को पंचमहाभूतों अर्थात पंचतत्वो से निर्मित माना गया है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि यही किसी-न-किसी रूप में जीवन निर्माण का हेतु बनते हैं। इन सभी तत्वों का सम्मिलित स्वरूप ही पर्यावरण है। ध्यातव्य है कि वायु का स्रोत पेड़-पौधे ही हैं।

पर्यावरण का संतुलन जीवन की प्रक्रिया को नियमित एवं नियंत्रित करता है। इसमें किसी भी तरह के गतिरोध से जीवन संकट में पड़ जाता है। हमारे मनीषियों ने इसकी महत्ता को ध्यान में रखते हुये इसे शुद्ध एवं संरक्षित रखने हेतु कुछ नियम बना लिये थे।

भारतीय आचार्यो ने वृक्षारोपण और वृक्ष की प्रतिष्ठा को महान पुण्य माना है और उससे अनेक प्रकार के वरदान मिलने की बात कही है। धर्मग्रंथों मे ऐसे अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। मत्स्य पुराण में वृक्षारोपण की महत्ता बताते हुये कहा गया है—'दस गुणवान पुत्र पैदा करने का यश उतना ही होता है, जितना एक वृक्ष लगाने का।' विष्णु स्मृति में बताया गया है कि 'जो मनुष्य वृक्षारोपण करता है वे परलोक में उसके पुत्र होकर जन्म लेते हैं।'

वृक्षों के विनाश के प्रति सचेत करते हुये चरक संहिता में बताया गया है—'जंगलों का कटते जाना राष्ट्र के लिये सर्वाधिक भयावह है विशेषकर मानव स्वास्थ्य के लिये।' महाभारत में स्पष्ट उल्लेख है कि पर्यावरण प्रदूषण के कारण मनुष्य दो प्रकार के रोगों के शिकार होते हैं। इनमें से एक रोग से संबंधित है तो दूसरा मन से। वस्तुतः ये दोनों तंत्र परस्पर घनिष्ठता से जुड़े हुये हैं। एक के बाद

दूसरा अवश्य रूग्ण बन जाता है।' वस्तुत: पर्यावरणीय श्रृंखला अपने आप में पूरा एक तंत्र (System) है जिसमें व्यवधान आते ही पूरा ढाँचा चरमराने लगता है। वनस्पतिया एवं पेड़-पौधे अमूल्य प्राकृतिक धरोहर हैं। इस धरोहर को सुरक्षित रखना हम सभी का दायित्व है। यद्यपि आलोचित समय में पर्यावरण प्रदूषण जैसी कोई समस्या नहीं थी तथापि वृक्षों को नष्ट करने वालों या काटने वालों की भर्त्सना की जाती थी एवं उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता था।

कहना न होगा कि पेड़-पौधों के प्रति जनता में सद्भाव जागृत करने का समकालीन मनीषियों का यह महत्वपूर्ण प्रयास था। वृक्षों-वनस्पतियों के विनाश को रोकने के लिये धार्मिक आवरण का सहारा लिया गया तथा त्यौहार एवं अन्य धार्मिक दिवसों पर पौधे रोपित कर पुण्य अर्जित करने का विश्वास दिला कर पर्यावरणीय सामंजस्य बनाये रखने मे सफलता प्राप्त की। प्रस्तुत अध्याय में प्राचीन ग्रंथों में वर्णित वृक्षारोपण प्रसंगों को पर्यावरणीय संदर्भ में विवेचित करने का प्रयास किया गया है।

अपने यहाँ वर्ष भर कोई न कोई पर्व या त्यौहार मनाया जाता है। अधिकांश पर्वों में वृक्ष-पूजा का प्रावधान किया गया है। उदाहरण के तौर पर होली, वसंत पंचमी, वैशाखी, दीपावली, अशोकाष्टमी आदि पर्व जिनके साथ हरीतिमा संवर्द्धन का प्रयोजन भी जुड़ा हुआ है, जिसके महत्व को आज के पर्यावरण संकट के युग में भलीभाति समझा जा सकता है।

मानव जीवन की खुशहाली एवं स्थायी प्रगति के लिये प्राकृतिक संतुलन एवं इसके लिये हरीतिमा सवर्द्धन के विषय में हमारे मनीषी भलीभांति परिचित थे, अत: वे वृक्षारोपण पर बहुत बल देते थे। वस्तुत: स्वास्थ्यवर्द्धक एवं वायुमंडल शोधक गुणों के कारण हरीतिमा की भूमिका अद्वितीय है। मनुष्य के मानसिक विकास एवं शांति के साथ इसका घनिष्ठ संबंध है। संभवत: इसी कारण वैदिक संस्कृति अरण्यों में विकसित हुई और इसका नाम 'आरण्यक संस्कृति' पड़ा।

प्रस्तुत अध्याय में मैने प्राचीन ग्रंथों में वर्णित प्रकृति को व्यवस्थित करने वाले उपायों की विवेचना करने की कोशिश किया है। इस क्रम मे वृक्ष-विशेष के रोपण हेतु आग्रहों एवं पेड़-पौधों से तत्कालीन मानव के सूक्ष्म संबंधों को परखने का प्रयत्न किया गया है।

आठवाँ एवं अंतिम अध्याय 'उपसंहार' के अंतर्गत शोध के निष्कर्षो को अध्यायवार प्रस्तुत किया गया है। साथ ही इस तथ्य की विवेचना की गयी है कि आज की परिस्थिति मे पेड़-पौधों के संदर्भ में प्राचीन भारतीय साहित्य एवं कला का अध्ययन किस प्रकार प्रासंगिक है। पेड़-पौधों से संबंधित अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं को संक्षेप में परखने की कोशिश भी की गयी है।

वृक्षों की हरितिमा का मन-मस्तिष्क पर बड़ा शांतिदायक प्रभाव पड़ता है। वृक्षों की शीतल छाया में अनगिनत पशु-पक्षी विश्राम पाते हैं। इस तरह वृक्षों को एक खुली या जीवित धर्मशाला कहा जा सकता है। फूलों की सुगंध मस्तिष्क में प्रफुल्लता एवं शक्ति का संचार करती है। फलो में ही वे जीवन तत्व हैं जो मनुष्य को निरोगी एवं दीर्घजीवी बना सकते हैं। इनमें शरीर ही नहीं, मस्तिष्क और

स्वभाव को भी उच्चस्तरीय पोषण प्रदान करने की क्षमता होती है। इसीलिये धार्मिक दृष्टि से फलों को बहुत महत्ता दी गयी है।

प्राचीन काल में गुरुकुल वनों में ही होते थे। वृक्षों द्वारा सूक्ष्म आध्यात्मिक प्रशिक्षण मिलता रहे इसलिये हर आश्रम, गॉव, मंदिरों, सार्वजनिक स्थलों को भी वृक्षों से आच्छादित रखा जाता था। बुद्ध की स्मृति में महेंद्र द्वारा श्रीलंका में लगाया गया बोधिवृक्ष आज भी कीर्तिस्तंभ बना हुआ है। पारिवारिक सौहार्द्र के लिये वृक्षों का बहुत महत्व माना जाता हैं। घर के आंगन में प्राय: एक नीम का वृक्ष लगाना अनिवार्य माना जाता था। परिवार के सदस्यों मे वह वृक्ष भी गिना जाता था। भारतवासियों के हृदय की विशालता, वृक्षों के साथ मानवीय व्यवहार, उन्हें अपना मित्र समझकर उनकी स्मृति को अपने अंत:करण में सँजोयें रखना हमारी संस्कृति की उत्कृष्टता के प्रमाण हैं।

पेड़-पौधो के बारे में श्रीमद्‌भागवत पुराण मे श्रीकृष्ण द्वारा पेड़-पौधों के बारे में कहा गया यह कथन बहुत महत्वपूर्ण है—"ये वृक्ष बहुत भाग्यवान हैं क्योंकि इनका सारा जीवन केवल दूसरों की भलाई करने के लिये ही है। ये स्वयं तो हवा के झोके, वर्षा, धूप और पाला सब कुछ सहते हैं परतु हम लोगों की उनसे रक्षा करते हैं। मैं कहता हूँ कि इन्ही का जीवन सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि इनके द्वारा सब प्राणियों को सहारा मिलता है। उनका जीवन निर्वाह होता है। जैसे किसी सज्जन पुरुष के घर से कोई याचक खाली हाथ नहीं लौटता वैसे ही इन वृक्षों से भी सभी को कुछ न कुछ मिल ही जाता है। ये अपने पत्ते, फूल, फल, जड़, छाल, लकड़ी, गोद, गंध, राख, कोयला, अंकुर, कोंपलों तथा छाया से भी लोगों की कामना पूर्ण करते हैं।"

मनुष्य के जीवन धारण और उत्कर्ष में वृक्षों की महत्वपूर्ण भूमिका है। वृक्षों से प्राप्त होने वाले लाभो की कोई गणना नहीं। इस तरह वृक्ष इस सृष्टि के लिये अमूल्य निधि हैं। यदि वृक्ष संसार में न होते तो जीवन का अस्तित्व में आना संभव ही न हुआ होता।

●

परिशिष्ट-1

महत्वपूर्ण पेड़-पौधों के वानस्पतिक नाम

(Botanical names of important plants)

हिन्दी नाम	अंग्रेजी नाम	वानस्पतिक नाम
1	2	3
अर्क फूल	Pelican flower	Aristolochia grandiflora
अर्क (मदार)	Swallowart	Calotropis gigantea
अखरोट	Walnut	Juglans regia
अगस्त	Sesbania	Sesbania grandiflora
अगुरु		Aquilaria agallocha
अजवाइन	Sprague	Trachypermnm ammi
		Carum coptium
अर्जुन (कौहा)		Terminalia arjuna
अजवाइन (खुरासनी)	Henbane	Hyoscyamus niger
अतीस	Atis	Achoniutum heterophyllum
अदरख (नागर)	Ginger	Zingiber officinale
अनन्नास	Pineapple	Ananas cosmosus
अनार	Pomegranate	Punica granatum
अपराजिता (गिरिशालिनी)		Clitoria ternatea
अपामार्ग (चिचिड़ी, लटजीरा)	Chaff flower	Acyranthes aspera
अमरुद	Guava	Psidium guyaya
अमलतास	Indian laburnum	Cassia fistula
अमरबेल	Dodder	Cuscuta reflexa
अरण्डी	Castor bean	Ricinus communis
अरबी	Arum	Colocacia esculenta

1	2	3
अरबी (आडू)	Peach	Prunus persica
अरहर	Pigeon Pea	Cajanus Cojan
अरारोट	Arrowroot	Canna edulis
अलूचा	Plum	Prunus domestica
अलसी	Flax	Linum usitatissimum
अशोक	Ashoka tree	Saraca Indica
अश्वगंधा (असगंध)	Winter cherry	Withania Somnifera
आम	Mango	Magnifera Indica
आंवला	Emblic	Emblica officinalis
आमाहल्दी	Mango ginger	Curcuma amada
आलू	Potato	Solanum tuberosum
इन्दीवर (नीलोफर)		Nymphaea Stellata
इमली (देशी)	Tamarind	Tamarindus Indica
इलायची (छोटी)	Cardamom	Elettaria Caradamomum
इलायची (बडी)	Bengal Cardamom	Amomum Aromaticum
इसब्बगोल	Blonde Psyllium	Plantago ovata
ईख (इक्षु, गन्ना)	Sugar Cane	Saccharum Officinarum
उड़द (उर्द)	Black gram	Phaseolus (mungo) Aureus
उशीर (खस)		Vetiveria sisanioides
ओल	Ol	Amorphophallus Campanulatus
अंकोल		Alangium Salviifolium
अंगूर	Wine grape	Vitis Vinifera
अंगूर शेफा	Deadly night shade	Atropa belladonna
अंजीर	Fig	Ficus carica
ककड़ी (फूंट)	Kakari	Cucumis melo var Utilissimus
कचनार	Variegated bahunia	Bahunia variegata

1	2	3
कचनार (सफेद)		Bahunıa Acumınata
कटहल (पनस)	Jack fruıt	Artocarpus heterophyllus
कटैया	Prıckley Poppy	Argemone mexıcana
कटेली		Solanum Xanthocarpum
कटेली चम्पा	Ylang-Ylang	Artabotrys Uncınatus
कत्था	Black cutch	Acacıa catechu
कठगूलर (कृष्णोदुम्बरक)		Fıeus hıspıda
कद्दू (कुम्हडा)	Wınter squash	Cucurbıta maxıma
कद्दू (मीठा कुम्हड़ा)	Sweet Squash	Cucurbıta moschata
कद्दू (सफेद)	Summer Squash	Cucurbıta pepo
कदम्ब	Kadam	Anthocephalus ındıcus
कन्तला	Century plant	Agave amerıcana
कनकौआ	Day flower	Commelına benghalensıs
कनेर (करवीर)	Oleander	Nerıum Indıcum
कपास (देशी)	Tree Cotton	Gossypıum arboreum
कपास	Asıatıc Cotton	Gossypıum herbaceum
कपूर	Camphor	Cınnaamomum Camphora
कबाबचीनी	Cubele	Pıper cubeba
कमरख	Caıambola	Averrhoa carambola
कमल	East Indian Lotus	Nelumbo nucıfera
करमकल्ला		Brassıca oleracea Var. Capıtata
करमसाग		Brassica oleracea Var Acephala
करेला	Bıtter guard	Momordıca charantıa
करौंदा	Karaunda	Carıssa caraundus
करंज	Molucca bean	Caesal pınıa Crısta
कलश पादप	Pıtcher plant	Nepenthes domınıı

1	2	3
कलिहारी	Glory lilly, Tigers Claw	Gloriosa superba
क्वीनीन	Quinine	Cinchona Calisaya
काजू	Cashew nut	Anacardium Occidentale
कामिनी	Orange Jasmine	Murraya Paniculata
कायफल	Bay berry	Myrica nagi
काफी	Coffee	Coffea Arabica
काली मिर्च	Black Pepper	Piper nigrum
काली जीरी	Wild Cumin	Vernonia Onthelmintica
कालीयक (झाड़ की हल्दी)		Coscinium fenestratum/ Jateorhisa palmata
कास	Thatch grass	Saccharum Spontoneum
किरयत चिरायता	Chiretta	Swertia chirata
कुचला	Nux vomica	Strychnos nux-vomica
कुटु (कुटुवा)	Buck wheat	Polygonum fagopyrum
कुटली	Little millet	Ponicum miliare
कुत्ता पुष्प	Fox glove	Digitalis purpurea
कुन्द		Jasminum Pubescens
कुन्दरु	Kovai	Coccinia Cordifolia
कुमुदिनी (सफेद)	Water lily (White)	Nymphaea alba
कुमुदिनी (नीला)	Water lily (Blue)	Nymphaea Stellata
कुश		Demostachya bipnnata
कुसुम	Lac tree	Schleichera Oleosa
कूष्माण्ड (कुम्हड़ा)		Benincasa cerifera
केला	Banana	Musa Pardisiaca
केवड़ा (केतकी)	Screwpine	Pandanus tectorius
केसर (कुंकुम)	Saffron	Crocus sativus
कैंडीटफ्ट	Rocket Canditufт	Iberis amara
कैथा	Elephant or wood apple	Feronia limonia

1	2	3
कोदो	Kodo mıllet	Pandanus odoratıssıness
कंचन लता	Camels foot clımber	Bauhınıa Vahlıı
खजूर	Wıld date	Phoenıx sylvestrıs
खजूर (पिंड)	Date palm	Phoenıx dactylıferae
खटपालक		Rumex dentatus
खट्टी बूटी	Indıan sorrel	Oxalis cornıculata
खरबूजा	Musk melon	Cucumıs melo
खस	Vetıver	Vetıvena zızanıoıdes
खीरा	Cucumbeı	Cucumıs Satıvus
खुबानी	Aprıcot	Prunus armenıaca
खेसारी	Wıld pea	Lathyrus aphaca
	Grass pea	Lathyrus Satıvus
गदहपूर्णा	Hog weed	Boerhaavıa dıffusa
गाजर	Carrot	Daucus Carota
गुड़हल (जवाकुसुम, अढ़ौल)	Rose of Chına	Hıbıscus rosa sinensıs
गुरुच (गिलोय)		Tinospora Cordıfolıa
गुलतुर्रा (राधाचूड़)	Peacock flower	Poınciana Pulcherrıma
गुलमेंहदी	Garden balsam	Impatıens balsamına
गुलाब	Rose	Rosa Centıfolıa
	Damask Rose	Rosa damascena
गुलाब (सफेद)	Whıte Rose	Rosa Alba
गुलाबबाँस	Four O'Clock plant	Mııabılıs Jalapa
गुम्मा	Goma	Leucas cephalotes
गूलर	Cluster fig	Fıscus glomerata
गेंदा	Merıgold	Tagetes erecta, Tagetes Petula
गेहूँ	Wheat	Trıtıcum Aestıvum
गोखरू	Puncture vıne	Trıbulus terresterıs

1	2	3
गोभी (गाँठ)	Knol Kohl	Brassica oleracea gongylodes
गोभी (फूल)	Cauli flower	Brassica oleracea botrytis
गोभी (बॅधा)	Cabbage	Brassica oleracea capitata
गंध बबूल	Sweet acacia	Acacia farnesiana
घीक्वार	Aloe	Aloe barbadensis
घुँइया	Arum Taro	Colocasia esculenta
चकोतरा	Pummelo	Citrus maxima
चकौढ़	Sickle-senna	Cassia tora
चकौढ़ (बड़ा)	Western senna	Cassia occidentalis
चना	Gram	Cicer arietinum
चम्पा	Magnolia	Magnolia grandiflora
चम्पी (चंपक)	Champae	Michelia champaca
चमेली	Tree Jasmine	Jasmium arborescens
चमेली (पीली)	Yellow Jasmine	Jasmium humile
चन्दन (सफेद)	White Sandal wood	Santalum album
चाय	Tea	Camellia Sinensis
चिचण्डा	Snake gourd	Trichosanthes anguina
चिलगोजा	Edible pine	Pinus gerardiana
चिरैता		Swertia chirata
चीड़	Tree leaved pine	Pinus roxburghii
चुकंदर	Beet root	Beta vulgaris
चौलमोगरा		Taraktogenos Kurzi
चौलाई (कँटीली)	Amaranth	Amaranthus spinosus
चौलाई (बड़ी)		Amaranthus tricolor
छुइमुई (लाजवंती)		Mimosa pudica
जई	Oat	Avena Sativa
जम्बू	Pyinkado	Xylia Xylocorpa

1	2	3
जलधनियाँ	Indıan butter cup	Ranunculus scleratus
जाती (मालती)		Jasmınum officınle
जामुन	Java palm	Eugenıa Jambalanum Syn Syzygıum
जायफल (जातीफल)	Nut meg	Myrıstica fragrans
जिमीकंद	Elephant foot yam	Amorphophallus Campanalatus
जीरा	Cumın	Cuminum cymınum
जीरा (काला)	Black caraway	Banıum persıcum
जूट	Jute	Corchorus capsularıs
जूही	Juhı	Jasmınum aurıculatum
जौ (यव)	Barley	Hordeum vulgare
ज्वार	Sorghum	Sorghum vulgare
जंगल जिलेबी	Manıla tamarınd	Pıthecolobıum dulce
तगर (सुगंधवाला)		Valerıana wallıchıı
तमाल		Garcınıa morella
तम्बाकू	Tabacco	Nicotıana tobacum
तरबूज	Water melon	Cıtrullus vulgarıs
तरोई (काली)	Vegetable sponge	Luffa acutangula
तरोई (घिया)		Luffa cylındrıca
तालमखाना		Asteracantha longıfolıa
ताड़	Palmyra Palm	Borassus flabellıfer
तिन्दुक		Diospyros peregrına
तिल	Seasame	Seasamum Indıcum
तिलक		Wendlandia exerta
तीखुर	Indian arrow root	Hıtchenia royleana
तुलसी	Holy basıl	Ocımum sactum
तेजपात	Indıan Cassıa	Cınnamomum tamala
दालचीनी	Cınnamon	Cınnamomum zeylanıcum

1	2	3
दाद मर्दन	Rıngworm Cassıa	Cassıa alata
दिन का राजा	Day Jassamıne	Cestrum dıurnum
दूब	Bermuda grass	Cynodon doctylon
देवदारु	Deodar	Cedrus deodara
धतूरा	Thorn apple	Datura stramonıum
धनिया	Conander	Conandrum satıvum
धान	Rıce	Oryza satıva
नरकुल	Common Red grass	Phragmıtes karka
नागफनी	Opuntıa	Opuntıa dıllenıı
नारियल	Coconut	Cocos nucıfera
नारंगी	Orange	Cıtrus sınensıs
नाशपाती	Pear	Pyrus communıs
नीबू (मातुलुंग, चकोतरा)		Cıtrus medıca
नीबू (कागजी)	Lıme	Cıtrus Aurantıfolıa
नीबू (बड़ा)	Lemon	Cıtrus lemon
नीम	Margosa	Azadırachta Indıca
नील	Indıgo	Indigofera tınctona
नीलाशोक		Amberstıa nobılıs
नील कमल (नीलोफर)	Blue Lotus	Nymphaca stellata
पदम	Wıld hımalayan cherry	Prunus cerasoıdes
पटवा	Jamaıca Sorrel	Hıbıscus sabdarıffa
पटसन	Bımlıpatam jute	Hıbıscus cannabınus
पथरचूर	Indıan borage	Coleus amboinıcus
पलास, टेसू	Flame of the forest	Butea monosperma
पपीता	Papaya	Canca papaya
परवल	Patol	Tnchosanthes dıoıca
पाकड़ (प्लक्ष)		Fıcus ınfectona

1	2	3
पान	Betel pepper	Pıper betle
पारिजात		Nyctanthes arbortrıstıs
पारिभद्र		Erythrına varıegata
पालक	Spınach	Spınacıa oleracea
पाटल		Stereospermum suavelens
पीपल	Peepul	Fıscus relıgıosa
पिपलीमूल	Long pappeı	Pıper longum
प्रियंगु (कांगुन)		Saterıa ıtalıca
पीली कनेर	Yellow oleander	Thevetıa peruvıana
पुत्रजीव		Putranjıva roxburghıı
पुदीना	Fıeld mınt	Mentha arvensıs
पुन्नाग		Colophyllum ınophyllum
पोस्त	Opıum poppy	Papaver somniferum
प्याज (पलांडु)	Onıon	Allıum cepa
बकला	Broad bean	Vıcia faba
बड़हल		Artocarpus lakoocha
बण्डा	Gıant Taro	Alocacıa ındıca
बथुआ	Pıgweed	Chenopodıum album
बड़हर (लकुच)		Artocarpus lacucha
बनतुलसी	Basıl	Ocımum basılıcum
बनमेथी	Sweet Clover	Melılotus indıca
बनरीठा	Soap pod	Acacıa concınna
बनहल्दी		Morında angustıfolıa
बबूल		Acacıa nılotica
बरगद	Banyan	Fıscus benghalensıs
बरियार		Sıda acuta
बहेड़ा	Byllerıc myrobalan	Termınalıa bellırıca
बाघनखी	Tıgers naıl	Martynıa dıandra

1	2	3
बाजरा	Pearl millet	Pennisetum typhoides
बादाम	Almond	Prunus amygdalus
बालकुँवारी	Maiden hair tree	Ginkgo biloba
बाँस	Bamboo	Bambusa bambos
बेंत	Cane	Calamus viminalis
बेर	Chinese date	Ziziphus mauritiana
बेल	Beal	Aegle marmelos
बेला		Arbian Jasmine Jasminum sambac
बैगन	Egg plant	Solanum melongena
बंधुजीव (दुपहरी)		Pentapetes phoenicea
बोर	Indian rubber	Fiscus elastica
बाँस	Thorny bamboo	Bambusa arundinaceae
ब्राह्मी	Asiatic pennywort	Centella asiatica
भटकटैया	Yellow berried shade night	Solanum surrattence
भाँग	Hemp	Cannabis sativa
भिण्डी	Lady's finger	Abelmoschus esculentus
भृंगराज	Eclipta	Eclipta alba
भोजपत्र		Betula bhoj patra
मक्का	Maize	Zea mays
मकोय (काकमाची)	Night shade	Solanum nigrum
मखाना	Gorgan nut	Euryale ferox
मटर (जंगली)	Yellow vetchling	Lathyrus aphaca
मटर (वाटिका)	Garden pea	Pisum sativum
मटर (मीठी)	Sweet pea	Lathyrus odoratus

1	2	3
मसूर	Lantıl	Lens culınarıs
महुआ		Madhaca butyrucea
माधवी लता		Hıptage benghalensıs
मालती		Jasmınum flexıle
मिर्च (लाल)	Red popper, chıllıes	Capsicum frutescens
मुचकुन्द		Pterospermum acerıfolıum
मुलेठी	Lıquorıce	Glycyrrhıza glabra
मुसम्मी	Sweat orange	Cıtrus sınensıs
मूँग	Green gram, bean	Phaseolus aureus
मूँगफली	Ground nut, peanut	Arachıs hypogea
मूँज	Plum grass	Erıanthus munja
मूली	Raddısh	Raphanus satıvus
मेथी	Fenugreek	Trıgonella foenum-graecum
मेंहदी	Egyptıan prıvet	Lawsonıa ınermıs
मोगरा (मल्ली)		Jasmınum sambae
मोथा	Nut grass	Cyperus rotundus
मोरपंखी	Orıental arborvıtal	Thua orıentalıs
मंजीठ	Indıan madder	Rubıa cordıfolıa
राई	Rye	Secale cereale
राई (काली)		Brassica nıgra
राई (सफेद)		Brassıca juncea
राजमाष		Dolıchos catjang
रात की रानी	Nıgh Jessamıne	Cestrum nocturnum
रीठा	Soap nut	Sapındus emargınatus
लहसुन	Garlıc	Allıum Satıvum
लसोड़	Lasoıa	Cordıa myxa
लाल चदन	Red Sandal Wood	Pterocarpus santalınus

1	2	3
लीची	Litchi	Litchi chinensis
लौकी (अलाबु)	Bottle gourd	Lagenaria siceraria
लौग	Clove	Symplocos aromaticum
बैजयन्ती	Indian shot	Canna Indica
शकरकंद	Sweet potato	Ipomoea batatas
शमी		Prosopis spicigera
शरीफा	Sugar apple	Annona squamosa
शलजम	Turnip	Brassica ropa
शहतूत	White mulberry	Morus alba
शीकाकाई	Soap pod	Acacia Concinna
शीशम	Sissoo	Delbergia sissoo
शीशम (काला)	Indian rose wood	Delbergia latifolia
सदा सुहागन	Sada bahar	Catharanthus roseus
सन (पटुआ)	Sunn hemp	Crotalaria juncea
सन्तरा	Mandarin	Citrus reticulata
सर्पगन्धा	Surpentine	Rauwolfia serpentina
सहिजन (शिग्रु)		Moringu pterygosperma
सफेदा	White poplar	Populus alba
सरकंडा (शर)		Saccharum munja
सरसों, काली	Black musterd	Brassica nigra
सरसों, पीली	Yellow musterd	Brassica campestris
सरसों, सफेद	White musterd	Brassica alba
साल	Sal	Shorea robusta
सागौन	Teak	Tectona grandis
सिदुवार (निर्गुडी)		Vitex negundo
सिघाड़ा	Water chestnut	Trapa bispinosa
सिरीष	Lebbeck	Albizia lebbeck
सिहलक (शिलारास, लोबान)		Altingia excelsa/Liquidambar orientalis

1	2	3
सीताफल	Winter squash	Cucumis maxima
सुपारी	Betel-nut palm	Areca catechu
सूर्यमुखी	Sunflower	Helianthus annuus
सेव	Apple	Malus sylvestris
		Pyrus malus
सेम	Hyacinth been	Dolichos lablab
सेमर	Red silk cotton	Bombax ceiba
सेमल (शाल्मली)		Salmalia insignis
		Salmalia malabarica
सैंजन	Drum sticks	Moringa oleifera
सौंफ	Fennel	Foeniculum vulgare
हरसिगार	Tree of sorrow	Nyctanthes arbortristis
हर्रे	Yellow myrobalan	Terminalia chebula
हल्दी	Turmeric	Curcuma domestica
हल्दू	Yellow teak	Adina cordifolia
हींग	Asafetida	Ferula assafoetida
हुरहुर	Sticky Cleome	Cleome viscosa
		Gynandropsis gynandra
त्रिपत्रा	Red clover	Trifolium pratense

●

परिशिष्ट-2

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित वनस्पतियों का आधुनिक नाम

प्राचीन नाम	आधुनिक नाम	प्राचीन नाम	आधुनिक नाम
अजमोदा	अजवाइन	आरग्दध	अमलतास
अजगंधा	वन अजवाइन	आरोहा	लजालू
अजाजी	जीरा	इन्दीवर	नीलकमल
अर्जक	तुलसी	इन्द्रवारूणी	इन्द्रायण, विशाला
अर्क	मदार	उत्पल	कमल
अतिच्छत्रा	सौंफ	उदुम्बर/औदुम्बर	गूलर
अतिबला	ककही	उपकुंचिका	काला जीरा
अध्यंडा	केंवाच	उलटकंवल	अमलतास
अतिरसा	शतावरी	उर्वारूक	ककड़ी
अपामार्ग	चिचिड़ी, लटजीरा	उशीर	खस
अभया	हर्रे	एला	बड़ी इलायची
अरविट/अरिष्ठिका	रीठा	एकेषीका	काला निशोथ
अरविन्द	कमल	अंकोल	अंकोट, ढ़ेरा
अलावु, अलावुनी	लौकी	कर्कोटक	चठइल
अवधातक	अमलतास	ककुभ	अर्जुन
अवल्गुज	बकुची	कर्कारूक	कच्चा तरबूज
अश्वकर्ण	साल	कचूर/किंशुक	पलाश, ढ़ाक
अश्वत्थ	पीपल	कटवंग	बड़ा सोनापाठा
अश्मंतक	मालधेनु	कठभीत्वक	कंटकी शिरीष (लता शिरोष)
अष्टदल	कमल	कदर	कदम्ब
अक्षीव	बकायन	कदम	खदिर
आत्मगुप्ता	केंवाच	कदली	केला
आढ़की	अरहर	करवीर	कनेर
आमलक	आंवला	कपित्थ	कैथ
आम्र	आम		
आनूपक्लीतक	मुलेठी		

प्राचीन नाम	आधुनिक नाम	प्राचीन नाम	आधुनिक नाम
कपीतन	आमड़ा	खदिर	खैर
कर्णिकार	मुचकुंद, अमलतास	खेकसा	चठइल
कलाय	उड़द	खुम्भी	कुकुरमुत्ता, छत्राक
कलिंगा	तरबूज	गण्डारी	कचनार
काकाण्ड	केंवाच	गृंजन	गाजर, शलजम, गाँजा
कार्पास	कपास		
कायस्था	छोटी इलायची	गुण्डू	सरकंडा
कांडीर	छोटी करैली	गुणाक	सुपारी
कालेयक	रक्तचदन	गोधूम	गेहूँ
काविदार	लाल कचनार	चारटी/भारंगी	वभनेठी
कर्बुदार	श्वेत कचनार	चांगेरी	तीनपतिया
किणिही	अपामार्ग, चिचिड़ी	चिर्भट	फूट
कुसुम्भ	बर्रे	चिल्लक	बथुआ
कुवल	बड़ी बेर	छयोंकर	शमी
कुई	कुमुद	छत्रा	सोवा
कुंचिका	मंगरैला	छत्राक	कुकुरमुत्ता
कुभीक	पुन्नाग	जटिला	जटामांसी
कूष्माण्ड	कुम्हड़ा	जाग्र	नागकेसर
कृष्णगधा	सहिजन	जातिपर्ण	जावित्री
कृष्णा	शीशम	जातीफल	जायफल
कृष्णा	काली तुलसी	जाती पुष्प	मालती, चमेली
कृष्णल	घुंघची, गुंजा, चहुटली	जम्बू	जामुन
		जियापोता	पुत्रजीव
केशी	शंखपुष्पी	टंक	नाशपाती
कोल	बेर	ढ़ाक	पलाश
कौन्ती	सम्हालू	तण्डुल	चावल
कोद्रव	कोदो	तण्डुलीयक	चौराई
क्रमुक	सुपारी	ताम्बूल	पान
कृतमाल	केवड़ा	तिलपर्णी	हुरहुर
कारवेल्ल	करेला	तिंतिडी	इमली
कृतवेधन	तिक्त तरोई	तुंग	नारियल

प्राचीन नाम	आधुनिक नाम	प्राचीन नाम	आधुनिक नाम
तृण शून्य	केवड़ाफल	पूगफल	सुपारी
थौणेयक	गठिवन	फल्गु	अंजीर
दर्भ	कुश	फणिज्झक	महुआ
द्राक्षा	अंगूर	वृश्चिकाली / बिछुआ	कौवाठोठी
दाडिम	अनार	बर्हिस	कुश
दंतीफल	एरण्ड, रेड़ी का बीज	बदर/बदरी	बेर
द्वारदा	सागौन	बिम्बी	कुंदरू
ध्यामक	खस	ब्रह्म सुवर्चला	हुरहुर
धात्री	आंवला	बिल्व	बेल
निर्गुण्डी/मेउड़ी	मेढ़की	वृहतीमूल	भटकटैया
निशा	दारुहल्दी	भद्रा	दूब
नीप	कदम्ब	भूतीक	अजवाइन
नीवार	जंगली चावल	महापुरूषदंता	शतावर
नीलोत्पल	नीलकमल, नीलोफर	मधुक	महुआ
न्यग्रोध	वट,वरगद	मर्कटी	केंवाच
पद्म	कमल	मयूष्ठ	उजली मटर
पनस	कटहल	माष	उड़द
परूषक	फालसा	मृगलिंडिका	बहेरा
पलाण्डु	प्याज	मृद्वीक	अंगूर
पारावत	अमरूद	मृष्टक	राई
पुनर्नवा	गदहपुरना	मुस्त	नागर मोथा
पुन्नाग	नागकेशर	मुद्ग	मूँग
पूर्णकोशा	नागरमोथा	मातुलुंग	नीबू, चकोतरा
प्रियाल	चिंरौजी	मोच	केला
प्रियंगु	कगुनी, कांगुन	मंडूकपर्णी	मंजीठ
प्रपुन्नाड	चकवड़	यव	जौ
प्लक्ष	पाकड	यवानिका	अजवाइन
पिंडमूल	गाजर	यवानी	अजवाइन
पिप्पली	पिपरामूल, पीपल	रूहा	आकाश बॅवर
पुण्डरीक/पुष्कर	कमल	रसांजन	रसौत
प्रत्यकपुष्पी	अपामार्ग	रास्ना	नाकुली

प्राचीन नाम	आधुनिक नाम	प्राचीन नाम	आधुनिक नाम
रसोन	लहसुन	शिवा	शमी
रूहापत्र	गुरूच	शिंशपा	शीशम
रूचक	बिजौरा नींबू	शीतपाकी	गुजा
लकुच	बड़हर	शुक्ति/सौवीर	बेर
लज्जालुका	लाजवंती	शूकरी	वाराहीकन्द
लशुन	लहसुन	शालेय	सौंफ
वयस्था	ब्रह्मी	शाल्मली	सेमल
वार्ताक/वृन्ताक	बैगन	शंखनाभि	कचूर
वासक	अडूसा	शंखिनी	चोर पुष्पी
वालक	मोथा	श्यामाक	सॉवा
वेणु	बाँस, नरकुल	श्लेष्मातक	लिसोड़ा
वृहती	भटकटैया	सतीन	छोटी मटर
वृद्धरूद्धा	शतावरी	सरसिज	कमल
वेतस/वंजुल	अशोक	स्नुही	सेंहुड़
विकंकत	कटाई	सरल	चीड़
विष्णुक्रांता	अपराजिता	सुमुख/सुरसा	तुलसी
विकसा	मंजीठ	सुषवी	करैला
विषाणिका	काकड़ासिंगी	सोमवल्क	खदिर
वीरा	शतावर	स्वगुप्ता	केंवाच
वृक्षाम्ल	तिंतीडक	स्वादुकंटक	भुंइकुम्हड़ा
वृश्चीर	श्वेत पुनर्नवा	श्रृंगाटक	सिंघाड़ा
वंजुल	जलवेंत	श्रृंगवेर	अदरक
वृषकर्णी (चक्रांगी)	सुदर्शना	हस्तिकर्ण	एरण्ड/पलाश
शीतवल्ली	नील दूर्वा	हलदू	कदम्ब
श्वेता/सफेद वच	अपराजिता	क्षत्रक	नकछिदनी
शतवीर्या	सफेद दूब	त्रपुष	खीरा (तिक्त)
शल्लकी	कुन्दरू	त्रायमाण	चिरायता
शतमूली	शतावरी		

●

संदर्भ ग्रंथ सूची

मूलभूत ग्रंथ

अग्नि पुराण, संपा०—आप्टे, आनंदाश्रम, पूना, 1900

अथर्ववेद (शौनकीय), संपा०—विश्व बंधु, विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1962

अथर्ववेद संहिता, भाष्यकार, पं० जयदेव शर्मा, अजमेर, सं०, 1985

अर्थशास्त्र, संपा०—आर० पी० कांगले, मुंबई विश्वविद्यालय, मुम्बई, 1969

अमरकोष, संपा०—एच० डी० शर्मा एवं एन० जी० देसाई, पूना, 1941

अपराजित पृच्छा, संपा०—पी० ए० मंकट, बड़ौदा, 1950

अभिधानरत्नमाला (हेमचंद्र), एन० एस० पी०, मुम्बई, शक सं० 1818

आपस्तंब धर्मसूत्र, संपा०—जी० व्यूहलर, मुम्बई, 1932

आश्वलायन गृह्यसूत्र, संपा०—गणपति शास्त्री, गवर्नमेंट प्रेस, त्रिवेंद्रम

उत्तर राम चरित (भवभूति), संपा०—पी० बी० काणे, हिंदी अनु०—सी० एन० जोशी, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, 1971

ऋग्वेद संहिता, संपा०—एन० एस० सोनटाके, वैदिक समाशोधन मंडल, पूना, 1972

ऐतरेय ब्राह्मण, अनु०—ए० वी० कीथ, कैम्ब्रिज, 1920

अंगुत्तर निकाय, अनु० ई० एम० हारे, पी० टी० एस० लंदन, 1932-36

कथासरित्सागर (सोमदेव), अनु०—सी० एच० टावने, संपा०—एन० एम० पेजर लंदन, 1924

कात्यायन स्मृति, संपा०—पी० वी० काणे, मुम्बई, 1933

काव्य मीमांसा (राजशेखर), संपा०—सी० डी० दलाल एवं अनंतकृष्ण, बड़ौदा, 1934

कामसूत्र (वात्स्यायन), संपा०—जी० डी० शास्त्री, वाराणसी, 1929

कामंदकीय नीतिसार, संपा०—जे० पी० विद्यासागर, कलकत्ता, 1875

कालिदास ग्रंथावली, अनु० रामप्रताप शास्त्री, किताब महल, इलाहाबाद

कृत्य कल्पतरु (लक्ष्मीधर), संपा०—वी० आर० आयंगर, बड़ौदा, 1948-53

गरुड़ पुराण, संपा०—जीवानंद विद्यासागर भट्टाचार्य, कलकत्ता, 1890

गौतम धर्म सूत्र, वाराणसी, 1966

चरक संहिता, संपा०—राजेश्वर दत्त शास्त्री एवं अन्य वाराणसी, 1969
छादोग्य उपनिषद, संपा०—ओ० वाहिलिक, लिपजिग, 1899
जातक ग्रंथ, I-V, संपा०—भदंत आनंद कौसल्यायन, हिदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, 1995
जैन हरिवंश पुराण (जिनसेन), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1978
तैतरीय ब्राह्मण, संपा०—आर० मित्रा, कलकत्ता, 1870
तैतरीय संहिता, संपा०—ए० बेवर, बर्लिन, 1871-72
दिव्यावदान, संपा०—कावेल, कैम्ब्रिज, 1886
दीघ्घ निकाय, संपा०—रिज डेविड एवं कारपेंटर, पी० टी० एस०, लंदन, 1911
नारद स्मृति, संपा०—जे० जाली, कलकत्ता, 1885
पद्म पुराण, संपा०—डॉ० पन्ना लाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1977
मत्स्य पुराण, संपा०—श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1972
महाभाष्य (पतंजलि), मिरजापुर, 1855
महाभारत, संपा०—विष्णु एस० सुक्थंकर, भंडारकर ओरियटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1971
महाभारत, अनु० रामनारायण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० 2045
यजुर्वेद संहिता, संपा०—महर्षि दैवरात, काशी हिदू विश्वविद्यालय, 1973
व्याकरण महाभाष्य आफ पतंजलि, संपा०—एफ० कीलहार्न, भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1965
वृहस्पति स्मृति, बड़ौदा, 1941
वृहत्कथा कोष (हरिषेण), संपा०—ए० एन० उपाध्ये, मुंबई, 1943
वृहदारण्यक उपनिषद्, संपा०—वातलिक, लाइपिग, 1889
बौधायन धर्मसूत्र, वाराणसी, 1972
वामन पुराण, सपा०—आनंद स्वरूप गुप्त, सर्वभारतीय काशिराज न्यास, वाराणसी, 1968
बुद्धचरित, संपा०—कावेल, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1972
वराह पुराण, संपा०—आनंद स्वरूप गुप्त, सर्वभारतीय काशिराज न्यास वाराणसी, 1977
विनय पिटक, अनु० रिज डेविड एवं एच० ओल्डनवर्ग, आक्सफोर्ड, 1881-85
विष्णु पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1975
वृहत् संहिता (वाराहमिहिर) संपा०—अच्युतानंद झा, वाराणसी, 1977
वृहज्ज्योतिषसार, संपा०—उमाशंकर शुक्ल, वाराणसी, 1962
वाजसनेयी श्री शुक्ल यजुर्वेद संहिता, पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र मुम्बई, सं० 1969

व्यवहार प्रकाश (वीर मित्रोदय में) संपा०—विद्यासागर, चौखबा, वाराणसी, 1875
विद्धशाल भंजिका, कलकत्ता ओरियण्टल सीरीज, संख्या 30, कलकत्ता, 1943
भविष्य पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1992
भाव प्रकाश, भाव मिश्र
याज्ञवल्क्य स्मृति, संपा०—नारायण शास्त्री, चौखबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
मज्झिम निकाय, अनु०—लार्ड चालमर्स, लंदन, 1926-27
मनु स्मृति, अनु०—जी० झा, कलकत्ता, 1922-29
मिलिदपण्हो, अनु०—रिज डेविड, आक्सफोर्ड, 1890-94
श्रीमद्भागवत पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० 2043
श्रीमद्वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1975
शतपथ ब्राह्मण, अनु०—गंगाप्रसाद उपाध्याय, गोविंदराम हासानंद, दिल्ली, 1988
शुक्रनीति सार, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1939
स्कंद पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1951
सामवेद सहिता, संपा०—श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1996
सुश्रुत संहिता, (डल्हण की टीका के साथ), मुम्बई, 1938
सुत्त निपात, संपा०—डी० एंडर्सन व एच० स्मिथ, लंदन, 1913
हर्षचरित आफ वाणभट्ट, संपा०—पी० बी० काणे, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, 1973

आधुनिक लेखकों द्वारा लिखे गये ग्रंथ

Angles, Fredrich — Parıvar, Nıjı Sampatı aur Rajya kı Utpattı, Pragatı Prakashan, Masco, 1974

Andreyev, E — Banar Ke Nar Banane Ke Prakriya Me Sram Kı Bhumıka, Pragatı Prakasan, Masco, 1985

Agrawala, V S — The Heritage of Indian Art, Publication Division, Ministry of Information & Broadcasting, 1964, Ancient Indian Folk Cults, Prithvi Prakasan, Varanası, 1970, Gupta Art, Lucknow, 1947, Panınıkalın Bharat, Motilal Banarsıdas, Varanası, 1944, Bhartıya Kala, Prithvi Prakasan, Varanası, 1977

Agrawala, P K — Gupta Temple Architecture, Varanası, 1968

Banarjee, J N — Religion ın Art & Literature, 1968, The Development of Hindu Iconography, Munshi Ram Manoharlal Publishers, Delhi, 1956

Basham, A L	The Wonder that was India, Hindi trans —Venkatesh Pandey, Shiv Lal Agrawal and Co , Agra, 1993
Bhandari, Chandra Raj	Vanausadhi Chandrodaya
Bajpayee, Krishna Dutt	Mathura Ke Vedika Stambha, Bharat Kala Bhawan, Varanasi, Bhartiya Vastukala Ka Itihas, Uttar Pradesh Hindi Sansthan, Lucknow, 1990, Bharatiya Kala, Madhya Pradesh Hindi Granth Akadami, Bhopal, 1994
Barua, B M	Bharahut, Vol I, II, III, Delhi, 1979
Biswas, K	Common Medicinal Plants of Darjiling & Sikkim, Govt of West Bengal Press, 1956
Blatter & Millard	Some Beautiful Trees of India, Mumbai, 1937
Brandis	Indian Trees
Brown, Parsi	Indian Architecture (Hindu & Buddhist), Mumbai, 1956
Chandra, P	Stone Sculptures in Allahabad Museum A descriptive Catalogue, Poona, AIIS Publication, 1970
Chaturvedi, Sri Narayan	Nagar Shaile Ke Naye Hindu Mandir, Delhi, 1982
Chakravarti Kanchan	Society Region & Art of the Kushan India, Calcutta, 1981
Chowdhery, K A & Ghose, S S	Plant Remains from Harappa, Ancient India, No 7, 1951
Cowen, D V	Flowering Trees & Shrubs in India, Thacker & Co Ltd , Mumbai, 1957
Coomaraswami, A K	Transformation of Nature into Art, 1927 ed Dover, History of Indian Art, London, Yakasas, Vol I & II, Munshiram Manoharlal Publishers, New Delhi, 1971, Early Indian Iconography, II, 1929
Cowell, E B	Editor General, The Jatakas, trans from Pali, Luzac & Co London, 1957
Cunningham, A	Description of the Stupa of Bharahut, London, 1879, Mahabodhi, Varanasi, Bhilasa Tops, Varanasi, 1966
Danielov, A	Hindu Poltheism, Routledge & Kegan Paul Ltd , London, 1964
Dawson, J	Classical Dictionary of Hindu Mythology, Routledge & Kegan Paul Ltd , London, 1961
Dev, Krishna	The Temples of Khajuraho in Central India, Ancient India, 1959, Temples of North India, 1969, Khajuraho, New Delhi, 1986

Dubois, Abb J A — Hindu Manners, Customs & Ceremonies, Clarendon Press, Oxford, 1907

Dutta, B K — Bengal Temples, Munshiram Manoharlal Publishers, Delhi, 1975

Dahejia, Vidya — Early Buddhist Rock Temples, Thames & Hudson, London

Deshpandey, M N — Ajanta, Prakashan Bibhaga, New Delhi, 1974

Dhovalikar, M K — Sanchi A Cultural Study, Yarvada, 1965

Ajanta A Cultural Study, Poona, 1974

Dwivedi Hajari Prasad — Prachin Bharat Ke Kalatmak Vinod, New Delhi, 1981, Hindi Sahitya Ki Bhumika, Hindi Granth Ratnakar, Heerbagh, Mumbai, 1944, Kutaj, Ashok Ke Ful, Lok Bharati, Allahabad, 1985

Das, Rai Krishna — Bhartiya Murtikala, Bhartiya Chitrakala

Davids, Rhys — Buddhist India, Calcutta, 1950

Dubey, H N — Bhartiya Sanskriti Evam Kala, Allahabad, 1999

Elwin, Verrier — Myths of Middle India, Oxford University Press, 1954

Fellows, W J — Religions of East and West, Holy Rhinehard & Winston, New York, 1979

Fergusson J — Trees & Surpent Worship, London, 1983, History of India & Eastern Architecture, London, 1876

Fergusson, J & Burgess, J — The Cave Temples of India, Oriental Books, Reprint book Publishers, Delhi, Buddhist Cave Temples, Varanasi, 1964

Fushe, A — The begning of Buddhist Art, London, 1918

Fogel, J P H — Buddhist Art in India, Cylon & Java, New Delhi, 1970, The Women & Tree are Salbhanjika in Early Indian Literature & Art

Gangoli, O C — Indian Terracotta Art, Rupa & Co Calcutta, 1959

Ghosh, A — ed , Jain Art & Literature, Bhartiya Gyanpitha, New Delhi, 1975

Goyetz, Harman — India, Five Thousand Years of Indian Art London, 1950

Gupta, S M — Plant Myths and Traditions in India, E J Brill, Leiden, 1972, Plants in Indian Temple Art, B R Publishing Corporation, Delhi

Gupta, S P — The Kushan Art of Sanghol, New Delhi, 1986, The Roots of Indian Art, Delhi, 1980

Gupta, Ramesh — Adhunik Jantu Vigyan, Mujaffar Nagar, 1998

Gupta, S S — Tree Symbol Worship in India, Indian Publications, Calcutta, 1965

Gupte & Mahajan — Ajanta, Ellora & Aurangabad Caves, Mumbai, 1962

Gopal, Lallanji — Aspects of History of Agriculture in Ancient India, Varanasi, 1980

Goswami, A — Indian Temple Sculpture, Calcutta, 1956

Hallade, M — The Gandhar Style and the Evolution of Buddhist Art, Thomes & Hudson, London

Hei'ser, B C — Night Shades, The Paradical Plants, W H Freeman & Co , San Francisco U S.A

Hellebrant, A — Vedic Mythology, Vol I, trans by S E Sarma from the Original German Text, Motilal Banarasidas, Delhi, 1980

Hopkins, E W — Religion of India, Edward Arnold Publishers, London, 1986

Haivel, E V — Ancient & Medival Architecture of India, London, 1915, Ideals of Indian Art, London, 1911

Jha, S N & A K Sinha — Vanaspati Sastra, Patna, 1996-97

Jain, Sri Chandra — Kavya Me Padap Puspa, Madhya Pradesh Prakashan Samiti, Bhopal, 1958

Jolly, J — Hindu Law and Custom, trans —B K Ghosh, Calcutta, 1828

Jobes, G — Dictionary of Folklore, Mythology & Legend, Newyork, 1950

Kausik, M P — Vanaspati Vigyan, Mujaffarnagar, 1993

Kosambi, D D — Myth & Reality, Studies in the formation of Indian Culture, Popular Prakashan, Mumbai, 1962, The Culture & Civilization of Ancient India, Mumbai, 1965

Korovkin, Fyodor — Prachin Vishva Itihas Ka Parichaya, Pragati Prakasan, Masco, 1982

Kdringaton — Ancient India, London, 1926

Kane, P V — History of Dharmasastra, Vol I-V, Poona, 1974

Karamrisch, Stella — Indian Sculpture, Philadelphia USA, 1960, Presence of Shiva, Oxford University Press, 1981, The Art of India, London, 1955, Classical Indian Sculpture, Calcutta, 1933, The Hindu Temples, Vol I & II, 1946

McDonald, A A — Sanskrit Sahitya Ka Itihas, trans Charuchandra Sastri, Varanasi, 1962, Vadic Mythology

Maheswari, J K — The Flora of Delhi, CSIR, New Delhi, 1963

Mehta, Rustam J , — Masterpieces of Indian Temples, Taraporevala & Sons, Mumbai, 1974

Mees, G H — Dharma and Society, The Hague, 1935

Mishra, R H — Yakshini Images and Matrika Tradition of Central India, Bhopal, 1975

Mishra, Jai Shankar — Prachin Bharat Ka Samajik Etihas, Bihar Hindi Grantha Akademy, Patna, 1983

Munshi K.M — Saga of Indian Sculpture, Bhartiya Vidya Bhawan, Mumbai, 1971, Indian Temple Sculpture, ed by A Goswami Rupa & Co , Mumbai, 1959

Meyer J J — Sexual Life in Ancient India, Standard Literature Co Ltd , Brandford, 1952

Marshal, J — Indus Vally Civilization, 1953

Marshal, J & Fuse, A — The Monuments of Sanchi, Vol II

Mecann — Trees in India

Mishra Indumati — Pratima Vigyan, M P Hindi Grantha Academy, Bhopal, 1972

Mishra R N — Bhartiya Murtikala, Delhi, Ancient Artists and Art Activity, Shimala 1975

Mitra, Devala — Buddhist Monuments, Calcutta, 1970, Ajanta, New Delhi, 1974

Moti Chandra — Prachin Bhartiya Vesh Bhusa, Allahabad, 1950

Nambiyar, K Damodaran — Narad Puran A Critical Study, Varanasi, 1979

Nath, R — The Art of Khajuraho, Abhinav Prakashan, Delhi, 1980

Om Prakash — Prachin Bharat Ka Samajik Evam Arthik Etihas, New Delhi, 1986, Food & Drinks in Ancient India, Delhi, 1961

Pandey, J N — Bharatiya Kala, Vidya Sagar, Allahabad, 1993, Puratatva Bimarsa, Vidyasagar, Allahabad, 1991

Ragozin, Z — Vedic India, Oriental Publishers, Delhi, 1961

Randhava, R S — History of Indian Agriculture, Part 1, CSIR, Delhi, 1980; The Cult of Trees and Tree Worship in Buddhist Hindu Sculpture, AIFACS Publications, New Delhi, 1964

Rao, T.A G — Elements of Indian Iconography, Motilal Banarsidas, 1968

Roy, Gulab — Adhyayan Aur Aswad, Delhi, 1957

Roy, Nihar Ranjan — Maurya & Post Maurya Art, ICHR New Delhi, 1975, Bhartiya Kala Ka Adhyayan, Maurya & Sunga Art, Calcutta, 1945

Roy, U N — Lok Parampara Me Dohad, Lok Bharti, Allahabad, 1997, Sal Bhanjika, Lok Bharati, Allahabad, 1997, Prachin Bharat Me Nagar Tatha Nagar Jivan, Allahabad, 1965

Rao, Manju — Sanchi Sculpture A Cultural and Aesthetic Study, Delhi, 1989

Rowland, B — The Art & Architecture of India, London, 1956,

Sastri, Nemi Chandra,

Bhartiya Jyotisa, New Delhi, 1992

Sharma, R C — The Buddhist Art of Mathura, Delhi, 1985, Mathura Museum & Art, Govt Museum Mathura, 1976

Sharma, R S — Prachin Bharat, Delhi, 1990, Prachin Bharat Ka Samajik Aur Arthik Itihas, Delhi, 1993

Shivaram Murti, C — Indian Sculpture, Delhi, 1961, Sculpture inspired by Kalidasa, Madras, 1972

Smith, V A — History of Fine Arts in India and Ceylon, Clarendon Press, Oxford, 1930

Satyadev, Sobha & Abhinav — Bhartiya Puralipi, Abhilekh Evam Mudraye, Faizabad, 1992

Stutley, Margaret & James — A Dictionary of Hinduism, Allied Publishers, New Delhi, 1977

Sarma, I K — The Development of Early Saiva Art & Architecture, Sundeep Prakashan, Delhi, 1982

Saraswati, S K — A Survey of Indian Sculpture, Firma K L Mukhopadhyaya, 1957

Sitholey, R V — Plants Represented in Ancient Indian Sculpture, Geophytology, Vol 6, No I, 1976

Sahaya, Bhagavant — Iconography of Minor Hindu and Buddhist Ditties, Abhinav Publications, Delhi, 1975

Sahaya, Sachchitananda — Mandir Sthapatya Ka Itihas, Bihar Hindi Grantha Academy, Patna, 1981

Sarkar, D C — Select Inscriptions, Calcutta University, 1942

Saundar Rajan, K V — Indian Temple Styles, Munsiram Manoharlal, Delhi, 1972

Srivastava, A L — Bhartiya Kala, Allahabad, 1988

Srivastava, K C — Bharat Ki Sanskriti Tatha Kala, Allahabad, 1996

Srimali, K M — Agrarian Structure in Central India and the Northern Deecan (AD 300-500), New Delhi, 1987

Thomas, E — The Life of Buddha, Munshiram Manoharlal, New Delhi, 1992

Thapar, Romila — Ancient Indian Social History, Delhi, 1978

Upadhyaya, Bhagavat Sharan — Gupta Kal Ka Sanskritik Itihas, 1969, Bhartiya Kala Ka Itihas, 1981

Upadhyaya, Vasudev — Gupta Samrajya Ka Itihas, 1952, Bhartiya Sikke, 1948

Vidyalankar, Satyaketu — Prachin Bharat Ka Vedic Yug, New Delhi, 1989

Watts, A — The Temple of Konarak, Vikas Publications, Delhi, 1977

Wells, H G — The Outline of History, Useful Plants of India, Publication & Information Directorate, CSIR, New Delhi, 1986

Zaheer, M — The Temple of Bhitargaon, Delhi, 1981

Zannas, E & Auboyer, J — Khajuraho, 1960

Zimmer, H — The Art of Indian Asia, Bollingen Series XXXIX, Pantheon Books, New York, 1953, Myths and Symbols in Indian Art and Civilization (3rd ed), Boollingen Series, Newyork, 1953, Bharat Ka Sambidhan, Central Law Publication, Allahabad, 1999

शोध पत्रिकायें

Annals of Bhandarkar Oreintal Research Institute

Archaeological Survey of India, Annual Report

Artibus Asiai

Bulletin of Deccon College, Poone

Bulletin of School of Oriental & African Studies

Corpus Inscriptionum Indicarum

Eastern Art

Epigraphica Indica

Indian Historical Quarterly

Journal of the Indian Society of Oriental Art

Journal of Royal Asiatic Society, London

Journal of Bihar & Orissa Research Society, Patna

Journal of Ganga Nath Jha Kendriya Sanskrit Vidyapith, Allahabad

Journal of Indian History

Journal of Madhya Pradesh Itihas Parishad, Bhopal

Journal of U P Historical Society, Lucknow

Journal of the Numismatic Society of India

Lalit Kala

Puratatva

Puranam

अन्य पत्रिकायें

अखंड ज्योति, मथुरा

कादम्बिनी, नयी दिल्ली

धन्वंतरि

*निरोगधाम, इंदौर
ज्योतिष सागर, जयपुर
नवनीत, मुम्बई
कल्याण (के विशेषांक), गोरखपुर
युग निर्माण योजना, हरिद्वार
योजना, नई दिल्ली

समाचार पत्र

अमर उजाला, इलाहाबाद
आज, इलाहाबाद
दैनिक जागरण, वाराणसी
नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली
हिन्दुस्तान, लखनऊ
हिन्दुस्तान टाइम्स, लखनऊ
द टाइम्स आफ इंडिया, लखनऊ
द हिंदू, नई दिल्ली

●